कथा भारती

असमिया कहानियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

कथा भारती
असमिया कहानियां

संकलनकर्ता

निर्मलप्रभा बारदोलोई

अनुवादक

नवारुण वर्मा



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1543-9

पहला संस्करण 1995 (शक 1917)

Original Title : Assamiya Galpa Sankalan (*Assamise*)
Translation : Katha Bharti : Assamiya Kahaniyan (*Hindi*)
रु. 47.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

भूमिका

कहानी में जीवन के किसी चरम क्षण की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है,इसी कारण आधुनिक साहित्य के विशिष्ट अंग के रूप में कहानी आजकल इतनी लोकप्रिय बन गयी है। वर्तमान तीव्र गतिसंपन्न,विरामहीन समाज में लंबे महाकाव्यों की अपेक्षा लघु एवं साथ ही रसात्मक कलाओं का अधिक आदर होना स्वाभाविक ही है। युगों से जन-समाज में प्रचलित किस्से-कहानियां या नीति-उपदेश आदि की शिक्षा देने हेतु रचित **हितोपदेश, पंचतंत्र** की कथाएं, **जातकों** के आख्यान, ईसप की कहानियां, **बाइबिल** की नीति-कथाएं भी अपेक्षाकृत लघु ही हैं। तब क्या उनका भी मूल्यांकन कहानी के रूप में किया जा सकता है ? नहीं, विषय-वस्तु और तकनीक की दृष्टि से उनमें और आधुनिक कहानी में अंतर है। किस्से-कहानियां भी छोटी होती हैं,उनमें कौतूहल भी होता है,पर उनमें आधुनिक कहानी जैसी जीवन के खंड-रूपों की बुद्धि-दीप्त, सार्थक और मोहक अभिव्यंजना नहीं होती है। किस्से-कहानियां, कल्पना के बावजूद बिलकुल सपाट होती हैं। किस्सों का उद्देश्य तथा नीति-व्यंजना आधुनिक कहानियों जैसी अंतर्निहित संकेतात्मकता वाले नहीं होते।

असमिया कहानी का प्रारंभ पश्चिमी साहित्य के संस्पर्श से हुआ। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में चेखव, मोपासां आदि विश्वप्रसिद्ध कथाकारों की कहानियों ने पश्चिमी साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी। उनके प्रभाव से असम भी अछूता नहीं रहा। स्वनामधन्य लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा को ही आधुनिक असमिया कहानी का प्रथम कथाकार होने का गौरव प्राप्त है। असम के मध्य वर्ग और ग्रामीण समाज के 'टाइप' चरित्रों से बेजबरुवा का घनिष्ठ परिचय था। इसी कारण ऐसे चरित्रों में वे मानवीय गुण-दोष,हास-रुदन,वेदना-हताशा आदि का चित्रण आकर्षक रूप से करने में समर्थ हुए थे,(जैसे कि "भदरी", "पातमुगी", "आशा का संसार" आदि कहानियों में)। हास्य-रस-मंडित,तीखी व्यंग्यात्मक निपुणता से सामाजिक अंधविश्वास, मिथ्या आत्माभिमान,पश्चिमी रीति-रिवाजों के हास्यास्पद अंधानुकरण आदि विषय-वस्तुओं के आधार पर सरस कहानियों की रचना करके उन्होंने अपने 'रसराज' नाम की सार्थकता सिद्ध कर दिखायी थी। "भोजपुरिया मौजादार", "सेउती", "जगरा मंडल का प्रेमाभिनय", "मलक गुइन गुइन", "भोकेंद्र बरुवा" आदि उनकी ऐसी ही कहानियां हैं। बेजबरुवा की कहानियों का ढांचा सभी कहानियों में त्रुटिहीन भले ही न हो, पर उनकी रचनाओं में तत्कालीन असमिया समाज का हू-ब-हू चित्रण हुआ है और इसी कारण उनकी कहानियां कालजयी बन गयी हैं।

साहित्य में रोमांटिक दृष्टिकोण के प्रसार के साथ-साथ वर्ग-वैषम्य, सामाजिक अनाचार, सत्ता द्वारा जनता का उत्पीड़न, प्रेम की महत्ता, अवैध प्रणय आदि विषयों पर भी लेखकों ने

दृष्टि डाली और कहानी सुधारवादी भावना से इन विषय-वस्तुओं को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने का सुंदर माध्यम बन गयी। उपन्यास-सम्राट रजनीकांत बारदोलोई की "गाधन" (दहेज) कहानी और शरतचंद्र गोस्वामी के कहानी-संकलन **मयना** और **गल्पांजलि** की कई कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। शरतचंद्र गोस्वामी की "बनरीया प्रणय" (अरण्य-प्रणय) कहानी में बाधाओं की दीवारों से टकराते मिरि जाति के तरुण-तरुणियों के अरण्य-प्रणय का, "नदराम" कहानी में आम आदमी की महत्ता का, "यात्री" और "ब्रह्मपुत्र बुकुत" (ब्रह्मपुत्र की छाती पर) कहानियों में अवैध प्रेम की मादकता का वर्णन बड़ी निपुणता से किया गया है। गोस्वामी की यथार्थपरक कहानियों में बाल-विधवा के करुण रुदन का चित्रण भी उल्लेखनीय है। शरतचंद्र गोस्वामी और रजनीकांत बारदोलोई के समकालीन दंडीनाथ कलिता भी विशिष्ट कहानी-लेखक थे। उनकी कहानियों के पात्र विषमता भरे, संकीर्ण समाज का सुधार कर आदर्श का आलोक वितरण करना चाहते हैं। जिंदगी के अनेक घात-प्रतिघातों के बीच भी इनके पात्र हार नहीं मानते। इनके **सातशरी** संकलन की कहानियों में अंतर्द्वंद्व की जटिलताओं को भी प्रस्तुत किया गया है। "हरिचरणर बिया" कहानी में वर्ण-भेद पर प्रहार करते हुए ब्राह्मण-युवक और शूद्र-कन्या का विवाह संपन्न करवाया गया है।

इन कहानीकारों के बाद लक्ष्मीधर शर्मा की कहानियां, जो संप्रति **व्यर्थतार दान** संकलन में प्रकाशित हैं, सामने आयीं। उनकी कहानियों ने असमिया साहित्य में कहानियों को मर्यादा की एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ा दिया। क्रांतिकारी भावना-संपन्न लक्ष्मीधर शर्मा की कहानियों में समाज-सचेतनता और जटिल मनोविश्लेषण का समावेश है। सामाजिक कायरता को उनकी कहानियां झकझोरकर उतार फेंकना चाहती हैं। "विद्रोहिनी" शीर्षक उनकी कहानी में सामाजिक अन्याय, अनाचार की पृष्ठभूमि पर एक विधवा की मनोभावना उकेरी गयी है।

असमिया कहानी का प्रारंभ-काल ऐसा विशिष्टता-पूर्ण था। फिर भी, वस्तुतः "आवाहन-युग" ने उसे वर्षा के प्लावन की भांति परिपुष्ट किया था। मासिक-पत्र **आवाहन** के विस्तृत वक्ष पर पुराने खेमे के प्रथितयशा कहानीकारों की कहानीधारा प्रवाहित हुई। **आवाहन** के प्रतिष्ठापक नगेंद्र नारायण चौधुरी की **आवाहन** में प्रकाशित अनेक कहानियां **बीणार झंकार** (वीणा की झंकार) और **नगेंद्र नारायण चौधुरीर गल्प** संकलनों में संप्रति प्रकाशित हुई हैं। उनकी कहानियों का मुख्य आधार है, प्रेम और जीवन। नलिनी कांत बरुवा और चित्रभानु चौधरी "आवाहन-युग" के जनप्रिय लेखक थे। प्रचुर संभावना-संपन्न लेखक नलिनी कांत बरुवा असमय में ही काल-कवलित हो गये। धारावाहिक रूप से "जीवनर खलाबमा" (जिंदगी का उतार-चढ़ाव) शीर्षक से प्रकाशित कहानियों ने चित्रभानु चौधुरी को प्रतिष्ठित किया था। सदानंद दास ने मध्यवर्ग की समस्याओं के संदर्भ में कई कहानियां लिखीं। उपन्यासकार राधिकामोहन गोस्वामी समाज के विभिन्न स्तरों के जन-जीवन के आंतरिक अंकन और परिवेश-चित्रण की दक्षता के कारण "आवाहन-युग" के यशस्वी कहानीकार के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए थे। "नियति", "देवतार समाधि", "असमाप्त", "स्टेट ट्रांसपोर्ट" आदि उनकी कुछ कहानियां वास्तव में स्मरणीय हैं। अत्यंत संभावना-संपन्न कृष्ण भुयां और मुनीन

बरकटकी ने नवीन शैली की मनोविश्लेषणात्मक कहानियां **आवाहन** में लिखनी शुरू की थीं। मगर इन दोनों की लेखनी अकाल में ही मौन हो गयी। **अतीतर स्मृति** कहानी-संकलन के कथाकार हरेंद्र नाथ कलिता भी इसी युग के हैं।

महीचंद्र बरा, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, हलिराम डेका, लक्ष्मीनाथ फुकन और बीणा बरुवा जैसे सार्थक कथाकार "आवाहन-युग" के ही हैं। राजनीतिज्ञ एवं कवि महीचंद्र बरा की कहानी-कला का मूल आकर्षण है हास्य रस के पुट के साथ तीखी श्लेषात्मक निपुणता। समाज के सामूहिक ढांचे की परत-दर-परत फैले भ्रष्टाचार, मूढ़ता, संकट में भी निश्चल, निर्विकार असमिया मध्यवर्गीय जीवन तथा उस जीवन के छोटे-छोटे प्रहसनों का चित्रण इन्होंने दक्षता से किया है। "असार खलु संसार", "योग आरु वियोग", "जय-पराजय", "उकीलर जन्म रहस्य" आदि कहानियां महीचंद्र बरा की कहानी-कला की उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

न्यायाधीश हलिराम डेका की कहानियों में आम लोगों के जीवन के सौंदर्य, आशंका, उत्कंठा आदि का कभी तो बड़े करुण रूप और कभी हास्य-रस के माध्यम से चित्रण किया गया है। "मरा घोंरा" और "रे बड़े भाई" कहानियों की मार्मिकता इसी कारण चिरंतन है। आजीवन पत्रकार रहे तथा विभिन्न रूपों में अभी हाल तक साहित्य को अपनी देन से समृद्ध करने वाले लक्ष्मीनाथ फुकन के कहानी-संकलन **ओफाइदांग** में अंतःसार-शून्य आधुनिक पात्रों के आडंबरपूर्ण, मिथ्या दंभ का निपुण चित्रण है। आम प्रयोग में आने वाली भाषा, मुहावरों-कहावतों के उचित प्रयोग से सरल-सरस कहानी लिखने में फुकन सफल हुए हैं। राजनीति और समाजनीति के प्रति पूरी तरह सजग, कृती समालोचक त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी ने यथार्थपरक और सुधारात्मक कहानियां लिखकर अपने को कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। **अरुणा** और **मरीचिका** नामक संकलनों की कहानियों में बाल-विधवाओं की असहाय यंत्रणा के साथ-साथ सामाजिक निर्ममता, दूसरे महायुद्ध काल में फैली नैतिक रुग्णता, भ्रष्टाचार-ग्रस्त वातावरण में मानवात्मा की दुविधा आदि के विविध रूप सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं। उसी काल में डॉ. बिरंचि कुमार बरुवा ने 'बीणा बरुवा' के नाम से शुद्ध वर्णनात्मक शैली की कहानियां लिखकर चरित्र एवं वातावरण दोनों के चित्रण में जो निपुणता दिखायी थी, "पट-परिवर्तन", "आघोनी बाई" आदि कहानियां उसका स्पष्ट निदर्शन हैं। उपन्यासकार दीनानाथ शर्मा ने निजी मौलिक शैली में, प्रेमानारायण दत्त ने अतिशयोक्ति तथा हास्यरसात्मक शैली में, निर्मला देवी ने सरल-प्रांजल भाव से तथा सुप्रभा गोस्वामी ने प्रकृति-प्रेम विषयक कहानियां लिखकर "आवाहन-युग" को समृद्ध बनाया था।

"आवाहन-युग" के सर्वाधिक लोकप्रिय कहानीकार थे रमा दाश। उच्च मध्यवर्ग और मध्यवर्ग का रोमांस ही उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि रहा है। मानव-चरित्र के अंतराल में चिर प्रवहमान जैविक वासना, शिक्षित समाज के कल्पना-विलास का रंग चढ़ाकर किस प्रकार मुक्त एवं अबाध विचरण करना चाहती है, उसकी मनोरम गति को बड़े आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने की कला उन्हें आती है। मानसिक दुविधा-द्वंद्व को रूपायित करने में त्रुटिहीन पृष्ठभूमि, रचना-कौशल एवं रमणीय भाषा उनकी मदद करते हैं। "सेतु बंधन", "जाह्नवी", "अचल टका"

(खोटा सिक्का) आदि उनकी उत्कृष्ट कहानियां हैं ।

"आवाहन-युग" के उत्तरार्द्ध में कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित सैयद अब्दुल मलिक ने पिछले चार दशकों से अविश्वसनीय लोकप्रियता के शिखर पर रहकर असमिया कहानी को समृद्ध किया है । जीवन विचित्र है, व्यापक है, महत्वपूर्ण है – इस गहरी आस्था से मलिक ने जीवन का अति अंतरंग अध्ययन किया है । चिरंतन मानवीय आवेग, प्रणय, वेदना, गलतफहमी या जाने-अनजाने के सूक्ष्म चित्रण में सिद्धहस्त मलिक आगे चलकर विभिन्न दृष्टिकोणों एवं मनोविश्लेषणात्मक निपुणता से समाज के हर तबके के चरित्रों के करीब पहुंचे हैं । राजनीतिक अन्याय या सांप्रदायिक संघर्ष द्वारा सर्जित करुणा, सामाजिक विषमता, व्यक्ति-समाज का संघात, आर्थिक-संकट से जर्जर कला-प्रतिभा, काम-वासना की प्रतिक्रिया आदि का चित्रण मलिक ने कभी मार्क्सवादी, कभी फ्रायडीय और सर्वोपरि मानवीय दृष्टि से नये-नये कला-कौशलों के प्रयोग द्वारा किया है । मनोरम भाषा एवं आखिर तक उत्सुकता को बनाये रखने की निपुणता मलिक की कहानियों की एक और उल्लेखनीय विशेषता है ।

दूसरे महायुद्ध का सर्वग्रासी प्रभाव इसी बीच असम के जन-जीवन एवं साहित्य पर पड़ा । पहले की ध्यान-धारणा, चित्रण एवं आदर्श को दूसरे महायुद्ध ने झकझोर डाला था । साथ ही, स्वतंत्रता-आंदोलन ने भी समूचे भारत में उथल-पुथल मचा दी थी । ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस काल-खंड ने जिन नवीन लेखकों के दृष्टिकोण को नयी दिशा दी थी, उनमें बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य का नाम सबसे पहले आता है । दूसरे महायुद्ध के दौरान पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद-सा हो जाने के बाद **रामधेनु** के उदय से नवीन युग की शुरुआत हुई । **रामधेनु** ने ही विशेषकर नये खेमे के लेखकों को प्रतिष्ठित किया । हालांकि इस दृष्टि से **जयंती** और **पछोवा** की देन भी पर्याप्त रही है ।

बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य इस कारण सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं कि उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि असम के आस-पास के पहाड़ों के साथ-साथ सागर-पार के देशों को भी समेटे हुए है । असम के लोगों ने, खास तौर पर असम के ग्रामीण कृषक-समाज ने स्वतंत्रता का जो सपना देखा था वह कैसे टूटा, आर्थिक विषमता के कारण उत्पन्न सामाजिक स्थिति और सामाजिक अन्याय की पृष्ठभूमि पर क्रांति का विद्युत-स्पर्श देते हुए बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य ने सशक्त कहानियां लिखीं । फ्रायडीय दृष्टिकोण से मानव-चरित्र के अवचेतन मानस की क्रिया-प्रतिक्रिया को जिस प्रकार उन्होंने अपनी कुछ कहानियों में अभिव्यक्त किया है या सुधारात्मक महत् आदर्शों द्वारा मानसिक संसार का जिस प्रकार चित्रण किया है, उसी प्रकार परमाणु वमों द्वारा सर्जित मानव जीवन की करुणतम त्रासदी का चित्रण कर अंतर्राष्ट्रीय विषयवस्तु के आधार पर कहानी-लेखन का आदर्श भी प्रस्तुत किया है । सारी दुनिया की उत्पीड़ित मानवात्मा के प्रति लेखक की गहरी संवेदना भी इनके जरिये मूर्त हुई है ।

उपन्यासकार के रूप में ख्यातिप्राप्त जोगेश दास इस खेमे के सार्थक कहानीकारों में अन्यतम हैं । गहरी सहानुभूति एवं हृदयग्राही सरलता के साथ आप मानव-चरित्र के रहस्य में प्रविष्ट होना चाहते हैं । दूसरे महायुद्ध द्वारा होने वाले नैतिक पतन, हृदय और मस्तिष्क, व्यक्ति

और समाज का चिरंतन संघात, विवश आदर्श, सामाजिक अन्याय, मानव-मन की क्रिया-प्रतिक्रिया आदि का अपनी निपुण लेखनी द्वारा चित्रण करने की कला यशस्वी कथाशिल्पी जोगेश दास को बखूबी आती है। उनकी कहानियों की एक उल्लेखनीय विशिष्टता सांकेतिकता है।

समकालीन सुदक्ष लेखक महिम बरा की कहानियों में कहानी-कला का दो-तरफा प्रवाह है। असमिया गांवों के निम्न मध्यमवर्गीय जीवन के परिवेश और चरित्रों का चित्रण अद्भुत और त्रुटिहीन ढंग से करते हुए कहानीकार महिम बरा की कहानियों में एक ओर जहां पाठकों का हृदय सिक्त करने वाली करुणा की अभिव्यक्ति है, वहीं सशक्त हास्य-रस का अपार संभार भी है। संकट, संशय और नीरसता से ग्रस्त और विवर्ण इस युग में हास्य-रस का सृजन करना वास्तव में मुश्किल है। "अपराजित", "चक्रवत्", "लाडू गोपालर प्रेम" (लड्डू गोपाल का प्रेम), "मइ पिपली[1] आरु पूजा" (मैं पिपली और पूजा) आदि कहानियों में करुण-रस के साथ हास्य-रस का अपूर्व समन्वय करने में महिम बरा अत्यंत सफल रहे हैं। "टोप" (चारा), "माछ और मानुह" (मछली और इंसान) जैसी कहानियों में जीवन और प्रकृति के बीच रहस्यात्मक संबंध का चित्रण भी बरा ने सुंदर ढंग से किया है।

व्यंग्य, हास्य एवं करुण-रस के उपकरणों से सुसंगठित लक्ष्मीनंदन बरा की कहानियां काफी आकर्षक हैं। बदलती हुई पृष्ठभूमि में टूटते हुए असमिया ग्रामीण जीवन के रूप एवं प्रतिक्रिया, यांत्रिक प्रगति के साथ आयी गिरावट, मानव के साथ यंत्रों की होड़ आदि करुण अभिव्यक्ति वाले विषयों पर आधारित मर्मस्पर्शी कहानियां लिखकर एक निपुण कथाकार के रूप में बरा प्रतिष्ठित हुए हैं। इनके अलावा सांप्रतिक काल के सामाजिक पाखंड पर तेज नजर डालते हुए श्लेषात्मक तथा हास्य-रसात्मक शैली की कहानियों की रचना द्वारा उन्होंने व्यंग्यात्मक कहानियों की धारा प्रवाहित की है।

डॉ. भवेंद्रनाथ शइकिया, सौरभ कुमार चलिहा, और होमेन बरगोहांइ असमिया कहानी-साहित्य के तीन शक्तिशाली लेखक हैं। तीनों की कहानी-शैली भिन्न है। पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित करने वाले डॉ. भवेंद्रनाथ शइकिया की तकनीक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणात्मक होने के साथ-साथ अद्भुत संकेतात्मक होती है। हर तबके के लोगों के मन की जटिल, कटी-पिटी राहों का अता-पता अद्भुत दक्षता से प्रदर्शित करना उन्हें खूब आता है। उनकी सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक कहानियों के चरित्र असम के लगने पर भी वास्तव में सार्वदेशिक होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विषयों के आधार पर भी उन्होंने नये ढंग की कहानियां लिखी हैं। उनकी कहानियां इस कारण भी उल्लेखनीय हैं कि वे ज्यादातर आनंद की उच्छलता से आरंभ होकर अंत तक मर्मस्पर्शी और करुण बनकर पाठक-हृदय को वेदनासिक्त कर देती हैं।

होमेन बरगोहांइ की भाषा सशक्त है, विचारधारा नयी है और उनकी कहानियों के चरित्र आकर्षक होते हैं तथा रूढ़ियों से बंधे नहीं होते। विकृत मानसिकता के आधार पर रचित

1. पान जैसी एक लता।

उनकी कुछ कहानियां चौंकाने वाली हैं और असमिया साहित्य में नये स्वर भरने वाली हैं। फ्रायडीय मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद के आधार पर भी बरगोहांइ ने कुछ स्मरणीय कहानियां लिखी हैं। निपीड़ित जनता, राजनीतिक पाखंड तथा जवानी के चिरंतन रूप का चित्रण खुले ढंग से करने की हिम्मत बरगोहांइ में है।

सौरभ कुमार चलिहा की शैली असमिया साहित्य में बिलकुल नयी है। सचेतन रूप से सर्जित, बुद्धि-दीप्त वाक्य-विन्यास के जरिये वे क्षण में विराट का प्रवेश करा देते हैं। चेतना-प्रवाह की निपुणता से इस अस्थिर युग की रुग्ण मानसिकता, धूलि-धूसरित सपनों एवं आदर्श का चित्रण बड़े मोहक ढंग से इनकी कहानियों में हुआ है। इनकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि असमिया कहानी-साहित्य में इंप्रेशनिस्टिक या प्रभाववादी शैली का प्रथम प्रवर्तन इन्होंने ही किया था।

"रामधेनु-युग" के विशिष्ट लेखक रोहिणी कुमार काकति की कहानियों में व्यक्ति एवं समाज का द्वंद्व करुण रूप से व्यंजित हुआ है। इस युग के दुविधाजर्जर चरित्रों के चित्रण में माहिर काकति की "मृत्तिका" नाम की लंबी कहानी में असम की बाढ़ के परिप्रेक्ष्य में असमिया जन-जीवन के स्वरूप और जमीन के मोह का चित्रण सुंदर ढंग से हुआ है।

मेदिनी चौधुरी की कहानियों में जनजातीय समाज की प्रतिच्छवि के विश्वस्त चित्रण के साथ ही जिंदगी की छोटी-बड़ी समस्याओं का अंकन भी निपुणता से हुआ है।

चंद्रप्रसाद शइकिया की कहानियों में प्राय: उच्च मध्यवर्गीय समाज का रूप अंकित हुआ है। यथार्थ जीवन और आदर्श का संघात उनकी परिमार्जित भाषा में सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। रोजमर्रा की जिंदगी के छोटे-छोटे रहस्यों, छोटे-छोटे प्रहसनों को लेकर सीमित परिधि में जिंदगी के खंडचित्र प्रस्तुत करने की शक्ति रखने वाले "रामधेनु-युग" के एक और कहानीकार हेम शर्मा हैं। **मंदार फूलर माला** (मंदार फूल की माला) और **बाटर दुर्वार बन** (राह की दूब) संकलनों में उनकी कहानियां संकलित हैं। डॉ. हेम बरुवा, योगेन शर्मा, क्षीरोद शइकिया, राजेन हजोरिका, कमल गगै, ललिता बरा, गोविंद चंद्र पैरा, देवीदास नेओग, हेमकांत भुयां, कुल गगै, घनकांत, चेतिया फुकन, दुल फुकन आदि "रामधेनु-युग" के विशिष्ट कहानीकारों के साथ जो महिला कहानीकार **रामधेनु** के जरिये प्रतिष्ठित हुई उनमें स्नेह देवी, निरुपमा बरगोहांइ, प्रीति बरुवा और डॉ. नीलिमा शर्मा मुख्य हैं। **निरर्थक** कहानी-संकलन की लेखिका प्रीति बरुवा का कहानी-लेखन बंद कर देना दुख की बात है। एक पात्र द्वारा कथित मोनोलॉग शैली की उनकी "हिल-बाय" कहानी पाठकों को बहुत दिनों तक याद रहेगी। नारी-चरित्र के रहस्य में झांकने का प्रयास करने वाली डॉ. नीलिमा शर्मा आजकल चिंतन-प्रधान निबंध-लेखन में जुटी हुई हैं। एकांत अनुराग से कहानी-लेखन में संलग्न स्नेह देवी और निरुपमा बरगोहांइ, दोनों ही जीवन की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाल रही हैं।

असमिया कहानी-साहित्य में **सौभार ज्योति, बरदैचिला, मणिदीप, असमिया नीलाचल, आभार प्रतिनिधि, नतुंन प्रतिनिधि** आदि असमिया पत्र-पत्रिकाओं की देन स्वीकरणीय है। इनके अलावा पत्रिकाओं के समय-समय पर निकलने वाले विशेषांकों, पूजा-अंकों आदि में

काफी अच्छी-अच्छी कहानियां निकलती रहती हैं। उदाहरणस्वरूप सौभार ज्योति में ही सु-लेखक कांचन बरुवा की कहानी-प्रतिभा सबकी दृष्टि में आयी थी। अनेक संभावनापूर्ण लेखक-लेखिकाएं दो-चार कहानियां लिखकर ही मौन हो जाते हैं। यह दुख की बात है। आकाशवाणी केंद्रों से भी बीच-बीच में अच्छी कहानियां प्रसारित होती हैं। हालांकि उनमें अधिकतर अप्रकाशित रह जाती हैं। "रामधेनु-युग" के अंतिम खंड में रामधेनु या पूर्वोल्लिखित पत्र-पत्रिकाओं या अन्य पत्रिकाओं के जरिये प्रतिष्ठित होने वाले कहानीकार हैं – अतुलानंद गोस्वामी, निरोद चौधुरी, इमरान शाह, छाइदुल इस्लाम, मामनि रयचम गोस्वामी, पद्म बरकटकी, डॉ. भुवन मोहन दास, सदा शइकिया, बीरेश्वर बरुवा आदि। अतुलानंद गोस्वामी की कहानियों की करुण अभिव्यक्ति हृदयग्राही है। छाइदुल इस्लाम की कहानियों में गरीबी और बेकारी की समस्या, आदि के साथ समकलीन जीवन का सुंदर चित्रण हुआ है। उपन्यासकार के साथ-साथ कहानीकार निरोद चौधुरी की कहानियों की पृष्ठभूमि वैविध्यपूर्ण है। असम के चाय-बागानों के परिवेश का चित्रण भी उनकी कहानियों में हुआ है। रोमांटिक भाषा उनकी विशिष्टता है। काम-प्रवृत्ति पर मनःसमीक्षात्मक उपन्यास लिखने वाले पद्म बरकटकी की कहानियां आम तौर पर राजनीतिक या सामाजिक अपराधों के प्रति व्यंग्यात्मक होती हैं। इमरान शाह की कहानियों में आम लोगों की समस्याओं एवं मुस्लिम-सामाजिक परिवेश का चित्रण है। मामनि रयचम गोस्वामी आम तौर पर नारी-चरित्र की विचित्रताओं या अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त करती हैं। डॉ. भुवन मोहन दास और सदा शइकिया, दोनों ही यथार्थवादी, साहसी लेखक हैं।

छठे दशक के मध्य या अंतिम भाग में नवीन चिंतन व शोध के जरिये कलासाधना में जुटे रहने वाले जिन कहानीकारों के स्वर पूर्ववर्ती कहानीकारों से अलग रहे उनमें नगेन शइकिया और अपूर्ब शर्मा के नाम पहले आते हैं। आधुनिक नागरिक संस्कृति की यंत्रणा से खंडित दैनिक अनुभवों की गूंज नगेन शइकिया और अपूर्ब शर्मा की कहानियों तथा अपेक्षाकृत नवीन लेखक हेमेन गगै की कहानियों में भी है। मृत्युछायाकीर्ण जीवन के भयावह पहलुओं का चित्रण भी अपूर्ब शर्मा ने निपुणता से किया है। अद्भुत निपुणता से मनोविश्लेषणात्मक कहानी-लेखन के क्षेत्र में नगेन शइकिया उल्लेखनीय हैं। भ्रष्टाचार से कर्कट-रोगग्रस्त समाज का सड़ता हुआ रूप, श्रमजीवी किसान-मजदूरों की वेदना और जुझारू संकल्प आदि प्रत्यक्ष रूप में या व्यंग्यात्मक ढंग से अरुण गोस्वामी, कुमुद गोस्वामी, विष्णु हजोरिका और नित्या बरा की कहानियों में चित्रित हुए हैं। अरुण गोस्वामी और कुमुद गोस्वामी की शैली सशक्त और उज्ज्वल संभावनापूर्ण है। उपन्यासकार महेंद्र बरठाकुर नयी पीढ़ी के रोष एवं अस्थिरता का प्रतिनिधित्व अपनी कहानियों में करते हैं। वर्तमान युग की दुविधा, संशय और जैविक-आर्थिक समस्याओं पर तेज नजर डालते हुए गोविंद प्रसाद शर्मा ने सुंदर कहानियां लिखी हैं। समकालीन समाज का सड़ा-गला रूप प्रकट करते हुए एक नवीन समाज के जन्म की कामना शीलभद्र, केशव शइकिया, मुकुट बारदोलोई, तीर्थ फुकन, अमूल्य फुकन, हरेन भुयां आदि की कहानियों में है। शीलभद्र की कहानियों में समाज-सचेतनता और व्यंग्यात्मकता उल्लेखनीय है, परंतु भद्रेश्वर राजखोवा, भुवनमोहन महंत और काली प्रसाद गोस्वामी के स्वर

अलग हैं। विशेष रूप से ग्रामीण जीवन के हास-रुदन इन तीनों की कहानियों में बड़ी आंतरिकता से चित्रित हुए हैं। डॉ. प्रणव ज्योति डेका सिर्फ चंद कहानियां लिखकर एक अलग-सा जायका देने में सक्षम हुए हैं। इनकी कहानियों में समाज-सचेतनता और व्यंग्य बड़े पैनेपन से उभरे हैं।

महिला कहानीकारों में पुरानी पीढ़ी की अनु बरुवा, डली तालुकदार, रुणु बरुवा, उमा बरुवा ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। प्रवीणा शइकिया, चित्रलता फुकन, दिपाली डेका, आरती बैरागी की कहानियों में काफी संभावना दिखती है। कोमल भाषा में अनिमा दत्त जीवन की महत्ता और तुच्छता के चित्र जिस तरह से अभिव्यक्त करती हैं, उसी तरह अनु बरुवा और डली तालुकदार विचित्र जीवन की खंडित तस्वीरें बड़े ही मनोरम ढंग से अंकित करती हैं। पवित्र डेका, सतीश भट्टाचार्य, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, कुसुम बरा, उपेन काकति, कामिनी फुकन, आलिमुन निछा पियार की कहानियां भी बीच-बीच में सुंदर रचना-सामर्थ्य का संकेत देती हैं। इनके अलावा भी अनेक नवीन लेखक-लेखिका सामने आये हैं, जिनकी उपलब्धियों के बारे में विचार करने का समय अभी नहीं हुआ है।

नेशनल बुक ट्रस्ट जैसी महत्वपूर्ण संस्था ने इस संकलन को प्रकाशित करने का आग्रह किया है, इस हेतु असमिया जनता इस संस्था की आभारी रहेगी। असम के साहित्यप्रेमी जनों की तरफ से ट्रस्ट के कार्यकर्त्ताओं को मैं धन्यवाद देती हूं। अंत में, अगर इस कहानी-संकलन की सारी त्रुटियों को क्षमाकर लोग इसे अपनायें तो हमारा कष्ट सार्थक होगा।

— निर्मलप्रभा बारदोलोई

जलकुंवरी

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

रूपही छोटी नदी है। सूखे के दिनों में पानी उथला रहता है। उस पानी को कहीं से बहकर आती हुई स्फटिक-धारा कहने पर ही उपमा ठीक बैठती है। मगर वर्षा के दिनों का पानी बटलोई में लिपाई के काम आने वाली कीचड़ जैसा हो जाता है। आश्विन-कार्तिक महीने की रूपही मौन, दुबली और लजीली-सी होती है, वहीं आषाढ़-सावन महीने की रूपही थुलथुल, मोटी, उछलती-कूदती और नर्तनमयी हो जाती है। देखने पर यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि क्या यह वही रूपही है।

रूपही के तट पर एक निर्जन, एकांत स्थान पर एक बड़ा-सा पाकड़ का पेड़ है। उसी पेड़ के नीचे एक लड़की सुबह से शाम तक बैठी हुई दिख पड़ती है। उस लड़की की नजर रूपही की छाती पर पड़ी एक भंवर पर होती है। उसे भंवर न कहकर रूपही का मुख कहना ही ठीक है। लकड़ी, कूड़ा-करकट जो कुछ वहां पहुंचता है, सबको रूपही अपने पेट में डाल लेती है। उस लड़की का रोज का काम यही था कि वह कहीं से कुछ नलकियां, सरकंडे बटोर लाती और एक-एक कर उस भंवर में डालती जाती। फिर वह तमाशा देखती रहती कि वह लकड़ी किस तरह पहले तो धीरे-धीरे, फिर तेजी से तकली की भांति चक्कर काटती हुई तुरंत अंदर समा जाती है। उसका एक और काम यह था कि वह रूपही के साथ बातें करती रहती और बीच-बीच में ऐसे कुछ गीत बनाकर रूपही को गा-गाकर सुनाती रहती, जिनका कोई ओर-छोर न होता। ऐसे ही एक गीत का नमूना है –

तइओ रूपही मइओ रूपही, रङ ते रूप चरिल
इकरा पातेरे नाओ बाइ गलों, सों माज पायेइ बुरिल।

(यानी – तू भी रूपही है, मैं भी रूपही (रूपसी) हूं। रंग से रूप बढ़ गया। सरकंडे से नाव खेती रही, नदी के बीच पहुंचते ही नाव डूब गयी।)

सोलह साल की वह लड़की भला यह सब बचपना करके कैसे समय गुजार रही है, यह या तो भगवान जानता है या खुद वह लड़की।

उनके साथ समय का तो जरा भी मेल नहीं है। पेड़ के नीचे बैठे-बैठे उसके वक्त गुजारने में समय को जैसे घोर आपत्ति है। दुनिया में अगर समय रूपी घोड़े के साथ दौड़ न सके, तो वह मनुष्य को पीछे छोड़कर गुजर जाता है। एक दिन उसके लिए दूल्हा और विवाह तय हो गया। दूल्हा बाईस साल का, देखने-सुनने में अच्छा और अच्छे कुल का था। लड़की के

मां-बाप की राय थी, इसलिए बिना किसी विरोध के विवाह निश्चित हो गया । वर-कन्या, दोनों ने एक-दूसरे को देखा, बातें कीं । विवाह में सिर्फ सात दिन थे । परंतु लड़की के मन का आकर्षण उस भावी दूल्हे की अपेक्षा रूपही नदी की ओर अधिक था । विवाह का दिन आ पहुंचा, उसकी उसे चिंता-फिक्र या कोई दूसरी भावना बिलकुल न थी । वह पहले की भांति हर रोज रूपही नदी के तट पर बैठी समय बिताती रही । उसकी इस आदत से वह लड़का बहुत ही नाराज हुआ ।

एक दिन नदी-तट से शाम को घर लौटने पर उसने सुना कि वह लड़का उससे विवाह न करके विदेश जाना चाहता है । यह बात "कटहल के बंडे में बांस की खपच्ची चुभने" जैसी उसके दिल में चुभ गयी । उसने सोचा, चलूं, आज ही रात हाथ-पैर जोड़कर उससे न जाने को कहूं । फिर सोचा, हया-शर्म को बिलकुल खाक न कर डालूं तो मेरे लिए ऐसा कह पाना असंभव होगा । चिंता के मारे उसे रात को नींद नहीं आयी । बाहर एकदम दमकती हुई चांदनी खिली थी । बिस्तर से वह उठी और चुपचाप रूपही के तट पर जा पहुंची । वहां पहुंचते ही उसकी सारी चिंता-भावना रूपही की धारा में न जाने कहां बह गयी । वह फिर नलकियां बटोर लायी और उसी भंवर में एक-एक कर डालने लगी । तभी अचानक पीछे की ओर से दो गर्म हथेलियों ने उसकी आंखें बंद कर लीं । उसने जबर्दस्ती हाथों को हटाकर, मुड़कर देखा । उसका वही भावी दूल्हा था । दोनों ठहाके पर ठहाके लगाने लगे । रूपही के दूसरे तट से उसकी प्रतिध्वनि भी आकर मानो उस हंसी में सम्मिलित हो गयी । उस पाकड़ के पेड़ पर उलूक-उलूकी का वास था । वे भी मानो उस खुशी में मौन नहीं रह सके और बोल उठे । वहां जितनी नलकियां बची थीं सबको बटोरकर लड़की ने एक ही बार में भंवर में डाल दिया और तीन बार तालियां बजायीं ।

दूल्हा – "तुमने यह क्या किया ?"

लड़की हंसती हुई बोल उठी – "इस भंवर में एक लड़की अभी-अभी डूब मरी है । मैं एक मैना हूं । मुझे पिंजड़े में डाल लो । ले चलो ।"

सिराज

लक्ष्मीधर शर्मा

कंदर्प पिछली रात को घर आया है। वह पढ़ता है कलकत्ते के एक कालेज में। इस बार आई.ए. की परीक्षा देने के बाद पुरी में कुछ दिन घूम-फिरकर आया है। अप्रैल के पहले सप्ताह में कंदर्प के घर आने के दिन रात को आंधी आयी थी और बारिश भी हुई थी। सवेरे जगने पर उसने देखा कि उनके बंगले के सामने की फुलवारी की हालत चिंताजनक है। कुछ पौधों की डालियां-पत्ते टूट-गिरकर यहां-वहां बिखरे हुए हैं। कुछ डालियों, पौधों में लगे फूल कट-पिटकर टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गये हैं। पूरब में सूरज झांक रहा था। आंधी के बाद प्रकृति ने शांत-भाव धारण कर लिया था। पेड़ का एक पत्ता भी हिल-डुल नहीं रहा था। सिर्फ दूर पर तरह-तरह की चिड़ियों की चहचहाहट गूंज रही थी। पिछली रात आम की अमौरियों के झड़कर गिरने के कारण समूची फुलवारी सफेद-सी हो गयी थी। उसकी तेज मधुर गंध कंदर्प की नाक में आयी।

कंदर्प अंदर गया, मां के पास थोड़ी देर बैठा, चाय पी और इधर-उधर की बातें करने के बाद बाहर निकल आया। बाहर के बरामदे में खड़े होकर उसने लंबी सांस ली और आराम-कुर्सी पर बैठ गया। परीक्षा खत्म हो चुकी है, सामने अपार छुट्टियां हैं – सोचता हुआ कंदर्प विश्रांति की भावना में तल्लीन हो गया। कहीं चिंता-फिक्र का लेश भी नहीं, आराम ही आराम है।

बाहर की ओर नजर डालकर उसने देखा, उनकी फुलवारी के बीचों-बीच पोखरे के किनारे जो आम का पेड़ है, उसके नीचे खड़ी एक लड़की अपने जूड़े में कपौ के फूल[1] लगा रही है। कंदर्प को उस लड़की का पूरा चेहरा दिखायी नहीं दे रहा था, वह जहां बैठा था वहां से सिर्फ एक हिस्सा साफ दिख रहा था। उसे लगा, लड़की का चेहरा बड़ा खूबसूरत है। चेहरा कुछ लंबा-सा और रंग गोरा था। कंदर्प सीधा होकर बैठ गया। अब उस लड़की की वेश-भूषा पर उसकी नजर गयी। देखा, वह बिलकुल साधारण-से रिहा[2], मेखला[3] और एक सफेद सूती ब्लाउज पहने हुए है, मगर कपड़े साफ धुले हैं। लड़की ने जैसे ही सिर घुमाया, उसका पूरा चेहरा कंदर्प को नजर आ गया। सुंदर आंखें, होंठ पतले, लाल। ठुड्डी नन्हीं-सी। उसके हाथ तब भी जूड़े में उलझे हुए थे। उसकी उभरी छाती पर कंदर्प की नजरें टिक गयीं। एक स्निग्ध-सी

1. बरगद आदि पेड़ों पर होने वाले एक परजीवी पौधे का फूल जो लंबा गुच्छेदार होता है।
2. बूटेदार चादर 3. असमिया औरतों का पहनावा।

चंचलता से उसका मन भर गया। दोनों की आंखें चार हो गयीं। दोनों ने सिर झुका लिये और शर्म के मारे कुछ गुलाबी आभा उनके चेहरों पर कौंध गयी। दोनों के मन में भावनाओं की एक छोटी-सी लहर दौड़ गयी। उसके बाद वह लड़की कंदर्प के मकान के अंदर चली गयी। कंदर्प ने तिरछी नजर डालकर देख लिया। उसके कदमों में एक तरह का अचंचल लालित्य था।

उसका नाम था सावित्री। जोरहाट के समीप के एक बड़े-से चाय-बागान में ग्वालपाड़ा का एक व्यक्ति मुहर्रिर था, जो देखने में सुंदर था। कुछ दिन काम करने के बाद उस चाय-बागान के पास मरनैगुरि गांव की निवासी एक केवट की लड़की को लाकर उसने घर बसा लिया। ग्वालपाड़ा के उसी सज्जन की इकलौती बेटी है सावित्री। सावित्री जब पंद्रह साल की हो गयी, तब उसका बाप उसके लिए वर ढूंढ़ने में जुट गया, तभी अचानक निमोनिया से वह चल बसा। यह घटना कंदर्प के लौटने के साल भर पहले की थी। उसके बाप की बीमारी की खबर पाते ही आत्मीय-स्वजन ग्वालपाड़ा से आ पहुंचे और बाप के मरते ही सारे सामान, रुपये-पैसे लेकर वे ग्वालपाड़ा वापस चले गये। सावित्री की मां ने पहले-पहल सोचा कि उसके सुख के दिनों में जिन भाई-बंधुओं ने आदर-मान दिखाया था, अब वह इस विपत्ति में भी उन्हें अपने दिलों में जगह देंगे। मगर हुआ इसका उल्टा ही। गांव के सब लोग उसे देखते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगे। थियेटर में और दूसरी कई जगहों पर कंदर्प की मां के साथ कई बार उसकी मुलाकात हुई थी। उसी परिचय के भरोसे एक दिन लड़की को साथ लेकर वह बरुवानी के पास पहुंच गयी। उसकी बातों से बरुवानी का दिल पिघल गया और उन्होंने अपने ढेंकी-शाल[1] के पास की एक कोठरी में उसे रहने की जगह दे दी। वह पहले धान कूटने, घर-बार झाड़ने-बुहारने आदि के बाहरी काम करती थी, मगर जैसे-जैसे दिन बीते उसे और सावित्री को बीच-बीच में पानी आदि गर्म कर देने का अधिकार भी मिल गया। सावित्री का सौंदर्य और विनम्रता देखकर बरुवानी सचमुच मोहित हो गयी थीं और उसके लिए लड़का देखने हेतु बरुवा से बहुत आग्रह करती थीं। अपने चाय-बागान के एक नौजवान मुहर्रिर से सावित्री का विवाह करवा देने का जिम्मा बरुवा ने लिया था। पर उस काम में बरुवा ज्यादा आगे नहीं बढ़ पाये थे। तभी कंदर्प का घर में आगमन हुआ।

कंदर्प टहलने निकल गया। कहीं किसी दोस्त के यहां जाकर ताश खेलने और प्याली पर प्याली चाय पेट में उंड़ेलने के बाद लगभग एक बजे जब वह घर लौटा तो मां की दुलार भरी मीठी गालियां सुनने को मिलीं। खाना खाकर एक अंग्रेजी उपन्यास हाथ में लेकर वह आराम से बिस्तर पर जा लेटा। इस बीच खाना खाते हुए सावित्री के बारे में सारी बातें उसने मां से सुन ली थीं। स्कूल में पढ़ते समय बैठक के पास की फुलवारी की ओर जिस छोटी-सी कोठरी में वह रहा करता था, इस बार भी उसने वहीं बिस्तर लगा देने को कह दिया था।

रेलयात्रा की थकावट के कारण कंदर्प को पहले कुछ नींद आ गयी, परंतु सपने में उसने देखा कि वह रेल से नीचे गिर रहा है। वह चौंक उठा और उसकी नींद उचट गयी। फिर उसे

1. वह जगह जहां धान कूटने की ढेंकी लगी होती है।

नींद आयी ही नहीं। कुछ गरमी भी पड़ रही थी। पिछली रात आंधी में चोट खाये पेड़-पौधों से भीनी-सी गंध आकर उसे बेचैन-सी करने लगी। एक अस्थिरता ने उसे कुछ व्याकुल-सा कर दिया। उसकी गति जैसे अपने-आप कुछ चंचल हो उठी। खुली खिड़की ने उसकी अस्थिरता को मानो शब्दमय बना डाला था। कंदर्प ने करवट बदली, मगर चैन नहीं आया। आखिर किताब खोल ली, मगर उसमें भी मन न लगा। आम के उस पेड़ पर एक कोयल दोपहर के सन्नाटे को तोड़ती हुई एक बार कूक उठी। कोयल की कूक में इतना लालित्य और माधुर्य हो सकता है, पहले कभी उसके ध्यान में ही नहीं आया था। कोयल के चिर, सुमधुर संगीत ने दोपहर के उसके सन्नाटे को मधुमय कर दिया। कंदर्प ने अपने हृदय में एक धीमा-सा कंपन, धीमी-सी चंचलता का अनुभव किया।

कुछ देर बाद आकर सावित्री ने दरवाजा खोलकर कहा – "मां आपको अंदर चाय पीने के लिए बुला रही हैं।"

कंदर्प सीधे उठ बैठा। उसे संभवतः तेजी से उठते देखकर ही सावित्री क्षण भर स्थिर दृष्टि से उसकी तरफ देखती रही। सावित्री साधारण, मगर साफ कपड़े पहने थी। आसमानी रंग की साड़ी, सिर पर सुबह के वही कपौ के फूल। सावित्री के सौंदर्य ने मानो कंदर्प पर गहरा आघात किया। कंदर्प ने सोचा – इसकी आंखें कैसी गहरी और स्निग्धता-भरी हैं। चेहरा कितना सुंदर है। नन्हें-नन्हें दांत सुंदर ढंग से सजे हैं। सिर के कुछ घुंघराले बाल कपाल पर लटक रहे हैं। कंदर्प कुछ कहना चाहता था, मगर कह नहीं पाया। सावित्री तब भी वहीं खड़ी कंदर्प की तरफ देख रही थी। उसकी नजरों में अपार भोलापन झलक रहा था। सावित्री का कंठ मानो सुधा का आधार था। ...कुछ क्षण बाद जैसे कंदर्प का मोह भंग हुआ। उसने कहा, "मुझे मुंह धोने का पानी देने को कहना।" "पानी स्नान-घर में ही रख दिया है" – कहकर सावित्री अंदर चली गयी।

अप्रैल महीने की रातें भी संभवतः अपने साथ एक मादकता लिये आती हैं। उस रात भी कंदर्प को अच्छी नींद नहीं आयी। वास्तव में सावित्री के रूप ने कंदर्प को गहरे प्रभावित किया था। उसके अलावा भी उस समय के आकाश-वातास में न जाने कौन-सा जादू उड़ता-फिरता है जो मौका पाते ही लोगों को आत्मविस्मृत करना नहीं भूलता।

दूसरे दिन सुबह करीब दस बजे एक प्याली चाय दे जाने के लिए कंदर्प ने अंदर कहला भेजा। कुछ देर बाद ही सावित्री चाय ले आयी। चाय की प्याली मेज पर वह रख ही रही थी, कि तभी कंदर्प ने "दो" कहकर हाथ बढ़ा दिया। चाय की प्याली देते समय दोनों के हाथ एक-दूसरे से छू गये। संभवतः कंदर्प ने जान-बूझकर चाय की प्याली लेते हुए सावित्री की उंगलियों को कुछ क्षण पकड़े रखा। दोनों के चेहरे लाल हो गये। चाय थमाकर सावित्री दौड़ पड़ी और कंदर्प के दिल में हल्की-सी आंधी उठ खड़ी हुई। कंदर्प सोचने लगा, 'छिः छिः, न जाने सावित्री ने क्या सोचा होगा ?' इसके बावजूद सावित्री की उंगली भले ही एक बार ही उसकी उंगलियों को छू गयी थी, यह बात उसे आनंद देने लगी। साथ ही शर्म से लाल हो आया सावित्री का चेहरा एक लाल गुलाब जैसा खिलकर सुंदर हो उठा था, इस बात की याद

से भी उसे खुशी होने लगी।

उस दिन शाम को एक ट्रे में चाय-जलपान सजाकर सावित्री उसके कमरे में आयी। बरुवानी कहीं बाहर गयी थी। सावित्री के जूड़े में गुलाब का एक फूल टंका था। वह फिरोजी रंग की साड़ी पहने हुए थी। कंदर्प सावित्री को देखकर उस दिन और ज्यादा बेचैन हो उठा और उसे छाती से लगाकर चूम लेने की भावना धीरे-धीरे उसके मन में जाग उठी। यह भावना मन में जैसे ही खुलने लगी, शर्म ने उसे उतना ही व्याकुल करना शुरू किया। उसने धीरे-धीरे जलपान किया। इतने धीरे-धीरे खाने का मतलब था सावित्री को पास रखने की इच्छा। अब सावित्री को बुलाऊं, एक बार सावित्री का हाथ छू लूं, वह चाय की प्याली लिये जा रही है – आदि बातें सोचते ही समय निकल गया। कोई बात कहने की या हाथ जरा-सा बढ़ाने की हिम्मत तक नहीं हुई। सावित्री जब चाय के बर्तन उठाकर जा रही थी, तब उसने किसी तरह से सिर्फ इतना ही कहा – "सावित्री, मुझे फूल बहुत पसंद हैं, गुलाब और कपौ के फूल। समय मिले तो मेरी मेज पर कुछ फूल रख जाना।" सावित्री लाल हो उठी, परंतु होठों की मृदु मुस्कान ने उसके अंतर के आनंद को प्रकट कर ही दिया। यौवन-राज्य का नया अतिथि कंदर्प तब भी यौवन का असली स्वरूप देख नहीं पाया था। जीवन की गति को अचानक संगीत-नृत्यमयी देखकर वह स्तब्ध-सा होकर सिर्फ उसकी माधुरी का ही पान करता रहा। लज्जा और आशंका के आवरण ने उसके जीवन को तीव्र प्रकाश से इस तरह से अलग कर रखा था कि उसके मन के कोने में उग्रगंधी फूल की भांति जनमी कामनाएं अपने-आप मुरझा गयी थीं। पर जीवन के आह्वान से वह क्रमशः आगे बढ़ रहा था। नित्य सावित्री के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता गया। हर दिन प्रबल उन्माद से घिरे दोनों एक-दूसरे के समीप आते गये। इस उन्माद का कोई ओर-छोर नहीं था। इसे जीवन की श्रेष्ठ संपदा भी कहा जाये तो संभवतः अत्युक्ति न होगी।

कंदर्प अपने मां-बाप का इकलौता लड़का था। उन्नीस साल का हो जाने पर भी मां-बाप की नजरों में वह बिलकुल नन्हा-सा बच्चा था। उनका लड़का कंदर्प धीरे-धीरे जवानी में कदम रख चुका है और सावित्री जैसी नवयुवती और खूबसूरत लड़की का साथ उन लोगों के लिए वांछनीय नहीं भी हो सकता – इन बातों पर उनकी नजर बिलकुल न थी। तिस पर बरुवा ज्यादातर चाय-बागान में ही रहते थे और बरुवानी भी दूसरी बहुत-सी माताओं की भांति आंखों पर दुलार का परदा डाले बैठी थी।

वसंत के आगमन के साथ-साथ दुनिया में नयी मादकता का संचार हुआ। जीवन के जय-गीत से दिशाएं गूंजने लगी थीं, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जल-थल सर्वत्र सबके शरीर-मन और आत्मा, एक नवीन अनुभूति से व्याकुल हो उठे थे। जीवन की सीमा-रेखा जैसे अचानक टूट गयी थी। नस-नस में मानो नया खून अचानक नवीन छंद में नाच उठा था।

कंदर्प के हृदय में भी जीवन का महासंगीत गूंजने लगा। अस्थिर, अदम्य, चंचलता से वह अपने को भुला बैठा। जीवन की तेज गति, उसके माधुर्य की प्रचुरता देखकर वह भयभीत-सा हो उठा। इन अनजान छंदों का खेल वह दबा नहीं पा रहा था। और सचमुच वह दबा पाया भी नहीं। सृष्टि की पुकार से वह और सावित्री दोनों अपने को खो बैठे। जगत-संसार,

विश्व-ब्रह्मांड, सर्वत्र उनके यौवन का जयगीत ध्वनित होने लगा।

दिन ऐसे ही निकलते गये। हृदय में जिस विराट आनंद का अभ्युदय हुआ था उसकी सीमाहीन गति में भूत-भविष्य सब कुछ भूल गये।

इस बात का धीरे-धीरे मां-बाप को भी पता चल गया। मां ने पहले तो विश्वास ही नहीं किया, पर बाद में उसे विश्वास करना ही पड़ा। बाप ने एक दिन कह भी दिया – "ओछों की संगति भी बुरी होती है।" हालांकि किसी अज्ञात शक्ति के वशीभूत-सी मां इस मिलन को कोई महत्व ही नहीं देती थी। शायद उसने सोचा था, अगर लड़का दो-चार दिन दिल बहला रहा है, तो बहलाने दो। नौकरों-चाकरों की जबान से बात बाहर भी फैल चुकी थी। अचरज की बात तो यह है कि संसार में जो बातें किसी के लिए जीवन-मरण की समस्या होती हैं, वहीं दूसरों के लिए व्यंग्य और मजाक की सामग्री बन जाती हैं। हालांकि यह मानव-समाज की चिरंतन प्रकृति है।

इस बीच कालेज खुल गया। कंदर्प के पास हो जाने की खबर पहले ही आ गयी थी। दिल में एक गंभीर दुख का बोझ लेकर कंदर्प कलकत्ता पहुंचा। सावित्री को लगा, मानो उसका दिल भी कंदर्प के साथ ही उस अनजान कलकत्ता शहर की ओर चला गया है। मां-बाप, सबको अब चैन आया।

उस साल दुर्गापूजा की छुट्टी में बरुवा-बरुवानी गुवाहाटी चले आये। जब तक कंदर्प कलकत्ता वापस नहीं चला गया, वे वहां से गये ही नहीं। तरह-तरह के बहाने बनाकर भी कंदर्प जोरहाट जाने का मौका नहीं निकाल पाया।

गरमी की छुट्टियों में भी वे गुवाहाटी में रहकर कंदर्प को साथ ले शिलांग चले गये। जब तक कालेज खुला नहीं, वहीं रहे और कंदर्प को कलकत्ता भेजकर ही घर लौटे।

उसी साल अक्तूबर में बरुवानी स्वर्ग सिधारीं। कंदर्प घर पहुंचकर मां के शोक में अधीर हो उठा। शोक मंद पड़ने के बाद सावित्री के बारे में पूछताछ की। पता चला कि उसके कलकत्ता जाने के बाद ही बुखार से सावित्री का देहांत हो गया। सावित्री से इतने दिनों तक न मिल पाने के कारण वह बड़ी बेचैनी से दिन काट रहा था। सावित्री की मृत्यु के समाचार से उसका दिल टूट-सा गया। भावी जीवन अचानक उसे व्यर्थ लगने लगा। मां की अंत्येष्टि के बाद वह फिर कलकत्ता लौट गया।

उससे पहले, कंदर्प के कलकत्ता जाते ही सावित्री समझ गयी कि उसके पांव भारी हैं। पहले इस बात से उसकी अंतरात्मा डर के मारे कांप गयी थी। मगर वह डर उसके अंतर में ज्यादा देर तक नहीं रहा। उसके उदर में कंदर्प की संतान है, इस भावना से कंदर्प के दूर रहने पर भी उसे आनंद ही आ रहा था। मातृत्व की अनजान माधुरी सावित्री के हृदय में आनंद का संचार करने लगी। धीरे-धीरे यथार्थ की अपेक्षा कल्पना में ही अपनी संतान की कोमल देह अपनी छाती में महसूसकर उस संतान की लीला, गति और स्पर्श तथा उसकी तोतली बोली के बारे में सोच-सोचकर सावित्री तन्मय हो जाती। इस आनंद के अंत में कहीं कोई बड़ा निरानंद-भरा दृश्य प्रतीक्षा में है, इस बात को वह समझ न सके, ऐसी अबोध भी न थी। फिर

भी उस समय के आनंद ने इतना विशाल बनकर सावित्री को घेर लिया कि कल के भावी दुख की बात वह भूल-सी गयी। वह दुख जितने दिन तक संभव हो दूर ही रहे, इसी भावना से उसने अपनी हालत किसी से प्रकट नहीं की।

उधर सावित्री की शादी की चर्चा होने लगी। बरुवा के चाय-बागान में काम करने वाला नगांव अंचल का एक लड़का एक दिन उसे देखने भी आया। मगर यह खबर पाते ही सावित्री बुखार का बहाना बनाकर सो गयी। लड़का लड़की को देख नहीं पाया, फिर भी दुर्गापूजा के बाद विवाह की तिथि निश्चित कर दी गयी।

कुछ देर बाद बेटी की हालत सावित्री की मां की पकड़ में आ गयी। धीरे-धीरे बरुवा-बरुवानी को भी पता चल गया। सावित्री के उदर में वह किसकी संतान है, इसके बारे में किसी को कोई संदेह न रहा। बरुवानी और सावित्री की मां, दोनों ने उसे तरह-तरह से समझाया, मगर सावित्री की एक ही रट थी – "मुझसे नहीं हो सकता, मुझसे नहीं हो सकता... मुझसे नहीं हो सकता।" एक दिन शाम को वह बरुवानी के कमरे में जा रही थी, कि तभी अंदर से बरुवानी के साथ उसकी मां की बातचीत उसके कानों में पड़ी।

मां कह रही थी – "वैसी कोई दवा मिल जाती तब तो कोई बात ही नहीं थी।" सुनकर सावित्री को लगा कि उसे ही खिलाने के लिए दवा की चर्चा हो रही है। बरुवानी की बातों से तय हो गया कि उसका अनुमान सही है। बरुवानी कह रही थी – "मैंने कोशिश कर किसी तरह से जुटाया है। भात या तरकारी में मिला देना। जरा-सी बू आएगी, मगर उसे पता भी नहीं चलेगा।"

डर के मारे सावित्री का मुंह सूख गया। राम-राम ! ! पेट की संतान की हत्या करने का कैसा घृणित षड्यंत्र ! घर लौटकर वह सोचने लगी। एक बात उसने अपने मन में जमा ली थी कि चाहे जैसे भी हो, कंदर्प की संतान को उसे बचाना है। कहना होगा कि अपनी संतान की रक्षा करने की मां की महाप्रेरणा ही उसके इस चिंतन में ईंधन जुटा रही थी। उस दिन अकस्मात संकट से आमना-सामना होते ही सावित्री आंतक से विकल हो उठी। उसकी गर्भ-स्थित संतान, उसके चिंतन-राज्य में बैठा नन्हा शिशु, उंगलियां पकड़कर चलने वाला, चंचल आदि तरह-तरह के रूप धारण कर उसे परेशान करने लगा। और सबके अंत में इस भावी संतान की मृत्युरूपी विभीषिका ने उसे बिलकुल उन्मादिनी-सा बना डाला। यह पता चलने पर कि मां लौट आयी है, वह तबीयत ठीक नहीं है कहकर सो गयी। क्योंकि अगर वह ऐसा न करती तो रात को खाना न खाने का कोई संतोषजनक कारण नहीं रहता। और खाना खाये तो हो सकता है कि वह दवा भी खानी पड़े। समय बीतने के साथ-साथ उसकी चिंता-धारा और तेज हो गयी। रात को मां ने खाना खाने के लिए बुलाया। "तबीयत ठीक नहीं है," कहकर वह पड़ी रही। मां खाना खाकर सो गयी।

रात के सन्नाटे में मानो लोगों की चिंता-धारा यथार्थ के स्पर्श से क्रमशः दूर होती जाती है। मस्तिष्क अकारण गर्म हो उठता है। सारी वस्तुएं एक-एक कर नया रूप ले लेती हैं। सावित्री की हालत भी वैसी ही हो गयी। रात ज्यों-ज्यों गहराती गयी वह और भी अस्थिर

होती गयी। अंत में उसके मन में एक ऐसी भावना जीवंत और सशक्त हो उठी कि यहां से निकल भागे बगैर वह संतान की रक्षा नहीं कर पायेगी।

मां गहरी नींद में थी। आधी रात को सावित्री ने घर छोड़कर अनिश्चय के मार्ग पर कदम बढ़ा दिये। कुछ दूर चलने पर उसे थकावट आ गयी। एक पेड़ के नीचे वह बैठ गयी। बैठते ही उसने देखा, सामने खेत ही खेत हैं। आस-पास कहीं गांव-बस्ती का नामोनिशान नहीं है। डर के मारे सावित्री के होश उड़ गये। साथ ही ऐसा लगने लगा कि अदृश्य अपदेवताओं[1] ने उसे जकड़ना शुरू कर दिया है। पता नहीं, कितनी देर तक दौड़ती रही। धीरे-धीरे उसकी सांसें फूल उठीं, कदम आगे नहीं बढ़ते थे। फिर भी डर के मारे वह दौड़ती ही रही। लगा जैसे सिर और छाती फट रहे हैं। थकावट से चूर-चूर शरीर अवसन्न हो आया। फिर भी रुककर आराम करने की उसे हिम्मत नहीं हुई। दौड़ने के साथ-साथ उसे लगा जैसे उसके पीछे कोई भागता आ रहा हो। आखिर अंधेरे में दौड़ती हुई वह बेदम होकर गिरी और अचेत हो गयी।

बी.ए. की परीक्षा देकर कंदर्प घर आया। उसने सुना कि सावित्री एक मुसलमान के संग घर से भाग गयी और वहीं मर गयी। लोगों ने उसके जाने का कारण भी उसे बताया। सावित्री की इस करनी से उसका दिल टूट गया। उसके महान अपराध की माफी नहीं मिल सकती, यह दुश्चिंता उसे बेचैन करने लगी। कुछ दिन घर पर ही रहकर अशांति के दुख का बोझ लिये वह घर से निकल गया। सावित्री गर्भवती थी। उसकी संतान के बारे में कंदर्प के मन में चिंता जाग उठी। सावित्री को घेरे उसके हृदय की विशाल रेखा मूर्त हो उठी। आत्म-ग्लानि से उसका जीवन असह्य हो गया। समय बीतने के साथ-साथ शोक और आत्म-ग्लानि कुछ घटने पर भी उसके दिल में सावित्री का स्थान जैसा का तैसा बना रहा। उससे विवाह की बात कहते-कहते बरुवा परेशान हो उठे। कई योग्य लड़कियों का प्रस्ताव आया। पर उसने विवाह नहीं किया।

सावित्री से मुलाकात के सात साल बाद कानून की परीक्षा पासकर कंदर्प वकील बना। पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वकालत न करने पर भी उसे कोई कमी न थी, परंतु कंदर्प को चाय-बागानों के कामों की अपेक्षा कचहरी का काम ही पसंद था।

एक दिन उस जिले के सदर-मुकाम से छह मील दूर बरुवाबारी गांव के एक मुकदमे की स्थानीय तहकीकात करने के लिए हाकिम उस गांव में गये। कंदर्प एक पक्ष का वकील था, इसलिए उसे भी जाना पड़ा। जल्दी-जल्दी खाना खाकर साइकिल से कंदर्प उस गांव के मुखिया सिराज के यहां पहुंचा। सिराज का बाप मौजादार[2] था। अब उसका चाचा मौजादार है। उनका घर-बार, आर्थिक स्थिति अच्छी थी। सिराज जब लगभग पैंतालीस साल का था, तब से कंदर्प के साथ उसका परिचय था। वह उस गांव का, और सच कहें तो उस मौजा का, सबसे सज्जन पुरुष था। गरीबों को दान देना, संकट में लोगों की मदद करना, सत्कर्म के लिए उत्साहित करना, दुष्कर्मों से दूर रखना सिराज का दैनंदिन कार्य था। उसका कुछ व्यापार भी चलता था,

1. मनुष्य का अनिष्ट करने वाले देवता — भूत-प्रेत आदि।

2. कुछ गांवों को मिलाकर एक मौजा होता है। मौजे का लगान वसूल करने वाला मौजादार कहलाता है।

जमीन-जायदाद भी थी। इसलिए खाने-पीने की उसे चिंता बिलकुल न थी। उसके सरल और सज्जनतापूर्ण व्यवहार से सभी मुग्ध रहते।

सिराज के यहां उस दिन जब सिराज और कंदर्प बैठे हुए थे, तो कंदर्प ने देखा, करीब छह साल की एक नन्हीं-सी बच्ची हाथ में तामोल[1] का बटा[2] लिये आयी और सिराज को 'अब्बा जान' कहकर बटा उसे थमा दिया। कंदर्प की जिंदगी से बच्चों का ज्यादा संपर्क नहीं था। इसलिए आदमी पर उनका कैसा असर पड़ता है, वह नहीं जानता था। आज उस लड़की को देखकर मानो उसके दिल में आनंद का पुलक-संचार हुआ। हाथ बढ़ाकर उसने उसे गोद में ले लिया। पर उस पर नजर पड़ते ही वह चौंक पड़ा। उस नन्हें-से सरल चेहरे ने एक और चेहरे की याद दिला दी। वही लंबी-सी आंखें, वही लंबा-सा खूबसूरत मुंह, वही पतले नन्हें-से होंठ, वही नन्हीं-सी ठुड्डी। उसकी छाती धड़क उठी। उसके दिल की गहराई से एक लंबी-सी 'आह' निकल गयी।

अपने को संयत करके उसने पूछा – "तुम्हारा नाम क्या है, मुन्नी ?" बच्ची ने जवाब दिया, "नूर, पर असली नाम तो सीता है।" उसकी आवाज में मानो किसी और की आवाज बज उठी। अपने को मन ही मन धिक्कारते हुए उसने बच्ची को नीचे उतारकर पूछा – "हजोरिका जी, यह आपकी बेटी है ?"

हजोरिका ने हंसते हुए जवाब दिया, "साहब, यह अल्लाह की देन है, मेरी नातिन है।"

कंदर्प – "याने आपकी...?"

सिराज – "हां, मेरी बेटी की लड़की। वह बेटी अल्लाह की देन थी।"

उसकी बात ठीक से समझ न पाकर कंदर्प ने पूछा – "हजोरिका जी, दुनिया के सभी बच्चे अल्ला की देन हैं। मगर खास तौर पर, इस लड़की की मां यानी अपनी बेटी के बारे में आपका वैसा कहने का मतलब आखिर क्या है ?"

सिराज का चेहरा गंभीर हो उठा। वह धीरे-धीरे बोला – "एक दिन उस देव-कन्या को अल्लाह ने मेरे पास शरण पाने के लिए भेजा था। उसी देव-कन्या के गर्भ से नूर का जन्म हुआ है। नूर की मां वास्तव में मेरी अपनी बेटी नहीं थी।"

कंदर्प का समूचा शरीर आशंका से कांप उठा। तब तो शायद सावित्री को सिराज ने ही शरण दी हो, शायद सावित्री के गर्भ से ही नूर का जन्म हुआ था। सारी बातों की जानकारी पाने के लिए वह बेचैन हो उठा। ठीक उसी समय कोट-पैंट पहले दो साइकिल-सवार वहां पहुंचे। एक था हाकिम और दूसरा था उस पक्ष का वकील। वे सभी सिराज को साथ लेकर अलग चले गये। हाकिम ने वहां से लौटते समय कंदर्प को भी साथ ले जाना चाहा। "मुझे कुछ काम है," कहकर कंदर्प रुक गया। हाकिम और वकील दोनों अर्थपूर्ण हंसी हंसकर चले गये।

---

1. कच्ची सुपारी समेत पान।
2. पान देने का बर्तन।

कंदर्प ने सिराज के यहां आकर नूर की मां के बारे में पूछा। सिराज ने बड़ी नम्रता से बताया कि वह बात उसके सुनने की नहीं है। कंदर्प समझ गया था, असली बात साफ-साफ न कहने पर सिराज कभी कोई बात प्रकट नहीं करेगा। बड़ी कोशिश करने पर सिराज की जबान से सिर्फ एक ही बात वह निकाल पाया – नूर की मां का नाम। सिराज ने बताया, "सावित्री जैसी महासती होने के कारण ही शायद उसका नाम सावित्री रखा गया था।" नाम सुनते ही कंदर्प की आंखों के सामने मानो अंधेरा छा गया।

किसी तरह अपने को संयत कर वह घर की ओर चल पड़ा। सात मील का रास्ता वह कैसे पैदल चला आया, खुद ही उसे पता न चला। अब कोई संशय नहीं रहा कि नूर उसकी सावित्री की बेटी है – उसकी अपनी बेटी है। सावित्री की आत्मा मानो नूर को अपनी छाती से लगा लेने के लिए उससे विनती कर रही है। दुश्चिंता से वह बावला-सा हो उठा। साथ ही पश्चाताप उस पर प्रहार-सा करने लगा।

घर पहुंचकर खा-पीकर वह बिस्तर पर लेटा जरूर था, पर चिंता ने उसे छोड़ा नहीं। सावित्री की यादें बिलकुल मूर्तिमान होकर उसे बेचैन करने लगीं।

दूसरे दिन सुबह वह फिर सिराज के यहां गया। सिराज से जब उसने अपनी सारी बातें खोलकर कह दीं, तब सिराज ने भी धीरे-धीरे बताना शुरू किया : "एक दिन एक जवान लड़की मेरे बाहरी दरवाजे के पास गुड़ी-मुड़ी पड़ी हुई थी। जल्दी से उसे उठाकर मैं अंदर ले गया। कुछ देर सेंक-सांक करने के बाद उसे होश आया। थोड़ा-सा गर्म दूध पिला देने के बाद वह धीरे-धीरे बोली – मैं बड़ी अभागिन हूं। हमारे आश्वासन देने पर वह शांत हुई। आखिर उसकी सही हालत नूर की दादी ने समझ ली। कहा, यह हिंदू लड़की है। समाज की नजरों में कलंकिनी है, पर ईश्वर की नजरों में निष्पाप। हम तो ठहरे मुसलमान। भला इसे कैसे रख पायेंगे? उस लड़की ने उस दिन जो ज्ञान दिया, वह अनमोल है। उसने कहा था – 'हिंदू-मुसलमान के बीच अंतर ईश्वर ने नहीं किया है। वह सभी का पिता है। अंतर तो आदमी ने किया है।' फिर भी, उसने अपनी रसोई अलग बनाने की खुद इच्छा प्रकट की तो हमने उसका इंतजाम कर दिया।

"हम उस लड़की के व्यवहार से मुग्ध हो गये थे। उसे पहली बार देखते ही अल्ला-ताला ने मेरे दिल में उसके प्रति प्यार जगा दिया था। वह प्यार दिनोंदिन बढ़ता ही गया। उसकी पिछली जिंदगी के बारे में उसके नाम के सिवा हमें और कुछ पता नहीं। रूप और चाल-चलन से हम समझ गये थे कि वह अच्छे खानदान की है।

"वक्त आने पर नूर पैदा हुई। उसके बाद से ही सावित्री को बुखार रहने लगा। जिस दिन वह खुदा को प्यारी हुई, उसी शाम मुझे बुलाकर उसने कहा था – 'बाबा'! वह मुझे बाबा और नूर की दादी को अम्मा कहती थी। 'मेरा जाने का वक्त करीब आ गया है। लड़की का भार आप ही पर रहा। वह बड़ी हो जाये या अगर इसके बाप से आपकी मुलाकात हो तो उनसे पूछकर ही आप इसे मुसलमान बनायें। और अगर कभी मेरे पतिदेव से आपकी मुलाकात हो तो उनसे कहें कि उनसे मेरी कोई शिकायत नहीं है। उनका चरण-चिंतन करके ही मैं मरने की

हिम्मत जुटा सकी हूं ।' उसी रात सावित्री चल बसी । सावित्री की इच्छा के मुताबिक ही हमने इसका नाम सीता रखा है । हमारी सीता भी सीता जैसी ही पवित्र है, क्योंकि सावित्री जैसी सती के पेट से वह पैदा हुई है ।

"इसी नूर की वजह से हमने मुर्गी पालना और खाना तक छोड़ दिया है । सावित्री ने हमारे दिल में कितनी जगह बना ली थी, यह बताने को मेरे पास शब्द नहीं हैं । अब तो यह नूर ही हमारी जिंदगी का संबल है । दीन की रोशनी की तरह इसने मेरी और मेरी औरत की जिंदगी को रोशन कर दिया है ।"

सिराज मौन हो गया । इस कहानी ने कंदर्प के दिल पर बड़ी चोट की । उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली । फिर उसने कहा – "हजोरिका जी, नूर को हमें दे दीजिए । मैं इसे कलकत्ते में रखकर पढ़ाने-लिखाने की कोशिश करूंगा ।"

सिराज का चेहरा पीला पड़ गया । कुछ देर रुककर उसने दोनों हाथ माथे पर रखकर नमस्कार की मुद्रा में कहा – "अल्लाताला, तुम्हारी इच्छा पूरी हो । हम नूर को उसके न्यायोचित प्राप्य से वंचित नहीं करेंगे । हालांकि हमारे दिल में नूर समायी हुई है । मगर, कोई बात नहीं, आप इसे ले जाइए, मगर बीच-बीच में हम उसे देख सकें, ऐसा इंतजाम जरूर कर दें ।"

कंदर्प समझ गया कि सिराज तहेदिल से नूर को प्यार करता है । इसी कारण इस वेदना को आसानी से झेल सका है । उसकी आंखों से आंसू बहने लगे ।

कंदर्प नूर को कलकत्ता ले गया । उसे अब वह सीता कहकर पुकारता । कलकत्ते के घर में अपने साथ रखकर उसने गृह-शिक्षक नियुक्त करके साल भर पढ़ाने के बाद स्कूल में उसका नाम लिखवा दिया और बोर्डिंग में रखकर कंदर्प घर लौटा ।

उसने स्कूल के रजिस्टर में सीता के बारे में यह लिखवाया कि वह उसके दूर के नाते के भाई की अनाथ लड़की है और वह सीता का अभिभावक है । सुविमल राय नाम का कंदर्प का एक दोस्त कलकत्ते में रहता था, जो हाईकोर्ट का वकील था । उससे भी सीता का वही परिचय देकर छुट्टियों में वह वहीं रह सके, इसका इंतजाम कर दिया । सुविमल की पत्नी से भी कंदर्प का अच्छा संबंध था, इसलिए उन दोनों पर सीता का भार सौंपकर वह लौट आया ।

छुट्टियों में बीच-बीच में वह सीता को साथ ले पुरी, वालटेयर आदि स्थानों पर भ्रमण कर आता । सिराज को भी वह तीन-चार बार कलकत्ता ले गया था ।

सुविमल का एक भतीजा था अनिल । सीता ने जिस साल प्रवेशिका परीक्षा दी थी, उसी साल अनिल ने बी.ए. की परीक्षा दी थी ।

उम्र के साथ-साथ सीता का सौंदर्य भी बढ़ता गया । सुविमल के परिवार से घनिष्ठता बढ़ने के साथ-साथ कुछ और परिवारों से सीता की जान-पहचान हो गयी थी । उसके चाल-चलन और सौंदर्य से कोई मुग्ध हुए बिना नहीं रहता था ।

अनिल भी देखने में अच्छा था । गाना-बजाना जानता था । बाप की संपत्ति भी अच्छी थी । अनिल और सीता में पहले तो दोस्ती हुई, फिर आगे चलकर वह दोस्ती मुहब्बत में बदल

गयी। इस बात से सुविमल, उसकी पत्नी और कंदर्प, किसी को आपत्ति नहीं थी। सबने मन ही मन में तय कर रखा था कि दोनों की शादी होगी।

सीता को कलकत्ते रखने के बाद ही कंदर्प ने अपना विवाह कर लिया था। आडंबरहीन विवाह। सरयू पहले तो बड़ी आशा लेकर आयी थी। शिक्षित लड़की। नामी और धनी परिवार की, कुछ काव्य-प्रेमी। कंदर्प के यहां आकर उसे पार्थिव संभार जरूर मिले, मगर एक चीज पूरी तरह से उसे नहीं मिली। उसके शिक्षित मानस ने जान लिया कि कंदर्प उसे अपना हृदय-दान नहीं कर सकता। उसका मन धीरे-धीरे कठोर हो गया। कोई बाल-बच्चा न होने के कारण वह कठोरता दिनोंदिन बढ़ती गयी।

विवाह के कुछ दिन बाद ही कंदर्प के पिता का देहांत हो गया था। इससे सरयू और कंदर्प दोनों कुछ करीब आये जरूर, पर वह निकटता भी उन दोनों के जीवन में माधुर्य का संचार न कर सकी।

कंदर्प ने काफी सोच-विचारकर सरयू से सीता की बात गुप्त रखी। जिंदगी की वह सुंदर-सी घटना सरयू की अग्नि-दृष्टि से कहीं झुलस न जाये, इसी भावना से उसे सरयू से इस बात की चर्चा करने से विरत रखा। सरयू को अपने साथ ले वह कभी सुविमल के यहां नहीं जाता था और न कोई खबर ही देता था। हालांकि, काम है, बताकर साल में एक-दो बार अकेले कलकत्ता जाया करता।

कंदर्प को सीता के पत्र मिलते। उसे रुपया-पैसा भी वह गुप्त रूप से ही सुविमल के नाम भेजा करता।

उस बार प्रवेशिका परीक्षा समाप्त होते ही सीता ने तुरंत एक पोस्टकार्ड कंदर्प के नाम लिख भेजा। उसमें "चाचा" का संबोधन था। परीक्षा अच्छी हुई है, कल लंबी चिट्ठी लिखेगी, ऐसी सूचना भी थी। चिट्ठी संयोग से सरयू के हाथ पड़ी। नीचे सीता लिखा देख उसने कौतूहलवश चिट्ठी पढ़ ली और समझ गयी कि कंदर्प के जीवन का एक ऐसा अध्याय है, जिसका उसे पता नहीं है। उसके मन में तरह-तरह के संशय जाग उठे। कंदर्प से पूछना उसके आत्म-सम्मान को गवारा नहीं था, ऐसा मानकर वह मौन रह गयी। पर उसका अंतस् क्रमशः कंदर्प से विमुख होता गया।

सीता के कालेज में नाम लिखवाते ही अनिल के साथ उसकी शादी की चर्चा चलने लगी। वे कायस्थ थे। मां-बाप ने पहले आपत्ति की। आखिर कंदर्प आदि भी तो कायस्थ ही हैं। और सुविमल तथा उसकी पत्नी के प्रयास से लगभग साल भर बाद उन लोगों ने सम्मति दे दी। कहना न होगा कि लड़की देखकर उन्हें अच्छा ही लगा था। सामाजिक रीति-नीति ही उनकी आपत्ति का कारण था। अनिल को विलायत भेजेंगे – ऐसा आश्वासन मिलने पर उनकी आपत्ति धीरे-धीरे समाप्त हो गयी।

निश्चित किया गया कि अनिल के एम.ए. परीक्षा देते ही शादी हो जायेगी। आई.ए. परीक्षा समाप्त होते ही सीता सुविमल के यहां गयी। अनिल के साथ विवाह निश्चित जानकर उन दोनों के निर्बाध मेल-जोल में कोई रोक-टोक नहीं थी।

धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे के प्रति बहुत ही आकर्षित हो गये। इन दोनों कोमल हृदयों में प्रणय का नवीन संगीत बज उठा और दोनों ही एक मधुर सपने में तल्लीन हो गये। दोनों का एक-दूसरे को अदेय कुछ न रहा। हृदय-मन-देह सबको केंद्रित कर उनकी प्रेम-मंदाकिनी बहने लगी। दोनों एक-दूसरे को पूर्णतः समर्पित हो गये।

कंदर्प ने सोचा था, शादी के पहले सरयू, अनिल और सीता के सामने सारी बातें प्रकट कर देना उचित होगा। उसके जीवन की वह बहुमूल्य गुप्त-कथा सिराज के सिवा और कोई नहीं जानता था। सिराज यह बात कभी प्रकट नहीं करेगा, यह बात कंदर्प समझ गया था।

अनिल की एम.ए. की परीक्षा हो चुकने पर वह कलकत्ता जाकर अनिल एवं सीता को असम ले आया। दोनों की आंतरिक प्रीति-भावना देखकर आनंद से उसका दिल नाच उठा। सावित्री के प्रति जो अन्याय हुआ, उसका कम-से-कम थोड़ा प्रतिकार इस शादी से हो जायेगा, ऐसी आशा से उसे कुछ शांति मिलने लगी।

असम का सौंदर्य देखकर अनिल मुग्ध हो गया। और अरसे बाद फिर असम में लौटकर सीता आनंद-विभोर हो गयी।

जोरहाट जाकर कंदर्प ने सरयू को बताया – "सरयू, यह मेरी पालित कन्या है और अनिल उसका भावी पति है। बाकी बातें फिर बताऊंगा। इन लोगों को आदर-यत्न से रखने का भार तुम पर है।" सीता और अनिल, दोनों उसे चाची कहने लगे। बाहर से पूरी सज्जनता और सौजन्य दिखलाने पर भी सरयू का दिल कड़वा हो उठा था। यह सीता है कौन, जिसके साथ उसके पति का पुराना परिचय है? सीता का सौंदर्य देखकर उसे कोई आनंद मिला हो, ऐसा भी नहीं। सुंदरी पद-प्रार्थी नारी के मन में ईर्ष्या की भावना बड़ी जल्दी जाग उठती है।

सीता के जोरहाट पहुंचने के दूसरे दिन गाड़ी भेजकर कंदर्प ने सिराज को बुला भेजा। सिराज के बाल अब बिलकुल सफेद हो चुके थे। उसके चेहरे पर एक स्निग्ध हंसी खिली रहती थी। उसे देखते ही सीता लपकती हुई, "अब्बा जान" कहकर पुकार उठी। सिराज ने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। उसकी आंखों से आंसू बह चले। अनिल और सरयू दोनों यह दृश्य देखकर स्तंभित हो गये।

फिर वे आकर बैठक में बैठे। कंदर्प बोला – "सरयू, तुमसे मैंने इतने दिनों तक एक बात छिपाये रखी थी। ऐसा करके अच्छा किया है या बुरा, पता नहीं। इस लिए मैं आशा करता हूं कि मुझे क्षमा कर दोगी।" फिर अनिल की ओर देखकर वह बोला – "अनिल, अगर मैं कहूं कि सीता मेरी कोई नहीं है। मेरी जात-कुल की नहीं है, सिर्फ मेरे सारे स्नेह और संपदा की अधिकारिणी है, तब भी तुम इससे शादी करोगे न?" – यह सुनकर अनिल का चेहरा पीला पड़ गया।

दूसरे ही क्षण उसने कहा – "हम दोनों के हृदय का मिलन हर हालत में एक-दूसरे को अपनाने का बल देगा।"

फिर कंदर्प बोला – "आज जो कहूंगा, उसके गवाह हैं ये बुजुर्ग, जो हमारे माननीय हैं और जिनकी महानता के कारण मेरा सिर सदा इनके सामने झुका रहता है। आशा करता हूं

कि आज जो मैं कहने जा रहा हूं उसे सुनकर तुम लोग भी उनका मूल्य समझ सकोगे।"

इसके पश्चात उसने सावित्री की कथा उन्हें सुनानी आरंभ की। बीते दिनों के सुख-दुख के दृश्यों के वर्णन में उसका मन वेदना से भर उठा। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। उसका कंठस्वर क्षीण और अस्वाभाविक हो उठा।

सरयू वह तस्वीर देख स्तंभित-सी हो गयी। साथ ही सीता और सावित्री पर उसका अपार क्रोध जाग उठा। अनिल का चेहरा क्रमशः मुरझाने लगा। सिराज की आंखों से भी आंसू बहने लगे। इस इतिहास की माधुरी ने सिर्फ सीता के अंतर को छू लिया।

कथा समाप्त हुई। कुछ समय तक सभी मौन रहे। तब अचानक अनिल बोल उठा – "ये बातें हमसे बताने की जरूरत ही क्या थी? सीता से विवाह करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है।"

कंदर्प ने प्रश्नसूचक दृष्टि से अनिल की तरफ देखा। अनिल कहता गया – "नौकरानी के पेट से जिसका जन्म हुआ है और जो मुसलमान के घर में पली-बढ़ी, उस लड़की से शादी करने की मेरी इच्छा होने पर भी मेरे मां-बाप कभी यह शादी नहीं करने देंगे। उनसे विद्रोह करना मेरे लिए संभव नहीं।"

सीता का चेहरा और पीला-जर्द पड़ गया। वह किसी तरह कुर्सी का हत्था पकड़कर बेहोशी से बचने की कोशिश करती रही। उसकी आंखों में एक भयावह आतंक की तस्वीर उभर आयी। उसके मुख से सिर्फ एक ही आवाज निकली – "मगर मैं तो गर्भवती हूं।"

इस बात के मर्मभेदी स्वर ने कंदर्प को विकल कर दिया। लगा, उसका दिल फट जायेगा। वह उठकर सीता को छाती से भींच लेना चाहता था। तभी सरयू ने लपककर उसका गला पकड़ लिया और बोल उठी – "बेहया, पतिता, मेरे घर से निकल जा!" सीता को गर्भ है, यह बात जैसे ही सरयू के कान में पड़ी, वैसे ही उसके प्रति मन में जो कण भर स्नेह था, वह भी मिट गया और भयंकर हिंसा की भावना भर गयी। सीता और कंदर्प, दोनों को चोट पहुंचाने के लिए वह उतावली हो उठी। वह समझ गयी कि सीता को चोट पहुंचाने से कंदर्प को भी चोट लगेगी।

इस संकट के प्रहार से कंदर्प स्तब्ध रह गया। लगा, जैसे उसकी सांस भी रुक गयी है।

सरयू की बात सुनकर सीता जाल में फंसी हिरनी की तरह तड़पकर सिराज की तरफ देखती हुई पुकार उठी – "अब्बा जान!"

आंसुओं से सिराज को राह दिखायी न देती थी। वह आगे बढ़ आया। बोला – "घर चल, बेटी!" और सीता को कुर्सी पर से उठाकर वह कंदर्प के घर से धीरे-धीरे बाहर निकल गया।

पहले तो कंदर्प की चीखकर रो उठने की इच्छा हुई। दुनिया का सारा उजाला उसकी आंखों से ओझल हो गया। फिर सब कुछ अंधेरे में डूब गया।

भूमिका

महीचंद्र बरा

परम वैष्णव गुरुदेव ने विश्वेश्वर को दीक्षा देने के बाद कहा – "पद्मनाथ के मुख-पद्म से निकली गीता का सार है – त्याग। संयम के जरिये, निवृत्ति के मार्ग से आगे बढ़ो – यत देखा धन-जन सवे विष्णु माया – यानी, धन-जन जो भी दिखायी देते हैं सब विष्णु की माया है, असार है। उस माया-प्रपंच को भेद करने हेतु दृष्टि को सदैव ऊपर किये रखना। विषय को विषधर समझना। जीव मात्र इस अनंत कोटि ब्रह्मांड के उसी अधिकारी का अंश है। कुक्कुर, गर्दभ, शृटगालरो आत्मा राम – यानी कुत्ते, गधे, सियार की आत्मा भी राम ही है। सुख की स्पृहा न करना – दुख में उद्विग्न न होना। आर्त की सेवा, जीवों के प्रति दया, तुम्हारा मूल मंत्र होवे।"

विश्वेश्वर ने सिर झुकाकर कहा – "प्रभु, आशीर्वाद दें, जिससे आज से मेरी अहं-भावना मिट जाये। अब तक जिस संपदा को बेकार ही अपना समझता आया था, जीवों के कल्याण-हेतु वह सब कुछ प्रभुपाद के चरणों में समर्पित करता हूं। प्रभुपाद अपने गुणों से उन सबकी व्यवस्था कर मुझे मुक्त कर दें।"

"तुम्हारा निवेदन-पावन है।" गुरुदेव ने टोकारी[1] उठाकर उसके तारों पर उंगलियां फेरते हुए गाया –

मोक किना, किना प्रभु, मोक किना, किना
एकोधन नालागय नाम धन बिना !!

(हे प्रभु, मुझे मोल ले लो। नाम रूपी धन के बगैर मुझे और कुछ नहीं चाहिए।)

उसकी आंखों से आंसू बह चले। मर्मभेदी करुण कातरता से प्रकट हुआ नया दिगंत। विश्वेश्वर की तन्मयता को भंग करते हुए प्रभुपाद ने कहा – "विश्वेश्वर, यह टोकारी लो। इसके जरिये तुम्हारे प्राणों की तंत्री में नाम की कातरता मूर्तिमान हो उठे।"

विश्वेश्वर वैरागी बन गया ...

सड़े घाव पर कीड़ों की पिल-पिल। मक्खियों की भिन-भिन। दुर्गंधपूर्ण परिवेश। सड़क के किनारे नाली में गिरकर वह कुत्ता मृत्यु-यातना से अधीर हो बीच-बीच में कें-कें कर रहा था। उसकी आत्मा में परम-ब्रह्म का बोध करने का निर्देश देने वाले भी नाक सिकोड़कर दूर हटे जा रहे थे।

---

1. इकतारा जैसा एक बाजा।

टोकारी बजाता हुआ नाम-धुन गाता, बैरागी उसी सड़क से जा रहा था। कुछ लड़के दूर से उस कुत्ते पर ढेले मार-मारकर उसके मृत्यु-कातर चेहरे की विकृति देखकर ठहाके लगा रहे थे।

बैरागी की नजर उधर पड़ी। भगवान के प्रतीक जीव की यंत्रणा से बैरागी बेचैन हो उठा। नाली में से जल्दी से उसने कुत्ते को उठा लिया। उसकी दुम को कीड़ों ने बिलकुल खा डाला था।

अटल श्रद्धा, गंभीर निष्ठा से वह उस कुत्ते को नदी-तट की झोंपड़ी में ले गया। बैरागी की सेवा-यत्न से, एकाग्रता से, उसके मर्मवेधी विनय से उसका हृदय-बांधव कुत्ता चंगा हो गया।

हां, बैरागी बावला हो गया। कुत्ते-बांधव को छाती से लगाये सोता। एक ही पत्तल में दोनों खाना खाते। उससे बातें करता, उसे काकूति घोषा[1] गाकर सुनाता। बैरागी का बांधव छाया की भांति उसके संग-संग घूमता।

बैरागी गुरु प्रभुपाद बैरागी के दान से बनने वाले सेवा सदन की आधारशिला स्थापना हेतु सपरिवार शहर पधारे। प्रभु के कंठ से भगवान के नाम-महात्म्य की, लीला-वैचित्र्य की कैसी अद्भुत अभिव्यक्ति है। "यत्र जीव, तत्र शिव, यत जीव-जंगम, कीट पतंगम्, अग-नग जग तेरि काया"[2] की कैसी प्राणस्पर्शी वेदांतिक व्याख्या करते हैं। विशाल समारोह, विभोर-तन्मय!

"हम अज्ञ हैं; और तो और पत्ते-पत्ते पर, फूलों की पंखड़ियों पर उसी परम पिता का ऐश्वर्यमय हस्ताक्षर है।"

गुरु-चरणों में सिर झुकाने के लिए बैरागी भी गया था। मंडप के बाहरी कमरे में पहुंचते ही उसका बांधव दो-चार बार भौं-भौं करके भूंका और उसकी धोती को दांतों से खींचते कुछ दूर फुलवारी की तरफ तेजी से ले चला। गुरुकन्या को नाग ने डस लिया था। संध्या-पूजन के लिए वह फूल लेने गयी थी।

बैरागी और उसके बांधव की ओर देखकर फन फैलाये, नाग हट गया। गुरुकन्या की उंगली में डसने की कालकूट-क्रिया की निशानी। क्षण भर भी समय नहीं। बैरागी ने उंगली को मुंह में डालकर काट डाला। हाथ के संकेत से लोगों को बुलाया। गुरुदेव ने भी कौतूहलवश पास आकर बेटी को बांहों में भर लिया।

"बैरागी ने सोना-मुन्नी को जीवन-दान दिया।"

प्रभुपाद गरज उठे – "नारकी कीड़े, गुरु-कन्या का अंग क्षत कर दिया, रक्त-पान किया, इतनी हिम्मत उसकी! ऐसा साहस! सोना-मुन्नी का उज्ज्वल भविष्य, जीवन इस पाखंडी ने ...।"

बैरागी दोष-त्रुटि क्षमा करने की विनती कर वहां से चला गया। उसका बांधव कभी गुरु

1. महापुरुष माधवदेव की नामघोषा के अंतर्गत करुणापूर्ण विनय के पद।
2. महापुरुष शंकरदेव के बरीत (पद) की एक कड़ी।

के मुख की तरफ तो कभी लोगों के चेहरों की ओर देखता रहा।

ऐसे पामर, ऐसे अधम, ऐसे बेशर्म हैं ये आदमी ! भगवान की सृष्टि की श्रेष्ठता के ध्वजवाहक ये अकृतज्ञ प्राणी !

प्रभु के नामघर[1] में पाठक[2] ने तब घोषा[3] गायन शुरू किया था — "भाई मुखे बोला राम-हृदये धरा रूप।"[4]

सुनो, बंधु सुनो, तुम्हारी गुरुकन्या तो बैरागी की कृपा से पूरी तरह स्वस्थ हो गयी। परंतु बैरागी की जीभ को उस कालकूट ने चिरकाल के लिए बरबाद कर दिया। उसकी जबान बंद हो गयी। हृदय में राम रूप धारण किये था, मगर हलाहल ने उसे भी ग्रस लिया। उसकी टोकारी रो-रोकर सुनाती। बांधव आंसू बहाता। उस रुदन की, उन आंसुओं की आज समाप्ति हो गयी !

आखिरी बार गुरु के चरणों में प्रणाम करने हेतु छाती पर टोकारी बांधे, लाठी टेकता, कांपता बैरागी गुरु के निवास के समीप पहुंचा और गिर पड़ा। बैरागी के चारों ओर चक्कर लगा, उसे सूंघते हुए बांधव ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया।

"भला यह कैसी हिम्मत है इस पामर की ? मरने के लिए इसे और कोई जगह नहीं मिली थी ?" गुरु गरज उठे। गुरुकन्या ने बासर पाचनी को पास के मरघट तक बैरागी को घसीट ले जाने का निर्देश दिया।

हाथ फैलाकर बासर आगे बढ़ गया। बांधव की आंखों में आग जल रही थी – उसने बासर के हाथ में दांत गड़ा दिये।

गुरुदेव की मार से बांधव की नाक टूट गयी। शरीर क्षत-विक्षत हो गया। कांपता हुआ सामने के पैरों को सिर से लगाये वह बैरागी के पास ही लुढ़क गया।

बासर जब बैरागी को घसीट रहा था, तब सिर्फ एक बार, लगभग बेहोशी की हालत में बांधव 'कें' कर उठा था।

कुछ होश आने पर उसने देखा, बैरागी को घसीटकर मरघट ले जा रहे हैं। वह उठा – फिर गिरा। आखिर गिरता-पड़ता, घिसटता वह भी मरघट में पहुंच गया जहां बैरागी को घसीट कर फेंक गये थे।

बैरागी ने उसकी ओर देखकर मुंह खोला – "अगस्त्य की तृषा, मृत्यु-पिपासा – जरा-सा पानी चाहिए।"

बांधव ने अपनी लार-भरी जीभ उसके मुंह में डाल दी। अपार तृप्ति से उसकी आंखें घूम-घूमकर हंसीं ! उसने अपने हाथों से बांधव को खींचकर छाती में भींच लिया।

---

1. नाम कीर्तन के लिए बना उपासना-गृह।
2. शंकरदेव माधवदेव पंथ का नाम-कीर्तन करने वाला मुख्य गायक या कीर्तन करने वाला।
3. शंकरदेव की "कीर्तन घोषा" के कीर्तनों के पहले गाये जाने वाले समूह-गान के पद।
4. शंकरदेव की कीर्तन घोषा का पद जिसका अर्थ है – भाई, मुख से राम नाम बोलो और हृदय में ईश्वर का रूप धारण करो।

तुम्हारे परम कारुणिक करुणामय की निष्करुण करुणा का स्वाक्षर लिये दोनों चल बसे।

दूर बैठे दो गिद्धों ने शर्म के मारे अपने सिरों को घुमाकर पंखों में छिपा लिया, आंखें मूंद लीं।

"सुनो मीत, तब वहां आकाश न था, पवन न था। तुम्हारे सर्वव्यापी भगवंत की व्यापकता तब वहां तिमिर-स्तब्ध थी !"

"सुन रहा हूं – मगर ऐसी मृत्यु की भी भला कोई भूमिका होती है ?"

"हां, होती है !"

मानदड

हलिराम डेका

उस जैसे छोटे-से गांव के लिए वह बड़ी बात थी। बिनंद पटवारी की ऐसी सामर्थ्य नहीं थी कि वह अपनी लड़की की शादी शहर में, साथ ही किसी संपन्न परिवार में कर सके। उसने सोचा, यह भगवान की कृपा है और मां ने सोचा, लड़की की किस्मत में क्या है, कौन जाने? बाप-भाई जब कह ही रहे हैं कि अच्छा है, तो यही अच्छा है। इसलिए बाप ने अपने मन की खुशी को और मां ने अपने मन की वेदना को मन ही में दबा लिया और विवाह की तैयारी के लिए जिसके हिस्से में जो काम था, वह उसी में जुट गया। काम तो खत्म होने का नाम ही न लेता था। यह-वह, न जाने कितने सारे काम थे। शहर के बारातवालों को आते ही चाय देनी होगी। पान देने भर से काम नहीं चलेगा। उसके साथ इलायची, दालचीनी, जावित्री भी चाहिए। अगर कोई पान नहीं खाता, तो उसे सुपारी और बड़ी इलायची देनी चाहिए। इसके अलावा किसी को भात, किसी को जलपान, किसी को पूड़ी, किसी को मांस चाहिए। और भी न जाने कितनी सारे मान-अभिमान की बातें हैं। बाहर दरवाजे तक उगी दूब को छील देना अच्छा रहेगा, या यों ही छोड़ देना होगा, कुछ भी तय न कर पाने पर बिनंद ने फावड़ा ले, घास छीलने के लिए दो-चार बार चलाया। सुबाग का धान[1] कूटा नहीं गया, याद आने पर महिलाओं को बुलाकर ढेंकी-घर में इकट्ठा किया।

उन महिलाओं में से कोई कह रही थी, "चाची, भला तुम लोगों को भी यही सिंदूर मिला? अरे, आजकल तो सुगंधित सिंदूर निकला है न! वह क्या कहते हैं उसे – हिंगुल? नहीं-नहीं ठहरो जरा – कुंकुम! निकला है न? शहर में तो वही देते हैं। अगर वैसी चीजें लाकर विवाह के मौके पर हमें नहीं पहनाया, नहीं दिया, तो बाद में सुमित्रा क्या शहर से देगी हमें?" सुमित्रा की मां के कुछ कहने के पहले ही एक प्रौढ़ महिला ने कहा – "अजी, सिंदूर लाल है, तो बस हो गया – उसमें सुगंध डालो, किसिम-किसिम के सुगंध-तेल, मैया री, हमें वह सब बंगालिया चीज नहीं चाहिए। मगर वह जो क्या कहते हैं – रसगुल्ला या क्या, जिसे अपनी बुआ की शादी में खाया था, भैया अगर हो सके तो वही लाना।" एक महिला अपने बच्चे के मुंह में स्तन देकर ढीली हो आती मेखला को मुट्ठी से पकड़े कह रही थी – "इस राक्षस को सिर्फ खाना ही सूझता है। बुआ, आतिशबाजी में मणियों के कुछ पेड़ भी लायेंगी या सिर्फ हवाई

1. विवाह के मांगलिक कार्यों के लिए अलग रखा गया धान। शुभ का धान।

बान और चरखी ही छोड़ी जायेंगी।" लड़की की मां ने धीमी आवाज में कहा, "मैं भला, यह सब क्या जानूं ?" आवाज मानो आंसुओं से भीगी थी।

हरिनारायण बिनंद का रिश्ते में चाचा लगता था। मंडल[1] से कानूनगो बनकर कार्यमुक्त हुआ है। स्थानीय लोग उसे हरि कानगुइ कहते हैं। हरि कानूनगो वहां बड़ा आदमी है। बड़ा इस मायने में कि टीन की छत वाला मकान है, तिस पर मकान सात-चलीया[2] है। दरवाजे के सामने एक पोखरा है और चार कतारों में नारियल के पेड़ हैं। और महीने में एक बार गुवाहाटी न जाने पर उसका देह-मन अच्छा नहीं रहता (हालांकि वह जाता पेंशन की रकम लाने है)। यह सब आम लोगों की किस्मत में नहीं होता। वह नामी भी हो गया है आजकल। नामी इस मायने में कि पंचायत-सभा आदि में भाग लेता है। उस बार कांग्रेस की मीटिंग में भी निर्भयता से सामने के आसन पर बैठा था और जरूरत हुई तो सदस्य बनने का भी आश्वासन दिया था। इसके अलावा शहर से आये कांग्रेस के मुखिया लोगों को अपनी बैठक में बिठलाकर उन्हें डाब[3] का पानी पिलाकर ही जाने देता था। ऐसी स्थिति में बिनंद की लड़की की शादी शहर के धनी परिवार के लड़के से होगी, और उसको छः लड़कियों में से ज्यादातर यानी चार लड़कियों की शादी गांव के कीचड़ में ही करनी पड़ी थी, और शेष दो का भविष्य भी चमकीला नहीं था – इस बात पर अगर उसे ईर्ष्या हो तो उसे हम झट से बुरा नहीं कह सकते।

बाहरी दरवाजे के पास ही बिनंद से मिलने पर कानूनगो ने हंसकर कहा – "सब कुछ सुना है, बेटे ! सुनकर बड़ी खुशी हुई। हो, ऐसा ही हो। वंश में हो। लोग कहते हैं न – पुरुषस्य भाग्यं। पुरुषस्य भाग्यं नहीं, बेटे, स्त्रियांः ही भाग्यं – लड़की का भाग्य ही भाग्य है। नहीं तो क्या तुमने ऐसा जमाई पाने की बात सोची थी कभी ?"

बिनंद यद्यपि अंदर-अंदर कानूनगो को मानने की बजाय उससे डरता ही ज्यादा था। क्या जाने कहीं कुछ टंटा खड़ा कर दे, यह सोचकर बड़ी विनम्रता से बोला – "चाचा, भला यह कैसे कहें कि लड़की की किस्मत में क्या है, पर अभी तो देखने में..."

आकस्मिक रूप से कुछ कहकर कानूनगो के संयम का बांध टूट गया। बिना सोचे-विचारे मुंह से निकला – "भला इतना विनय दिखाना भी किस काम का ? मेरी आंखों में धूल झोंकने की कोशिश न करो। हां, मैं घाट-घाट का पानी पी चुका हूं। तुम्हारी लड़की ने किस तरीके से लड़का जुटा लिया है, हमें क्या पता नहीं ? इसी से हम अपनी लड़की को उन सबके बीच जाने नहीं देते।"

गुस्सा आने पर, कामरूप में रहकर आने के कारण, कानूनगो के मुंह से ऊपरी असम की बोली निकलने लगती है, और ऊपरी असम में भी कामरूपी, हालांकि उसका कारण वह समझता है। बिनंद पटवारी ऐसे आक्रमण से हतबुद्धि हो गया ! क्योंकि बड़ी उम्रवाला कोई बुजुर्ग ऐसा कह सकता है, यह उसने सोचा भी न था। फिर भी मन का दुख मन ही में दबाकर उसने

1. जमीन की पैमाइश करने वाले अधिकारी।
2. सात छत वाला।
3. कच्चा नारियल।

कहा – "जब कृपा करके आये हैं, तब एक पान ही खाते जाइए।" इस बात से जैसे बूढ़े कानूनगो का अपमान ही हुआ। बोला – "किस सात-चलीया बैठक में बिठलाकर तू मुझे पान खिलायेगा ? जमाई का आदर-स्वागत कर जलपान खिलाना। धनी जमाई मिला है न, फिर हमें इंसान क्यों समझेगा ? आजकल शहर में ऐसी लड़कियों को पढ़ाते हैं या जमाई पकड़ने का फंदा डालते हैं !" अपने-आप को संबोधितकर उसने ऊंची आवाज में कहा।

बिनंद के बायें हाथ में कंपन उठा – 'काट डाल इसे, कोई दोष नहीं होगा।' किंतु दाहिने हाथ ने रोका, उसने और भी संयम से कहा – "छिः ! सलाह-मशविरा करने वाला भी कोई आदमी नहीं है। शहर के चाल-चलन का हमें पता है नहीं। अगर आप कुछ सलाह-सुझाव न देंगे..." बिनंद से जितना संभव था, उतनी सहिष्णुता के साथ इतना-सा शिष्टाचार दिखाया। "ठीक है, ठीक है।" कुछ संयत स्वर में कहकर कानूनगो वहां से चला गया। बिनंद ने क्रोधभरी दृष्टि से उसकी ओर कुछ देर तक देखा, फिर अपने काम में मन लगाया। जमीन पर फावड़े से दो-चार चोट करते ही मन में जैसे उनकी झनकार बज उठी – "जा बच गया, बेटा !"

सुमित्रा साधारण-सी गांव की लड़की थी, चेहरा-मोहरा देखने में अच्छा था – शहर में बुआ की मदद के लिए गयी थी, साथ की लड़कियों के साथ स्कूल में पढ़ी थी। जूड़े के बदले जिस दिन पहले-पहल वेणी गूंथी, उस दिन गरदन पर जाने कैसा-कैसा लगा था – दोनों ओर से खाली-खाली, ठंडी हवा मानो वहां चोट करती थी, मगर आदी हो गयी तो वही फैशन बन गया। किताबों को सामने की ओर बायें हाथ से पकड़े, दाहिना हाथ धीरे-धीरे चलाती, जब वह सहेलियों के साथ धीमे कदम से आगे बढ़ती तो उस झुंड में सुमित्रा अपनी लावण्यभरी गर्दन, खूबसूरत आंखों और यौवन-श्री के प्रभाव से आसानी से जगमगा उठती।

वह सीधी-सादी गांव की लड़की संपन्न परिवार के लड़के नित्यानंद चौधुरी की नजर में आ गयी। इसे देख अनेक लोगों को अचरज हुआ था ! अचरज नित्यानंद के वंश-गौरव और अर्थ-प्राचुर्य के कारण हुआ था। किसी हमजोली ने उस पर व्यंग्य करते हुए कहा था – "चौधुरी, ये आपकी आफिशियल होगी या नान-आफिशियल ?" "वह सब अधिकारियों से पूछना, हमारे लिए तो बस एक ही काफी है।" कहकर नित्यानंद मोटरसाइकिल पर सवार होकर वहां से हट जाता। पीठ-पीछे उसके दोस्त ही कहा करते – मतवाला ! दीवाना कहीं का !

विवाह बगैर किसी झंझट के हो गया। हरि कानूनगो शाम से ही वहां आ गया और रात को विवाह संपन्न होने के बाद ही वहां से लौटा। शहरी बोली में बात करने का मौका मिलना भी वह सौभाग्य समझता था और शहरी बारातियों के बीच अगर कांग्रेस का कोई नेता हो तो गांव की उन्नति-हेतु उसने आज तक कितने काम किये हैं, इसकी तालिका उसे देना भी एक उद्देश्य था। परंतु उसे ऊपरी स्तर के लोग नहीं मिले, मंझोले कांग्रेसियों से बातें करके ही उसे संतुष्ट होना पड़ा। इस बीच उसे एक और बात से उत्साह मिला कि यद्यपि नित्यानंद ने लड़की देखकर शादी की है, पर उसके मां-बाप की इसमें उतनी सहमति नहीं। मां तो विरोधी ही थी।

सुमित्रा की शादी के बाद का अध्याय सुखमय नहीं रहा। दुल्हिन के साथ जो लोग गये थे, उन्हें आदर-सत्कार मिलना तो दूर की बात, कुछ तिरस्कार ही मिला, ऐसा कहना अतिरंजित

करना नहीं होगा। बाजे-गाजे वाले लोगों को – यानी आजकल के बैंड और क्लैरिओनेट बजाने वालों को खिला-पिलाकर विदा करने के पश्चात नित्यानंद के पिता श्रद्धानंद चौधुरी ने (पहले जिसे श्रद्धा महाजन कहा जाता था) कहा – "बाजे-गाजे वाले गये, झंझट मिटी। अब दुल्हिन के साथ कौन-कौन आये हैं, पता लगाओ जरा। इन छोटे लोगों की मानहानि कुछ ज्यादा होती है!" इसके जवाब में लड़की के मामा, बिलकुल भोले-भाले स्वभाव के दुर्जन महंत ने कहा – "हम लोग तो हैं ही, जी। हमारे लिए सोचने की जरूरत नहीं।"

उसने घर आकर अपने बहनोई बिनंद पटवारी से कहा – "जीजा, तुमने क्या सोचकर लड़की को उस घर में दे दिया?"

बिनंद बोला – "वह सब जो होना था, हो गया। लड़की की किस्मत है, तुम अपनी बहन से यह सब न कहना।"

"क्या मैं नन्हा बच्चा हूं? सिर्फ तुम्हीं से बताया।" महंत ने कहा। दोनों ने लंबी सांसें लीं।

आंसू और आहें दोनों एक स्तर की चीजें हैं। एक है मानो अंतहीन और दूसरी है उसका अंतरा। सुमित्रा का कोमल चेहरा पीला पड़ गया, आंखें तेजहीन हो गयीं, सुंदर गर्दन की उभरी नसें दूर से दीखने लगीं। जीवन अर्थहीन है, संसार मूल्यहीन है, प्रेम भ्रांति है, पूजा निरर्थक है, आदि बातें उसके अंदर के एक कमरे से दूसरे कमरे में मानो किसी बात का पता लगाने के लिए चक्कर लगा रही थीं – चारों ओर घना अंधकार, बाहर से किसी बात का पता नहीं चल रहा है। किससे पूछे? कौन बताये? मां? हाय रे, वह तो दूर का लोभनीय पदार्थ है। आज उसके सामने सारी बातें दिल खोलकर क्या कही जा सकती हैं? दैहिक अत्याचार की बातें तो कह सकते हैं, मगर मानसिक उत्पीड़न की बात बताना तो मुश्किल है। आज कितनी ही महिलाओं के साथ दुर्दांत दुर्वृत पुरुष बलात्कार करके उन्हें पतिताओं की कतार में डाले दे रहे हैं, यह बात तो अखबारों में छपवायी जा सकती है, परंतु मन के गहरे प्रकोष्ठ में कितना गंभीर और वीभत्स अभिनय हो गया होता है, कोई क्या उसका संकेत भी देता है? मरण – अगर मरण का ही वरण करना है, तो फिर जीवन क्यों? रूठना किससे? मनाने वाला अगर कोई हो तभी रूठना भी शोभता है। उल्लू जब बाहर शोर करता तब सुमित्रा सोचती, 'जरूर मुझे ही सुना रहा है। यह तेरे अंतर की बात नहीं है – नियति है, शायद यम भी मुझसे यही कहेगा। जा, लौट जा।'

नित्यानंद सौंदर्य-प्रिय व्यक्ति था। परंतु सौंदर्य चिरस्थायी है, या एक ही स्थान पर बना रहता है, इस बात पर उसे विश्वास न था। जब भी कर्तव्य और आकांक्षा के बीच द्वंद्व उपस्थित होता, वह लगातार सुरापान करता। अमीरों के घरों में तो ये रीतियां कोई निंदा की बात नहीं। तिस पर पिछले महायुद्ध में यानी युद्ध से बाहर रहकर मौके का लाभ उठाकर, उसने जितना कमा लिया था, उससे उसके मां-बाप को भी विश्वास हो गया कि नित्यानंद जैसा लड़का, किसी को या किसी उद्देश्य से संपदा का दान कर संकट में न फंस जाये, तो अपने भोग-विलास में उसे पूरा उड़ा नहीं पायेगा। और जितनी पैतृक संपत्ति है, उससे उसके छोटे भाई को भी बराबर

स्वतंत्र रूप से जीवन-निर्वाह करने में कोई कठिनाई न होगी।

पूनम का चांद पश्चिमी आकाश में ढल गया था। हजारों फूलों की ओस-भीगी सुगंध लेकर जाड़े की हवाएं खिड़कियों से टकराकर व्यर्थ हो लौटी जा रही थीं। ऐसे समय में शराब के नशे की मस्ती में घर के बाहर से निताई पुकार रहा था – "जगी हुई हो न ? दरवाजे खोल दो।"

जाड़े की रजाई को हटाकर सुमित्रा ने दरवाजे खोल दिये। पति के शरीर पर नजरें गड़ाकर बोली – "रात तो बीत ही चुकी है, और कुछ देर से आते तभी अच्छा रहता।"

निताई ने जरा गुस्से का भाव दिखाये बगैर कहा – "लोकापवाद, लोकापवाद ! रामायण में तुम लोगों ने पढ़ा है कि नहीं ? राम ने कहा था – लोकापवादो बलवान् मतो मे।"

नित्यानंद की बात पर कान दिये बगैर पत्नी ने कहा – "अब जाकर सो जाइए।"

उसकी बातों पर ध्यान न दे, उसके असंतोष का अनुमान मन ही मन लगाकर नित्यानंद ने कहा – "तुम शायद सोच रही हो, भला यह शराबी रामायण-महाभारत की क्या बात करता है ? है या नहीं ?"

"आप अभी सोयेंगे या हाथ-पैर धोयेंगे ? पानी गर्म कर दूं ?"

"लोकोपवाद किसमें है, तुमने समझा नहीं न ?" नित्य ने पूछा – "धनी का लड़का भ्रष्टाचार, उजड्डपन सब-कुछ कर सकता है, पर सिर्फ दिन में करने पर निंदा का पात्र होता है।" उसी स्वर में नित्य कहता गया।

"खुद अगर यह सब कर सकता है तो उसके लिए वह लोक-लज्जा की क्या बड़ी बात हो गयी ?" सुमित्रा ने थोड़ी नफरत से कहा।

"तुमने ठीक ही कहा है, मगर ठीक कहने से होता क्या है ? अगर सभव हो सकता तो तो तुम्हारे पौरुष की सराहना करता।" नित्य बोला।

"पौरुष ?" सुमित्रा ने अत्यंत व्यथित स्वर में कहा, "पौरुष तो पुरुष का होना चाहिए।"

"ठहरो, ये पैर तुम्हारे ही हैं न ?" नित्य ने अचानक पूछा। पत्नी ने समझा, बकवास कर रहा है। इसलिए कोई जवाब नहीं दिया।

"तुम ऐसे सूख क्यों गयी हो भला ?" नित्य ने फिर पूछा और आंखें फाड़कर सुमित्रा के पैरों की ओर देखता रहा।

सुमित्रा को आशंका हुई कि कहीं वह अचेत न हो जाये। नित्य ने उसी दिन पहली बार सुमित्रा की आंखों में आंसू देखे। उसके आंसू पोंछते हुए कहने लगा – "सुमित्रा, तुम यह न सोचो कि मैं अंधा हूं। इंसान अंधा नहीं होता। शराबी होने पर भी अंधा नहीं होता। बुराई में आसक्त होने पर भी अंधा नहीं होता। यह हिसाब की गलती है, विचार-शक्ति की गलती है। ऐसा एक गलत हिसाब, ऐसा एक अंधा अनुमान तुम्हारे हाथ आ जाता है, जिससे विश्वास होता है कि यही सत्य है, यही सही है। बुरी आदतें इंसानियत को दबाकर पंगु कर देती हैं। न्याय का मानदंड, स्नेह-मर्यादा का मानदंड उन हाथों में पड़कर कांप उठता है। इसी कारण लोगों

को न्याय नहीं मिल पाता।" स्वर को जरा और ऊपर चढ़ाकर उसने कहा – "शराबी की जबान से नीति-वचन तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा है न ?"

सुमित्रा के अंतर में एक अभूतपूर्व शांति-निर्झर मानो बहना चाहता था, अचानक इस सवाल से उसमें रुकावट-सी आ गयी।...

सुना जाता है, हरि कानूनगो के मन में इस बात का अफसोस है कि सुमित्रा सभी प्रकार से भाग्यवती हो गयी है। पूर्वापर कथाओं की याद कर सुमित्रा की मां सोचती है – 'लड़की की किस्मत है !'

बिहु-सम्मेलन

लक्ष्मीनाथ फुकन

सभा से लगभग आठ बजे लौटकर विचित्रमयी ने देखा, गगन मंडल अपने मित्र विशल्यकरणी के साथ बाहरी कमरे में बैठा बातें कर रहा है। उनके सामने से होकर ही विचित्रमयी खट्-खट् करती हुई अंदर चली गयी। उसके पीछे-पीछे एक साल के बच्चे को लिये खासियानी आया भी अंदर चली गयी।

विचित्रमयी सीधे रसोईघर में पहुंची। रसोईघर में अंधेरा था। स्विच दबाते ही बिजली के प्रकाश से सारा रसोईघर जगमगा उठा। विचित्रमयी ने देखा कि वह जब घर से निकली थी, तब रसोईघर में जो चीज जहां पड़ी थी, वहीं की वहीं पड़ी हुई है। जरा भी कुछ इधर-उधर नहीं हुआ है। दरवाजे के कोने में जो लकड़ियां बिखरी हुई थीं, अब भी वहीं जैसी की तैसी पड़ी हैं। विचित्रमयी जाते समय ढक्कन बिना लगाये चाय के डिब्बे को चूल्हे के पास रख गयी थी- अब भी उस पर ढक्कन नहीं लगा था।

विशल्यकरणी को विदा देकर जब गगन मंडल अंदर आया तो विचित्रमयी ने कहा – "मैं रसोई बना रखने के लिए आपसे कह गयी थी न ? रसोई तो बनायी ही नहीं, चूल्हा भी नहीं जलाया है। अब रहो भूखे-प्यासे।"

कुछ दिन पहले रसोइया बाजार जाने के लिए निकला, मगर रुपया और राशन-कार्ड लेकर भाग निकला। खासियानी आया थाली-कटोरी धोने के सिवा रसोईघर का और कोई काम नहीं करती। थाली-कटोरी भी धोने लगी थी, नौकर के भाग जाने के बाद से ही। बच्चे को संभालने और उसकी देखभाल करने में ही उसका समय बीत जाता है।

गगन मंडल बोला – "अगर रहना ही पड़े तो रह जायेंगे भूखे-प्यासे। विशल्यकरणी आ गया। उसे भला भगा कैसे देता ?"

विचित्रमयी – "काम के समय आ जाये तो भगा देना पड़ेगा ही। अब मैं रसोई नहीं बना सकूंगी। आज दिन-भर कितनी मेहनत करनी पड़ी है, मैं ही जानती हूं। सारी सभा की झंझटें मेरे सिर पर ही थीं। मेहनत करते-करते अधमरा हो जाने पर भी क्या छुटकारा है ? मैंने कहा था – आज भाषण मैं नहीं दूंगी, दूसरों को ही देने दीजिए। पर सुनते ही नहीं। तब फिर भाषण भी देना पड़ा।"

गगन मंडल ने बिना कुछ कहे चूल्हे में कुछ लकड़ियां लगाकर उनके नीचे कागज का एक छोटा-सा गोला घुसाकर दियासलाई से जला दिया। लकड़ी में आग जल उठने पर एक

पतीली धोकर चूल्हे पर चढ़ा दी। फिर एक कनस्तर में से थोड़ी-सी दाल निकालकर उसने एक कटोरी में धोयी और पतीली में डाल दी। फिर पीढ़ा डालकर बैठ गया।

विचित्रमयी ने अपने सभा के कपड़े-लत्ते बदलकर दूसरे पहने, अपने चेहरे को अच्छी तरह धोकर, गाल पर लिपटे बालों को ठीक से सहेजकर जूड़े को खोला, फिर जूड़ा बांधकर रसोईघर में गयी और अपने-आपसे बातें करती हुई-सी बोली – "मैं न लगूं तो हो चुकी रसोई। दाल में नमक तो शायद डाला ही न होगा? यहां बैठे-बैठे कर क्या रहे हो? और कुछ नहीं तो जरा-सी हल्दी ही पीस सकते हो!"

गगन मंडल सिल को पास सरकाकर हल्दी पीसने लगा।

(2)

गगन मंडल वकील है। हालांकि लोग उसे विचित्रमयी के घरवाले के रूप में ही ज्यादा जानते हैं। उनके घर को भी लोग गगन मंडल का घर न कहकर विचित्रमयी का घर कहा करते हैं। बहुत-से लोग उसे "मि. विचित्रमयी" भी कहते हैं। इसमें उसे आपत्ति की कोई बात दिखायी नहीं देती, बल्कि सोचता था कि उसका परिचय इस ढंग से देना न्यायसंगत ही है। अगर पति के नाम के पहले मिसेज लगाकर पत्नी का परिचय दिया जा सकता है, तो फिर पत्नी के नाम के पहले मिस्टर लगाकर भला पति का परिचय क्यों नहीं दिया जा सकता? और फिर अब तो पहले वाला जमाना नहीं रहा।

विचित्रमयी कहती — "आप झूठ-मूठ वकील बने। मैं अगर न रहूं तो घर का बंटाधार ही हो जाये। आपने भला बी.एल. पास कैसे किया? क्या परीक्षा नकल मारकर पास की थी? आपके बदले मुझे होना चाहिए था वकील, तब देखते। इतने दिनों में दुमंजिला पक्का मकान बनवा लेती। भला, आपकी तरह खड़खड़िया साइकिल पर कचहरी जाती? लोगों को चौंकाकर जाती मोटर से, समझे?"

गगन मंडल जवाब देता – "समझता क्यों नहीं? अच्छी तरह से समझता हूं। इस जन्म में तो वह हो नहीं सका, पर यह अच्छी तरह से समझ गया हूं कि अगले जन्म में तुम वकील ही बनोगी। हां, अगर वकील बन जाओ, तो मुझे न भूलना। और कुछ हो न हो, अपने मोटर-ड्राइवर का पद ही दे देना। पर एक शर्त है, मैं जब मोटर चलाता रहूंगा, तुम्हें मेरे पास बैठना पड़ेगा। यह बात मैं पहले से ही कहे देता हूं।"

विचित्रमयी – "आपको मोटर-ड्राइवर बनाऊंगी मैं? वकील बनकर तो आपने कमाल कर ही दिया, मोटर-ड्राइवर बनकर और क्या कमाल करेंगे? आपकी चलायी गाड़ी पर सवार होकर भला कौन खाई में गिरकर अपनी जान गंवाने जायेगा? मैं तो चढूंगी ही नहीं। मैं जिस-तिस को ड्राइवर नहीं बनाऊंगी। अच्छी तरह से जांचकर ही ड्राइवर बनाऊंगी। योग्य ड्राइवर न मिले तो मैं खुद ही गाड़ी चलाऊंगी, मगर आप जब इतना ज्यादा अनुरोध कर ही रहे हैं तो ठीक है, ले लूंगी हेल्पर बनाकर...।"

अब भला गगन मंडल कहे भी तो क्या कहे? वह विचित्रमयी के चेहरे की ओर देखता,

और बातें करते समय पत्नी के कानों की हिलती-डुलती बालियों पर ध्यान देता। वह सोचता, विचित्रमयी "महिला महामंडल" की मुख्य सचिव यों ही नहीं बनायी गयी है। उसमें कुछ गुण हैं, यह मानकर ही उसे उस पद पर बनाये रखा गया है। गुण है, यह तो गगन मंडल भी हमेशा से देखता आया है। अगर विचित्रमयी न होती तो घर इस ढंग से कभी नहीं चल पाता। रुपया देने वाले मुवक्किलों की अपेक्षा रुपया लेने वाले मुवक्किल ही गगन मंडल के पास ज्यादा हैं।

विचित्रमयी बीच-बीच में गगन मंडल से कहा करती – "आप वकालत के साथ-साथ किसी सभा-समिति के मुख्य-सचिव क्यों नहीं बन जाते। कोई नयी महासभा, या महा-सम्मेलन ही क्यों नहीं बना लेते? ठीक से बना लें तो उसमें भी पैसे हैं, समझे? सभा-सम्मेलन होते ही चंदा। और कौन, किससे, कितना चंदा वसूल करता है, क्या लोग नजर गड़ाये बैठे रहते हैं? सिर्फ हिसाब-किताब ठीक रखना होगा। जरूरत हो तो कायदा तुम्हें मैं ही सिखला दूंगी। भ्रष्टाचार-उन्मूलन या वैसे ही किसी सभा-सम्मेलन का सचिव बनने पर सरकार भी तो आपकी खातिरदारी करेगी न। मौका देखकर सरकार की समालोचना कर भाषण या अखबारों में लंबा वक्तव्य देते रहेंगे। मगर आपसे तो यह सब कहना बेकार है, आपका दिमाग ही वहां तक नहीं पहुंच पाता।"

(3)

कोयल कुहू-कुहू करके बिहु का संदेश देने लगी। अशोक के पेड़ फूलों से लदकर झूमने लगे। मंदार के फूल झड़ गये और उनमें नयी पत्तियां निकलने लगीं। बारिश के छींटे पाकर दूब फिर पनप उठी। पेड़ों की पत्तियों पर हरियाली छा गयी।

विचित्रमयी ने "महिला महामंडल" की ओर से बिहु के उपलक्ष्य में एक बिहु-सम्मेलन का आयोजन किया। अखबारों में भी यह खबर छप चुकी थी कि मुख्यमंत्री उसकी अध्यक्षता करेंगे। लेकिन अध्यक्षता करने के लिए मुख्यमंत्री के पास आवेदन ही गया था, उनकी सम्मति नहीं आयी थी। अखबारों में यह भी समाचार आया था कि श्रीमती सुचेता कृपलानी उस सम्मेलन का उद्घाटन करने वाली हैं।

महिला महामंडल की सहायक-सचिव रूपलावण्यमयी ने विचित्रमयी से पूछा – "भला सुचेता कृपलानी का नाम अखबारों में किसलिए छपवा दिया? उन्होंने तो लिख ही भेजा है कि वे आ नहीं पायेंगी!

विचित्रमयी ने कहा – "बिहु-सम्मेलन का महत्व समझाने के लिए ही ऐसा किया गया है, यह भी नहीं समझती? हम नारियां सिर्फ मिट्टी की मूरतें नहीं हैं, मर्दों को समझा देना है। तुमने नहीं देखा, पिछली बार सोशलिस्टों ने यह प्रकाशित करवाया था कि उनके सम्मेलन में अशोक मेहता आने वाले हैं, मगर कहां आये? डिब्रूगढ़ में जब वकीलों ने सम्मेलन बुलाया था तो अध्यक्ष कौन होगा, इस बारे में पहले किसका नाम निकाला था, याद है? इस बार भी सुचेता कृपलानी नहीं आयेंगी तो क्या हुआ? अखबार में नाम तो निकल गया न?"

रूपलावण्यमयी – "आप तो बहुत दूर की सोचती हैं। मैं तो इस बात को समझ ही नहीं पायी थी।"

विचित्रमयी – "समझने लगोगी आहिस्ता-आहिस्ता। तुम्हें भला महिला महामंडल में आये हुए दिन ही कितने हुए हैं ? बिहु-सम्मेलन का सभी ओर से जय-जयकर हो, ऐसा कुछ करना होगा। समझी ? सोच रही हूं कि उसमें चाय-जलपान का भी इंतजाम रहे। तुम्हारा क्या विचार है ?"

रूपलावण्यमयी – "हमारा विचार क्या ? बहुत बढ़िया रहेगा। आप हमें बतायें, हमें क्या-क्या करना है। फिर चंदा भी तो उगाहना पड़ेगा न ? अगर रुपया न हो तो चाय-जलपान खिलायेंगी कैसे ? कितने लोगों को बुलवाना चाहती हैं ?"

विचित्रमयी – "मेरी तालिका के मुताबिक तो एक सौ के करीब लोग होंगे। रुपया भी जरूर उटाना होगा ! मैं क्या सोचती हूं, पता है ? रुपया अपनी सदस्याओं से लूंगी, दूसरों के सामने हाथ नहीं फैलाना है। मैंने तय किया है, हर सदस्य को कम से कम तीन रुपये के हिसाब से चंदा देना होगा और कम से कम पांच-पांच तिल-पीठा[1] भी देने पड़ेंगे। तिल-पीठा के बगैर ब्रहाग-बिहु का आयोजन होगा भी कैसे ? दुकानों में तो तिल-पीठा बेचते नहीं, इसी कारण हमें घर से ही लाना होगा।"

रूपलावण्यमयी – "क्यों नहीं, क्यों नहीं ?" कहकर गा उठी–

"अति कै चेनेहर मुगारे महुरा, अति कै चेनहर माको।
तातो कै चेनहर बहागर बिहुरि, नेपाति केने कै थाको॥"

(अर्थात् मूंगा (सुनहरी रेशम) की लपेटन, उसकी ढरकी हमें बड़ी प्यारी है, मगर बैशाख बिहु का त्यौहार उससे भी ज्यादा प्यारा है। ऐसे त्योहार को बिना मनाये कैसे रहा जा सकता है ?)

पलाशबरीया मूंगा की नयी मेखला, रिहा की खरखराहट जगाती हुई लसपसाती हुई आकर मयूरभंगी देवी ने आवाज दी – "मैं दो रुपया ज्यादा ही दे दूंगी, पर तिल-पीठा एक भी नहीं दे पाऊंगी। हमारा नौकर तो 'बिहु का दिन आ गया' कहकर छुट्टी ले घर चला गया। अब मैं पीठा-गुरी[2] कुटूंगी कैसे ?"

विचित्रमयी – "यह सब मैं कुछ नहीं मानूंगी। पांच तिल-पीठा आपको देना ही होगा। नौकर नहीं है, तो क्या हुआ ? मिस्टर मयूरभंगी तो हैं न ? वे ही पीठा-गुरी कूट देंगे। आप देश-सेवा में लगी हुई हैं – तो क्या वे आपकी इतनी-सी मदद भी नहीं कर सकेंगे ? आप मिस्टर मयूरभंगी को समझाकर कहें और यह भी बता दें कि वे अगर पीठा-गुरी नहीं कूटेंगे तो हम उनके विरुद्ध निंदा प्रस्ताव पास कर देंगे।"

रूपलावण्यमयी – "मगर मिस्टर मयूरभंगी कहना ठीक नहीं है। श्रीमान् मयूरभंगी ही कहना चाहिए था। अंग्रेजों का शासन जब नहीं रहा तब मिस्टर कहना अब जरा भी शोभा नहीं

1. बैशाख, बिहु आदि के अवसरों पर तिल डालकर बनाया जाने वाला चावल के आटे का पीठा।
2. पीठा बनाने के लिए चावल का आटा।

देता।

(4)

विचित्रमयी गगन मंडल को साथ लेकर एक बग्घी पर सवार हो हुकुमचंद गोयनका की दूकान पर पहुंची। हुकुमचंद गद्दी पर बही-खाता खोले हिसाब-किताब जांच रहा था। उन्हें आया देखकर बैठे ही बैठे उसने राम-राम किया और दो कुर्सियों की ओर उंगलियों से संकेत कर बैठने को कहा और आने का कारण पूछा।

विचित्रमयी ने बताया – "हमारे बिहु-सम्मेलन का आमंत्रण-पत्र आपको मिला है न ? आपको आना ही होगा। इसकी अध्यक्षता करेंगे मुख्यमंत्री खुद। एक सौ विशिष्ट लोगों को आमंत्रित किया गया है। लगभग पचास-साठ लोगों को और आमंत्रित किया जायेगा।"

वास्तव में सिर्फ साठ लोगों को आमंत्रित किया गया था और उससे ज्यादा को आमंत्रित करने का इरादा भी विचित्रमयी का नहीं था। दो सौ छपे पत्रों में बहुत-से पत्रों पर नाम-पते भी लिखे जा चुके थे, मगर वे पत्र उनकी मेज की दराज में ही पड़े हुए थे, यह बात उनके सिवा और कोई नहीं जानता था। रूपलावण्यमयी की भी यही धारणा थी कि पत्र वितरित कर दिये गये हैं, क्योंकि विचित्रमयी ने उसे वैसा ही समझाया था।

हुकुमचंद ने बही को बंदकर पेटी में रखते हुए एक बार विचित्रमयी की देह पर और एक बार चेहरे पर नजर डालकर उत्साहित स्वर में कहा – "जरूर, जरूर, मैं आऊंगा, जरूर आऊंगा।"

विचित्रमयी – "आपके आने भर से ही नहीं होगा, हमने चाय-जलपान का भी आयोजन किया है, उसका खर्च भी आपको देना होगा। महामंडल की सभी सदस्याओं का अनुरोध लेकर मैं आपके पास आयी हूं।"

हुकुमचंद ने कपड़े के परमिट के लिए टेंडर दिया था और टेंडर स्वीकृत हो जाये, परमिट मिल जाये इसके लिए कुछ भी उठा नहीं रखा था। उसने सोचा, चलो, यह खर्च भी उसी मद में हो। कांग्रेस दल के नाम पर कितने ही उससे इसी तरह रकम लिया करते हैं। न जाने कितनी बार चाय-पार्टी का बोझ उस पर पड़ा है, तो फिर महिला महामंडल को अब वह क्यों निराश करे ? महिला महामंडल को भी हो सके तो हाथ में रखना अच्छा है, समय पर काम आ सकता है। इसके अलावा जब मुख्यमंत्री बिहु-सम्मेलन की अध्यक्षता करने वाले हैं, तब उसका पीछे हटना ठीक नहीं होगा।

हुकुमचंद ने कहा – "आप कह रही हैं, तब तो देना ही होगा। कितने में काम चल जायेगा ?"

विचित्रमयी – "तीन सौ से कम में तो किसी प्रकार भी नहीं होगा। हमने हिसाब लगाकर देखा है।"

हुकुमचंद ने सौ-सौ के तीन नोट विचित्रमयी के हाथ में दे दिये। उसके हाथ से नोट लेकर विचित्रमयी ने जब गगन मंडल को दिया, तब हुकुमचंद ने पूछा – "यह कौन हैं ? आपके

सेक्रेटरी हैं क्या ?"

विचित्रमयी – "नहीं, हमारे घरवाले हैं। हालांकि सेक्रेटरी भी कह सकते हैं इन्हें। क्या आपसे जान-पहचान नहीं है ? ये तो यहीं के वकील हैं, आपका कोई काम हो तो बताइएगा।"

हुकुमचंद ने 'जरूर, जरूर' कहकर गगन मंडल की ओर एक बार देखा, फिर नजरें घुमाकर विचित्रमयी के चेहरे पर टिका दीं। गगन मंडल ने हुकुमचंद की ओर तिरछी निगाह से देखा, फिर मुंह मोड़ विचित्रमयी को संकेत कर दिया कि अब उठना है। विचित्रमयी ने हुकुमचंद से कहा – "देखिए, रुपये देने की बात का किसी को पता नहीं चलना चाहिए। हमारे लोगों की बात तो आप जानते ही हैं ? आप व्यवसायी आदमी ठहरे। लोग इसके तरह-तरह के मतलब निकालेंगे। लोग कहेंगे, आपका कोई स्वार्थ जरूर है, नहीं तो चट से चाय-जलपान के लिए तीन सौ रुपये भला क्यों देते ? पता चलने पर मुख्यमंत्री को भी बुरा लगेगा। हालांकि बाद में मैं उन्हें बता दूंगी। क्या मैं गलत कह रही हूं।"

हुकुमचंद – "भला आप गलत क्यों कहेंगी ? आप बिलकुल ठीक कह रही हैं।"

लौटते समय पान बाजार जाकर सौ रुपये का एक नोट भुनाकर विचित्रमयी ने ब्लाउज के कपड़ों के दो टुकड़े, जूते का एक जोड़ा, पाउडर का एक डिब्बा, लड़के के लिए कमीज का कपड़ा, कुछ खिलौने और गगन मंडल की दो कमीजों का कपड़ा आदि चीजें खरीदीं।

(5)

मुख्यमंत्री बिहु-सम्मेलन में नहीं आ सके। उन्हें अचानक दिल्ली जाना पड़ा। सम्मेलन की सफलता की कामना करते हुए उन्होंने एक संदेश भेज दिया और विचित्रमयी ने उसे पढ़कर सबको सुना दिया। हालांकि मुख्यमंत्री की अनुपस्थिति से हुकुमचंद के उत्साह पर पानी फिर गया।

यौवनविलासिनी देवी ने बिहु के उपलक्ष में विशेष रूप से लिखी एक कविता पोज दे-देकर सुनायी। कृष्ण विमोहन बरुवा उसे बिलकुल स्तब्ध होकर सुनते रहे, फिर अपने-आप कह उठे – "क्या खूब ! अद्भुत !"

उनके पास बैठे मित्र राधिका मनमोहन चक्रवर्ती ने पूछा – "अद्भुत क्या है, श्रीमती या उनकी कविता ?"

कृष्ण विमोहन – "श्रीमती भी अद्भुत हैं और कविता भी ! तुम्हारा क्या विचार है ?"

राधिका मनमोहन – "मेरे विचार से तो श्रीमती जी अद्भुत हैं, पर कविता नहीं।"

कृष्ण विमोहन – "कविता क्यों नहीं ?"

राधिका मनमोहन – "कुछ समझ में आयी क्या ?"

कृष्ण विमोहन – "उच्च कोटि की कविताएं ऐसी ही होती हैं। लोग झट से समझ न सकें, यही तो उनकी विशेषता होती है। तिस पर कविता तो समझने की चीज है नहीं, उपभोग की चीज है। जानते हो, असमिया भाषा को यौवनविलासिनी देवी ने नया रूप दिया है। उनकी कविता-पुस्तक पढ़ देखना जरा। ओहो – कैसी अद्भुत !"

तालियां बजते ही वे मौन हो गये। अब खड़े हुए मुख्य-वक्ता गंधमादन तहबिलदार। उन्होंने पुराने असम के बारे में शोध-अनुसंधान कर अनेक तथ्यों का आविष्कार किया था और अपनी सुख्याति के सौरभ से असम देश को महकाये हुए थे। ऐसे व्यक्ति को मुख्य-वक्ता के रूप में पाना महिला महामंडल के लिए बड़े सौभाग्य की बात थी।

गंधमादन ने अपने भाषण में बताया, "बहुत-से लोगों के विचार से, बहुत-से लोगों के न होने पर भी किसी-किसी के विचार से बिहु शब्द विषुव शब्द से निकला है। परंतु मैं कहता हूं कि यह गलत है, बिहु आया है संस्कृत के बिहंगम शब्द से। बिहंगम का मतलब है पक्षी। पक्षी उड़ता है, मुक्त मन से आकाश में उड़ता है। बिहु के आगमन से मानव मन भी उड़ने लगता है। बिहंगम से अगर बिहु निकला न होता तो बिहु के अवसर पर हमारा मन 'उड़ जाये, उड़ जाये' नहीं करता। हम सभी ऐसे उन्मुक्त मन के नहीं हो जाते। हालांकि आप यह पूछ सकते हैं कि, बिहंगम से तो बिह[1] ही होना चाहिए था, बिहु कैसे हो गया ? यह 'उ' कहां से जुड़ गया ? उत्तर बिलकुल आसान है, यह 'उ' आया है कोयल की 'कुहू-ऊ' से। बिहंगम से बिहु हुआ है, अब भी आप लोगों को इसमें कोई संदेह है ?"

हुकुमचंद जोर से बोल उठा – "नहीं– नहीं– नहीं।"

गंधमादन के बैठने के साथ-साथ तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। विचित्रमयी ने उपस्थित व्यक्तियों को धन्यवाद-ज्ञापन किया। सभानेत्री सुकोमलमती हाजोरिकानी, यौवनविलासिनी, गंधमादन और अन्य दो-चार लोगों के साथ हुकुमचंद गोयनका को भी अलग से, विशेष रूप से धन्यवाद मिला। विचित्रमयी ने बताया कि हुकुमचंद जी की भांति दूसरे मारवाड़ी भी अगर असम को अपना मान लें, तो इसकी उन्नति अनिबार्य है। हुकुमचंद को मिलाकर रखने में अनेक मामलों में सुविधा होगी, यह बात विचित्रमयी को समझने को बाकी न था।

बिहु-सम्मेलन सुचारु रूप से संपन्न हो जाने के कारण महिला महामंडल की सदस्याओं, खासकर विचित्रमयी को बड़ी खुशी हुई। सबकी प्रशंसा तो उसे मिली ही, साफ-साफ तीन सौ रुपये का फायदा उसे हो गया।

अनेक निमंत्रित लोग सम्मेलन में नहीं आये, पर उसका असली कारण अज्ञात ही रहा। उस विषय पर चर्चा करके सिर खपाने की जरूरत किसी ने नहीं समझी। कोई नहीं आया तो बस नहीं आया, बिहु-सम्मेलन बिना हुए थोड़े ही रहा ? मगर गगन मंडल का न आना सदस्याओं की नजर में आया। खासकर इसलिए, कि वह विचित्रमयी का पति था।

रूपलावण्यवती ने पूछा – "श्रीमान विचित्रमयी क्यों नहीं आये ?" विचित्रमयी ने सुनहली हाथघड़ी में चाबी देते हुए कहा – "मैं ही उन्हें घर में रख आयी थी। बच्चे की तबीयत अच्छी नहीं, सर्दी लग गयी है या क्या है, पता नहीं। खासियानी आया भी उसी दिन शिलांग गयी, कुछ दिन बाद ही लौटेगी। इसीलिए बच्चे को उन्हीं के हाथों सौंप आयी हूं। मेरे न आने

1. विष, जहर।

पर क्या इधर का काम हो सकता था ?"

रूपलावण्यमयी – "सचमुच आपसे मुझे बड़ी ईर्ष्या होती है। हमारे उन्हें तो मैं अब तक ऐसे काबू में नहीं कर सकी हूं। कल मुझसे क्या कहा, पता है ? कहा, इस बार वे बिहुतली[1] जायेंगे बिहु नृत्य-गीत देखने। कई साल से बिहु-नृत्य देख ही नहीं पाये हैं।"

विचित्रमयी – "मगर तुमने क्या कहा ?"

रूपलावण्यमयी – "मैं क्या कहती ? चुप रह गयी।"

विचित्रमयी – "मैं होती तो क्या कहती, जानती हो ?"

रूपलावण्यमयी – "क्या कहती ?"

विचित्रमयी – "जाना चाहते हैं तो जाइए, मैं भी जाऊंगी बिहुतली, बिहु-नृत्य करने के लिए।"

रूपलावण्यमयी – "अस् ! मैं भला ऐसा कैसे कहती ?"

विचित्रमयी – "कह नहीं सकती तो फिर रहो ऐसे ही। ले आयें बिहुतली से वे किसी को पकड़कर, तब मजा आयेगा। अच्छा, अब चलो। और सभी तो चली ही गयी हैं। उधर घर में न जाने क्या हो रहा है।"

रूपलावण्यमयी की मोटर से घर के सामने उतरकर विचित्रमयी अंदर घुस गयी। पिछवाड़े के बरामदे में बच्चे को कंधे पर डाले, उसकी पीठ पर थपकियां लगा-लगाकर टहलता हुआ उसका पति गगन मंडल धीमे-धीमे लोरी की धुन में गा रहा था –

"बारीते बगरि रूले-ए
आमार मइनाकन शुले-ए..."[2]

उस समय आसमान में छिटपुट तारे निकल रहे थे।

---

1. वह स्थान जहां बिहु समारोह के रंगमंच आदि होते हैं।
2. "बाड़ी में बेर का पौधा रोया, हमारा मुन्ना सो गया . . .

पतित और पतिता

त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी

सुंदरी पत्नी वासंती का शव चिता पर रख अपने हाथ से उसको मुखाग्नि देने के बाद से ही मेरा मन विषाद के घने अंधकार से आवृत हो गया। निःसंग जीवन, एकांत चिंतन – बस इसी को अपनाकर अपने दिन बिताने लगा। वासंती का उलझे बालों से घिरा पीला-सा चेहरा और आंखों के सामने लपलपाती अग्निशिखाओं द्वारा ग्रास की जाती अंतिम माधुरी मुझे हर क्षण याद रहते। मन को प्रबोध देने में असमर्थ होकर मैं एकांत में आंसू बहाता। जीवन के प्रारंभ में ही जो आंधी मेरी प्रियतमा पत्नी को छीन ले गयी वही मेरे अंतर में गहरी निराशा का बीज भी बो गयी। इसी कारण अपने सिरहाने रखा 'मोह-मुदगर' निकालकर कभी-कभी पढ़ता :

का तव कान्ता कस्ते पुत्रः।
संसारोयमतीव विचित्रः॥

कुछ क्षणों के लिए वासंती की चिंता दब जाती और मेरा मन स्वतः अपने महापुरुषों के प्रति श्रद्धा से झुक जाता। मन में सोचने लगता, त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियों के तथ्य-वचन अगर न होते तो संसार के ज्यादातर लोग दुख-शोक, ज्वाला-यंत्रणा के मारे आत्मघाती हो गये होते। दो-एक श्लोक और भी पढ़ता। कभी-कभी उसके बीच ही "पुत्र-परिवार सबहि असार, करबो काहेरि सार"[1] जैसी बरगीत[2] की दो-एक पंक्तियां भी गुनगुनाकर गा लेता। क्षण भर के लिए मन की स्थिरता लौट आती। उदास दृष्टि से किसी ओर देखता रहता।

मन की ऐसी अस्थिरता के बीच भी तरह-तरह के काम-काज संपन्न करने होते। ब्राह्मण के कुल में जब जन्म हुआ है, वैसे ही संस्कार हैं, तब वेदविहित कर्म करने ही होंगे। मंत्र के प्रभाव से प्रेतात्मा को मुक्ति दिलानी ही होगी।

धीरे-धीरे दानोत्सर्ग का दिन आया। मेरे पास जो कुछ था सब खुले हाथों दे दिया। जब आदमी ही न रहा, तब मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। मैं संसार-त्यागी बनूंगा। माया की डोरी में बंधकर फिर विषमय ज्वाला-भोग नहीं करूंगा। वासंती की अंत्येष्टि का वह आखिरी दिन था। पुरोहित ने हुक्म सुनाया – "बेटे, प्रणाम करो।" गले में तह करके अंगोछा लपेट मैंने घुटने टेक सिर ज़मीन से लगाकर प्रणाम किया। पुरोहित ने आशीर्वाद दिया, "प्रभु तुम्हें धन-संपदा, ऐश्वर्य-विभूति से विभूषित करें, तेजस्वी और यशस्वी बनावें, और जल्दी ही तुम्हारा

---

1. पुत्र-परिवार सभी असार हैं, किसे मैं सार बनाकर ग्रहण करूं ?
2. शंकरदेव माधवदेव रचित पद।

विवाह हो।" पुरोहित के आखिरी वाक्य पर धीरज खोकर मैं चीख उठा – "बाबा, मुझे वह आशीर्वाद न दें। संसार में मेरी आसक्ति नहीं रही। मायापाश से बंधने की अब आकांक्षा नहीं।" ब्राह्मण-मंडली ने मुझे समझाया – "भूल जाओ बेटे, सब कुछ कमलदल का नीर है। अभी है, अभी नहीं है। तुम युवा हो, कितने ही लोग तो साठ-सत्तर साल की उम्र में भी गृहस्थी बसा रहे हैं। अभी तुम्हारे दिन थोड़े ही बीते हैं। अभी तुम्हारी आयु कम है। भूल जाओ। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी दुश्मन थी। इसी कारण वह तुम्हें यों छोड़कर चली गयी। तुम फिर से घर बसाकर सुखी होवो।"

यद्यपि ब्राह्मणों ने मुझे बहुत समझाया, पर मेरी मनःस्थिति में जरा भी बदलाव नहीं आया। इसके साथ ही उन पर मुझे क्रोध ही आया, परंतु उस दिन वे लोग मेरे अतिथि थे। इसी कारण उनकी बातों का विरोध न कर चुप रह गया।

काम-काज के बाद वासंती का विरह और ज्यादा अनुभव करने लगा। इतने दिन श्राद्ध आदि के इंतजाम में व्यस्त था। मन का दुख-शोक भी कुछ हल्का-सा लगा। अब कर्महीन जीवन पाकर चिंता ने कई दिशाओं से उमड़कर मुझे जकड़ लिया। हमेशा मन सूना-सूना, खाली-खाली-सा लगने लगा। घर में घुसते ही वासंती जिन चीजों को काम में लाती थी, उन – आरसी, कंघी, तेल की शीशी आदि– पर नजर पड़ जाती। वे मन की यंत्रणा को दुगुना बढ़ा देतीं और धीरे-धीरे घर से मेरा मोह घटने लगा। अंत में एक दिन यंत्रणा के भंडार उस घर से निरुद्देश्य भाव से निकल पड़ा। हाथ में जो थोड़े-से रुपये थे, वही मेरा सहारा थे। शेष सारी चीजें मैंने जहां की तहां छोड़ दीं। कहां जाना है, कुछ भी तय नहीं किया था। फिर भी निकल गया। मन में यही आशा थी, कि कोई ऐसी जगह ढूंढ निकालूंगा जहां वियोग का दारुण मनस्ताप न हो, विरह का तुषानल न हो।

दो साल इसी तरह घूमता-फिरता रहा। लोहित के मुख्य प्रवाह में बहते हुए सरकंडों की भांति एक जगह से दूसरी जगह जाता रहा। कहीं ठहर नहीं पाया, ठहरने की इच्छा भी नहीं थी। इसी तरह दो साल गुजर गये। फिर भी मन में स्थिरता नहीं आयी, अंतर की गुप्त वेदना संपूर्ण रूप से मिटी नहीं। आखिर उस उद्देश्यहीन जीवन में भी एक तरह की अस्थिर, नवीनता-विहीन सामान्य रूढ़ि दीख पड़ी। उससे भी ऊब होने लगी। फिर घर वापस आ गया।

घर खंडहर भर रह गया था। मेरा स्वागत करते हुए चाचा मुझे घर ले गये, संभवतः प्यार से, या यह भी हो सकता है कि स्वार्थभावना से। उनका लड़का तब भी नाबालिग था, मगर वे स्थविर हो चुके थे। ऐसी स्थिति में मुझे उनके साथ रहना चाहिए, गुवाहाटी के जजमानों के यहां श्राद्ध-पूजा-होम आदि में मदद करनी चाहिए। जजमानों के यहां जाकर पूजा-होम आदि करना मेरे लिए कोई नयी बात न थी, ऐसे कामों का अभ्यास मुझे था, लेकिन लगभग दो साल से इनसे अलग रहने के कारण बीच-बीच में मंत्र भूल जाते। मगर उन्हें फिर से याद कर लेने में ज्यादा दिन नहीं लगे।

चाचा की बातों में मैं धीरे-धीरे बंधता गया। पहले के कर्महीन जीवन की तुलना में अब

प्रणाली-बद्ध कार्य के बीच मेरे दिन बीतने लगे। सुबह ब्रह्मपुत्र में नहा-धोकर संध्या-वंदन करना, दोपहर को खाओंड के यहां जाकर शालिग्राम का पूजन करना, और शाम को श्राद्ध-पद्धति, विवाह-व्यवस्था आदि पुस्तकों से मंत्र आदि कंठस्थ करना मेरे नित्यनैमित्तिक कर्म में शुमार हो चुके थे। इनके अलावा बीच-बीच में चाचा के साथ जाना और उनकी मदद करना पड़ता।

खाओंड के परिवार के सभी लोगों में पराये को अपना बना लेने का गुण रहा है। धनी-मानी परिवार होने पर भी उनका आदर-प्यार मैं भूल नहीं सकता। कुछ ही दिनों के अंदर उन लोगों ने मेरे मन की विषण्णता बहुत हद तक मिटा दी। संसार की उलझनों के बीच से गुजरता हुआ मैं भी उसकी विचित्रता के बीच अपने को विलीन कर देना चाहता था।

खाओंड के यहां शालिग्राम-पूजा करने का साहस सब लोग नहीं करते। ज्यादातर लोग देवता के कोपानल से डरते हैं। पूजा-अर्चना की दोष-त्रुटि के फलस्वरूप देवता का कोपानल जाग जाता है और उसमें यथेच्छाचारी पुजारी भी दग्ध हो जाता है। लोगों का विचार है कि इसी शालिग्राम प्रतिमा की दैवीशक्ति के बल पर ही खाओंड का परिवार सभी ओर से फूल-फल रहा है। ऐसे जाग्रत देवता की पूजा-सेवा भली-भांति चलती रहे तो खाओंड घर की श्रीवृद्धि अविचल रहेगी।

यह बात दूसरों की जुबान पर चलती रहती, पर खाओंड परिवार के लगभग सभी लोग इस विग्रह की पूजा-सेवा से उदासीन-से थे। शालिग्राम की पूजा हो या न हो, घर के सभी लोग ग्यारह बजे के करीब खाना-पीना खत्मकर बिस्तर पर लंबे हो जाते। शालिग्राम की पूजा के समय भी बहुत-से लोगों के अकर्मण्य शरीर की कर्मठ नाकें खर्राटे लेने लगतीं।

देवता की पूजा-सेवा की प्रतीक्षा में रहती सिर्फ एक हतभागिनी। वह विधवा थी। यौवन की आशाएं-आकांक्षाएं मुकुलित होते न होते वह ब्रह्मचारिणी हो गयी थी। मंदिर की दाहिनी ओर के छप्पर-तले देवता की पूजा की प्रतीक्षा में चुपचाप अकेली बैठी रहती। फूल-बेलपत्र जुटाना, देवता के लिए प्रसाद बनाना, मानो सिर्फ उसी का काम हो। उसकी सास थी बुढ़िया। मगर उसकी भी इन पर कोई आस्था है, ऐसा अनुमान नहीं होता। बीच-बीच में वह भी मंदिर में आती, मगर पूजा– आयोजन के लिए नहीं, बहू के कामों में अड़चन डालने के लिए या उसमें नुक्स निकालने के लिए। बात-बात में विधवा बहू को संबोधित कर वह कहा करती, "पापिन, आते ही मेरे मंझले बेटे की जिंदगी खा गयी। अब और न जाने क्या करना चाहती है!" सास शायद किसी जवाब की आशा से मेरी ओर देखती। मुझे गुस्सा आ जाता। साथ ही दुख लगता। सिर उठाकर देखता, बहू के मुरझाये चेहरे पर से आंसू झर रहे हैं। मेरा अंतर रो उठता। उसके चेहरे का भाव बड़ा करुणा-भरा होता, बिलकुल वासंती की भांति, जरा सूखा, मगर प्यारा-प्यारा। सास से मुझे घृणा होती, मगर उसे प्रकट नहीं कर पाता। कठपुतले जैसा सारा कांड देखता। अंत में वहां से अलग हटकर वेदी के पास कुशासन बिछा बैठ जाता। सिंहासन से शालिग्राम को उतारकर नहलाता और फूल-तुलसीदल से पूजा आरंभ करता। सास अलग हट जाती, बहू दूर से ही पूजा देखती रहती। शायद इसी में उसे कुछ शांति मिलती। एक-डेढ़

घंटे में मेरी पूजा समाप्त होती । भक्तिपूर्वक फिर से विग्रह को सिंहासन पर रख देता और विष्णु चरणामृत ग्रहणकर घर वापस जाना चाहता । कभी-कभी बहू कहती – "बाबा, भोजन यहीं करके जाइए । कल एकादशी थी – आज पारन करना है ।"

मैं इनकार नहीं कर पाता । बड़े आदर-यत्न से वह मुझे खिलाती । शायद वह मन में सोचती कि मुझे भोजन कराने पर उसके पूर्व-संचित पाप मिट जायेंगे । आलू का भुरता, अरवी का साग, ढेंकिया साग आदि साधारण चीजें होने पर भी खाकर मुझे तृप्ति मिलती ।

यह भी मेरी जिंदगी का एक अनुभव था, पहले की जिदगी का आमूल परिवर्तन ! क्या संसार के मायापाश फिर मुझे बांध रहे हैं ?

एक दिन मंदिर में पूजा कर रहा था । देवता की पूजा का आयोजन उस दिन दूसरे दिनों की अपेक्षा अधिक था, मगर कोई खास पर्व भी न था। चारों ओर साफ-सुथरा, चीजें सिलसिलेवार सजायी हुई । पूजा प्रारंभ करने के पहले से ही धूप-अगरबत्ती की सुगंध से पूरा मंदिर महमहा रहा था । इसका मतलब मैं समझ नहीं पाया । लगता था, यह एक दुखियारी विधवा का अहैतुक आनंद है । विधवा की कोई संतान न थी । दूसरों के बच्चों के साथ ज्यादा मेल-जोल रखे तो क्या पता सास उस पर दोष लगाये कि पापिन के स्पर्श से बच्चों का अमंगल होगा । इसी कारण निद्रित, मूक देवता के पूजा-आयोजन में उसे ऐसा आनंद मिलता है । या फिर निद्रित देवता को जाग्रत करने की आकांक्षा का ही यह विकास है ?

कोई चिंता न कर मैंने कुशासन पर बैठ पूजा आरंभ की । वेदी के चारों ओर सुसज्जित नैवेद्य के बीच शालिग्राम की मूर्ति जगमगा उठी, मानो यह भगवान की तेजोमय जाग्रत अवस्था है । काफी समय तक शालिग्राम का ध्यान करते हुए मूर्ति की ओर देखता रहा । मेरे मन में भावना जाग उठी कि भगवान जाग्रत हैं । मैंने यथाविहित पूजन प्रारंभ किया । ऐसी एकाग्रता से मैंने कभी देवता की पूजा नहीं की थी । मैं अपना अस्तित्व भूल-सा गया था । स्वयं भगवान ही जैसे मेरे दृश्य में आ विराजे हों । बिलकुल ऐसे ही समय में मेरे पीछे से आवाज आयी, "बाबा !"

मैं चौंक-सा उठा । सिर घुमाकर देखा– मेरे पीछे घुटने टेक कर वही दुखिया विधवा बैठी हुई है । उसके गालों पर आंसुओं की धारा बह रही है । चेहरे पर अस्थिरता का धीमा कंपन । निस्तेज कांतिहीन आंसू-भरी आंखों से वह शालिग्राम की ओर एकटक देख रही थी, मानो अंतर की पुंजीभूत वेदना उंड़ेलकर देवता के सम्मुख प्रकट करना चाहती हो । गवाह था मैं, एक अन्नहीन, कंगाल ब्राह्मण । मैंने विस्मित होकर पूछा – "आप ? आखिर रो क्यों रही हैं ?"

"मैं पापिन, दुखिया हूं, बाबा ! मुझे मर जाने का आशीर्वाद दें ।"

उसके यंत्रणापीड़ित चेहरे पर आंसुओं की धारा बह निकली । मैंने राम का नाम लिया । सोचा, विलास-कक्ष, प्रमोद-उद्यान के बीच भी ज्वाला-यंत्रणा का वृश्चिक-दंशन है, तिल-तिल कर जीवन-नाश का तीव्र हलाहल है ।

वह कहती गयी, "सचमुच मैं पापिन हूं । कल एक लड़के को चपत मार दिया । आज वह बुखार में पड़ा छटपटा रहा है और अम्मा मुझे फटकार रही है । मेरे हाथ में जहर है । छूने

से सब कुछ जहरीला हो जाता है। बाबा, मैं भी इंसान हूं। यह सब अब मैं सहन नहीं कर सकती। मेरा मर जाना ही अच्छा है। मुझे यही आशीर्वाद दें।"

"ऐसी बात न कहो, मैया!" धीरज बंधाने के लहजे में मैंने कहा – "आप राजपरिवार की बहू हैं, पापिन नहीं हैं। ईश्वर आपको शांति देगा। उसी का नाम लो। वही सबका मालिक है।"

फिर मुंह मोड़कर मैंने अधूरी पूजा में मन लगाया, परंतु मन नहीं लगा। मेरी उदासीनता के कारण जैसे भगवान की जाग्रत मूर्ति अंतर्हित हो गयी थी। उस तेजोमयी दीप्ति के बदले दिख पड़ा एक कांतिहीन पत्थर। आतंक और अस्थिरता से मेरा अंतर कांपने लगा। आखिर शेष पूजा समाप्त करने का तय किया। परंतु जुबान से सही-सही मंत्र का उच्चारण नहीं हो पाया। तथापि मेरे अभ्यस्त हाथ क्रमानुसार फूल-बेल पत्र चढ़ाते गये। चंचल मन की अस्थिरता के बीच ही पूजा समाप्त कर दंडवत् प्रणाम करने के लिए जरा-सा पीछे हटते ही अनजान में उसके पैरों से मेरे पैर छू गये। अचकचाकर 'राम हरि' नाम लेकर मैं उसके पैर छूने के लिए झुका ही था कि वह झट से मेरा हाथ पकड़कर बोल उठी – "क्या करते हैं, बाबा? आप ब्राह्मण हैं – कुल देवता के पुजारी।"

उसके ठंडे हाथों के स्पर्श से अपने समूचे शरीर में मैंने एक तरह की सिहरन का अनुभव किया। मन में शर्म भी आयी। आखिर साफ आवाज में बोला – "मैया, मैं तो आपके घर का एक सेवक ठहरा।"

उत्तेजित स्वरों में उसने जवाब दिया – "तुम सेवक नहीं बाबा, तुमसे मुझे जो हमदर्दी मिलती है, वह अगर दूसरों से भी मिलती तो मेरा दुख घट गया होता। मगर मैं तो इस घर में सबकी आंखों का कांटा ठहरी। दिन-रात मुझे मिलती है फटकार, असहनीय तिरस्कार। अब जिंदगी की कोई जरूरत नहीं। संसार में सभी ओर हलाहल ही हलाहल देख रही हूं। मैं इसके बीच जल-भुनकर मरी जा रही हूं। यातना में चीख-पुकार कर रही हूं। और कितनी ज्वाला सहूं?"

कहते-कहते वह रो पड़ी। दया और करुणा से मेरा अंतर भीग उठा। उसके दुख के आंसू पोंछ देने को मेरी इच्छा हुई, पर हिम्मत नहीं हुई। और उसके बालों में पूजा का निर्मूल्य-पुष्प लगा दिया। फिर भारी मन से मंदिर से निकलकर घर की ओर चल पड़ा।

मेरी जिंदगी का वह नया अनुभव था। जीवन की करुण-कहानी के दो-चार अर्धस्फुट शब्दों से भी दूसरों का दिल जीता जा सकता है। वेदना के कड़वेपन को बांटने के लिए भी कभी-कभी लोग उतावले हो उठते हैं। परंतु मैं रंक, दुर्बल, शक्तिहीन हूं। क्या मैं खाओंड की बहू का दुख मिटाने में सक्षम हूं? मन में सवाल जाग जाता। परंतु मेरा उद्धत स्वभाव, उद्दंड चेतना? इनका भी महत्व अवश्य है, मूल्य है। इस निस्सहाय विधवा की जीवनी-शक्ति विषाक्त घेरे के बीच तिल-तिल कर विलुप्त होती जा रही है। दूर से मैं इसे देख रहा हूं। ऐसी स्थिति में क्या मैं सिर्फ दर्शक ही बना रहूं? उस दुखी विधवा के दुख में संवेदना प्रकट करने हेतु मेरी प्रकृति मुझे उकसाया करती। दुनिया में सैकड़ों लड़कियों की मांग का सिंदूर पुंछ गया है,

सैंकड़ों पुरुषों को पत्नी-वियोग हुआ है। फिर भी वासंती के वियोग से मेरे मन की जो हालत हो गयी है, उसी से इस विधवा की मानसिक यंत्रणा मैं और ज्यादा अनुभव कर सकता हूं। वसंत की अधखिली कली मुरझा गयी है। उसके मानस की कल्पना, हृदय की अतृप्त तृषा, अंतर में ही विलीन हो गयी। अपूर्व सौंदर्य से लबालब हृदय को कंटीले शूलों ने बड़ी बेरहमी से बेध डाला है। कोयल की सुरीली तान सुनकर यह मुरझाया फूल क्या फिर पंखड़ियां फैलायेगा ? विधवा के दुख से मेरे प्राण रो उठते। मन में सोचता, उसका दुख दूर करूंगा, पर कदम आगे न बढ़ते। शायद इसी को कहते हैं निष्फल सहानुभूति।

पहले की ही भांति खाओंड के यहां आता-जाता रहा। पहले की ही भांति शालिग्राम-पूजा भी करता रहा, परंतु भगवान की उज्ज्वल मूर्ति में फिर कभी वह झलक नहीं दिखी। तथापि मन लगाकर भगवान की पूजा करता, धन-संपदा की कामना से नहीं – उस हतभागिनी विधवा के सुख के लिए, शांति के निमित्त। फिर भी भगवान जाग्रत नहीं हुआ। मूक प्रस्तर का कठिन हृदय बेधकर कोई आशीर्वाद नहीं निकला।

एक और दिन ! पूजा करने गया तो देखा पूजा का कोई इंतजाम ही नहीं। पास ही छप्पर के नीचे वह विधवा बैठी रो रही है। मैंने दूर से ही आवाज दी – "मैया, पूजन की धूप, अगरबत्ती, नैवेद्य आदि का इंतजाम करो।"

वह खड़ी हो गयी और आंसू पोंछती हुई बोली – "इंतजाम नहीं किया, बाबा ! और करके भी आखिर होगा क्या ? इंसान की भांति भगवान भी मुझसे रूठा हुआ है। फिर भी चलो, अभी इंतजाम किये देती हूं।" कहती हुई वह मंदिर में आ गयी। मैं भी कुशासन बिछाकर कोषाअर्घा आदि सजाने में जुट गया। वह नैवेद्य सजाती हुई कहती गयी, "बाबा, लंबे तीन सालों तक भगवान की आराधना करती रही, कोई नतीजा नहीं निकला। दुखहारी भगवान ने द्रोपदी का दुख-मोचन किया था जरूर, मगर इस पापिन की ओर एक बार भी सिर उठाकर नहीं देखा। अब देखती हूं, मुझे इंसान की ही मदद चाहिए। मेरा अपना कोई नहीं। मां-बाप, भाई आदि कोई होता तो कोई राह निकलती। मगर वह भी नहीं। मेरी किस्मत न जाने कैसी है !"...विधवा के हृदय से एक लंबी आह निकल गयी। इसी बीच मैं शालिग्राम की मूर्ति को स्नान कराकर चंदन-तुलसी आदि से विभूषित करने लगा।

वह कहती गयी – "सास की फटकार असह्य हो उठी है। यहां से निकल जाऊं तभी मेरी रक्षा होगी, नहीं तो सीता की भांति मुझे भी बनवास दे देंगे। चरित्रहीन नर-पिशाचों के बीच मुझे छोड़ देंगे।"

मैंने गंभीर भाव से उत्तर दिया – "बड़ी मैया को गुस्सा ज्यादा आता है। उनकी बात पर ज्यादा ध्यान न दें।"

मेरी बात से उसे धीरज नहीं हुआ। मैं भी बातचीत में और भाग न लेकर घर चला आया।

उसके बाद हमेशा पूजा करने जाता और दिन-ब-दिन विधवा की अशांति बढ़ने का आभास पाता। देवता के पूजा-पाठ में मानो उसकी आस्था घटती जा रही थी। उसकी प्रकृति भी पहले की अपेक्षा गंभीर हो गयी थी, एक संशय की भावना मानो उसके समूचे शरीर को

घेरती जा रही थी। मैं बीच-बीच में उसका हालचाल पूछता, परंतु अत्यंत दुख से वह बताती "बाबा, सचमुच ये लोग मुझे बनवास देने वाले हैं।"

मेरी छाती भी आशंका से दहल उठती। जब कई दिन तक लगातार वही बात वह मुझसे कहती रही तब एक दिन मैंने शपथ लेकर कहा – "अगर ऐसा है तो मैं आपका उद्धार करूंगा। आपको आश्रय दूंगा।"

कुछ समय तक वह एकटक मेरी ओर देखती रही। उसके मुंह से धीरे-धीरे निकला – "तुम्हारी जिंदगी भी कंटीली हो जायेगी।" फिर वह मंदिर से चुपचाप चली गयी।

चार-पांच दिन बाद देखा, एक नन्हीं बच्ची शालिग्राम-पूजा का आयोजन कर रही है। और कभी-कभी बूढ़ी सास खुद ही करती है। मुझे पल-पल उसकी याद आने लगी। मंदिर सूना-सूना-सा लगता। शालिग्राम की मूर्ति मानो बिलकुल निस्तेज हो गयी थी। पूजा-पाठ में मेरा भी मन नहीं लग रहा था। दुखिया विधवा की अनुपस्थिति में देवता भी मुंह मोड़ चुका है। नयन-जल का अर्घ्य सजाकर विधवा ने आकुल अंतर से देवता को अपना जीवन और यौवन दान किया था। वही थी असली पुजारिन, मैं तो सिर्फ उपलक्ष मात्र था। उसकी अनुपस्थिति के कारण ही देवता का मुखमंडल मुरझा गया है। विधवा के आत्म-निवेदन से देवता जागा नहीं। शायद इसीलिए उसके मन में यह पछतावा हो रहा है।

विधवा का पता लगाया। पर निश्चित रूप से कुछ जान न सका। कुछ दिन बाद पता चला, उसे किसी आश्रम में भेज दिया गया है, उस पर उन्हें कुछ संदेह हो गया था। मन में बड़ी शर्म आयी। सोचने लगा, इस कलंक ने मुझे पशु से भी अधम कर डाला है। अचानक उस दिन मंदिर में देवता को साक्षी बनाकर कही बात याद आ गयी। इस चिंता से मेरा उद्धत मन उछल पड़ा। मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की – 'विधवा का उद्धार कर मैं दुनिया को दिखला दूंगा कि उत्पीड़ित नारी के प्रति स्नेह-दया के सिवा मेरे हृदय में कामना का लेश मात्र नहीं है।"

उसी दिन मैंने खाओंड के घर से सारा संपर्क बलात तोड़ डाला। अनुसंधान कर आश्रम का पता लेकर गुवाहाटी से निकल पड़ा।

उस आश्रम में अनेक युवतियां और बूढ़ियां थीं। सुना, पहले और भी ज्यादा थीं, परंतु कुछ को दूसरों के हाथ सौंप दिया गया था। और कुछ आजीवन ब्रह्मचारिणी-व्रतधारिणी बनने को इच्छुक हैं।

आश्रम में पहुंचकर मुझे अच्छा भी लगा, दुख भी हुआ। वहां के सिलसिलेवार नियमों को देखकर अच्छा लगा। पर उन अभागिनों के बारे में सोचकर दुख हुआ। जीवन के जरा-से पद-स्खलन हेतु उनमें से ज्यादातर उत्पीड़ित हो रही हैं। कोई-कोई बिना किसी अपराध के स्वजनों द्वारा खदेड़ दिये जाने पर कलंक-कालिमा का परिचय दे रही हैं। हालांकि हमारे समाज में कलंकित के लिए भी जगह है, प्रवंचक की प्रवंचना का भी व्यापक क्षेत्र है। पर कलंकित नारी के स्पर्श से ही यहां धूलिकण तक कलुषित हो जाता है। आकाश में, हवाओं में विष-वाष्प तिरता रहता है। लांछित होने के कारण ही वे समाज से बहिष्कृत रहती हैं।

खाओंड की बहू लांछित है। मुझे उसी से मिलना है, और हो सके तो उसे उत्पीड़न से

छुटकारा दिलाना है । मन में यही आशा है । पतिता का संस्पर्श मुझे कुलषित नहीं कर सकता । मैं समाज के नैतिक मानदंड के बाहर हूं । इसी कारण मैंने उसे ढूंढ़ निकाला । मुझे देखकर वह विस्मित हुई और दूर ही खड़ी रही । आगे बढ़कर मैंने उसे पुकारा – "आपको ही ढूंढ़ता आया हूं । आपके प्रति सबने अन्याय किया है ।"

उसने मेरे हाथ पकड़कर विनती की – "बाबा, अगर हो सके तो किसी तरीके से मुझे यहां से ले चलो । यहां तरह-तरह के लोग रहते हैं । सभी अपरिचित हैं, सभी पराये हैं । कोई किसी का दुख नहीं समझता । यहां रहूंगी तो मैं मर जाऊंगी । मैं घर की बहू हूं, घर में थी । इन सबके साथ तो मैं कभी मिल नहीं पाऊंगी । हिंदीभाषी, बंगाली आदि न जाने कितने तरीके के लोग है यहां । इनकी बातें भी मेरी समझ में नहीं आतीं । एक अनिश्चित आतंक मेरे दिल में घर कर गया है । यह भी एक नया दंड है । पता नहीं किस अपराध के कारण भगवान ने मुझे ऐसा दंड दिया है । मेरा कोई दोष नहीं है, बाबा !"

उसकी बातों से मेरा दिल पिघल गया । प्रतिज्ञा और दृढ़ हुई । "आप के उद्धार के लिए ही मैं यहां आया हूं । स्वयं भगवान को सामने रखकर मैंने कहा था, आपका उद्धार करूंगा । उसी भगवान का आदेश सिर पर लेकर मैं आया हूं । आप मुझे गलत न समझें ।"

मेरी बात पर वह आश्वस्त हुई । उसकी आंखों में और चेहरे पर कष्ट-लाघव की निशानी मेरी नजर में आयी । वह आश्रम के बाहर की जिंदगी चाहती है, बंधन से मुक्ति चाहती है । इसके लिए अनागत भविष्य के गर्भ में आंखें मूंदकर कूद पड़ने में भी उसे संकोच नहीं है ।

मन ही मन उसकी हिम्मत की सराहना कर मैं आश्रम से बाहर आया । जब वह खुद ही आश्रम से निकलने की इच्छा और आग्रह प्रकट कर रही है, तब तो उसे वहां से ले आने में कोई अड़चन नहीं होगी – ऐसा मेरा अंदाजा था । परंतु हम दोनों में एक दुर्लंघ्य दीवार आ खड़ी हुई । हम दोनों के विवाह-बंधन में बंधे बगैर आश्रम के अधिकारी मेरे हाथ उसे सौंपने को तैयार नहीं हुए ।

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । ऐसी किसी जटिल समस्या का सामना मुझे करना पड़ेगा, इसकी कल्पना तक मैंने नहीं की थी । क्या किया जाये ? दिन-रात एक ही बात घुमा-फिराकर सोचता रहा, दुहराता रहा । फिर भी इस समस्या को हल करने की कोई राह सूझ नहीं रही थी । एक ओर मुक्ति-अभिलाषिणी विधवा का करुण अनुरोध, दूसरी ओर कामनाहीन कर्म का नैतिक आदर्श । एक ओर जाग्रत भगवान के नाम पर प्रतिज्ञा, दूसरी ओर लोगों की आंखों में स्वार्थ और लालसा का विष । दो मार्ग हैं, किस मार्ग से आगे बढ़ने पर आदर्श अटूट रहेगा, विधवा को भी छुटकारा मिलेगा ? जितना ही सोचता, समस्या उतनी ही ज्यादा उलझ जाती । फिर भी बार-बार सोचता, क्षण भर पहले जिस निर्णय पर पहुंचता, दूसरे ही क्षण उसे झाड़ फेंकता ।

चार दिन उससे मुलाकात नहीं की । शायद वह सोच रही होगी कि मैंने उससे प्रवंचना की है । मगर मेरे मानस में जो आंधी चल रही है, क्या उसका पता उसे है ?

पांचवें दिन मन में निश्चय कर मैं आश्रम पहुंचा । वह मेरे पास दौड़ी आयी और आग्रह से पूछा – "मैं यहां से कब निकल पाऊंगी, बाबा ?"

धीर, स्थिर भाव से मैंने जवाब दिया, "आपके सामने दुस्तर बाधाएं हैं। अगर आप इन बाधाओं को पार कर सकें, तभी छुटकारा पा सकती हैं, नहीं तो बंधन ही रहेगा।"

उसने मुंह से कुछ नहीं कहा, सिर्फ सिर झुकाये जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाती रही।

पहले के ही स्वर में मैंने पूछा – "यह बाधा पार करने में क्या आप सक्षम होंगी ?"

एक लंबी सांस लेकर विधवा की छाती बोझिल हो गयी। क्षण पर पहले दमकती हुई आंखें कांतिहीन और स्थिर हो गयीं। मैं मन में सोच रहा था, उससे क्या कहूं ? तभी वह धीरे-धीरे बोलने लगी – "बाबा, मेरे उद्धार का कोई उपाय नहीं है।" उसकी आंखें छलछला रही थीं। "मैंने सब कुछ सुना है। परंतु मेरा मान, इज्जत सब कुछ चला गया है। मैं तो कलंक का बोझ सिर पर लिये आश्रमवासिनी बनी हूं। मैं पतिता हूं।" वह फूट-फूट कर रो पड़ी। "मेरा साथ सभी छोड़ देंगे – सभी मुझे ठुकरायेंगे, बाबा, सभी मुझे ठुकरायेंगे।"

विधवा के आंसुओं से मगर मुझे दुख नहीं हुआ। एक दिन मंदिर में इसके आंसू देखकर मेरे हृदय में बरछी चुभ गयी थी, परंतु उस दिन विद्रोह की भावना ने मेरे हृदय को कठोर बना दिया था। सिर्फ निष्फल सहानुभूति नहीं – विधवा के अंतर का यह शोक-शूल सबलता से निकालकर उसके फटे हृदय को गंधमादन की विशल्यकरणी द्वारा जोड़ दूंगा।

विधवा ने सिर उठाकर मेरी ओर देखते हुए कहा – "जाइए, बाबा, मैं पतिता हूं,– जिंदगी भर पतिता ही बनी रहूंगी।"

उत्तेजित होकर मैंने कहा – "अगर आप पतिता हैं, तो मैं भी पतित हूं। असली पतितों की संख्या भी हमारे समाज में हजारों है। इस दुनिया में अगर उनके लिए जगह हो सकती है, तो भला आपके लिए क्यों नहीं होगी ?"

वह मेरे बिलकुल पास आ गयी, बोली – "मगर बाबा, मेरे संस्पर्श से तुम्हारा अनिष्ट होगा।" मैंने तुरंत जवाब दिया – "मैं वह बात नहीं सोचता। अगर लोगों के बीच नहीं रह सकूंगा तो दूर निकल जाऊंगा। हिमालय के किसी कोने में हमारे लिए जगह जरूर होगी।"

आवेग भरे हृदय से वह बोल उठी – "मेरा मान-सम्मान तो पहले ही चला गया। अब तो उसे वापस नहीं ला सकती। इसलिए चलो, इस बावले समाज के हलाहल से दूर कहीं निकल भागें। दुनिया की फैली छाती पर हमारे लिए जरूर जरा-सी जगह होगी।"

दूसरे दिन किसी तरह के आडंबर के बगैर आश्रम के अधिकारी और कर्मचारियों के सामने हमारा विवाह हो गया। वहां ढोल-बाजे कुछ न थे, होम की सुगंध न थी, बस आश्रम के स्वामी का आशीर्वाद था और नारायण-मूर्ति की उपस्थिति थी।

भगवान को साक्षी बनाकर जाह्नवी का हाथ पकड़े मैं आश्रम से निकल आया। मुझे उस दिन की याद आ गयी, जिस दिन उसने मंदिर में मेरा हाथ पकड़ लिया था। यही शायद भगवान की इच्छा थी, नहीं तो उस दिन ही जाग्रत देवता चतुर्भुज मूर्ति धारणकर हमें अलग कर देता।

भगवान का आशीष और लोगों का तिरस्कार सिर चढ़ाये हम नये जीवन के यात्री बने। चाचा ने इस बार मेरा स्वागत नहीं किया। आत्मीय-स्वजनों ने दूर से ही दुरदुरा दिया, क्योंकि

मुझे समाज-बहिष्कृत कर दिया गया था। इसी कारण सबका माया-मोह त्यागकर हम एक अनजान जगह पर जा बसे, पिछड़े हुए लोगों के बीच। मेरे पास धन-दौलत, भाई-बंधु कुछ नहीं था। वे असभ्य लोग ही मेरे इष्ट-मित्र, आत्मीय-स्वजन थे। कभी-कभी ये मेरी मदद भी करते, सम्मान भी। परंतु शराब पीकर नशे में धुत्त होने पर वे मुझे गालियां भी देते, अत्याचार करने को तैयार हो जाते। फिर भी हम यहीं हैं। और इन्हीं की मदद से जमीन का एक टुकड़ा आबाद कर खेती-बाड़ी करने में जुट गये हैं। इस अभाव और गरीबी में भी जाह्नवी का उत्साह देख मन में आशा जाग जाती है। परंतु बीच-बीच में चोरों की भांति तरह-तरह के संदेह की भावनाएं उठकर मुझे परेशान कर मारती हैं। कभी-कभी सोचता हूं – किसी दूसरी जगह चला जाऊं। अब तक अच्छी तरह जम नहीं पाया हूं। फिर भी हम दोनों आशा लगाये हुए हैं... भगवान का आशीर्वाद लेकर ही जब हमारा यह मिलन हुआ है, तब उसका सुफल अवश्य हम प्राप्त कर सकेंगे।

बारिश जब उतरती है

रमा दाश

जयंत एडमंस कालेज में राजनीतिशास्त्र का युवा अध्यापक है। वह अभी-अभी कालेज से तीन-तीन उबाऊ लेक्चर देकर आया है और मखार के खुले छात्रावास के अपने कमरे में घुसकर चुपचाप सिगरेट पर सिगरेट फूंकता जा रहा है।

एक सिगरेट के जलकर खत्म होने से पहले ही जयंत एक और सिगरेट जला लेता। मेज पर पड़े प्लेयर्स नेवीगेटर का पैकेट एक ही बैठक में फूंक डालने की शपथ लेकर ही वह बैठा है।

शिलांग शहर का जून का महीना।

सुबह से ही उदास मानसून की लगातार बारिश हो रही है। स्थिर, स्थविर, पंगु मानस उसके प्रभाव से कुछ चंचल, चपल होकर कविता करने को ललचा उठते हैं। पूर्णता की परिपूर्ण-तृप्ति के बीच भी वह मानो अनास्वादित नयी अपूर्णता की अतृप्ति के बीच बार-बार अनजाने दौड़ जाना चाहता है।

सामने की खुली खिड़की से बारिश की बौछार ने आकर जयंत के कमरे के फर्श को डुबो-सा दिया। उसके कमरे से सटे दूसरे कमरे से वन-नो-ट्रंप, टू-हार्ट्स, थ्री डायमंड्स, फोर क्लब्स आदि की जोरों की चीख-पुकार बारिश की आवाज को चीरकर भी उसके कानों में पड़ती है। पास के किसी मकान में, मकान के सारे लोग ग्रामोफोन के साथ सुर मिलाकर "आजि शाङन झरे" (आज सावन बरसता है) गीत को बड़े भद्दे ढंग से वृंदगान की तरह गा रहे हैं। मगर जयंत आकाश की छाती और वर्षा-धारा की ओर देखता हुआ लगातार सिर्फ सिगरेट पर सिगरेट फूंकता जा रहा है।

कभी-कभी जली सिगरेट को मुंह में लिये वह घर की दीवार पर टंगे जापानी आईने के सामने खड़ा हो जाता है। अस्पष्ट कमरे के झीने प्रकाश में, अपनी लगभग छह फुट ऊंची, सुगठित, सुंदर देह के साथ सुंदर चेहरे की मधुरिमा वाली सुस्पष्ट रेखाओं का निरीक्षण बड़े आग्रह से करता है। दीप्त गौरव के एक स्मित हास की छटा उसके सुंदर अधरों पर खिल उठती है। अपनी किताबों के रैक से पढ़ने के लिए बड़े आग्रह से उसने आस्कर वाइल्ड की "डोरिमन ग्रे" निकालकर फिर बिना पढ़े उसे रैक में रख दिया। अन-बजे एक गीत की धुन अपने आप उसके कंठ में किलक उठी। कुछ सकुचाते हुए 'देखे या न देखे' की उलझन में भी, कालेज से लाकर अपनी मेज पर रखी तीन चिट्ठियों को उसने फिर उठा लिया।

ठीक छह बजने के साथ-साथ लगातार होती बारिश अचानक ही कुछ अस्वाभाविक ढंग से रुक गयी।

यह देखकर जयंत ने बड़ी व्यस्तता से कुछ क्षण बाहर देखकर अपने हाथ की अधजली सिगरेट को जोर से बाहर फेंक दिया और तुरंत अपने बिखरे मन को सहेजकर कमरे की बत्ती जला दी। जल्दी-जल्दी अपनी सबसे बढ़िया पोशाक निकालकर, बड़े यत्न से पहनने लग गया।

कमरे में जलती बत्ती के प्रकाश में सुंदर पोशाक और प्रसाधन से उसकी सुंदर देह और चेहरा अधिक कमनीय होकर आईने में झलकने लगे। उसके होंठों के कोने में लगी मीठी-सी मुस्कान बांध तोड़कर समूचे मुंह पर फैल गयी। अपने अनजाने, प्राणों के आवेग से अपनी अति प्रिय कविता शेली की 'वेस्ट विंड' की शुरू से आखिर तक वह आवृत्ति कर गया। आईने के सामने आखिरी बार के लिए खड़े होकर उसने अपने सुंदर बालों पर यों ही ब्रश चलाया, दो-तीन बार यों ही खींचतानकर टाई और कोट के रंगों के साथ सुंदर ढंग से मिलाकर ऊपर की जेब में उभरे रूमाल की नोक और बटन-होल में लगे सफेद कारोनेशन फूल आदि पर एक नजर डालकर अच्छी तरह से जांच की। उसके बाद रेनकोट तथा टोप को हाथ में उठाकर बाहर निकलने के पहले कमरे के चारों ओर एक बार यों ही नजर डाल ली। उसके आगे बढ़े हुए कदमों को कई बार पढ़कर मेज पर रखी हुई उन तीन चिट्ठियों ने फिर मानो पीछे की ओर खींच लिया। जाने के पहले अपने उल्लास भरे हलके मानस को और ज्यादा उल्लसित करने हेतु तीनों चिट्ठियों को एक-एक कर वह फिर पढ़ता गया।

बहुत दिन पहले जिसकी शादी हो चुकी है, उस अंजली ने जोरहाट से लिखा है –

"चिर आराध्य मेरे प्रियतम,

तुम्हें मैं आज तक भूल नहीं पायी हूं, इस बात पर शायद तुम इतने दिनों बाद जरा भी विश्वास नहीं कर सकोगे। शायद तुम सोचते हो, विवाह करने के बाद मैं अब परम सुखी हूं। लेकिन कहने पर भी क्या तुम विश्वास करोगे, मेरे सबसे निबिड़ जीवन की तृप्ति के क्षण अब भी तुम्हारे बगैर सदा अधूरे रह जाते हैं।

तुम्हारी खूबसूरत काली भौंहों के बीच सुंदर आंखें अब भी काली शाम की बदलियों की तरह सदा मेरी आंखों के सामने तिरती रहती हैं। रात की बोझिल हवाओं की छाती से तिरकर आती रजनीगंधा के सौरभ में आज भी मैं तुम्हारे कंठ की स्वर-माधुरी सुन पाती हूं। रात की चांदनी आज भी मेरी अतृप्त देह में तुम्हारे अंगों का शीतल स्पर्श उंड़ेल देती है।

परंतु शिलांग में तुम क्या ऐसे जड़ जमाकर बैठ गये हो कि मेरे इतना बुलाने पर भी तुम एक बार हमारे यहां आ नहीं पा रहे हो ? शादी-ब्याह न करने पर भी जब तुम्हें इतनी पूजा-अर्चना करके बुलाना पड़ रहा है, तब शादी-ब्याह के बाद तो शायद बिना खाये-पीये सत्याग्रह करने पर भी तुम हमारी ओर मुड़कर नहीं देखोगे। तुम्हारे लिए मैं ऊन की 'स्लिप-ओवर' बुन रही हूं। थोड़ा-सा गला बनाना रह गया है।"

आरती ने, जिसका विवाह हाल ही में होने वाला है, आज ही नगांव से लिखा है –

"प्राणों के देवता मेरे,

जो सोचती थी, आखिर वही हुआ। अंत में आपने भी मुझसे मुंह मोड़ ही लिया। इतने सरल भाव से आपका विश्वास कर, जीवन का यथासर्वस्व आप पर निछावर कर दिया था, शायद इसी कारण आप इतनी आसानी से मेरी उपेक्षा कर सके। हम सदैव इतने निष्कपट भाव से आप लोगों के हाथों अपने को न्योछावर कर देती हैं – शायद इसी कारण आप लोग हमें हमेशा दो दिन की खेल-सामग्री मानकर काम पूरा हो जाने पर, राह की धूल में बसी कली की तरह पैरों से ठुकराकर निकल जाते हैं।

जो हो गया, उसे तो अब वापस नहीं लाया जा सकता। बिना कारण उसे आज दुहराकर आपके सुख के क्षणों को विषमय बनाना नहीं चाहती। यह न सोचें कि आपके जीवन की वर्तमान गति से मैं बेखबर हूं। आप भाग्यशाली हैं, आपने जीवन के सुख का मार्ग ढूंढ़ लिया है। मैं अभागिन हूं। भला वह सुख मुझे कहां मिलेगा? फिर भी मैंने अपना मार्ग तय कर लिया है। मेरी मर्जी के खिलाफ मां-बाप हजारों उत्पीड़न के बावजूद मुझ पर अपनी मर्जी नहीं लाद सकेंगे। मैं तो सन् सत्तावन की 'क-ख' न पढ़ पाने वाली वह अशिक्षित देहाती लड़की नहीं हूं।

पर यह हो सकता है कि मेरा मार्ग संपूर्ण गलत हो या कंटीला भी हो। यह भी हो सकता है कि उसके लिए भगवान के विचार में मुझे पापिन ठहराया जाये। परंतु उस पाप का भाग क्या आपको भी नहीं छुएगा?"

अस्वाभाविक होने पर यह सच है, कि अविवाहित जमींदार-कन्या वंदना ने आज ही दो बजे नंथमाई से चपरासी के हाथ जयंत के नाम यह चिट्ठी भेजी थी –

"प्रिय प्रोफेसर,

कैसा सुंदर बरसाती मौसम है, है या नहीं? अगर बंगाली होती तो रवींद्रनाथ के शब्दों में कह सकती :

एमन दिने तारे बला जाय –
एमन घनघोर बरिषाय।
एमन मेघ स्वरे बादल झरझरे
तपनहीन घन तमसाय।
से कथा शुनिबे ना केह आर
निवृत निर्जन चारि धार।
दुजने मुखोमुखी गभीर दुखे दुखी
आकाशे जल झरे अनिवार।
जगते केह येन नाहि आर।
समाज संसार मिछे सब
मिछे ए जीवनेर कलरव
केवल आंखि दिये आखिर सुधा पिये

हृदय दिये हृदि अनुभव
आधार मिशे गेछे आर सब ।

(यानी – ऐसे दिन में उससे कहा जा सकता है, जबकि ऐसी घनघोर वर्षा हो रही है, ऐसे मेघ-स्वर में बादल झर रहे हैं । ग्रीष्म की ताप-हीन गहरी अंधेरी रात है ।

वह बात तो अब कोई सुनेगा नहीं क्योंकि चारों ओर एकांत निर्जन है । दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने हैं, गंभीर दुख से दुखी हैं । आकाश से आंसू रूपी जल लगातार झर रहा है । लगता है, संसार में और कोई नहीं ।

समाज-संसार सब झूठे हैं, जीवन का यह कोलाहल मिथ्या है, सिर्फ आंखों से आंखों का सुधा-पान करते हैं । हृदय से हृदय की वेदना का अनुभव करते हैं । और सब कुछ अंधेरे में खो गया है ।)

परंतु ये उत्कट कट्टरपन के दिन हैं; बंगला कविता का उद्धरण दे रही हूं, ऐसा जानने पर हो सकता है कोई पैतृक प्राणों पर ही आकर हाथ डाल दे ।

खैर, आप तो काव्यमर्मज्ञ व्यक्ति हैं । सदा बात-बात पर आपको कविता की आवृत्ति करते सुनती हूं । अब आप ही बतायें, कामर्शियल कंपनियों ने जैसे गुवाहाटी-शिलांग रोड पर एकाधिकार कर लिया है, वैसे ही ब्रह्मपुत्र नदी और वसंत ऋतु पर क्या हमारे असमिया कवियों ने एकाधिकार कर लिया है ? या हमारे आम असमिया लोगों की भांति हमारे असमिया कवियों की काव्यानुभूति की परिधि ही कुछ संकीर्ण है ? कविता हो, या गीत हो, हमारे यहां सब में बस वही 'लुइतरे पार' यानी लोहित का तट। लोहित की रेत, लोहित की लहरों पर झिलमिलाती-सी वही नन्हीं-सी नाव । मानो हम सब असमिया लोग सिर्फ लोहित पर नाव खेते हुए दिन बिताया करते हैं । उसी तरह हमारी कविता हो या गीत, सबमें सिर्फ कोयल-केतकी पक्षियों और मलय-वायु की रिम-रिमाहट होती है, जैसे हमारे देश में वसंत के सिवा और कोई ऋतु गलती से भी नहीं झांकती । आखिर ऐसा क्यों ? असम की वर्षा तो, देखते हैं, धीरे-धीरे विश्वविख्यात होती जा रही है । हर साल बरसात में हमारे यहां फ्लड-रिलीफ के लिए कितना हो-हल्ला मच जाता है । फिर भी न जाने क्यों हमारे असमिया कवि आज तक इस वर्षा के बारे में कोई प्राणस्पर्शी कविता नहीं लिख सके हैं ? मैथिली कवि विद्यापति की वर्षा के बारे में ये पंक्तियां – भरइ बादर, माह भादर सून मंदिर, मोर — वास्तव में कितनी मर्मस्पर्शी हैं !

सचमुच आज जैसे दिन में मन अकारण उदास है, बड़ा सूना-सूना-सा लग रहा है ? मैं यही बार-बार सोचती हूं, ऐसे एक उदास मौसम में आप जैसे कवि-प्रकृति का एक इंसान कैसे उस कालेज के उन हट्टे-कट्टे लड़कों के बीच (कॉटन कालेज होता तो भी कुछ बचाव होता) सूखी राजनीति का लेक्चर दे सकता है !

पिताजी आज घर पर नहीं हैं । अचानक एक जरूरी तार पाकर धुबुरी चले गये हैं । मां आज असम क्लब में रात को फ्लड रिलीफ का चैरिटी शो देखने जाने वाली हैं । नीली भी मां के साथ जायेगी, ऐसा बताया है । मुझे ऐसा सिरदर्द हो रहा है कि सिर फटा जा रहा है – यह बहाना बनाकर मैं आज कालेज नहीं गयी । अभी-अभी कुछ ही देर पहले रेडियो खोलकर

फारमोर लंचर केसानोवा का स्पैनिश आर्केस्ट्रा सुनते-सुनते एक कप गर्म चाय पी है। अब चिमनी जलाकर सेंत मांदे की पुस्तक 'वार, वाइन एंड वीमन' जिसे आपने ही ला दिया था, खोल ली है।

क्लास समाप्तकर आप बाहर ही बाहर यहां चले आयें। नहीं तो आज शाम को बड़ी अकेली रहूंगी। आपके लिए मैंने अभी ही चिमनी के अंगारों पर चाय का पानी रख दिया है। क्लास खत्म होते ही देर किये बगैर आप जल्दी आ जायें, मेरी कसम !"

तीनों चिट्ठियों को एक ही सांस में पढ़कर जयंत ने फिर पहले जैसे मेज पर फेंक और अत्यंत उमंग में कमरे का दरवाजा बंद कर दिया। और उसी एक ही आवेग में मानो मिनट भर का विलंब किये बगैर वह सड़क पर निकल आया तथा एक पुलक भरे आनंद तथा आग्रह की लंबी यात्रा पर कदम बढ़ा दिये।

बरसात से भीगी सड़कें-पगडंडियां बिलकुल साफ झलक रही थीं। समूचे दिन नहा-नहाकर सड़कों के दोनों ओर के पेड़-पौधे, फूल-फल, घरों की सफेद टीन की छतें दमक रहे थे। उन सब पर करुण बनकर अस्तमित सूर्य की मधुर-सी लाल आभा पड़ रही थी। मुंह, नाक और देह के सभी अंगों में चंचल उत्तेजना जगाने वाली हवाओं में तिरते झीने ठंडे कोहरे और सबसे ऊपर थी, सड़कों की भीगी मिट्टी से निकली हुई उग्र मादकता भरी वह आदिम सोंधी गंध।

प्रकृति के इस विचित्र और उत्तेजनापूर्ण आस्वाद से जयंत का उल्लास भरा सरल और हल्का-सा मन मानो और ज्यादा हल्का होकर बिलकुल ऊपर उड़ जाना चाहता था। हर कदम पर मानो जिंदगी के एक-एक साल की जड़ता शरीर से उतार फेंककर उसे फिर अपने उस बचपन के दायित्वहीन दिनों में लौट जाने की दारुण इच्छा हो आयी। और उस अदम्य इच्छा के साथ-साथ वह जैसे, एक अबोध शिशु की भांति उल्लास से धीमे कदम बढ़ाता, उमंग में कूदता-सा आगे बढ़ गया।

मन की इस अभूतपपूर्व उत्तेजना में कुछ कदम बढ़ाकर जाते ही मानो अचानक उसे जीवन का एक नया सत्य-बोध हुआ और वह बेचैन-सा होकर सिसक उठा। वह मानो बार-बार यही सोचता रहा कि फ्रांसीसी मनीषी रूसो का मानव की दासता-संबंधी वह तत्व, जिसे उसने अपनी पाठ्य-पुस्तक में पहले पढ़ा था और ठीक से समझे बगैर वर्ग में पढ़ाता रहा है, उसे आज ही अपने अंतर में वास्तव में हृदयंगम कर पाया है।

मनुष्य के अतीत की उस खोयी हुई निरंकुश स्वतंत्रता के बारे में जयंत जितना सोचता गया, आज के मनुष्य के चारों ओर घिरी अन्याय-उत्पीड़न की दीवारों के खिलाफ प्रबल क्रांति की आकांक्षा उतनी ही अधिक बलवती होने लगी। अपने हर कदम पर अकारण बाधाओं की दीवारों को चूर-चूरकर फिर उस मानव-सभ्यता के प्रथम प्रभात के मानव-शिशु के युग में आगे बढ़ जाने की उसकी भावना बढ़ती गयी।

जयंत के मानस की उस अधीर चिंता, उत्तेजना के साथ-साथ उसके कदम धीरे-धीरे बड़े अद्भुत ढंग से तेज हो गये। वह उत्तेजित-सा हो गया। उस उत्तेजना के कारण उसके मन का

आवरण खुल-सा गया और पिछले अतीत के जीवन-नाटक के पन्ने एक-एक कर खुलते गये।

पहले उसे याद आयी अंजली की कहानी।

लगभग बीस साल पहले एक दिन किशोर-वय के अबोध प्राणों के आकर्षण और तृप्ति के अनेक क्षणों की क्रीड़ा-संगिनी के रूप में उसने अंजली को पाया था। वही आकर्षण और तृप्ति, जैसा आम तौर पर हुआ करता है। चढ़ते यौवन के साथ-साथ दोनों का यह आकर्षण उग्र और अबाध्य प्रणय में बदल गया था।

परंतु समाज के चिरकालिक, स्थविर, सड़ी-गली रूढ़ियों के विचार से वह प्रणय सामाजिक रीति-सिद्ध नहीं माना गया। क्योंकि, अंजली सात्विक राजगुरु फुकन के परिवार की ब्राह्मण लड़की थी, और जयंत था एक सामान्य कलिता परिवार का लड़का।

इसी कारण समाज की सारी निर्मम, हिंसक एवं क्रूर शक्तियों ने एकजुट होकर जयंत एवं अंजली के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। फलस्वरूप अंजली एक ऐसे आदमी की गृहिणी बनी, जिसके साथ उसके प्राणों का कोई सजीव संबंध न था। आज वह अंजली तीन बच्चों के आदर-यत्न की अवहेलना कर, जयंत के लिए नये ढंग से सफेद ऊन का स्लिप-ओवर बुन रही है।

जिंदगी में पहली बार, अंजली के उस प्रताड़ित, निःसहाय, मूढ़ पति के प्रति जयंत के मन में संवेदना का सागर-सा उमड़ पड़ा। जिंदगी में पहली बार संपूर्ण रूप से नये सिद्धांत के वशीभूत होकर जयंत सोचने लगा था — अंजली उस निरपराध, मूर्ख आदमी से इस तरह निर्मम व्यवहार करके सचमुच बड़ा अन्याय कर रही है और उसके समर्थन में अंजली के पास कोई बड़ा तर्क भी तो नहीं।

जीवन के सारे आकर्षणों को तिलांजलि देकर अंजली को अपने वक्ष में समेट लेने को जयंत सदा प्रस्तुत था। परंतु जयंत के प्राणों की वह एकनिष्ठता अपने प्राणों में अनुभव करने पर भी अंजली नारी-सुलभ दुर्बलता के कारण माता-पिता, आत्मीय-स्वजन के स्नेह और आश्रय को विसर्जित कर एक विपद-शंकुल, अख्यात, गौरवहीन जीवन अपनाने की हिम्मत न कर सकी। और अंजली की उसी दुर्बलता के कारण आज दोनों के जीवन में एक विस्मय एवं दुर्निवार, अतृप्त क्षुधा की दैनिक घटना समाविष्ट हो गयी है।

अंजली की कमजोरी की बात जयंत जितना सोचने लगा, उसके अंतस् में, पहली बार, अंजली के प्रति क्रोध का उत्ताप क्रमशः उतना ही बढ़ता गया। और उसके साथ ही एक सत्य बिजली-सा कौंध गया कि अंजली जैसी दुर्बल प्रकृति की लड़कियों के कारण ही दुनिया में पुरुषों की जिंदगी ज्यादा दुखमय हो उठती है। उनके प्रणय में प्रशंसनीय एकनिष्ठता तो जरूर होती है, यह भी सही है कि वे जिंदगी भर पति के यहां सुख-स्वच्छंदता के बीच रहकर भी यौवन के प्रथम प्रियजन को भूल नहीं पातीं, फिर भी न जाने अपनी प्रकृति की कौन-सी दुर्बोध दुर्बलता के कारण समाज और संसार के विरुद्ध खड़ी होकर यौवन के प्रारंभ में ही विद्रोह के उद्दाम जीवन में कूद नहीं पातीं। दुर्भाग्य से, दुनिया में इन दुर्बल-चित्त लड़कियों की तादाद ही ज्यादा होने के कारण, अतृप्त प्रणय के दुर्वह जीवन की तादाद भी बहुत ज्यादा है।

अंजली की प्रकृति का जितना अधिक विश्लेषण जयंत करने लगा,उसके क्रोध की गर्मी उतनी ही बढ़ती गयी। उस अप्रिय अनुभव से मन को हटा लेने के लिए वह आरती के बारे में सोचने लगा।

आरती उच्च शिक्षाभिमानी है,बी.ए. पास है,नगर के बड़े हाकिम के घर की लड़की है।

कालेज-जीवन में कई साल तक जयंत की सहपाठिनी और संगिनी रही है।

जयंत की तरफ से किसी अतिरिक्त प्रयास के बगैर ही आरती मानो किसी घटनाचक्र की भांति आकर जयंत के जीवन के साथ निबिड़ भाव से घुल-मिल गयी थी।

और उस घनिष्ठता के बल पर आरती आज भी जयंत को और ज्यादा समीप लाने की लगातार कोशिश कर रही है।

कुछ सोचते ही जयंत का मानस आरती के प्रति भी तीव्र अश्रद्धा से बिलकुल दूर हट जाने के लिए अत्यधिक अधीर हो उठा। जिंदगी में अनेक बार ऐसा सोचा था,वैसा ही आज भी उसे लगा,कि आरती के प्रणय में अंजली जैसी कोई सरलता,एकनिष्ठता नहीं थी। बल्कि उसकी जगह वहां एक हीन,स्वार्थपरता की जघन्य मनोवृत्ति छिपी हुई है। ऐसी बात भी नहीं कि जयंत को न पाने पर आरती की जिंदगी रेगिस्तान-सी हो जायेगी और सिर्फ इसी वजह से वह जयंत को इतनी विकलता से चाहती है। आरती जयंत को इस कारण चाहती है कि जयंत का आंखों को लुभाने वाला ऐसा दैहिक सौंदर्य है,सम्मानजनक ऊंचा पद है,और सांसारिक वैभवों और सुख-सुविधाओं वाला सुनिश्चित आर्थिक भविष्य भी है। आरती उस अभिजात वर्ग के परिवार की लड़की है,जो प्रणय के क्षेत्र में भी,और तो और,तुच्छ व्यक्तिगत स्वार्थ और लाभ-हानि की बात तक भूल नहीं पाते। जीवन की जाग्रत स्थिति में भी वैसी लड़की सदा भविष्य के सपने देखती हुई सोचती है कि उसका भावी पति एक ही साथ सौंदर्य में राबर्ट टेलर,ऊंचे पद में आई.सी.एस. और आर्थिक सामर्थ्य में राकफेलर का एकमात्र उत्तराधिकारी हो। बात-बात में वे दांते-बियट्रिस की ज्वलंत प्रेम-कथा का उदाहरण देती हैं। ठौर-कुठौर सभी समय केवल बायरन,शेली और ब्राउनिंग की गंभीर मनस्तत्ववाली प्रेम-कविताओं को दुहराती हैं,लेकिन वास्तव में जीवन के क्षेत्र में,और तो और,प्रेमास्पद के वक्ष में आत्मोत्सर्ग की निबिड़तम तृप्ति के क्षणों में भी ये कम से कम एक आई.सी.एस.,आधुनिक ढंग से सुसज्जित एक ड्राइंग-रूम और कुछ न होने पर एक फिएट गाड़ी के सपने की बात भूल नहीं सकतीं।

आरती की बातें जयंत के मन में जितनी अधिक जगह करने लगीं,जयंत का मन तेज विरक्ति से उतना ही कड़वा हो गया। किसी तरह उस अनुभव से मन को उबारने के लिए वह नये ढंग से वंदना के बारे में सोचने का प्रयास करने लगा।

वंदना...।

वंदना भी एक ऐसे उच्च, अभिजात, जमींदार के घर में, बहुत ज्यादा विलास के अस्वाभाविक घेरे में जनमी लड़की है,जिसकी अतीत में बड़ी शोहरत थी।

परंतु आभिजात्य के इस अस्वाभाविक रूप से शरीर में बहने पर भी अपने उस घेरे के साथ वंदना के प्राणों का कोई सजीव संस्पर्श नहीं है,यह आश्चर्यजनक है।

साथ की और लड़कियों की भांति वंदना सिर्फ दूसरों के अनुकरण में क्लब, घुड़दौड़, गोल्फ, पिकनिक, मोटर चलाने, मार्केटिंग आदि में ही अपना वक्त नहीं गुजारती या सिर्फ अंग्रेज शासक-पत्नी के साथ 'बाल-डांस' और 'एट होम' का 'एटीकेट' सीखने में अपनी सारी शक्ति का अपव्यय नहीं करती।

वंदना का सजीव स्पंदन भरा प्राण, प्रगाढ़ अनुभूति का एक ऐसा स्रोत है, जो उस वर्ग की ज्यादातर लड़कियों में नहीं होता। प्यार क्या है, वास्तव में वह उसे प्राणों की श्रेष्ठतम गहराई से अनुभव करती है। और उस अनुभूति को अधिक मधुर बनाने के लिए उसमें सदा एक अवास्तविक आदर्शवाद का पुट दे देती है।

बीसवीं सदी के उग्र भौतिकवाद के बीच जन्म लेकर भी वंदना अद्‌भुत ढंग से सोचा करती है – जयंत मानो सचमुच उसी परीकथाओं के जमाने का सात समुंदर, तेरह नदियों के उस पार से पक्षिराज घोड़े पर सवार होकर आने वाला राजकुमार है। और वह खुद एक बड़े दैत्य के दुर्ग में कैद बेसुध पड़ी राजकुमारी है। उस परीकथा की भांति जयंत एक दिन सचमुच सोने की छड़ी से छूकर वंदना को फिर जिला देगा। और जिलाकर उस परीकथा की भांति ही घोड़े पर सवार होकर सात समुंदर, तेरह नदियों के उस पार के उस अद्‌भुत नये राज्य में ले जायेगा।

और कुछ न होने पर, वंदना के चरित्र की इसी विशेषता के कारण कुछ दिनों से वंदना के प्रति जयंत के मन में थोड़ी दुर्बलता आ गयी है। और इस दुर्बलता के बंधन में पड़कर वह आजकल अपनी ज्यादातर शामें, वंदना के मां-बाप के सम्मिलित आग्रह से वंदना के ड्राइंग रूम में ही बिता देता है।

मगर आज...?

यह अपूर्व सुंदर, उल्लास-भरी उदासी की शाम ? यह आदिम मारात्मक उत्तेजना ? अंतर के रक्त की हर बूंद को उद्‌भ्रांत करके जाग उठी अधिक नवीन, अधिक तीव्र, अधिक विपुल अनुभव के कारण दुरंत लालसा ! क्या है यह सब ?

जयंत मानो लाचार-सा होकर वंदना के मामले को संपूर्ण नवीन ढंग से तुलना करके देखने लगा। उसने किसी तरह की कुंठा का अनुभव नहीं किया। इस निर्णय के नये प्रकाश में जयंत वंदना के बारे में जितना सोचने लगा, उतना ही उसके मन में एक धारणा बद्धमूल होती गयी कि वंदना के समूचे ड्राइंग रूम के वातावरण में मानो एक जहरीली विराट अवास्तविकता छिपी हुई है।

वे ऊंची-ऊंची स्प्रिंगदार दांभिक आरामकुर्सियां और गद्दे, वे रंग-बिरंगे शेडों से ढंकी बत्तियां, वह ऊंची-सी परम आभिजात्यपूर्ण फर्श पर बिछी कालीन, फूलों के गमलों में सजे विदेशी क्रिसंथिमम, डालिया और जिनिया फूल, इधर-उधर बिखरे वे बाघ, भालू और हिरणों के भद्दे-से सिर, और उनकी सूखी चमड़ियां। दिमाग को कड़वा बनाकर हमेशा बजता रहने वाला शोर भरा फिलिप्स का रेडियो, उस घर के चारों ओर चपरासी और वर्दियां पहने चक्कर

लगाते मूर्ख एवं अकर्मण्य चेहरों वाले नौकर-बेयरे ! वंदना के पीछ-पीछे चलने वाला वह डरावना अलसेशियन कुत्ता ! जयंत उस अद्‌भुत कृत्रिमतापूर्ण वातावरण के बारे में जितना सोचने लगा, उसके प्राणों में उसके प्रति उतनी ही तेज वितृष्णा प्रबल रूप से जाग उठी। और आगे चलकर वह इस दृढ़ निश्चय पर पहुंचा कि वंदना के ड्राइंगरूम जैसे एक निष्प्राण, नीरस, वंध्या वातावरण के अंदर रहकर, आरामकुर्सियों पर अधसोये, या अधजगे रहकर, टेनिसन की कविता के 'लोटस ईटरों' की भांति सिर्फ दूर से जीवन के कोलाहल और कलरव के मधुर संगीत का कानों से केवल उपभोग कर सकते हैं। वास्तव में उनके अंदर जगे रहकर आज जैसी उमंग-भरी शाम का, जीवन की किसी तीव्र अनुभूति को अपरिसीम रूप से अनुभव नहीं किया जा सकता।

आगे बढ़ते हर कदम के साथ जयंत के मन में यह निर्णय जितना दृढ़ होता गया, वंदना के ड्राइंगरूम की ओर उसके बढ़ते कदम क्रमशः उतने ही बोझिल होते गये। और क्षण भर में उस बोझिलपन में कैद होकर संपूर्ण रूप से दिशाहीन व्यक्ति की भांति, वह मार्ग में बिलकुल स्तब्ध-सा खड़ा गया। वंदना के अपने व्यक्तित्व का आकर्षण, वंदना के पत्र के उस प्रलोभन भरे संकेत का आकर्षण, दोनों मिलकर भी जयंत को फिर वंदना के घर की ओर गतिशील न कर सके।

धान के खेतों के उस पार ही माल्कि की वह छोटी-सी सुंदर, कम ऊंची पहाड़ी थी। उस पर हाल ही में बसे असमिया लोगों की वह छोटी-सी नयी बस्ती। उसी के बीच सामने ही एक फुलवारी सहित सुंदर ढंग से सजा हुआ अंग्रेजी 'ई' की आकृति का वह टीन की छत वाला बंगला।

संपूर्ण रूप से अनिश्चित गति से धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए जयंत की दृष्टि जैसे ही उस घर पर पड़ी, वैसे ही अकस्मात जैसे उसने किसी अति आवश्यक वस्तु का आविष्कार कर डाला हो, इस स्वस्ति के आनंद से वह नीचे की सड़क से ही बिलकुल चंचल हो उठा। साथ ही, उसके जो कदम कुछ क्षण पहले अद्‌भुत रूप से बोझिल होकर रुक गये थे, वे फिर संपूर्ण रूप से सचल होकर, उस घर की ओर उमंग से भरकर चल पड़े।

जयंत के पुराने सहपाठी हेमंत की बहन चित्रा एक अत्यंत जटिल चरित्र की बड़ी विचित्र लड़की है।

हृदय में प्रबल आवेग की भंवरें जाग उठने पर भी चित्रा जैसी लड़की अपने चेहरे की अभिव्यक्ति में जहां तक हो सके उन्हें प्रकट न करने की जी-जान से कोशिश करती है और उन्हें प्रकट करना बहुत बड़ी दुर्बलता समझती है।

कालेज जाने के पहले चित्रा प्रायः कम से कम दो घंटे सदा प्रसाधन की मेज पर रहती। हो सके तो घंटे-घंटे पर रंग बदल-बदलकर कपड़ा पहनना चाहती। कदम बढ़ाते समय हर कदम नाप-तौलकर जमीन पर रखती। अगर राह में किसी को अपनी ओर देखते हुए पाती तो

आत्म-प्रसाद को जरा भी छिपाये बगैर हंस पड़ती। फिर भी उस बारे में कोई कुछ कहे तो चित्रा प्रचंड विरोध करती और कहती – पोशाक-पहनावे के बारे में वह बिलकुल ध्यान नहीं देती और किसी को ज्यादा ध्यान देते देखकर उसे भी अच्छा नहीं मानती।

दूसरों का न सही, पर जयंत के सान्निध्य का उपयोग चित्रा बड़ी तृप्ति से किया करती। गलती से अगर किसी दिन वह न जाता तो चित्रा दसियों दिन तक रूठकर बातचीत बंद कर देती। और उसके जाते ही कुछ समझा देने का बहाना बनाकर अपने पढ़ने के कमरे में बुला ले जाती और घंटे भर ज्यादा बिठा रखती। जयंत पर किस वक्त कौन-सी पोशाक ज्यादा फबती है, खुद आगे बढ़कर सुझाव देती। और अपने बारे में भी जयंत से वह चतुराई से बात निकाल लेती। जयंत के साथ सिनेमा देखने जाती, तो जहां तक होता चित्रा मां और भाभी का साथ छोड़, सदा जयंत के पास आकर बैठने का प्रयास करती। और फिल्म में कोई उत्तेजक चीज नजर आते ही जयंत की आंखों में इस तरीके से देखकर फिर शर्म से सिर झुका लेती मानो गलती से देखा है। जयंत अगर सिनेमा देखने नहीं जाना चाहता तो उसके साथ गोल्फ लिंक की चांदनी देखने निकलती। और चांदनी में बहुत देर तक जयंत के शरीर से सटी रहकर चक्कर लगाते-लगाते थककर कहीं बैठ जाती और हमेशा दर्द करता अपना सिर जयंत की गोद में निश्चेष्ट होकर डाल देती।

इतने पर भी अगर जयंत कभी अपनी तरफ से कुछ उमंग दिखाता तो चित्रा प्रचंड रूप से बाधा देती और कह देती कि किसी भी पुरुष के प्रति चित्रा के प्राणों में कण भर भी आसक्ति नहीं, और आसक्ति का होना वह एक अमार्जनीय दुर्बलता समझती।

किसी दिन कोई विरोध न कर सब कुछ सहते रहकर भी एक दिन अचानक अद्‌भुत रूप से विरोध कर बैठने की भावना जयंत के मन में बहुत ज्यादा बढ़ गयी। उस दिन चित्रा ने जैसे ही वह बात कही, बहुत ही कुटिल निर्मम हंसी हंसकर बड़े रूखे ढंग से वह बोल उठा कि किसी के प्रति किसी के प्राणों की आसक्ति का होना दुर्बलता है या नहीं, वह ठीक से नहीं बता सकता। लेकिन किसी के प्रति किसी के प्राणों में कोई आसक्ति रहे तो उससे हमेशा इनकार करते रहने का प्रयास करना भी वह बहुत बड़ी दुर्बलता मानता है।

अचानक जयंत के इतने निर्मम और प्रत्यक्ष आक्रमण से चित्रा उस दिन आकाश में बिखरे तारे की तरह बिखर गयी। और प्रचंड लज्जा, अपमान और क्रोध के ताप को किसी तरह संभालकर अपनी बात का पुनः समर्थन करने की कोशिश करते हुई बोली – "सचमुच, किसी पुरुष के प्रति चित्रा के अंतस् में कोई आसक्ति नहीं है। और जयंत अगर स्वयं यह सोचता है कि उसके प्रति कोई आसक्ति है, तो उसने बड़ी गलती की है।"

यह बात कहते ही कष्ट, बेबसी और गुस्से के मारे वह दुर्बल-सी ऐसे कांपने लगी कि उसके चेहरे और शरीर की ओर नजर डालकर मन में उसके प्रति बड़ी सहानुभूति जाग उठी। विशुद्ध सद्‌भावना से कुछ और पास आकर बड़े सरल भाव से उसने चित्रा को अपनी छाती

से लगा लिया। और कुछ गहरे स्नेहसिक्त स्वर में बोला कि जीवन को वास्तव में जीवन के रूप में अपनाने में कहीं कोई दुर्बलता नहीं है, बल्कि ऐसा न कर पाने के कारण उसे इनकार करने से ही तरह-तरह की दुर्बलताएं आकर दबोच लेती हैं।

परंतु जयंत के सारे सद्प्रयासों का बिलकुल उलटा नतीजा ही सामने आया। जीवन के वास्तविक सत्य को मानने को चित्रा तैयार न हुई, बल्कि पराजय से और ज्यादा मर्माहत-सी होकर अद्भुत उन्माद और अधीरता से जयंत के बाहु-बंधन से अपने को बलपूर्वक अलग कर लिया और एक तरह के भद्दे असंयम से उसने कह डाला – "मेरे प्रति तुम्हारा यह आचरण सचमुच बड़ा अनुचित हुआ है। मैं तुम्हें पसंद तो नहीं ही करती, बल्कि नफरत ही करती हूं।"

उसके बाद और कोई बात कहना या कुछ करना समीचीन नहीं होगा, ऐसा समझकर जयंत अधीरता के कारण कुछ विकृत-से हुए चित्रा के मुंह की ओर एकटक देखता रहा। और उसी तरह देखते रहकर चित्रा को अपने आप स्वस्थ हो जाने के लिए छोड़कर जुबान से कुछ भी कहे बगैर वह उठकर धीरे-धीरे कदम बढ़ाता वहां से चला गया।

उस दिन के बाद से अब तक पूरे दो महीने में कभी गलती से भी उसने चित्रा के घर की ओर मुंह नहीं किया था। हमेशा कम से कम दो बार इसी राह से वंदना के यहां जाने पर भी उसने जानबूझकर ही कभी इस घर की ओर नजर नहीं डाली थी। इन दो महीनों में वह सिर्फ वंदना के यहां ही जाता रहा है। उसे साथ ले घूमने जाता, और टहलते हुए कभी चित्रा से सामना होने पर उसे बिलकुल अनदेखी करके कतराकर निकल जाता, क्योंकि जयंत यह बात अच्छी तरह जानता था कि चित्रा जैसी लड़की को अगर ईर्ष्या से पराभूत न किया जा सके तो और किसी ढंग से वह पराभूत नहीं हो सकती। और सबको यह पता है कि चित्रा वंदना से जलती है। जिंदगी के हर विषय में चित्रा वंदना से होड़ ठान लेती। और जब कभी अपने को हारती-सी देखती, तभी कह बैठती – "यह वंदना एरिस्टोक्रेसी यानी अभिजात तंत्र की एक परफेक्ट टाइप है – एक बड़ी भारी स्नॉब है – होपलेस फ्लर्ट है।"

पूरे दो महीनों बाद, मन की इस अस्थिर उत्तेजना के बीच अचानक चित्रा के घर पर नजर पड़ते ही जयंत के मानस में एक अद्भुत-सी विजय की लालसा बड़ी तीव्रता के साथ जाग उठी। इतने दिन की परीक्षा का नतीजा जानने की उत्सुकता के आकर्षण ने अनजाने में उसके पैरों को उसी घर की ओर मोड़ दिया।

माल्कि का वह सीधा खड़ा पहाड़! एक ही सांस में जयंत उस पर चढ़ गया। बाहर से देखने पर उस घर में किसी प्राणी की आहट तक नजर नहीं आ रही थी। बड़ी उमंग में भरा हुआ जयंत बरामदे में जा खड़ा हुआ और अंदर से बंद दरवाजे पर दस्तक देता हुआ पुकारने लगा –

"हेमंत! ओ हेमंत!"

कुछ क्षण जयंत की बोली की झंकार यों ही मानो बाहर की हवा में घुलकर मिटती-सी

जान पड़ी। आवाज ने अंदर जाकर किसी को सूचना दी है, इसका कोई आभास तक नहीं मिला।

फिर भी जयंत जरा-भी निरुत्साहित हुए बगैर, उसी तरह आग्रह से पुकारता रहा – "हेमंत ! ओ हेमंत !"

अब कुछ देर बाद घर के अंदर एक जोड़ी चप्पलों के घिसटते आने की आवाज आयी। उसके साथ ही किसी ने वहां आकर अंदर से स्विच दबा, बत्ती जला दी। क्षण भर में दरवाजे खोल, बाहर झांक कर देखते ही चेहरे पर एक अद्भुत आग्रह की मुस्कान लिये चित्रा ने कहा– "ओ आप ?"

किसी आमंत्रण के बगैर ही जयंत ने उमंग-भरे अपने शरीर को अंदर कर लिया और चित्रा की आंखों में आंखें डालकर प्राणस्पर्शी हंसी हंसकर बोला – "हां, हां, मैं ही हूं। मेरा प्रेत है, ऐसा समझकर डर के मारे बिलकुल सहम तो नहीं गयीं ?"

जयंत के उस क्षण भर के सान्निध्य से मानो चित्रा के आवेग की मात्रा काफी बढ़ गयी। अस्थिरता के साथ जयंत के चेहरे की ओर देखती हुई बरामदे की मेज का किनारा पकड़, बड़ी खूबसूरती से खड़ी हो, चेहरे की हंसी को बड़ी आह्वानपूर्ण बनाकर उसने कहा – "न सहमने पर भी मन ही मन कुछ विस्मित जरूर हुई हूं। इस बरसात के दिन चारों ओर की सड़कें गंदगी-कीचड़ से भरी हुई हैं। सोचती हूं कि ऐसे भद्दे मौसम में आज दो महीने बाद आपको इधर ऐसे अजीब ढंग से भला कौन खींचकर ले आया ?"

जयंत ने और भी उमंग में भरकर हाथ के रेनकोट और टोप को उसी मेज पर रख दिया और हालांकि चेहरे पर जरा भी पसीना नहीं आया था, फिर भी जेब से सुगंधित रूमाल निकालकर दो-तीन बार चेहरे को पोंछ आंख और चेहरे की मुस्कान को अद्भुत ढंग से जीवंत बना लिया। बोला – "अचरज जैसा लगने पर भी, चित्रा, यह वीभत्स मौसम ही आज मुझे तुम्हारे पास खींच लाया है। घर के अंदर बैठी रहकर हो सकता है तुम इसे वीभत्स कहो ! हो सकता है कि तुम्हारे ही जैसे और कितने ही लोग इस मौसम को वीभत्स कहें। लेकिन मैं तो आज उसी के उन्माद से मानो कस्तूरीमृग की भांति बावला होकर पूरी शाम कहीं भी शांति नहीं पा सका हूं।"

जयंत की बातों के नशे से मानो चित्रा की खुशी की मात्रा और ज्यादा बढ़ गयी। और उस पुलक-प्रवाह में मानो घर के कुछ और भीतर आकर भीतरी दरवाजे का परदा अपने शरीर से लपेट, चेहरे की हंसी को और ज्यादा सौंदर्य-मंडित कर उसने कहा – "तो फिर मैं बड़े अफसोस से आपसे यह कहने को लाचार हूं कि आप ने आज बड़े असमय में इस ऊंची पहाड़ी को लांघकर शांति पाने के लिए यहां आने की तकलीफ की। अशांति की यंत्रणा के मारे मैं खुद जर्जर-सी होकर इस बात का जरा भी अंदाजा नहीं लगा पा रही हूं कि मैं कहां जाऊं। आज सप्ताह भर हो गया, बड़े भैया भाभी को उनके मायके तेजपुर छोड़ने के लिए गये हैं।

पिछले तीन दिनों से इनफ्लुएंजा से मां बिस्तर पर पड़ी है । मैं सिर्फ आपकी आवाज सुनकर दाल की बटलोई उतारकर रसोइघर से चली आ रही हूं ।"

इसके लगभग पंद्रह मिनट बाद...

कुछ क्षण चित्रा की मां का समाचार लेकर, नेपाली लड़की को रसोईघर से बुलवाकर, पिंडोजेन घिसकर बुढ़िया की कमर में लगाकर और एक ही सांस में सर्दी-बुखार की पचासों दवाओं की व्यवस्था बताकर जयंत नयी दोस्ती का संबंध जोड़ने के विचार से चित्रा के साथ हंसता-बोलता, ठिठोली करता रसोईघर में आ गया और खुद कहीं से एक मोढ़ा ढूंढ़कर बैठ गया । उसने घर में चारों ओर एक बार बड़े ध्यान से नजर दौड़ायी । उसके सामने कोयले के धधकते अंगारों वाले दो चूल्हे जल रहे थे । पास ही दाल और भात की दो बटलोइयां रखी थीं । उसी के पास एक खुली थाली में रोहू मछली के तले हुए कुछ टुकड़े, और बेसन लगाकर तले हुए बैंगन के कुछ टुकड़े पड़े थे ।

उसके पैरों के पास ही एक छलनी में बंद गोभी का आधा कटा टुकड़ा, मटर की कुछ छीमियां, चार-पांच आलू और प्याज रखे हुए थे और उससे कुछ हटकर एक सिल पर अभी-अभी पीसे कुछ मसाले । सुस्पष्ट अधीरता से भरा हुआ जयंत चारों ओर के संपूर्ण नये और अनजाने इस परिवेश को बड़े आग्रह से देखता रहा । तली मछली, तला हुआ बैंगन, बन चुकी दाल, पिसे मसाले, जलते हुए अंगारे – इन सबकी मिली-जुली गंध ने उसकी अत्यंत उत्तेजित अनुभूतियों को मानो और किसी नयी आदिम उत्तेजना से भी ज्यादा मथ डाला ।

उसी उत्तेजना में जयंत अपने मोढ़े के साथ चित्रा के बिलकुल समीप आ गया । चित्रा को बड़े ध्यान से गोभी के पत्तों को काटते देख, खुद भी छलनी में से दो-चार मटर की फलियां उठा, उन्हें चबाता हुआ अपने स्वर को काफी कोमल बनाकर उसने पूछा — "चित्रा, उस दिन के बाद तुम फिर मुझे आज इस तरह यहां देख, कुछ विस्मित-सी हुई हो न ?"

चित्रा ने पहले-पहल ऐसा भाव दिखाया कि उसने जयंत की बात सुनी ही नहीं और अपने काम में जुटी रही । मगर ज्यादा देर तक वैसा नहीं कर सकी । एक बार अचानक जयंत की आंखों में आंखें डालकर, बड़ी प्यारी मुस्कान बिखेरती हुई कह उठी – "विस्मित होने के काफी कारण हैं, इसलिए थोड़ा विस्मित नहीं हुई, ऐसी बात भी नहीं है ।"

जयंत आवेग के मारे फिर मोढ़े के साथ ही चित्रा के और ज्यादा नजदीक चला गया । और पहले से भी ज्यादा तृप्ति से मुट्ठी भर मटर अपने मुंह में डाल, होंठों पर हंसी खिलाते हुए बोला – "परंतु तुम अगर सोचकर देखो, तो उसमें विस्मित होने जैसा कुछ भी नहीं है । आदमी विभिन्न कारणों से कभी-कभी अचानक कोई बड़ी गलती कर डालता है । मेरे विचार से उस गलती के लिए गलती करने वाले को हमेशा के लिए अलग न रखकर उसे गलती सुधारने का मौका देना ज्यादा अच्छा होता है ।"

कटी हुई गोभी की थाली सरकाते हुए कुछ आलू अपने पास खिसकाकर, जयंत की

आंखों में आंखें डाल, बड़ी अर्थपूर्ण तीखी हंसी हंसकर चित्रा ने कहा – "परंतु वह गलती करने वाली उस दिन सिर्फ मैं ही थी, आपने भला यह बात इतनी आसानी से कैसे मान ली ?"

चित्रा आलू के छिलके उतार रही थी, जयंत भी हाथों से मटर के दाने रखकर कुछ आलुओं को यों ही नचाता हुआ, चित्रा की हंसी का समुचित जवाब अपनी आंखों से देता हुआ बोला, "चित्रा, उस दिन गलती सिर्फ तुम्हीं ने की थी, ऐसा मैंने कभी नहीं माना है और इसी कारण नहीं माना है कि गलती सिर्फ तुम्हारी नहीं थी, सिर्फ मेरी भी नहीं थी। गलती हम दोनों की बराबर प्रतिकूल परिस्थिति की थी।"

जयंत की बातें चित्रा की समझ में पूरी तरह से न आने पर भी वह समझने का भाव दिखाती हुई, जयंत की आंखों में बड़े आवेग से देखती, हंसती, धीरे-धीरे उठ खड़ी हुई और कुछ दूसरी तरह की व्यस्तता के साथ कुछ-कुछ करने के बाद कटी हुई गोभी और आलू को कड़ाही में जोर से डालकर, जल्दी-जल्दी उसे चलाती हुई बोली – "बातों का यह अजीब घुमाव-फिराव आपका बस अपना ही है। सुनते रहने पर पहले तो लगता है कि बात साफ समझ में आ रही है, परंतु बाद में कुछ भी समझ में नहीं आता।"

जयंत मानो बड़ी उमंग में आत्मश्लाघा की लंबी-सी हंसी हंसता हुआ, मोढ़े पर से उठ खड़ा हुआ। वह धीरे-धीरे चूल्हे की तरफ बढ़ गया और सामने की ओर की खिड़की खोल दी। अचानक बाहर प्रचंड आंधी का आसार देखकर जरा तन्मयता के स्वर में वह कहने लगा, "सिर्फ बातों में ही नहीं, चित्रा, कामों में भी अजीब घुमाव-फिराव संपूर्ण रूप से मेरा निजी है। आज अगर तुम्हें यह पता होता कि मैं किसका विकल आमंत्रण ठुकराकर, इस तरह बिना बुलाये खुद आगे बढ़कर तुम्हारे पास आया हूं तो शायद मेरे प्रति तुम्हारे कौतूहल की मात्रा कुछ और बढ़ जाती।"

जयंत का संकेत संपूर्ण रूप से, सुंदर ढंग से समझ जाने पर भी बिलकुल नासमझ की भांति, सुंदर-सी प्रश्न-सूचक भंगिमा से चित्रा जयंत के चेहरे की ओर बड़े कौतुक से देखती रही।

उसकी उस दृष्टि के आकर्षण से मानो खिंचकर जयंत आगे बढ़ आया। अलाव की आग की गर्मी से चित्रा के लाल चेहरे और उसके ललाट पर बिखरे बालों की ओर बड़ी लालच से देखता हुआ मानो किसी वेदना का अभिनय कर रहा हो, ऐसे लहजे में जयंत ने कहा – "चित्रा, मैं आज जिसका आमंत्रण ठुकराकर तुम्हारे यहां आया हूं, आज जैसी शाम में तुम्हारी तरह वह मुझे सिर्फ कड़ाही में भुनती गोभी और आलू देखने के लिए खड़ा नहीं कर रखती। ऐसा भी हो सकता था कि वह ठीक इसी क्षण एक ही सेटी पर मुझसे सटी बैठी रेडियो के बजते समन्वित संगीत के साथ ही अपने हाथ की बनायी कोको का एक कप भी मेरे हाथ में थमा देती।"

अत्यधिक आवेग के उथल-पुथल में क्या जवाब दे, यह तय न कर पाने के कारण चित्रा सिर्फ कड़ाही की लाल-सी हो गयी सब्जी को जल्दी-जल्दी चलाती रही। फिर अचानक उसमें

थोड़ा पानी डाल, एक ढक्कन से ढंककर, धीरे-धीरे हाथ धोकर उसी खिड़की के पास आ खड़ी हुई, जिसे कुछ देर पहले जयंत ने खोला था । फिर बाहर आंधी के झकोरों से असहाय-से हिलते चीड़ के पेड़ों की ओर बड़ी तृप्ति से देखती हुई, प्राणों के स्पष्ट आनंद में भरकर कहती गयी – "इसी कारण तो सोच रही हूं कि आज सवेरे एक आदमी ने बिस्तर से जमीन पर कदम रखते समय न जाने कौन-सी अशुभ चीज देखी थी । वंदना की बात तो खैर छोड़ देती हूं, फिर भी कहां वह आरामदेह सोफों से सजा ड्राइंगरूम, लाल मद्धिम प्रकाश वाली बत्तियां, रेडियो का संगीत, अभिजात अमीरों के आनंद के न जाने और कितने सारे उपकरण, और कहां यह लकड़ी-लट्ठे, चावल-दाल, साग-भाजी आदि से भरा कूड़े-करकट जैसा फैला-बिखरा गंदा-सा रसोईघर ! दोनों की तुलना कर मुझे खुद कुछ घिन आने लगी है ।"

चित्रा जब चुटकी लेती हुई जवाब दे रही थी, तब जयंत भावनाओं के प्रबल आवेग से चित्रा के समीप जाकर, उसी के साथ एक ही खिड़की के चौखटे का सहारा ले खड़ा हो गया और विकलता से बाहर के अंधेरे की ओर नजर डालकर चित्रा की नजरों के अनुसरण का जी-जान से प्रयास करता हुआ बोला – "चित्रा, तब तो ऐसा लगता है कि मेरे प्राणों की अद्‌भुत विकलता को तुम जरा भी समझ नहीं पायीं । अगर मैं आज किसी वजह से वंदना के यहां नहीं जा सका, तो अमीरी और आभिजात्य से भरा वंदना का ड्राइंगरूम ही उसका एकमात्र कारण है ।"

जयंत कुछ क्षण रुका और बाहर की उत्तेजक आंधी के नजारे की ओर बड़े आवेग से देखता हुआ, चित्रा का ध्यान उसी तरफ खींचने की कोशिश में और ज्यादा भावुकता-भरे लहजे में कहता गया – "आज जैसी विपुल उन्माद भरी आंधी से काला आकाश, हवाओं से उखड़कर गिरते असहाय-से पेड़ों का अद्‌भुत सौंदर्य, उनकी पत्तियों के बीच से हवाओं में तिरता-सा समूची प्रकृति का वेदना-भरा मार्मिक आकर्षण... मुझे पक्का विश्वास है कि वंदना के ड्राइंगरूम जैसे एक निष्प्राण बनावटी घेरे में, ऐसी उद्दाम, मधुमय, पुलक भरी शाम का उपभोग भी पूरी तृप्ति के साथ नहीं किया जा सकता ।"

वंदना के ड्राइंगरूम की निंदा, बाहर की प्रकृति की मादकता और जयंत की बातों की मस्ती से चित्रा के अंगों में अधीरता की मात्रा लबालब भर गयी । उसने अपने बाहर निकाले हुए सिर को फिर अंदर लाकर खिड़की के चौखटे के एक सिरे पर बड़ी विकलता से टिका दिया और जयंत की आंखों में आंखें डाल बुभुक्षित-सी हंस पड़ी । चित्रा के रूखे बालों के बीच कर्मक्लांत चेहरे पर उभर आयी बुभुक्षा की भावना को बाहर बार-बार कौंधती बिजलियों के प्रकाश ने और असहनीय रूप से उत्तेजक बना डाला ।

इस उत्तेजना में जयंत मानो क्षण भर में दुविधा, द्वंद्व, संकोच सब कुछ भूलकर, चित्रा से और ज्यादा सटकर उसके माथे पर बिखरे बालों को प्यार से अपने हाथों से हटाकर अचानक उमंग में कहने लगा – "चित्रा, आज तुम सचमुच अपूर्व सुंदरी हो गयी हो ।"

जयंत के काम या बातों से कोई नाराजगी दिखाये बगैर,पहले से कुछ ज्यादा ही विह्वलता से सिर को खिड़की के चौखट पर टिकाये,पर तृप्ति की ईर्ष्याभरी हंसी हंसती हुई चित्रा बोल उठी – "शायद वंदना के यहां जाने पर भी आप बिलकुल यही बात कहते ।"

जयंत मानो उमंग में टूटता-सा अपने बेचैन शरीर को चित्रा के शरीर की गरमाहट पर टिकाकर, खिड़की के चौखट पर बड़े लोभनीय ढंग से पड़े उसके सिर को दोनों हाथों से उठा, प्राणों के सारे संचित आवेग को शब्दों में उंड़ेलते हुए कहने लगा – "चित्रा,मुझे बिला-वजह छकाने के लिए ही तुम यह झूठी बात कह रही हो । तुम खुद जानती हो,आज अगर मैं वंदना के यहां जाता,तो भी उसे कभी तुम्हारे जैसे बिलकुल नये परिवेश में,इस संपूर्ण असाधारण भूमिका में नहीं पा सकता था । तुम सचमुच विश्वास करो कि आग की गरमी से लाल हो उठे तुम्हारे थके चेहरे,जरा-से पसीने से भीगे तुम्हारे कपाल के इन नन्हें-नन्हें रूखे बालों में,तुम्हारी निराभरण,मुक्त,उदार देह में आज मैं एक असंयत रूप की मादकता देख रहा हूं ।"

जयंत की बातों की उत्तेजना के प्रवाह में,उसके दोनों हाथों के बीच भी चित्रा अपने सिर को किसी तरह स्थिर नहीं रख पा रही थी । उसने जयंत की ओर देख ईर्ष्याभरी और कामनाओं से जलती हुई-सी तीखी हंसी हंसकर कहा – "जानती हूं,नारी के सौंदर्य-वर्णन में आप सदैव सिद्धहस्त रहे हैं । सुनने में मोहक,लच्छेदार सुंदर-सुंदर शब्दोंवाली,किताबों से कंठस्थ किये जैसी,बातें आप बोल जा सकते हैं । मगर मुझे तो डर लगता है कि आप ये ही बातें इसके पहले कहीं और भी न कह आये हों ।"

सारे संकोच छोड़,चित्रा का सिर तथा उसकी समूची देह को और ज्यादा विकलता के साथ अपने से सटाकर मानो प्राणों का सारा आवेग उंड़ेलते हुए जयंत ने कहा – "चित्रा,किसी नारी के सामने उसके रूप का बखान मैंने कभी नहीं किया है,अगर ऐसा तुमसे कहूं,तो वह सचमुच बहुत बड़ी प्रवंचना होगी । उतनी बड़ी प्रवंचना और छल करने लायक कपट और नपुंसकता मेरे भीतर नहीं है । पर तुम शायद इस बात पर अनायास यकीन कर सकती हो कि जिंदगी में मैंने किसी नारी को खुश करने के इरादे से उसके रूप की ऐसी प्रशंसा नहीं की जो उसका प्राप्य न हो या जो सच न हो ।"

आत्मसंवरण में संपूर्ण रूप से असमर्थ होकर चित्रा ने अपना सिर जयंत की छाती पर रख,उसकी कमीज की ओट में अपना चेहरा छिपाने का व्यर्थ प्रयास करते हुए,अपने कंठस्वर को आवेग से गंभीर बनाते हुए कहा – "आपकी बातों में सचमुच बड़ी मादकता है । अविश्वास करने के लिए पहले से हजार कोशिश करने पर भी,अब इन बातों पर,इन्हें सुनकर,अविश्वास करने की जरा भी तबीयत नहीं होती ।"

संपूर्ण रूप से असंयत एवं प्रलुब्ध हो उठे अपने मन को जयंत अब किसी भी प्रकार से संयत नहीं रख सका । उसकी बुभुक्षा भरी देह के आलिंगन में चित्रा की प्यासी देह क्षण भर में बिलकुल छिप-सी गयी ।

जयंत के दृढ़ बाहु-बंधन से अपने शरीर को धीरे-धीरे अलग कर गहरी थकावट से पहले की भांति अपने सिर को चित्रा ने खिड़की के चौखटे से टिका दिया और आकाश की छाती पर बेचैन-से चक्कर काटते आंधी के बादलों की तरफ देर तक एकटक देखती रही। उसे देख जयंत ने फिर गहरी आत्मीयता के साथ,चित्रा के शरीर से सटकर बड़े आदर से पूछा – "चित्रा, इन बादलों को देखकर भला तुम इतनी भावुक होकर क्या सोचने लगी हो ?"

चित्रा बिलकुल हिली-डुली नहीं, हिलने-डुलने का कोई उपयोग भी नहीं दिखाया। आकाश के काले बादलों की छाती पर बिजलियों के सफेद प्रकाश की ओर कुछ क्षण एकटक देखती रही। फिर अचानक मुड़कर जयंत की आंखों में देखती हुई एक क्षीण-सी मुरझायी हंसी हंसकर बोली – "कोई और बड़ी बात नहीं सोच रही हूं। सोच सिर्फ यही रही हूं कि आप आखिर हैं क्या ? स्वयं ईश्वर हैं या किसी बड़े शैतान के अवतार हैं ?"

जयंत चित्रा के पास से क्षण भर अलग हट गया। उसने दिल खोलकर तृप्ति का ठहाका लगाया। फिर अपने कोट को,जिसे उसने उतार दिया था, खोज-ढूंढकर फिर से पहन लिया। साथ ही वहां से विदा होने का व्यस्ततापूर्ण आयोजन कर लिया। फिर अचानक चित्रा के बिलकुल पास चला गया और थकावट के कारण उसके चेहरे पर बिखरे बालों को प्यार से हटाकर, भाषण देने के लहजे में संपूर्ण उल्लास की भंगिमा में बोल उठा – "चित्रा, तुम, मैं, संसार का कोई आदमी – हम न ईश्वर के अवतार हैं और न भूत-प्रेत या शैतान के। हम सभी शुद्ध रक्त-मांस के साधारण मिट्टी के पुतले भर हैं। और इसी कारण हमारी बातचीत,कार्यकलाप सभी हमेशा मिट्टी के पुतलों जैसे ही होते हैं। हम लोग गलती से या बिना समझे, अकारण उसे ज्यादा जटिल बनाकर अपने जीवन के दुख-कष्ट,संताप और उत्पीड़न की मात्रा ही सिर्फ बढ़ा देते हैं।"

जयंत की बातें खत्म होते ही चित्रा ने खिड़की के चौखटे से अपने शरीर को किसी तरह उठाकर स्वाभाविक रूप से चलने की कोशिश की और चुपचाप जाकर रसोईघर के दरवाजे पर खड़ी हो गयी। जयंत ने और कुछ कहे बगैर गहरी आतंरिकता से उसके चेहरे की ओर देखा और उस आंधी के बीच ही तेजी से रसोईघर से निकल पड़ा।

कुछ ही क्षणों में बरसात का पानी जयंत के शरीर के बरसाती कोट और टोप के किनारे से बहकर झरने की धारा जैसा उसके चेहरे पर से बहने लगा। ठोकरें लगने के कारण बार-बार कीचड़-पानी से तर होकर उसकी पैंट का निचला हिस्सा पैरों से बिलकुल सट गया। यहां तक कि मजबूत जूते की सीवन के बीच से भी पानी घुसकर जुराबों के नीचे जमा हो गया। फिर भी उन पर जरा भी ध्यान दिये बिना जयंत उसी उमंग में अपने बोर्डिंग की ओर चल पड़ा। लगता था,उसके अंग-अंग,नस-नस को अधीर कर उसमें अभूतपूर्व आनंद का उदात्त जयगान उमड़ा पड़ रहा है। मानो शरीर के कण-कण को विद्रोहमय बनाकर अपरिसीम यौवन का तुमुल शंखनाद गूंज रहा है।

इस अधीर पुलक के उद्दीपन में जयंत ने अपने शरीर पर से सारा संयम खो दिया और आंधी तथा वर्षा की छाती को चीरता हुआ एक ही गति से आगे बढ़ता रहा। हर कदम पर पहले की अपेक्षा ज्यादा आवेग में आकर वह सोचता रहा मानो वह खुद ही एक आंधी है। उस आंधी का ही मूर्त-रूप है। विद्रोह के ज्वलंत प्राण मानो इसी आंधी की छाती में छिपे हैं। एक दिन वह खुद ही इसी आंधी की भांति धरती के सारे बाधा-बंधन, उत्पीड़न-निष्पेषण, तोड़ मरोड़, चूर-चूरकर उड़ा ले जायेगा। उसके बदले संपूर्ण नवीन मानव की, संपूर्ण रूप से नवीन संसार की सर्जना करेगा। सृष्टि के आदिम प्रभात में समुद्र के वक्ष से अपने-आप उद्वेलित लहरों की भांति मानव वहां होगा – चिर मुक्त, चिर स्वतंत्र, चिर निष्कलंक।

धूप-छांह

सैयद अब्दुल मलिक

विदा देने के बाद भी उसे जाने में संकोच करते देख और अपने चेहरे पर टिकी उसकी निगाहों में आशंका लक्ष्य करके अमृत भी एक पल ठहर गया, फिर बोला – "किसी तरह की फिक्र करने की बात नहीं, अगले हफ्ते अपने बच्चे को घर ले जा सकोगी। वह बिलकुल चंगा हो गया है।"

"ठीक है, सर!" आंखों की श्रद्धा को अमृत के पांवों पर उंड़ेलकर एक बार प्रणाम करके वह धीरे-धीरे कंपाउंड के बाहर हो गयी।

यों ही कुछ क्षण अमृत उस महिला की ओर देखता रहा। सिगरेट खत्म-सी हो गयी थी। उसने एक और सिगरेट जलायी। किसी वजह से अमृत का मन कुछ हल्का-सा लगा। लड़के के बचने की आशा न थी, मगर अब वह चंगा हो रहा है।

दुखिया विधवा का इकलौता बेटा। उसके जीवन की सारी आशाओं का केंद्र।

अमृत को लगा कि उसने मां-बेटे दोनों को नयी जिंदगी दी है।

घड़ी की ओर नजर डाली – पांच बज गये थे।

अमृत ने पश्चिम के आसमान की ओर देखा, खुला और साफ आसमान, सूरज निस्तेज-सा हो गया था। अप्रैल महीने की ऐसी शामें कभी-कभी बड़ी अच्छी लगती हैं। अपनी टाई की गांठ को ऐसे ही एक बार छूकर अमृत ने अनुभव किया कि उसे चाय पीनी है – प्यास-सी लगी है। ढाई बजे के बाद से अभी जरा-सा समय मिला है।

तभी एक सुंदर अंबेसेडर गाड़ी आकर रुकी। मुड़कर देखना चाहते हुए भी अमृत रुक गया, फिर अनमने भाव से गाड़ी की तरफ नजर डाली।

एक सज्जन के साथ एक महिला गाड़ी से उतरकर कंपाउंड में घुस रही थी।

महिला ने दबी आवाज में साथ के सज्जन से कहा – "वही हैं। चलिए।"

दोनों आकर अमृत के सामने खड़े हो गये।

सज्जन ने रूसी कर्ड की फैली हुई पैंट और हलकी नीली हवाई कमीज पहन रखी थी। आंखों पर चश्मा। महिला रेशमी मेखला पहने हुए थी, जिस पर एक पतली सूती चादर थी।

दोनों हाथ सिर से लगाकर अमृत ने नमस्ते किया। उन दोनों ने प्रति-नमस्कार किया।

महिला ने अमृत के चेहरे की ओर बड़े संशय से देखा।

"अंदर आइए।" अमृत बोला और दोनों आगंतुकों को अपने क्लिनिक के स्वागत-कक्ष में ले गया। तीनों बैठ गये।

"आप लोग ?" अमृत ने सहज भाव से दोनों के चेहरों की तरफ देखते हुए पूछा।

सज्जन ने बताया, "आप ही के यहां आये हैं। शायद आप मुझे पहचान नहीं पाये। मेरा नाम है रंजीत चौधुरी।"

अमृत के चेहरे का रंग जरा बदला। पर शायद उस पर आगंतुकों की नजर नहीं पड़ी।

"और ये हैं – मेरी वाइफ – गायत्री चौधुरी !"

गायत्री के चेहरे पर एक नजर डालकर अमृत ने सज्जन से कहा – "सिगरेट लीजिए।"

उसने सिगरेट का डिब्बा और दियासलाई बढ़ा दिये, तभी दरवाजे के पास आकर एक वर्दीधारी दरबान ने सलाम किया। किसी आदमी के आने पर आज्ञा-पालन का निर्देश उसे है।

मगर अमृत ने उसकी तरफ नजर नहीं उठायी। सामने की कुर्सी पर बैठे उस सज्जन की ओर देखा। पैंतीस-छत्तीस साल का आदमी। देखने में सुंदर, सिर्फ नाक ही नुकीली नहीं थी। गोरा रंग, भरे हुए गाल, मोटे फ्रेम का चश्मा।

सज्जन का चेहरा और आंखें कुछ रूखे और उदासी भरे लगे।

रंजीत ने एक सिगरेट जलायी।

निर्विकार व्यवसायी के लहजे में जरा-सी अंतरंगता मिलाकर अमृत बोला – "क्या बात है, बताइए।"

रंजीत ने एक बार गायत्री के चेहरे की तरफ देखा, फिर नजरों को जरा-सा कोमल बनाते हुए धीरे-धीरे कहा, "मेरी...हमारी बच्ची बहुत ज्यादा बीमार है। आज लगभग छह महीने हो गये। इलाज में तो कुछ उठा नहीं रखा है, मगर जरा भी सुधार नहीं हुआ है।"

"बच्ची अभी है कहां ?"

"हमारे साथ ही है। चार साल की। पहले उसकी सेहत बहुत अच्छी थी।"

"क्या साथ लेते आये हैं ?"

"नहीं, साथ नहीं लाये। सोच रहे हैं, आपकी सलाह लेकर ही जो करना होगा, करेंगे।"

"यहां आप लोग रहते कहां हैं ? मेरा मतलब है, क्या आप लोग यहीं रहते हैं ?"

"यहां नहीं रहते। मैं शिलांग रहता हूं। गायत्री के मंझले मामा यहीं रहते हैं – शायद आप उन्हें पहचानते हों।"

अमृत ने फिर एक बार गायत्री के चेहरे की ओर नजर डाली, गायत्री एकटक अमृत के चेहरे की ओर देख रही थी। अमृत की नजर पड़ते ही उसने सिर झुका लिया।

इंतजार में खड़े दरबान की ओर बिना देखे अमृत ने कहा, "रघुनाथ, हमें चाय पीनी है," फिर बोला – "वह लड़की क्या आप लोगों की पहली संतान है ?"

"नहीं, तीसरी है। पहले दो लड़के हुए थे, दोनों नहीं रहे। एक जन्म के पहले साल ही चला गया, दूसरा, दो साल बाद। यह लड़की भी अगर..."

अमृत ने रंजीत और गायत्री, दोनों की ओर बारी-बारी से देखा और एक सिगरेट सुलगा ली।

"आप लोग क्या उस लड़की के इलाज के लिए ही आये हैं?"

"हां, हम लोगों ने तो आशा छोड़ ही दी थी। पर शिलांग में हमारे एक दोस्त ने – जो आपके भी दोस्त हैं, – अवर-सचिव अहमद – उन्होंने आपके पास एक बार हो आने की सलाह दी। दस दिन की आकस्मिक छुट्टी लेकर आया हूं।"

कुर्सी पर से उठते हुए अमृत ने कहा, "चलिए, घर चलें। एक प्याली चाय पी जाये।"

तीनों स्वागत-कक्ष से बाहर निकल आये।

क्लिनिक और अमृत के मकान के बीच फैली हुई लान पार करके तीनों अमृत के मकान में आ गये।

रि-इनफोर्स्ड कंक्रीट का सुंदर, छोटा-सा दूधिया रंग का नया बना, दुमंजिला मकान।

बहुत साफ-सुथरा और सलीके से सजा हुआ। कहीं भी धूल का एक भी कण नहीं था। दीवार पर कहीं कैलेंडर, तस्वीर आदि कुछ भी नहीं।

अमृत के पीछे-पीछे रंजीत और गायत्री भी ऊपर गये।

ऊपर का बैठने का कमरा भी बड़ा सलीकेदार था। उसकी एक खिड़की से एक लता चढ़ रही थी। कुर्सी-मेज बड़े कायदे से लगी थीं। कीमती लकड़ी के दमकते मेहागनी रंग के फर्नीचर देखने में ऐसे लगते थे मानो एक-दो दिन पहले ही बनवाये गये हों।

फर्श पर एक नीलाभ सतरंजी बिछी थी। नीले रंग के बीच-बीच में नन्हें-नन्हें सफेद फूल बने हुए थे।

इस कमरे में और कोई भी न था।

तीनों बैठ गये। रंजीत के सामने बैठा था अमृत। गायत्री उसकी बायीं ओर। अमृत ने फिर एक सिगरेट जलायी।

रंजीत ने पूछा – "क्या आप वासना को – यानी, हमारी लड़की को एक बार देख आ सकते हैं?"

अमृत ने मानो कुछ क्षण इस बात पर विचार किया। फिर धीरे-धीरे बोला – "क्लिनिक नया-नया बना है। अभी काफी काम बाकी है। इधर बीमारों का तांता लग चुका है। एक अच्छा-सा सहायक चाहता था, मगर मिलता ही नहीं। सिर्फ नर्सों और कंपाउंडरों पर भरोसा करने में डर लगता है।"

गायत्री चुपचाप बातें सुन रही थी। रंजीत बोला – "हां, देख ही रहे हैं, आपको काफी बिजी रहना पड़ता है। तो फिर लड़की को हम यहीं ले आयेंगे।"

"वही ज्यादा सुविधाजनक होगा शायद। लड़की थोड़ा चल-फिर सकती है न?"

"बहुत ज्यादा तो नहीं। पर गाड़ी से लाया जा सकता है। शिलांग से तो गाड़ी पर ही ले आये हैं।"

"मैंने एक एंबुलेंस का आर्डर दे रखा है। वह कब तक यहां पहुंचेगी, पता नहीं।" अमृत बोला।

डाइनिंग रूम में चाय रखकर वर्दीधारी खानसामा ने सलाम किया। अमृत के कहने पर तीनों चाय की मेज पर आ बैठे। उस समय भी अमृत रंजीत के सामने ही बैठा, गायत्री की ओर देखा भी नहीं। हालांकि सरल विनम्रता के साथ ही अमृत ने दोनों से चाय पीने का आग्रह किया।

रंजीत बोला – "मैं तो सिर्फ और छह दिन रह पाऊंगा। छुट्टी है ही नहीं। गायत्री यहां रहेगी।"

कुछ देर सोचकर अमृत बोला – "पांच दिन बाद मेरे यहां एक सीट खाली होने वाली है। यहां अभी सिर्फ छह सीटें हैं। तब तक लड़की को यहां न लाना ही ठीक रहेगा। क्या आप लोगों को कोई असुविधा होगी?"

रंजीत ने गायत्री के चेहरे की ओर देखा।

गायत्री तीनों के लिए चाय बना रही थी। उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

आमलेट पर जरा काली मिर्च का चूरा छिड़कते हुए अमृत बोला – "अगर लड़की को यहां न रखने पर भी काम चल जाये – हालांकि वह देखना पड़ेगा – तो आप लोग उसे साथ ही ले जा सकेंगे। नहीं तो, हो सकता है, कुछ दिन यहीं रखकर इलाज करना पड़े, अगर आप लोगों को पसंद हो।"

"कल ले आयें उसे? आप एक बार देख लें।"

"कल? हां, ला सकते हैं। ठीक है, कल ले आयें। दोपहर से पहले लायें, आठ से दस बजे के बीच।"

चाय पीकर तीनों निकल आये। एक चौकीदार ने आकर सलाम किया।

अमृत से मिलने कोई आया था। रंजीत बोला – "आपको अब और परेशान नहीं करेंगे।"

अमृत ने खिड़की से बाहर की ओर देखा। क्रमशः शाम उतरती आ रही थी। गेट के सामने एक गाड़ी आकर रुकी थी।

अमृत ने पूछा – "लड़की को अगर यहां कुछ दिन रखना पड़े तो आप लोगों को कोई असुविधा तो नहीं होगी न?"

रंजीत बोला – "उसके इलाज के लिए ही तो शिलांग से यहां आये हैं। जरूरत हो तो जितने दिन लगे वह यहां रहेगी।"

तीनों नीचे उतर गये। विदा लेते वक्त बड़ी लाचारी से रंजीत बोला – "बड़ी आशा लेकर आपके पास हम आये हैं, यह जान लें..."

थोड़ा हंसकर अमृत ने कहा – "पहले मैं बीमार को तो देख लूं।"

विदा लेकर रंजीत और गायत्री चले गये। नमस्कार करने पर भी अमृत ने गायत्री की ओर नजर नहीं उठायी। गायत्री से कोई बात नहीं की।

हालांकि रंजीत का ध्यान इस ओर गया था, पर उसने कुछ कहा नहीं...।

वासना की बीमारी बड़ी अजीब किस्म की थी। चार साल की नन्हीं-सी लड़की को ऐसी बीमारी क्यों हुई, यह समझने में अमृत को भी कठिनाई हुई। थोड़े लंबे इलाज की जरूरत होगी। बड़ी सावधानी से, हर दिन बड़े ध्यान से लड़की का इलाज करना होगा। बीमारी जटिल हो गयी है।

उसके क्लिनिक में इसके पहले ऐसा रोगी नहीं आया था।

तीन दिन तरह-तरह की जांच करने के बाद अमृत ने चिंतित होकर कहा – "बीमारी बड़ी कांप्लिकेटेड हो गयी है। चिंता का कोई कारण नहीं है, यह बात भी नहीं। आप लोग अगर तैयार हों तो मैं दायित्व ले सकता हूं।" रंजीत और गायत्री ने लाचार-से होकर अमृत की ओर देखा।

रंजीत ने धीरे-धीरे कहा – "वासना के लिए हमें कितनी चिंता है, शायद आपको समझने में कठिनाई होगी। पहले के लड़कों ने तो धोखा दे दिया। इस तरह वे हाथ में आकर खो जायेंगे, यह बात सपने में भी नहीं सोची थी। सिर्फ दायित्व ही नहीं, वासना की जिंदगी ही आपके हाथ में है। अगर वह चंगी न हो पाये तो हमारी जिंदगी कैसी हो जायेगी, भगवान ही जानता है।"

गहरे उद्वेग से कही गयी रंजीत की बातों में जो वेदना थी, अमृत ने उसका अनुभव किया। मगर स्थिति को हल्का करने के उद्देश्य से ही उसने कहा – "आप लोगों के निराश होने का कोई कारण नहीं है। नन्हीं बच्ची है, हो सकता है कि जल्द ही चंगी हो जाये और मुझ पर आप विश्वास रख सकते हैं, आप लोगों की लड़की की मैं कभी अवहेलना नहीं करूंगा। उसका पूरा ध्यान रखूंगा।"

रंजीत की आंखों में आशा चमक उठी। उसने कहा – "गायत्री रहेगी। क्या चाहिए, क्या नहीं चाहिए, आपके कहने पर गायत्री उसकी व्यवस्था कर देगी। मेरी छुट्टी नहीं है, मुझे जाना ही पड़ेगा। आप वासना की देखभाल ऐसे करें, जैसे वह आपकी ही बेटी हो। गायत्री और आपको मिलकर वासना को जिलाना है।"

रंजीत की बात पर गायत्री ने एक बार अमृत के, फिर रंजीत के चेहरे की ओर देखा। उसका चेहरा जरा लाल हो गया।

अमृत ने धीमे स्वर से कहा – "आप लोगों के न रहने पर भी अपने बीमार की देखभाल मैं करूंगा ही। वह सब आप लोगों के सोचने की चीज नहीं है।"

मतलब, गायत्री को भी शिलांग ले जा सकते हैं। यहां उसकी कोई जरूरत नहीं है।

बात का आशय समझकर रंजीत बोला – "नहीं, वासना कभी-कभी उससे मिलने की जिद कर खोज सकती है। गायत्री रहे, और इसके यहां रहने में हमें कोई असुविधा भी नहीं है। अपनी गाड़ी यहीं छोड़ जाऊंगा। ड्राइवर भी साथ रहेगा। जरूरत के मुताबिक यह आती-जाती रहेगी।"

रंजीत उस एक सीट वाले कमरे में गया, जहां वासना को रखा गया था और सूखकर कांटे-जैसी हो गयी वासना के पास बैठा।

वासना के बालों को हाथ से सहलाते हुए रंजीत ने बुलाया – "वासना, अच्छा लग रहा है न? हां, डाक्टर साहब कहते हैं, तुम बड़ी जल्दी अच्छी हो जाओगी। मैं फिर शिलांग से आऊंगा। मां है न। डाक्टर साहब भी बड़े अच्छे हैं। तुम्हें बहुत प्यार करेंगे। अच्छा! अब मैं चलता हूं।"

उसने वासना का माथा चूम लिया और उसके हाथों को कुछ क्षण अपनी हथेलियों से दबाये रखा। फिर उलटी हथेलियों से आंसू पोंछता कमरे से निकल गया।

दूसरे दिन रंजीत चला गया। जाते समय उसने अमृत से कहा – "गायत्री आपसे अब तक खुल नहीं पायी है। पहले की जान-पहचान नहीं है न, इसीलिए। मगर वासना के साथ गायत्री को भी आपके ही जिम्मे छोड़े जा रहा हूं। आप कैसे आदमी हैं, मैंने दो ही दिन में समझ लिया है, डाक्टर साहब! आपके रहते अब मुझे कोई फिक्र नहीं।"

अमृत नम्रता के साथ हंस पड़ा।

गायत्री ने अमृत की उस हंसी का मतलब समझने का व्यर्थ प्रयास किया।

इसके बाद रंजीत और गायत्री चले गये।

अकेले में अमृत एक बार फिर यों ही हंस पड़ा।

शाम को चाय पीने के बाद अमृत ने तय किया कि उस दिन वह और कहीं नहीं निकलेगा। उसने दरबान से कह दिया कि कोई अगर उससे मिलने आये तो उससे बता दे कि आज वह किसी से नहीं मिलेगा। अब वह रात में ही बीमारों को देखने जायेगा।

हालांकि अमृत ने यह भी सोचा कि ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं है। फिर भी उसने एक उदास-सी शाम को अकेले बिताना चाहा।

आठ साल बाद अप्रत्याशित रूप से आयी है गायत्री – पहले की कुमारी गायत्री चलिहा। इस बीच स्थिति में अचिंतनीय परिवर्तन आ गया है।

आठ साल में आदमी की जिंदगी में कितना बदलाव आ जाता है!

इसी थोड़े समय के अंदर अमृत ने एम.बी.बी.एस. पास किया, हजारों की रकम कमायी, जर्मनी से नयी डिग्री ली, बाल-रोग चिकित्सा का विशेषज्ञ बना। नौकरी करने से इनकार कर अपनी फार्मेसी खोली, उसके बाद यह क्लिनिक! अठहत्तर हजार खर्च करके यह नया संस्थान खोलते देख अनेक लोग पहले विस्मित हुए, परंतु सफल बनने में ही सफलता की मुक्ति है।

अब अमृत को न पहचानें, ऐसे लोग असम में नहीं हैं। बच्चों की असाध्य व्याधि को अकल्पनीय रूप से चंगा करने में डाक्टर अमृत का नाम असम में अद्वितीय है।

कीमती माइक्रोस्कोप समेत अनेक प्रकार के साजो-सामान, नर्स, कंपाउंडर और दवा-दारू के बड़े स्टाक के साथ वह पूरी तरह स्वावलंबी है। जर्मनी में ही उसने एक बात सीखी थी – जिंदगी में सफल बनने के लिए श्रम करना चाहिए। असाधारण श्रम किये बगैर असाधारण काम किया ही नहीं जा सकता।

कुछ और बातें अमृत को याद आयीं।

तीन साल की घनिष्ठ जान-पहचान के बीच गायत्री चलिहा ने अमृत के मन में जगह बना ली थी। कार्यकारी अभियंता श्री चलिहा की बेटी गायत्री – देखने-सुनने, पढ़ने-लिखने आदि में कहीं कोई कमी न थी। और जाने-माने व्यवसायी सदानंद फुकन का बेटा अमृत भी किसी विषय में गायत्री की तुलना में कम न था। सुंदर स्वस्थ युवक, लिखने-पढ़ने में तेज, डाक्टरी की दिशा में रुचि थी। तिस पर बाप की लाखों की संपत्ति।

इनसे ज्यादा कीमती चीज थी अमृत का अविचल आत्म-विश्वास, और चरित्र-गुण। इसी कारण कोई-कोई अमृत को घमंडी समझने की गलती करता था, पर अमृत स्वभाव से ही विनम्र था।

गायत्री के साथ अमृत की निबिड़ घनिष्ठता हो गयी थी। गायत्री उसे पसंद आ गयी थी, दोनों एक-दूसरे को अपनाने के लिए प्रतिज्ञा कर चुके थे।

अमृत एम.बी.बी.एस. पास करेगा। प्राइवेट प्रैक्टिस शुरू करेगा। गायत्री और अमृत एक मधुर दांपत्य जीवन शुरू करेंगे। प्यार और शांति, प्रेम और ऐश्वर्य के बीच दोनों मधुर जीवन-यापन करेंगे।

अमृत ने एक सपना देखा था...

अपने बड़े चाचा की लड़की की शादी में गायत्री शिलांग गयी।

उसके बाद गायत्री लौटी, बिलकुल अलग लड़की बनकर।

उसी शादी में गायत्री की मुलाकात नौजवान रंजीत से हुई थी। रंजीत के आकर्षण से गायत्री का सारा अतीत, सारी प्रतिज्ञाएं, कहीं बह गये।

अमृत को सूचित करने की प्रतीक्षा किये बगैर गायत्री ने मां को सूचित कर दिया, वह रंजीत से शादी करेगी।

मां को कुछ अचरज हुआ। पर रंजीत अमृत से बुरा नहीं है, ऐसा विश्वास कर रंजीत के साथ ही गायत्री की शादी तय कर दी।

अमृत को चोट लगी। एक चंचल लड़की ने उससे प्रवंचना की, इस कारण नहीं, बल्कि उसने उसके व्यक्तित्व का अपमान किया, इस कारण।

रंजीत से शादी करने के निर्णय के बारे में कुछ बातें करके अमृत को धीरज बंधाने के लिए शादी के पहले गायत्री एक बार आयी थी।

परंतु उसे कोई बात कहने का कोई मौका न देकर अमृत ने कहा – "तुम क्या कहने आयी हो, मैं समझता हूं, गायत्री ! परंतु मुझे तुम दूसरे नौजवानों की भांति अगर कमजोर समझती हो तो गलती कर रही हो । तुम्हारे जैसी एक लड़की मेरे जीवन में न हो तो भी मैं सब-कुछ छोड़-छाड़ कर फकीर नहीं बनने वाला । पर, लिखी-पढ़ी लड़कियों के बारे में मेरी एक दूसरी ही धारणा थी, उस धारणा को तुमने चकनाचूर कर दिया । मुझे बुरा लगा है जरूर, मगर मैं उसके लिए जरा भी पछतावा नहीं करता । लेकिन मजे की बात यह है कि इतनी शिक्षा-दीक्षा के बाद भी लड़कियों में जरा भी बदलाव नहीं आया है ।"

अमृत की बात पूरी होने पर गायत्री किसी तरह कह पायी थी – "मुझे समझने की कोशिश करो, अमृत भैया ! रंजीत मुझे पसंद आ गया है । तुम्हारे प्रति मैं हमेशा श्रद्धा रखूंगी ।"

"और इसके बदले में अगर मैं तुमसे हमेशा घृणा करता रहूं तो ? तुम यहां से चली जाओ, गायत्री ! तुम्हारा यहां होना मुझे असह्य लग रहा है । तुमसे प्यार किया था, इसलिए तुम मेरा ऐसा अपमान कर सकीं । तुमसे बदला लेने जैसी नीचता मुझमें नहीं है । रंजीत को पहचानता नहीं । डरो मत, कभी, कहीं उससे मुलाकात होने पर भी, तुम्हारे बीते दिनों की बातें उसे कह कर तुम्हें परेशान नहीं करूंगा । मुझसे तुम्हारी कोई जान-पहचान नहीं, यही कहूंगा ।"

उन बातों की याद आ जाने के कारण अमृत को हंसी आ गयी । धत् ! गायत्री जैसी चंचल लड़की से इतनी सारी गर्मागर्म बातें कहने की भी भला क्या जरूरत थी ? गायत्री तो एक साधारण-सी लड़की ठहरी ।

डाक्टरी की आखिरी परीक्षा पासकर अमृत ने कुछ दिन प्राइवेट प्रैक्टिस की । दुनिया की सारी बातें छोड़कर तन-मन से डाक्टरी में जुट गया ।

फिर एक बार तय किया कि बाल-रोगों के इलाज का एक अलग ही मजा है । किसी बीमार बच्चे को, जिसे अपनी बीमारी के बारे में कोई समझ नहीं, चंगा करना, उसे जिंदा रहने की प्रेरणा देना होता है । और चंगा हो जाने पर वे कभी डाक्टर का आभार भी प्रकट करने नहीं आते ।

गायत्री की शादी हो गयी । वह तीन बच्चों की मां बन चुकी है । इस बीच दो बच्चों की मौत हो चुकी है । मगर गायत्री तो पहले जैसी ही बनी हुई है । खूबसूरत, छरहरे बदन वाली गायत्री अब भी एक लड़की जैसी ही लगती है । कहीं उम्र की जरा भी खरोंच नहीं लगी है । सिर्फ चेहरे पर जरा-सी वेदना की छाया भर पड़ी है । मगर उससे गायत्री सचमुच पहले की अपेक्षा खूबसूरत ही दिखती है ।

अमृत उठ पड़ा ।

ये बिलकुल गैर-जरूरी बातें भला आज क्यों सोच रहा हूं ? गायत्री चाहे खूबसूरत हो, या न हो, उससे तो मेरा अब कोई फायदा या नुकसान नहीं । मैं गायत्री और उसके परिवार के जीवन से बाहर हूं । बिलकुल बाहर ।

गायत्री की बच्ची है – वासना । उसका इलाज करके, उसे चंगा करने का उत्तरदायित्व लिया है मैंने । वासना चाहे किसी की भी बच्ची हो, वह मेरे इलाज में है । मेरे क्लिनिक में पड़ी

हुई है । अगर सोचना ही है,तो वासना के ही बारे में सोचूंगा । गायत्री के बारे में बिलकुल नहीं सोचूंगा । बेवफा गायत्री से आज भी मैं पहले जैसी ही नफरत करता हूं । मुझसे नफरत के सिवा और कुछ पाने की उम्मीद करना गायत्री के लिए गैर-वाजिब है ।

बाहर की ओर नजर डालकर अमृत ने देखा, शाम हो आयी है, सूरज की अंतिम किरणें आकर उसके मकान पर पड़ रही हैं ।

अमृत को बड़ा उदास-उदास-सा लगा ।

अमृत का तो अब कोई नहीं रहा । पिता चल बसे हैं । मां पहले ही चल बसी थीं । आज तो उसके पास सिर्फ यह नयी क्लिनिक है, ये बीमार बच्चे हैं और वेतनभोगी कुछ नौकर-चाकर ।

अमृत को लगा, शाम के अंधेरे के साथ ही चारों ओर से मौत उसे घेरे आ रही है । घर-बार के कोने-कोने में मानो मौत घुसी आ रही है । और उस मौत से अमृत असहाय-सा अकेला जूझ रहा है ।

दरबान ने आकर सलाम किया । कहा – "एक औरत आयी है गाड़ी लेकर । आप मुलाकात नहीं करेंगे, कहने पर भी नहीं मानती । कहती है, बड़ा जरूरी काम है । आपसे एक बार मिलकर ही जायेगी ।

अमृत क्षण भर चुप रहा । फिर कहा – "ले आ ।

स्विच दबाकर अमृत ने बत्ती जलायी । और एक सिगरेट जलाकर आगंतुक की प्रतीक्षा में सीधा बैठ गया ।

गायत्री अंदर आयी ।

बैठे ही बैठे, जरा भी हिले-डुले बगैर, अमृत ने एक बार आंख उठाकर गायत्री के चेहरे की ओर देखा । गायत्री आकर उसके सामने खड़ी हो गयी ।

फिर एक बार गायत्री की ओर देखर अमृत ने कहा — "बैठो ।

कुर्सी पर बैठ कर उसकी ओर देखते हुए गायत्री ने कहा – "मुझे तो आने ही नहीं देता था, जबरदस्ती आयी हूं ।"

अमृत तल्लीनता से सिगरेट पीता रहा ।

"जब से आयी हूं, तुमने मुझसे एक बार भी बात नहीं की । इसी कारण मैं आज अकेली आयी हूं, तुमसे बात करने के इरादे से ।" गायत्री बोली ।

काल-बेल दबाकर बॉय को बुलाकर अमृत ने कहा – "दो गिलास शर्बत ले आ ।

सलाम कर बॉय नीचे उतर गया ।

कुछ उद्विग्नता से चीखती-सी गायत्री बोली – "अमृत भाई, तुम ऐसे गंभीर क्यों हो ? मुझसे आखिर बात क्यों नहीं करते ?"

खिड़की से बाहर की तरफ देखते हुए धीरे-धीरे अमृत ने कहा – "इस वक्त मुझे जरा एकांत अच्छा लगता है । किसी से बात नहीं करता ।"

"परंतु क्या इसीलिए मुझसे भी बात नहीं करोगे ?"

गायत्री के चेहरे की ओर देख अमृत बोला – "तुम्हें इस नियम का अपवाद मानने की कोई वजह तो मैं नहीं देखता।"

गायत्री को कुछ अपमान-सा लगा।

"तो फिर मैं चलूं। तुम रहो अकेले, चुपचाप।"

गायत्री ने उठना चाहा।

तभी बॉय ने एक ट्रे में दो गिलास शर्बत, एक प्लेट में कुछ किसमिश, अखरोट और कुछ टाफियां लाकर मेज पर रख दिये।

प्लेट को गायत्री की तरफ बढ़ाते हुए अमृत बोला – "खाओ, कुछ और दें ?"

एक किसमिश मुंह में डालकर गायत्री बोली – "मैंने भला तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि यों निष्ठुरता से मेरा अपमान कर रहे हो ? क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारा एक बार भी मुझसे बात न करना, उनकी नजर में नहीं आया है ? मुझसे बात न करने के कारण उन्हें भी बुरा लगा है।"

एक टाफी का कागज खोलते हुए अमृत बोला – "इनको-उनको अच्छा लगना-बुरा लगना आदि को लेकर मुझे सोचने-विचारने को कुछ नहीं है। तुम लोग तो अमृत फुकन की शादी में नहीं आये हो कि आदर-स्वागत न करने पर बुरा मान जाओगे। तुम लोग आये हो, डाक्टर अमृत के यहां अपनी बेटी वासना के इलाज के लिए। वासना के इलाज का उत्तरदायित्व मैंने ले लिया है। अब मुझसे और क्या आशा रखती हो ?"

शर्बत का घूंट भरकर गायत्री ने अपनी जुबान में कुछ तल्खी लाकर कहा – "और कुछ आशा करने का क्या मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है ? एक जान-पहचान वाली महिला के प्रति एक सज्जन व्यक्ति का जैसा बर्ताव होना चाहिए, वह सौजन्य भी क्या तुमसे पाने की आशा मैं न करूं ?"

एक किसमिश की डंठल निकालते हुए गायत्री की तरफ बिना देखे अमृत बोला – "भला वह किस आधार पर ?"

"अमृत भैया !" गायत्री चीख-सी पड़ी।

"ज्यादा चीखो मत। बीमारों को परेशानी होगी।" इतने निर्लिप्त भाव से अमृत ने यह बात कही कि गायत्री भौंचक रह गयी।

"मैं तुम्हारे सामने बैठी हूं, और तब भी तुम बीमारों की ही बातें सोच रहे हो ?"

"भले-चंगे लोगों के बारे में बिना सोचे भी डाक्टर का काम चल जाता है। अगर मैं वासना के बारे में न सोचूं तो क्या वह अच्छी बात होगी ?"

फिर एक बार तेज नजर से गायत्री ने अमृत की तरफ देखा। अमृत को कड़ी बात सुनाने के कारण उसे खुद ही शर्म आयी। यह है विख्यात डाक्टर अमृत फुकन – इस क्लिनिक का

मालिक,लाखों की संपत्ति का अधिकारी,बाल-रोग विशेषज्ञ,डाक्टर अमृत । इसके यहां आकर ऐसी कड़ी बात सुनाना अशोभनीय है ।

वह अमृत है,इसीलिए उसे निकल जाने को नहीं कहा ।

गायत्री को कुछ शर्म आयी । अपने को अपराधी-सा महसूस किया । सिर झुकाकर कहा, "मेरी बात का बुरा न मानना, अमृत भैया ! मैं तुम्हारे घर में हूं,यह बात मैं भूल ही गयी थी ।"

कुछ कहे बगैर शर्बत का गिलास खत्म कर अमृत ने एक सिगरेट जलायी ।

गायत्री ने महसूस किया,वह अमृत के पास पुराने इतिहास को दुहराने के इरादे से नहीं आयी थी, आयी थी वासना के इलाज के लिए । आज अमृत – सिर्फ अमृत ही वासना को जिला सकता है । इस अमृत के साथ बहसबाजी करने का कोई फायदा नहीं है ।

दोनों कुछ देर चुपचाप बैठे रहे ।

दुनिया की छाती पर तब घना अंधेरा उतरता आ रहा था ।

बाहर की ओर देखते हुए अमृत बोला – "रात हो आयी ।" क्या गायत्री को अमृत विदा कर देना चाहता है – यह बात समझने की कोशिश किये बगैर अमृत के चेहरे की तरफ देखते हुए गायत्री ने पूछा – "वासना की हालत कैसी लग रही है ? वह चंगी हो जायेगी न, अमृत भैया ?"

थोड़ा हंसने जैसा भाव दिखाकर अमृत ने कहा – "इस बात को पूछने के लिए इतनी लंबी भूमिका न बांधती तो क्या अच्छा नहीं होता ?"

अचानक गायत्री उठ पड़ी और ऊंची आवाज में बोली – "बस, बस, हो गया । बहुत अपमान किया । वासना को तुम्हारे हाथों सौंप दिया है,हो सके तो जिलाना, और नहीं तो मार डालना । मुझे मालूम है,मुझसे बदला लिये बगैर तुम्हें चैन नहीं आयेगा ।"

गायत्री की बात पर जरा भी कान दिये बगैर अमृत बोला – "तुम यहां और कितने दिन रुकोगी ?"

"जितने दिन भी रुकूं,इस तरह से आकर अब तुम्हें परेशान नहीं करूंगी । तुम बहुत बड़े डाक्टर हो सकते हो,पर मेरा इतना अपमान न करते तो क्या छोटे हो जाते ?"

गायत्री के चेहरे की ओर देखते हुए अमृत ने थोड़ी सख्ती से कहा – "तुमने मेरी जिंदगी का और मेरी मुहब्बत का जिस तरह से अपमान किया है,जरूर उतना मैंने नहीं किया ।"

अचानक गायत्री बैठ गयी । वह मानो अकस्मात बिलकुल कमजोर हो गयी ।

"तुम्हारी मुहब्बत का मैंने अपमान किया है, अमृत भैया !" गायत्री मानो अपने आप से कह रही हो ।

अमृत हंस पड़ा । "ठीक है,जाने दो वे बातें, गायत्री ! वे सब पुरानी बातें हैं । जिस तरह तुमने कभी उन्हें नहीं सोचा, मैंने भी नहीं सोचा । तुम लोगों को देखकर ही पुरानी बातों की याद आ गयी ।"

"मेरे बारे में तुम कभी नहीं सोचते ?"

"तुम्हारे बात याद आते ही मुझे तुमसे नफरत हो आती है, इसी कारण नहीं सोचता। तुमसे नफरत करके भी क्या फायदा?"

गायत्री समझ गयी कि अमृत ने उस पर अपमान की आखिरी चोट कर दी है। अब अमृत गायत्री को नफरत से भी याद नहीं करता।

क्या सोचती वह बैठी हुई है, वह खुद भी नहीं समझ सकी। गहरी नफरत क्या गहरी मुहब्बत की प्रतिक्रिया नहीं है? तो क्या आज भी अमृत मुझसे मुहब्बत करता है?

असंभव, अगर मुझसे मुहब्बत होती तो इतना अपमान कभी न करता। अमृत आज मुझसे दिलो-जान से नफरत करता है। पर मुझ पर उसका जो गुस्सा है, अगर उसका बदला वह वासना से ले, तब?

गायत्री ने अमृत के चेहरे की ओर नजर डाली। इतना गंभीर और शांत है, यह अमृत। लगता है, किसी से मुहब्बत करना भी नहीं जानता और न किसी से नफरत करना ही जानता है। गायत्री को डर-सा लगा। क्या यह मेरी हत्या कर देगा? वासना को मार डालेगा?

गायत्री ने धीमे से कहा – "तुम मुझे माफ नहीं करोगे, मैं जानती हूं। और मैं तुमसे क्षमा मांगने आयी भी नहीं। मगर अमृत भैया, चाहे जैसे भी हो, वासना को तुम्हें चंगा करना ही है। तुम बड़े डाक्टर हो, तुम उसे चंगा कर सकते हो। मैं अपने पहले के बच्चों को बचा नहीं पायी। वासना भी अगर न बचे तो हमारा क्या होगा, सोच ही नहीं सकती। वासना को तुम चंगा कर दो, अमृत भैया! तुम्हें जो चाहिए मैं दूंगी।"

गायत्री के स्वर में अमृत ने एक असहाय, दुर्बल, सामान्य औरत की आवाज सुनी। उसे उससे कुछ हमदर्दी-सी हो आयी।

आवाज को जरा भी कंपाये बगैर अमृत बोला – "मुझे देने को आज तुम्हारे पास है ही क्या, गायत्री?"

गायत्री ने चौंककर अमृत के चेहरे की ओर देखा – क्या चाहता है आखिर अमृत गायत्री से? अचानक वह बोल उठी – "तुम जो चाहते हो मैं सब कुछ दूंगी, अमृत भैया! मगर वासना को तुम बचा दो। बोलो, बचा दोगे?"

अमृत ने धीरे-धीरे कहा – "वासना अच्छी न हो, इसका तो कोई कारण मुझे नहीं दिखता। ठीक है, मैं अच्छी तरह से देख-भाल करूंगा। बीमार को चंगा करना ही तो काम है मेरा।"

कुछ रुककर अमृत ने फिर कहा – "यह अस्पताल, फार्मेसी और क्लिनिक बनाने में काफी रकम लगी है। तुम लोग पैसे वाले हो, वासना को अच्छा कर देने पर बिल जरा जल्दी चुका देना – अगर हो सके, और कुछ भी मैं तुमसे नहीं चाहता।"

अमृत की बातों से गायत्री बिलकुल हतोत्साहित हो गयी। वह गायत्री से बिल की रकम के अलावा और कुछ भी नहीं चाहता। अमृत कसाई है, इंसान नहीं; डाक्टर नहीं, व्यापारी है।

परंतु गायत्री ने यह अपमान निर्विरोध नहीं सह लिया। कहा – "लेना, जितना चाहो। रुपया ही लेना। रुपये के लिए ही तो क्लिनिक खोला है न!"

कुछ हंसकर अमृत बोला – "डाक्टर आदमी ठहरा, क्लिनिक न खोलकर स्वयंवर-सभा लगाने से क्या अच्छा लगेगा ?"

"इसका मतलब यह है कि मैंने रुपये के लालच से चौधुरी से शादी की थी, तुम यही कहना चाहते हो ?"

"वह तो तुम्हीं जानो। रंजीत से शादी तुमने किसलिए की, इसे सोचने की जरूरत मैंने कभी नहीं समझी।"

अब तो अमृत के सामने बैठे रहना गायत्री को असंभव-सा लगा। दरवाजे-खिड़कियां खुले होने पर भी गायत्री को लगा कि उसका दम घुट-सा रहा है।

अमृत ने गायत्री की हालत समझी। वह उठ गया और एक खिड़की के पास खड़े होकर बाहर अंधेरे की ओर देखते हुए धीमी आवाज में धीरे-धीरे बोला – "नारी को खिलौना मान लेना जैसे पुरुष के लिए अन्याय है, उसी तरह पुरुष को खिलौना मान लेना नारी के लिए भी अन्याय है, गायत्री ! किसी नारी को वैसा अन्याय करने के लिए कदम बढ़ाते हुए उसे बाधा देना मैं अपना फर्ज समझता हूं। वासना के स्वार्थ में, रंजीत की मुहब्बत का अपमान कर अपने को सौंप देने में, हो सकता है तुम्हें कोई पछतावा न हो, मगर मैं उस कमजोरी का जरा भी फायदा उठाना नहीं चाहता। एक पति से तुम विश्वासघात कर सकती हो, मगर मैं नहीं कर सकता। रंजीत मेरा दुश्मन हो तो भी नहीं।"

"तुम यह सब क्या कह रहे हो, अमृत भैया ?" डरती-सी गायत्री ने पूछा।

"तुमने ही कहा न, कि मैं जो कुछ चाहूं, वही तुम मुझे देने के लिए तैयार हो ?"

अचानक गायत्री का चेहरा लाल हो उठा। बत्ती मानो सामने नाचने लगी। उसे लगा कि उसका सिर चकरा रहा है।

खिड़की के पास बाहर की ओर देखने में मग्न अमृत गायत्री को एक बहुत बड़ी शिला-प्रतिमा जैसा लगा। मानो बिलकुल प्राणहीन एक शिला-प्रतिमा है अमृत नाम का यह नौजवान।

गायत्री उठकर वहीं आ गयी।

"अमृत भैया ! जरा मेरी ओर तो देखो।" गायत्री की आवाज कुछ सख्त-सी थी।

"कहो न !" अमृत ने बिना मुड़े कहा।

"अगर तुम मुझे इतना ही प्यार करते थे तो फिर चौधुरी के साथ जब मैं शादी करने चली थी तो तुमने मुझे यों ही छोड़ क्यों दिया ? मुझे रोका क्यों नहीं ?"

बिना मुड़े अमृत ने कहा – "तुम जैसी लड़की को उतना महत्व देने की कोई जरूरत मैंने नहीं समझी थी।"

"तो फिर तुम्हारे प्यार में कोई ताकत नहीं थी ?"

अमृत मुड़ा और गायत्री के सामने जा खड़ा हुआ।

"तुम्हारी जुबान से प्यार की समालोचना सुनने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं, गायत्री !"

कुछ देर रुककर अमृत फिर बोला – "वासना को मैं चंगा कर देने की कोशिश करूंगा। तुम लोग जरा भी न सोचना। उसके लिए मैं तुमसे किसी त्याग की कामना भी नहीं रखता। मैं तो डाक्टर हूं। इंसान न मानो तो भी तुम्हारा काम चल जायेगा।"

गायत्री को लगा, अमृत की आवाज में एक अकथ करुण दुर्बलता है। मगर उस वेदना में धीरज बंधाने की कोशिश करना तो अब व्यर्थ ही होगा।

"और कुछ देर ठहर जाओ, खाना खाकर जाना।"

"मगर तुम तो इंसान नहीं, सिर्फ डाक्टर हो।"

"खाना नहीं खाओगी तो यों ही बैठो। बहुत दिन से मैंने किसी से दिल खोलकर बातें नहीं की हैं।"

"यह मुझसे तुम बात कर रहे हो, या मुझे गालियां सुना रहे हो ?"

"जिन सच बातों को हम सुनना नहीं चाहते, वे कभी-कभी हमें गालियों-सी लगती हैं। ठीक है, आओ, तुम्हें अपना मकान दिखा दूं। आज तक मेरे मकान में कोई घुसा नहीं है।"

"एक ही आदमी के लिए इतना बड़ा मकान और इतने सारे कमरे क्यों, अमृत भैया ?"

"आदमी के भी तो एक ही मन के अंदर अनेक कमरे होते हैं। एक ही मकान में अनेक कमरे होने में क्या बुराई है ?"

फिर दोनों निचली मंजिल पर उतर आये।

"तुमने भला अपने मकान का अंग्रेजी नाम 'रिट्रीट' क्यों रखा ?"

"आखिर में हम यहीं लौट आये न, इसीलिए।"

"परंतु क्या तुम यहीं रह सकोगे ?"

अब दोनों आंगन में निकल आये थे।

"इस कमरे के सामने – यह कैसा साइनबोर्ड है ?"

"जरा बढ़कर देखो।"

गायत्री ने पढ़ा – नो एडमिशन फार एंजेल्स एंड वीमेन। (अर्थात देवदूतों एवं औरतों के लिए प्रवेश-निषेध।)

"भला यह सब कैसी बचकानी हरकतें करते हो ! देवदूतों को भी अगर यहां नहीं आने देते, किसी औरत को भी नहीं आने देते, तो फिर भला यहां आयेगा कौन ?"

अमृत हंस पड़ा, बोला – "देवदूतों और औरतों के लिए प्रवेश-निषेध क्यों कर रखा है, पता है ? इन दोनों के ही पंख होते हैं। उड़ जाने वालों के लिए घर बनाने की कोई जरूरत नहीं होती। ओह ! बहुत रात हो गयी। अगर खाना नहीं खाओगी तो अब जाओ, गायत्री !"

गायत्री बोली, "हां, जा रही हूं। मगर यह साइनबोर्ड अब हटा दो।"

"किसलिए ?"

"औरत तो आ ही गयी । हो सकता है, कोई देवदूत भी आ जाये ।"

"दूसरा कोई देवदूत नहीं आनेवाला । अगर आये भी, तो यमदूत आ सकता है । पर नारी की अपेक्षा यमदूत ज्यादा मारात्मक नहीं होता ।"

गायत्री के जाने के बाद अमृत सोचता रहा – आखिर तक क्या गायत्री की ही जीत हुई ? गायत्री क्या यह सोच रही है कि मैं आज भी उससे मुहब्बत करता हूं ?

अगर तुम ऐसा सोच रही हो, तो गलत सोचती हो, गायत्री ! अपने व्यक्तित्व के बदले अमृत एक चंचल लड़की से मुहब्बत कर अपनी कमजोरी प्रकट नहीं करेगा ।

लड़कियों को पुरुषों की मुहब्बत को कमजोरी समझने में मजा आता है । मानो किसी लड़की का प्यार न मिले तो पुरुष की जिंदगी रसातल को चली जायेगी । बुरा न मानो गायत्री, अमृत उतना कमजोर नहीं है । कभी प्यार किया था, इसी कारण रंजीत की अंकशायिनी, तीन बच्चों की मां, प्रगल्भा गायत्री के लिए अब अपने अंतर में कोई कमजोरी अनुभव नहीं करता अमृत ।

गायत्री आज मेरे पास आयी, मेरी शक्ति और प्रतिभा के सामने सिर झुकाकर आत्मसमर्पण कर दिया, परंतु मेरे उस पुराने प्रेम के प्रति आभार मानकर नहीं, अपनी बेटी के प्राणों की जरूरत के लिए । वासना न जी सके तो गायत्री और रंजीत दोनों की जिंदगी दूभर हो जायेगी – बस इसीलिए आज अमृत की जरूरत है ।

और दूसरी बातें गैरजरूरी आडंबर भर हैं । परंतु वासना को लेकर रंजीत और गायत्री सुख-संतोष से घर-बार चलाते रहे, तो उससे भला मेरा क्या फायदा होगा ? गायत्री का सुख अमृत के अकेले प्राणों में क्या नयी दीपशिखा जला सकेगा ?

जिस स्वार्थ से एक दिन गायत्री ने मेरी मुहब्बत ठुकरा रंजीत को बांहों में भर लिया था, आज उसी स्वार्थवश गायत्री मेरे पास आयी है, मेरे पास अपनी संतान की जिंदगी बचाने की खातिर । एक साधारण जानवर जैसी स्वार्थी है यह गायत्री ।

न सोचने की कोशिश के बावजूद काफी रात तक अमृत गायत्री की बात ही सोचता रहा । जितना सोचता गया, गायत्री पर उतना ही ज्यादा क्रोध बढ़ता गया । गायत्री स्वार्थी है, गायत्री प्रवंचक है, गायत्री बेवफा है । अगर कोई मौका पाकर अमृत गायत्री से कोई मारात्मक बदला ले, तो उसमें कण भर भी अन्याय नहीं है । जो हमारे साथ नीच बर्ताव करे, हमें भी उससे नीच बर्ताव करके अपना बदला चुका लेना चाहिए ।

काफी रात बीतने पर ही अमृत को नींद आ पायी ।...

कई दिन निकल गये । हर दिन गायत्री शाम को एक बार आती और वासना की खबर लेकर चली जाती । कभी-कभी अमृत से बात भी करती, परंतु दोनों भरसक एक-दूसरे से बचने की कोशिश करते । और बात करने पर भी बड़े संयत भाव से करते, जिससे कोई बहस न छिड़े ।

इन कई दिनों में अमृत ने गायत्री पर नये ढंग से चोट करने की और उसका अपमान

करने की कोशिश की। शायद इसी बात को समझकर गायत्री ने कोशिश की कि अमृत को वह मौका न मिले।

वासना को असाध्य व्याधि हो गयी थी। चार साल की नन्हीं बच्ची को ऐसी बीमारी क्यों हुई और कैसे हुई, यह समझने में अमृत को काफी कठिनाई हुई। परंतु असाध्य होने के कारण ही उस बीमारी का इलाज करना अमृत को पसंद भी आया था। दूसरे डाक्टर जहां हार चुके हैं, वहीं अमृत अपनी दक्षता प्रमाणित करेगा। गायत्री को समझा देगा कि विशल्यकरणी का अधिकारी वह है या रंजीत।

एक सप्ताह बीत गया।

वासना की हालत में दिखने लायक कोई सुधार न होने के कारण अमृत कुछ सोच में पड़ गया था। रोग की पहचान में कहीं गलती तो नहीं हुई ? नहीं, इसमें समय लगेगा। हो सकता है, दो-तीन माह या उससे भी ज्यादा लग जाये। परंतु चाहे जो भी हो, वासना को वह चंगा अवश्य करेगा। नहीं तो, वह गायत्री को जिस तरह हराना चाहता है, वैसे हरा नहीं पायेगा। वासना को जिलाकर वह गायत्री को जिंदगी भर के लिए आभारी बनाये रखेगा। वही अमृत की सबसे बड़ी जीत होगी।

अचानक गायत्री उसके कमरे में आ गयी। अमृत ने उसके आने की कोई आशा नहीं की थी।

"अमृत भैया, तुम यहां हो ?"

"बैठो, गायत्री !"

गायत्री बैठ गयी और अमृत के चेहरे की तरफ देखते हुई बोली – "वासना कैसी है ? उसके चंगा होने की संभावना दिख रही है ?"

अमृत ने धीमे से कहा – "वासना बहुत धीरे-धीरे चंगी होगी। हमें धीरज रखना होगा।

गायत्री मौन रही।

अमृत ने पूछा – "रंजीत की कोई चिट्ठी आयी है क्या ?"

"हां। लिखा है कि उनकी भी तबीयत थोड़ी खराब हो गयी है। हो सके तो आने के लिए लिख भेजा है।"

"तो फिर तुम्हारा जाना ही अच्छा रहेगा। वासना को आंखों से देखने के सिवा तुम और कुछ तो कर नहीं सकती। तुम्हारे न रहने पर रंजीत को क्या असुविधा नहीं होगी ?"

गायत्री ने कुछ नहीं कहा।

अमृत ने एक सिगरेट जलाकर गायत्री की ओर देखा। उसका चेहरा पहले जैसा ही खूबसूरत बना हुआ है।

अमृत ने नजर दूसरी ओर फेर ली।

"अगर नाराज न होओ तो एक बात कहूं, अमृत भैया !"

अमृत ने गायत्री की ओर नजर उठाकर देखा।

"इधर कई दिनों से मैं वासना को देखने के लिए ही नहीं आयी, तुम्हें देखने के लिए भी आती रही हूं। मैं जानती हूं, अपनी इस अकेली जिंदगी को लेकर तुम जरा भी सुखी नहीं हो। हो सकता है, इसके लिए मैं ही उत्तरदायी होऊं। परंतु अब तुम्हें सुखी बनाने का कोई उपाय मेरे पास नहीं है। सिर्फ सिगरेट पीकर और बीमारों से माथा खपाकर कोई आदमी सुखी नहीं हो सकता।"

अमृत बोला – "मैं जिंदगी में सुख ही ढूंढ रहा हूं, यह तुमसे किसने कहा ?"

"पहले मुझे कह लेने दो। मैं तुम्हें पहचानती हूं। सुख न चाहे, ऐसे आदमी का जन्म आज तक नहीं हुआ है। मुझ पर गुस्सा कर तुम जिंदगी भर अकेले दुखी बने रहोगे, इसका भला मतलब क्या है ?"

"और कुछ कहना है ?" अमृत ने पूछा।

"आज तुम्हारे पास सब कुछ है – धन, ऐश्वर्य, प्रसिद्धि-ख्याति, घर-बार, अच्छा स्वास्थ्य। इतने बड़े मकान में किसी लड़की को थोड़ी-सी जगह देने से तुम इनकार क्यों कर रहे हो ? मैं तो इसका कोई कारण नहीं देखती ?"

अमृत हंसा नहीं। गायत्री के चेहरे की ओर देखते हुए गंभीरता से बोला – "मैंने कब कहा कि मैं शादी नहीं करूंगा ? शादी करने के लिए ही तो घर-बार बनाया है। इस बारे में दूसरे की सलाह न मिलने से भी काम चल जायेगा।"

गायत्री लाल हो उठी। अमृत गायत्री को एक तिनके के बराबर भी मूल्य नहीं देना चाहता। अमृत गायत्री की याद में बिना शादी किये बैठा नहीं रहेगा। अमृत की जिंदगी में गायत्री के लिए कहीं कोई जगह नहीं। उसे अमृत बिलकुल भूल चुका है।

गायत्री को लगा, डाक्टर अमृत फुकन संपूर्ण अपरिचित कोई दूसरा आदमी है। डाक्टर के यहां गायत्री बिलकुल अवांछित अतिथि है।

उसे उसी क्षण वहां से निकल जाने की इच्छा हुई।

बड़ी तकलीफ से गायत्री ने कुछ क्षण बाद कहा – "तुम्हारी बात सुनकर अच्छा लगा। मैं तो तुम्हारे बारे में कुछ और ही सोच रही थी।"

अमृत बोला – "अब तो शायद वासना को देखने आये बिना काम चल जायेगा ? रंजीत तुम्हें अपने पास चाहता है, हो सके तो तुम चली जाओ।"

"जाऊंगी, तुम्हें और ज्यादा परेशान नहीं करूंगी। पर तुम जिस लड़की से शादी करना चाहते हो वह है कौन, क्या बतलाओगे ?"

थोड़ा हंसने का भाव दिखाकर अमृत बोला – "अरुणा नाम की मेरे अस्पताल में एक नर्स है। वह लड़की बुरी नहीं है।"

गायत्री का चेहरा पीला पड़ गया।

डाक्टर अमृत फुकन एक सामान्य-सी नर्स से शादी करेगा ? क्या दिमाग फिर गया है इसका ?

किसी तरह आत्म-संवरण कर गायत्री ने कहा – "शादी कब हो रही है ?"

"अरुणा अभी यह बात नहीं बता सकती। कुछ दिन बाट जोहना होगा। अगर इसी बीच अरुणा किसी के साथ भाग न जाये, तो अगले साल शादी का इंतजाम करने की सोच रहा हूं।"

अब गायत्री की जबान बंद हो गयी।

उसने सोचा, उससे बदला लेने के लिए ही यह इंतजाम अमृत कर रहा है।

हंसने का करुण प्रयास करते हुए गायत्री ने कहा – "जो जगह मेरी हो सकती थी, उस जगह क्या तुम एक नर्स को बिठा सकते हो, अमृत भैया ?"

"जो तुम कर सकीं, वह मैं नहीं कर सकूंगा, भला तुम ऐसा क्यों सोचती हो ? अरुणा के बारे में कुछ बदनामी फैली थी – घर और परिवार से खदेड़ी जाकर नर्स बनी है। नर्स अच्छी होती है या बुरी, इसका विचार दूसरे करेंगे। परंतु अरुणा मेरे किसी कमरे में जगह बना ले, तो मैं दरवाजा बंद करने का कोई कारण नहीं देखता।"

"तो फिर यह साइनबोर्ड क्यों लगाया है – ऐंजिल्स और वीमेन के लिए जगह नहीं ?"

हंसकर अमृत बोला – "ए नर्स इज नाइदर एन ऐंजिल नॉर ए वीमेन – नर्स न देवदूत है, न औरत।"

गायत्री को अमृत गेट तक छोड़ने आया। अरुणा नाम की किसी नर्स को अमृत ने कभी नहीं देखा था। पर उसने सोचा, गायत्री को चोट पहुंचाने के लिए एक झूठी बात बनाकर कहना कोई अपराध नहीं है।

गायत्री ने शायद सोचा था, उसकी याद में घुलता हुआ अमृत शादी किये बगैर जिंदगी गुजार देगा। विरही बनकर दुख-दर्द के बीच आहें भरता जिंदगी बिताता रहेगा। और एक दिन गायत्री से कहेगा – 'आज रात तुम यहीं रह जाओ, गायत्री ! कितनी सारी बातें मुझे तुमसे करनी है।' परंतु अमृत तो खुद आगे बढ़कर गायत्री को गेट तक पहुंचा गया।

उसे विदा देते हुए सिर्फ इतना ही कहा – "वासना के लिए तुम फिक्र न करना। तुम शिलांग जा सकती हो। वासना की हालत के बारे में मैं रंजीत को पत्र देकर सूचित करता रहूंगा।"

घोर अपमान पाकर गायत्री चली गयी।

अमृत को आत्म-गौरव का अनुभव हुआ। गायत्री जैसी लड़की से ऐसा ही बर्ताव करना उचित है। यह बात सोचकर अमृत को मन ही मन अच्छा लगा।

खाना खाने के बाद काफी देर तक अमृत घर के सामने के लान में टहलता रहा। आसमान में धीमी रोशनी के कुछ तारे टिमटिमा रहे थे। सन्नाटे-भरी रात का एक मोहक आवेश चारों ओर फैला हुआ था।

पर अमृत के मन में शांति नहीं थी। हो सकता है, कल या परसों गायत्री शिलांग चली जाये, रंजीत के पास। आज अमृत से वह जो अपमान और चोट लिये जा रही है, वे रंजीत और उसके दांपत्य सुख को जरा भी छू नहीं पायेंगे। शिलांग पहुंचते ही गायत्री सब कुछ भूल

जायेगी और रंजीत की छाती में समाकर कहेगी, वासना अगर चंगी न भी हो तो अफसोस न करना। आज रात ही वासना की जगह भरने के लिए आओ, नये मेहमान को बुलायें।

बेवजह फिर अमृत को गुस्सा चढ़ आया। वासना से भी ज्यादा अपना गायत्री का रंजीत है। वासना मर भी जाये तो भी गायत्री रंजीत को बराबर प्यार करती रहेगी। गायत्री की दुनिया में डाक्टर अमृत के लिए कोई जगह नहीं। गायत्री जैसी स्वार्थी लड़की हंसते-हंसते अमृत के समग्र व्यक्तित्व को, सारी अनुभूतियों को अपमानित कर चली गयी और अमृत दानी सज्जन की भांति अपनी सारी विद्या-बुद्धि लगाकर, अपनी सारी दक्षता-प्रतिभा नियोजित कर, उसी गायत्री की बेटी वासना को फिर जिंदगी के बीच लौटा लाने की साधना में जुटा हुआ है।

गायत्री क्या सोचेगी मेरे बारे में ? यही न कि जिस अमृत का मैंने खुलकर अपमान किया, वही अमृत आज रुपये के लिए, मेरी लड़की का इलाज करके उसे चंगा करने से इनकार नहीं करता। गायत्री सोचती है, मैं इंसान नहीं, अपमान का मुझे बोध नहीं, आत्मसम्मान का बोध नहीं, मैं हैवान हूं। मैं सिर्फ एक टैक्सी हूं, जो किराया देगा उसे ही चढ़ाकर उसका जहां जाने का मन हो, वहां जाना पड़ेगा। अपनी कोई राय, अपना कोई निर्णय नहीं है।

नहीं, नहीं, वासना के इलाज का भार लेकर मैंने बहुत बड़ी गलती की। गायत्री और रंजीत को मुझे लौटा देना चाहिए था। और तब गायत्री की समझ में आ जाता, उसका भी अपना व्यक्तित्व है।

गलती हो गयी। अपनी विद्या-बुद्धि को गायत्री की स्वार्थ-सिद्धि में लगाना मेरे व्यक्तित्व का अपमान है।

वह जितना ही सोचता रहा, अपने ऊपर उतनी ही धिक्कार की भावना जागने लगी। अपने ऊपर बेवजह गुस्सा चढ़ आया। व्याकुल-सा होकर अमृत टहलने लगा। परंतु करे क्या, कुछ तय नहीं कर पाया।

इसी बीच अमृत कई सिगरेटें फूंक चुका था, सीटी बजाने की कोशिश भी की थी, बीच-बीच में ठहर जाता, फिर तेज कदम चलाने लगता। पर उसे लगा, उसका अशांत चित्त बहुत ज्यादा अधीर हो उठा है।

अमृत को अंदर आया देख खानसामा ने पूछा – "खाना लगा दूं, साब ?"

खाना खाने की इच्छा न थी, फिर भी यों ही दो-चार कौर मुंह में डाल लिया। इसके बाद सिगरेट पर सिगरेट फूंकता गया। पंखा चल रहा था, फिर भी अमृत को गर्मी लग रही थी।

वह फिर बाहर निकल गया।

चारों ओर सन्नाटा। अमृत की दुनिया के लोग भी सोये पड़े थे। दूर की बत्तियां ज्यादातर बुझ चुकी थीं, बहुत दूर-दूर दो-एक बत्तियां जल रही थीं।

बीमारों के कमरों में धीमे उजाले की बत्तियां जल रही थीं।

वह धीरे-धीरे बीमारों के कमरे की ओर चला गया।

तब रात के ग्यारह से ज्यादा बज चुके थे।

दरबान ने सलामकर उसकी राह छोड़ दी। एक नर्स ड्यूटी पर थी। इतनी रात गये अमृत को आया देख वह कुछ विस्मित-सी होकर उसकी ओर देखने लगी।

सभी बीमार चुपचाप पड़े हुए थे। दो-एक को शायद नींद भी आ गयी थी। बीमार सभी लड़के-लड़कियां थे।

बड़ी सावधानी से कदम रख रहा था अमृत, जिससे किसी की नींद में कोई खलल न पड़े। नींद ही बीमार की सबसे बड़ी दवा है। धीरे-धीरे अमृत बीमार बच्चों के पास से गुजरता गया। नर्स कुछ परेशान-सी हुई और कुछ पूछने की हिम्मत न कर वह अमृत के पीछे-पीछे चलने लगी।

अमृत वासना के कमरे में गया। नर्स भी साथ गयी। दोनों मौन थे। उनके कदमों से भी कोई आहट नहीं हो रही थी। सिर्फ सोये हुए बीमारों की सांसों की धीमी आवाज से रात का वह सन्नाटा जरा-सा कांप-कांप उठता था।

अमृत वासना के पास आकर खड़ा हो गया। बिलकुल सफेद धुले बिस्तर पर पीली पड़ी चार साल की बीमार बच्ची पड़ी हुई है। उसे नींद नहीं आयी थी, कुछ छटपटा-सी रही थी। पास आकर नर्स मच्छरदानी को उठा समीप ही खड़ी रही।

कुछ मिनट अमृत वासना के चेहरे की ओर काफी ध्यान से देखता रहा। वासना के चेहरे पर सिर्फ गायत्री की निशानी नहीं, रंजीत की भी आकृति की निशानी साफ झलक रही थी। वह सोच रहा था – यह एक नन्हीं गायत्री है। यह चंगी होगी, बड़ी होकर एक नयी गायत्री बनेगी, और किसी अमृत को प्रवंचित कर किसी रंजीत को अपना लेगी।

और कुछ देर एकटक देखते रहकर अमृत धीरे-धीरे वहां से चला आया। नर्स ने मच्छरदानी को फिर ठीक से खोंस दिया।

वासना की तबीयत पहले से कुछ सुधर रही है। नींद न आने पर भी अब वह चुपचाप रहती है, पहले जैसे चीख-पुकार नहीं करती। वासना ठीक हो जायेगी।

अमृत निकलकर बरामदे में आ गया। नर्स भी पीछे-पीछे आयी।

"नर्स...!"

"जी, सर!"

"वासना ने, यानी इस बच्ची ने कुछ खाया था?"

"जरा-सी बार्ली खिलायी थी। खाना चाहती ही नहीं।"

"ठीक है, तुम दूसरे बीमारों के पास रहो। मैं आज जरा इसे आब्जर्व करूंगा।"

"सर, क्या अभी?"

"हां, तुम रेस्ट भी ले सकती हो। मैं आज कुछ देर यहां रहूंगा।"

"रात के पहले हिस्से में मेरी ड्यूटी है, सर!"

"ठीक है। मेरे साथ अब आने की जरूरत नहीं। तुम वार्ड में जाओ।"

'गुडनाईट' कहकर नर्स आहिस्ता-आहिस्ता वहां से चली गयी।

कुछ सोचता हुआ अमृत थोड़ी देर बरामदे में खड़ा रहा। फिर क्लिनिक की लेबोरेटरी में घुस गया।

लेबोरेटरी के एक कमरे में कीमती दवाओं की आलमारियां कतारों में सजी थीं। वह स्टाक-रूम था।

अमृत ने कमरे के दरवाजे की कुंडी अंदर से लगा दी और बड़ी सावधानी से दवाओं की बोतलों और पैकेटों पर नजर डालता गया।

एक आलमारी पर कागज का एक लेबल चिपका था – पायजन – विष। उस आलमारी के पास अमृत कुछ देर खड़ा रहा। फिर चाबियों के गुच्छे की चाबी से आलमारी खोल एक शीशी उसने निकाल ली और उसे हाथ में लेकर कमरे के चारों ओर नजर डाली – नहीं, कोई नहीं है। आधी रात, निस्तब्ध संसार। सिर के ऊपर जलती बत्ती के प्रकाश में उसने फर्श पर पड़े अपने साये की तरफ देखा। साया बिलकुल छोटा-सा हो गया था।

मेज के पास के स्टूल पर ही वह बैठ गया और जहर की शीशी मेज पर रख दी।

एक ऐसी ही रात को वासना की मां गायत्री ने मेरा तिरस्कार कर, मुझसे विश्वासघात करके रंजीत को अपने सीने में भर लिया था, और वासना उसका जीता-जागता सबूत है। मैं भी विश्वासघात करूंगा। गायत्री और रंजीत के मिलन के जीते-जागते सबूत – वासना की जिंदगी मेरी मुट्ठी में है। गायत्री शांति से सोती रहे, रंजीत शांति से सोता रहे, मैं वासना की चिरशांति का इंतजाम करूंगा। एक बार गायत्री भी समझ ले, मैं किराये की टैक्सी नहीं हूं, एक इंसान हूं – अपमान का बदला लेना मैं भी जानता हूं।

क्या ऐसा करना पाप होगा?

मगर जिंदा रहकर, जवान होकर, वासना मेरे जैसे ही किसी युवक को प्रवंचित नहीं करेगी, इसका क्या ठिकाना? और अगर पाप हो भी, तो भी गायत्री का दर्प चूर करने के लिए मुझे यह काम करना ही होगा।

गायत्री कल वासना का निष्प्राण शरीर सामने रखकर छाती पीट-पीटकर रोयेगी। रंजीत दौड़ा आयेगा – और मैं उनकी नजरों से परे जी भर कर आनंद मनाऊंगा।

अमृत उठ खड़ा हुआ और जहर की शीशी अपने हाथ में ले ली।

सिर्फ दो बूंदें – बस वही काफी होंगी वासना के लिए। जो दवा वह खा रही है, उसी में दो बूंद मिला दूंगा। और उसकी जीभ पर दवा पड़ते ही जीभ ऐंठ जायेगी।

शरीर की चीर-फाड़ होगी। मगर उसे पकड़ने की सामर्थ्य किसी में नहीं होगी। डाक्टर अमृत के प्रेसक्रिप्शन में गलती निकालने वाला अब तक कोई पैदा ही नहीं हुआ।

दरवाजे-खिड़की बंद थे। कमरे में अमृत को बड़ी गर्मी लगी, जैसे उसका दम घुट जायेगा। दरवाजा खोलकर अमृत झट से कमरे से निकल गया।

बाहर की दुनिया पहले से भी ज्यादा सुनसान हो गयी थी। तारे मानो और भी ज्यादा निष्प्रभ हो गये थे।

अमृत ने बाहर की तरफ देखा। लगा, आसमान काफी दूर हट-सा गया है। बड़ी झीनी-सी हवा चल रही है। घना अंधेरा ठोस-सा होकर दूर की बत्तियों पर टूटा पड़ रहा है।

जहर की शीशी को मुट्ठी में पकड़े अमृत बरामदे से वासना के कमरे में चला गया।

जहर की शीशी हाथ में लिये अमृत वासना के बिस्तर के पास जा खड़ा हुआ। छोटी-सी मेज पर वासना की दवा की शीशी, प्याली, चम्मच, और एक थर्मामीटर चुपचाप पड़े हुए थे।

अमृत ने कमरे में चारों ओर देखा। खिड़की खुली थी, मगर झीने-से परदे के उस पार अंधेरे के सिवा कुछ और दिखायी नहीं पड़ता था।

निरुद्देश्य जिंदा रहने का कोई मतलब नहीं होता। उसने सोचा, आखिर मैं जिंदा हूं ही क्यों? किसके लिए जिंदा हूं? दुनिया भर के जाने-अनजाने रोगियों को चंगा करने भर के लिए? रुपया कमाने के लिए? सिर्फ रुपया कमाने के लिए क्या इंसान जिंदा रहता है? रुपया कमाना कितना सरल और साधारण है!

जिंदा रहने के लिए इंसान का इतना आग्रह क्यों है? जिंदा रहने से तो मुझे अब ऊब हो रही है। मेरे जैसे एक आदमी के जिंदा रहने का भला मतलब भी क्या है, जिसका कोई लक्ष्य ही नहीं? वासना जैसी एक लड़की के जिंदा रहने का क्या अर्थ है?

अमृत ने बड़े अचरज से अनुभव किया कि आज उसे मरने की इच्छा हो रही है। जिंदा रहे गायत्री – जिंदा रहे रंजीत। मगर यह वासना?

मेज पर रखी दवा की शीशी अपने हाथ में लेकर अमृत कर क्या रहा है? बिना कुछ समझे, उसने उसका कार्क खोल डाला। सोचा, इस दवा के साथ दो बूंद जहर मिला दूं तो वासना का कण भर का जीवन समाप्त हो जाये। गायत्री ने मेरी समग्र सत्ता का अपमान किया है, उसका बदला आज मैं जरूर लूंगा।

झट जहर की शीशी का कार्क खोलकर अमृत ने वासना की दवा की शीशी में कुछ जहर की बूंदें डाल दीं। और बुदबुदाया – "गायत्री! डाक्टर अमृत के अपमान का यह नतीजा है।"

...अचानक अमृत ठहर गया।

अमृत तो डाक्टर है। अमृत तो इंसान नहीं, डाक्टर है। मैं डाक्टर हूं। बीमार को जीवन देना मेरा काम है। मृत्यु से इंसान को बचाना मेरा धर्म है। नहीं, नहीं, मैं इंसान नहीं। मैं डाक्टर हूं – डाक्टर। वासना गायत्री की बेटी नहीं, वासना एक बीमार लड़की है। डाक्टर अमृत असहाय मानव-शिशु वासना को जीवन-दान देगा। इस दान का महत्व कितना अधिक है!

डाक्टर अमृत का तो गायत्री नाम की किसी लड़की ने अपमान नहीं किया, कर ही नहीं सकती। डाक्टर अमृत किसी गायत्री को नहीं पहचानता। पहचानता है – वासना को। डाक्टर

इंसान नहीं होता, डाक्टर के न तो शत्रु-मित्र होते हैं, न अपने-पराये।

बिना कोई आवाज किये दरवाजा खोलकर नर्स अंदर आयी। वासना के बिस्तर के पास हाथ में दो शीशियां लिये अमृत को खड़ा देख नर्स कुछ स्तब्ध-सी रह गयी।

अबोध्य, अवाक् दृष्टि से अमृत ने नर्स की ओर ऐसे देखा जैसे वह उसे पहचानता ही नहीं।

कुछ डरती-सी नर्स ने कहा – "सर!"

"हूं ?" मानो अमृत की चेतना लौट आयी।

"वासना को दवा खिलाने का समय हो आया है, सर...! साढ़े बारह बजे खिलानी है।"

उसने वासना के बिस्तर की मच्छरदानी उठा दी। वासना को नींद नहीं आयी थी। उसने आंखें खोलकर देखा। बत्तख की आंखों जैसी छोटी-छोटी, सरल, तेजहीन आंखें।

एक बार पास से वासना को देख लेने की अमृत की इच्छा हुई। वह जरा-सा झुककर वासना के चेहरे के पास अपना सिर ले गया।

वासना ने अमृत को पहचान लिया। क्षीण, दुबली आवाज में उसने पुकारा – "मामाजी! मामाजी!"

अमृत के रोंगटे खड़े हो गये।

दवा खिलाने की प्याली और चम्मच हाथों में लिये नर्स बोली – "दवा की शीशी इधर दे दें, सर! एक खुराक खिला दूं।"

नर्स की बातों से अमृत सहसा चौंक पड़ा। दवा तो नहीं रही – सब कुछ जहर हो गया है। उसने अबोध्य, तेज दृष्टि से नर्स के चेहरे पर नजर डालकर कहा – "नर्स, यह दवा और खिलाने की जरूरत नहीं। मैं नयी दवा दूंगा वासना के लिए।"

नर्स ने प्याली-चम्मच रखकर फिर एक बार अमृत के चेहरे की ओर देखा। उसके बाद मच्छरदानी को गिरा देने हेतु वह वासना के बिस्तर के समीप चली गयी।

"मच्छरदानी गिराने की जरूरत नहीं, नर्स! तुम जाओ, मैं यहां हूं न...।"

कुछ भी कहे बगैर नर्स चुपचाप कमरे से निकल गयी।

अमृत ने वासना के सिर पर हाथ रखकर पुकारा – "वासना!"

"मामाजी!"

मां का सिखाया हुआ संबोधन।

परंतु स्नेह कितना गहरा है!

काफी देर तक अमृत वासना के चेहरे को एकटक देखता रहा।

फिर हाथ की दोनों शीशियां मेज पर रख खिड़की से बाहर देखता हुआ अपने-आप से कहने लगा, वासना को पूरी तरह चंगा होने में तीन-चार महीने लग जायेंगे। इस अवधि में हो सकता है, जिंदा रहना मेरे लिए आसान ही हो जाये।

अमृत ने वासना की मच्छरदानी गिरा दी और बिस्तर के पास से खिड़की के पास हट आया।

दूर चमकने वाले अकेले तारे की ओर देखते हुए अमृत यों ही बोल उठा – "शायद रात ज्यादा हो गयी है। कितना गहरा सन्नाटा फैला हुआ है!"

अमृत ने अपने हाथ की दोनों शीशियां दूर के डस्टबिन में फेंक दीं। और धीरे-धीरे अपने घर की ओर चल पड़ा।

अस्पताल के रोगियों की असहाय सांसें गहरी होकर आधी रात की छाती में मिलती जा रही थीं। उस हवा में अमृत ने जीवन के एक अक्षय आश्वासन का अनुभव किया। उसका मन बहुत हल्का-सा लगा।

कलं[1] आज भी बहती है

बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य

सोने की कलं – चांदी की कलं – प्रवाह की लहर-लहर में नाचती है। चांदी दमकती है, चांद झांकता है, रात को केतकी चिड़िया पुकारती है। किनारे की रेत चांदनी की मस्ती में थिरकती है। ओसकणों से कोमल धरती शीतल हो जाती है। शीतल-सी धरती के आस-पास के वनों में हजारों शाल हंसा करते हैं। धरती के एक ओर दूर गांवों के घर पुकारते हैं। इधर पास में फैली सड़क नगर की खोज में दौड़ पड़ती है।

बीच-बीच में मुड़-मुड़कर चक्कर काटती कलं का पानी सड़क पर मचलता हुआ बहता है। मनिस के घाट सुबह-शाम लोगों की बातों से मुखर हो उठते हैं। सुबह कलं में ग्रामीण लोग नहाते हैं। शाम को घड़ों की डुबकियां लगती हैं। भरी दोपहरी में अतीत गुनगुनाता है। कैसा है वह मादक स्वर?

मोर पारे-पारे रजार राजचकी, हेजार बाहु रे बल?
कलङर पारटे देले देवालय मनिसर गढ़नर धन।
कलङर कलीका बर
तारे तलते गदाधर हेजार घर।
कलं आजिओ बय, अतीत पिछते थै।
(यानी मेरे किनारे राजा का राजसिंहासन है, जिसमें हजार भुजाओं का बल है।
कलं के तट पर देवालय-मंदिर है, जिससे मनिस को कमाई की रकम मिले।
कलं का काला वटवृक्ष —
जिसके तले गदाधर हेजार के घर हैं —
कलं आज भी बहती है, अतीत को पीछे छोड़ती हुई।)

बूढ़े ठगीराम के मन में बार-बार भावनाओं की तरंगें उठती हैं – कलं आज भी बहती है। बचपन से आज अड़सठ साल की उम्र तक वह कलं का रंग-ढंग देखता आया है। ऐसा कोई दिन, कोई महीना नहीं, जब कलं की बात कभी न कभी उसको याद न आयी हो। दो दिन कहीं बाहर जाने पर भी, रह-रहकर याद आती घाट के पास की सुपारी-पान की वह बाड़ी। मां-बाप-भाई की याद आती, और याद आती अड़ोस-पड़ोस के सैकड़ों ग्रामवासियों का दिन

---

1. ब्रह्मपुत्र की एक धारा का नाम।

भर आना-जाना, काम-धाम। साथ ही नाती-पोतों के जमाने तक जिसे देखता आया है, जिसे पाता आया है, जिसे ढो लाया है, जिसमें डुबकियां लगायी हैं, याद आता है कलं का वह सुबह-शाम का पानी। पानी के चारों ओर कलं की हहराती हवाओं का शरीर शीतल करने वाला स्पर्श याद आता : सुबह हल ले गांव की लंबी, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी से चलते समय जंगल से झांककर दिखायी दे, फिक् से हंसकर फिर जंगलों की ओट में हो जाती वह कलं।

हल से जमीन जोतकर वह उसमें रस-संचार करता। जल्दी-जल्दी उसमें बीज बोया जाता, और कार्तिक बिहु[1] के आने के साथ-साथ बोये गये धान के पौधे लहराने लगते। कलं-तट की जमीन के मधुर सुवास से दिशाएं महक उठतीं। लक्ष्मी अगहनी हवाओं की लहर-लहर में नाचने लगती। ग्रामवासी लक्ष्मी को बटोरकर अपने-अपने खलिहानों में भर लेते। आनंद के मारे घर-घर में, हर नामघर में, मेजि[2] जलाये जाते, भोज होते : भोग के बीच मनिस की जिंदगी रंग-रस से भरपूर हो जाती। नौजवान ठगीराम हंस पड़ता, नाचता, गीत गाता।

बचपन से जवानी तक उसकी समूची जिंदगी मधुर-मधुर स्मृतियों से भरी हुई है। कलं-तट के आम-जामुन-कटहल, लेतेकु – पनियल आदि फलों के जायके याद करके उसकी लालची जीभ से लार टपकती रहती। मुट्ठी भर बासी भात खाकर गाय चराने के लिए जाते समय वह हमेशा देखता जाता, किसकी बाड़ी में आम पके हैं, किसके पेड़ में जामुन। भैंस की पीठ पर सवार होकर कभी-कभी भैंस चराता, कभी-कभी रेल से बाप के साथ नगांव शहर को जाता और कभी...

बचपन इसी तरह से निकल गया। फिर कलं में बाढ़ की भांति उसके शरीर में बाढ़ की एक लहर आयी। शरीर-मन नयी उमंग से नाच उठे। दाव लेकर बांस की झाड़ियों में बांस काटने के लिए जाने पर भी थकावट की कोई परवाह किये बगैर वह एकांत मन से गीत गाने लगता :

बांहरे आगलै चाइनो पठियालों, बांहर कोन डालि पोन ?
शपथ दि सुधिलो कोवा, प्राणेश्वरी, तोमार मरमियाल कोन ?

(यानी – बांस के सिरे पर नजर डाली, बांस की सीधी डाली है कौन ? शपथ देकर पूछा, बताओ प्राणेश्वरी, तुम्हारा प्यारा है कौन ?)

सिर्फ बांस काटने में क्यों, गाय चराने जाते हुए, रात को पेपा[3] बजाते हुए, घाट पर जाकर नदी में डुबकी लगाते हुए, अपने आप मन में जाने कितने सारे गीत उभर आते, कितने सारे गीत उभरते-उभरते मन ही में विलीन हो जाते। भरा हुआ चेहरा, गठा बदन, होंठों पर सरल, स्वस्थ मुस्कान लिये ठगीराम जिधर निकलता, उधर ही युवतियों का दिल जीत लेता। किशोरियों की बैठक में, पनघट पर पदुमी, सोनपाही आदि को दिन में एक-न-एक बार वह

---

1. असम के तीन बिहु पर्वों में एक, जिसमें तुलसी के बिरवे के नीचे दीपक आदि जलाये जाते हैं और प्रार्थना की जाती है।
2. माघबिहु के समय जलायी जाने वाली फूस की झोंपड़ी।
3. एक तरह की शहनाई।

जरूर दिख जाता। कलं को गवाह रखकर वे मुहब्बत के सपनीले बेल-बूटे काढ़तीं, किसी-किसी को उनमें कुछ उलझन भी हो जाती।

मगर ठगीराम तो ऐसा नौजवान न था जो उलझन में पड़ता। रूप-रंग में जैसा सुंदर था, मन भी वैसा ही साफ था। गांव में जो सबसे खूबसूरत किशोरी थी, उसी को वह फंदे में फंसाने की ठान चुका था। नाम था उसका सोनपाही। सोनपाही के आते, जाते, नहाते, घड़ा भरते, कहीं निर्जन जगह देखते ही वह झट से घिरते बादल की भांति सोनपाही के सामने आ निकलता। कभी कलं के घाट पर, कभी राह के सिरे पर तो किसी दिन भावना-घर[1] में। और सोनपाही को वह तरह-तरह से चिढ़ाता।

इशारों-इशारों में तरह-तरह से पूछता – "ओ री सोनपाही, भला इतनी जल्दबाजी में किसके यहां चली ? जरा हमसे भी तो बात करती जा !"

सोनपाही गुस्से से चेहरा लाल कर कहती – "बदमाश, बेशर्म कहीं का ! आते-जाते राह में भूत जैसा जहां-तहां आ धमकता है।"

ठगीराम हंसता हुआ कहता – "अरी सोनपाही, तुझे देखे बिना दिन भर दिल कैसा-कैसा तो करता है। अच्छा ही नहीं लगता, समझी न ?"

"उंह, मरा कहीं का। हंसी-मजाक करने की भला और कोई जगह नहीं मिली ?" यह कहकर गुस्से, लाज, अभिमान और शायद किसी अनजान प्राणमय आनंद में मुस्काती, रंग-बिरंगे आवेग के रूप-रंग दिखाती सोनपाही धीरे-धीरे उसकी आंखों से ओझल हो जाती। ठगीराम फिर किसी दूसरी ओर तेजी से गीत गाता चल पड़ता –

बर धान लेचिया, बानिबि केतिया, डलार आगत उरिब तुंह
तोमाक खुजिबलै गलो हेंतेन लाहरी, मइ हलों दुखीयार पो।

(यानी – बर धान (शाली धान) लच्छों में है, उसे कूटेगी कब ? डाला (बांस का गोल सूप) के सामने उड़ेगा भूसा, तुम्हें ढूंढ़ने हम जाते प्रिये ! पर क्या करें हम हैं बेटे गरीब के।)

.. दिन बीतते गये। एक दिन नदी-घाट पर सोनपाही सचमुच पूछ बैठी – "अरे ओ ठगी, तू जो हरदम मुझे राह-घाट में जहां-तहां परेशान करता है, तू क्या मुझसे शादी करेगा ?"

ठगी ने दुष्टता से रूठने के लहजे में कहा – "उंह ! भला सुनो न इसकी बात ! न जाने तेरी आंखें किस छकड़ा नौजवान पर हैं।"

"दुत् ! अरे ! गोसांई की शपथ, बता न, बता जरा !"

"क्या सचमुच कह रही है ?" ठगी ने आशा से पूछा।

"कलं को गवाह मानकर कह रही हूं।"

"करूंगा।" उसने सिर्फ एक ही शब्द कहा। और कहकर झट नन्हें बछड़े जैसा खुशी के मारे कूदता-लपकता सोनपाही की आंखों से ओझल हो कहीं निकल गया।

दो महीने बाद उनकी शादी हो गयी।

---

1. वह स्थान जहां शंकरदेव-माधवदेव तथा उनके शिष्यों आदि द्वारा रचित नाटकों का मंचन होता है।

शादी के बाद भी वह सोनपाही को परेशान करने से बाज नहीं आता। मां-बाप के घर पर न होने पर मौका देखकर वह घर के अंदर घुस जाता और सोनपाही को चिढ़ाता हुआ गाता –

चाउल छिटा मारि पार बंदी करों, शालत बंदी करों हाती।
बर घरर भितरत मइनाक बंदी करों, देहे करे उजनि-भाटी ॥

(यानी – चावल बिखेरकर कबूतर को बंदी बनावें – हाथीशाल में बंदी बनायें हाथी, बड़े घर के अंदर मैना (प्राया) को बंदी बनावे, देह में मची उथल-पुथल।)

सोनपाही रंग और गुस्से से अधीर हो चेहरे के आकाश से तुरंत धूप-बारिश शुरू कर देती। ठगीराम खुशी से झूमकर खुले दिल से तालियां बजा-बजाकर हंसता रहता।

उनके जमाने में यौवन का मौसम खुला होता था, प्यार में कोई मैल नहीं, हास और संभोग की एक धारा-सी बहती। एक-दूसरे को छोड़कर रहने की बात वे सोच भी नहीं सकते थे।

इसी तरह हंसी-खुंशी के बीच जिंदगी के तीस अगहन निकल गये। ठगीराम आधी जिंदगी पार कर आया, कलं तट पर खिले 'एजार' फूल उसके प्यार में, उसकी हंसी में, उसकी नजरों में नाचते रहते। उसके कोप से अधीर-अस्थिर हो झर-झर पड़ते। कलं के जल में डुबकियां लगा-लगाकर नित्य आनंद के सपने देखा करते।

पर अचानक एक दिन कलं का रूप बदल गया। उसके परिवार में मौत की आंधी चल पड़ी। उसके बाप, मां, बड़ा भाई – सभी हैजे से चल बसे। सिर्फ एक ही परिवार में नहीं, गांव के सैकड़ों परिवारों में, समीप के भी गांवों में हैजा फैलने की बात उन सबने सुनी। कलं का शीतल जल जहर-सा बन गया। राह-बाट निर्जन-से हो गये, सबके घरों में रुदन का हाहाकार गूंजने लगा। ठगीराम ने घर-घर जाकर जिसकी जितनी हो सकी, मदद की। शवों को श्मशान ले जाकर चिता पर चढ़ाने से लेकर शहरी डाक्टरों से सुई दिलवाने के इंतजाम तक सबमें अगुवाई में जुट गया।

एक दिन शाम को दूर के एक गांव से शहरी डाक्टर मणि बरा को साथ ले कलं के किनारे-किनारे होकर आते-आते उसे काफी रात हो गयी। घर पहुंचकर डाक्टर को बैठक में एक चटाई पर बिठाकर वह अंदर गया। चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा।...

"सोनपाही!"

कोई जवाब नहीं।

"ओ माली!" उसने लड़के को पुकारा।

फिर भी कोई आवाज नहीं।

हो क्या गया? एक बार पीछे की ओर निकलकर पीछे के आंगन से बड़ी ऊंची आवाज में उसने पुकारा – "अरे ओ, तुम सब कहां चले गये रे?"

दो-तीन बार चीखने-पुकारने के बाद किसी ने कहीं से आवाज दी। कुछ देर रुककर उसने समझ लिया कि आवाज सोनपाही की ही है। आखिर सोनपाही मरी नहीं है, जिंदा है, समझकर

उसके दिल में चैन आया। चूल्हे में आग सुलगाकर उसने एक ढिबरी जला ली और चाय के लिए पानी चढ़ा दिया। फिर डाक्टर के स्वागत-सत्कार के लिए उस कमरे में गया।

डाक्टर को बड़ी थकावट लग रही थी। इसलिए वह चटाई पर ही ऊंघने लगा था। ठगी ने सोचा, बेचारा थकान के मारे परेशान हो गया है, कुछ देर सो ले। और वह बाहर दरवाजे के पास जाकर देखने लगा कि सोनपाही आ रही है या नहीं। कुछ देर बाद ही सोनपाही आ पहुंची।

उसे सुध-बुध खोयी हुई-सी आती देख ठगी ने प्यार से पूछा – "अरे, तुझे क्या हो गया, आधी उम्र गुजर गयी, फिर भी डर नहीं गया मन से ?" इस काल-संध्या के अंधकार में उसने पत्नी के चेहरे की ओर देखते हुए गर्व-भरी हंसी हंस दी।

पर सोनपाही उसे देखते ही – "अरे ओ, अब कहां मरेंगे जाकर ओ. . ." कहती हुई जोर-जोर से चीखने लगी। यह देखकर ठगी ने उससे पूछा, "क्या हो गया ?"

"और होगा क्या ? मौजादार[1] का वह टेकेला आकर हमारे मणिपुरी बैलों को खोल ले गया।" कहती हुई सोनपाही रोने लगी।

"आया कब था वह टेकेला ?"

"दोपहर को।" सोनपाही सिसकने लगी। ठगी को झट गुस्सा चढ़ आया। मगर वह गुस्सा करे भी तो आखिर किस पर करे ? दो साल का लगान दे नहीं पाया था, इसलिए मौजादार ने पहले ही नोटिस दिया था। वास्तव में टेकेला कभी भी कुर्की लेकर आ धमकेगा, इसका डर उसे पहले से ही था। इसी कारण शहर के किसी वकील से या उधार देने वाले किसी महाजन से कुछ रुपया उधार लाने के लिए जाने की बात तय भी कर चुका था, पर तभी चारों ओर हैजे की बीमारी फैल गयी।

इस महामारी के बीच मौजादार का कारिंदा कुर्की लेकर आ जायेगा, उसने सपने में भी न सोचा था। मौजादार इतने पत्थरदिल हो नहीं सकते। आखिर वे भी तो इंसान हैं। लोगों के संकट में क्या उनका दिल जरा भी नहीं रोता ? मगर उसकी आशा बेकार सिद्ध हुई। उसकी खेती के आधार उन बैलों को भी मौजादार का कारिंदा लेकर चला गया।

गुस्से के मारे उसका दिल विद्रोही हो उठा। हिसाब करने पर दो साल का लगान कुल तीस रुपये होता है। उसी के लिए भला बैलों को क्यों खोल ले गया ? क्यों ? उसकी समझ में नहीं आता था कि किस आधार पर यह शासन चल रहा है ? आज कुर्क कर बैलों को ले जाने के कारण उसकी खेती का जरिया ही खत्म हो गया। नये बैल खरीदने की भला ताकत उसकी है ?

उसके सामने अंधेरा छा गया। क्षण भर में उसका दिल विषाद से भर गया। कल की हवाओं में मानो कहीं वेदना की ध्वनि-सी गूंजने लगी हो।

ढिबरी की रोशनी में ठगीराम के भोजन-घर के फर्श पर उतना उजाला नहीं हो पाया था।

---

1. किसी मौजा या अंचल का भू-राजस्व उगाहने वाला अधिकारी।

हमेशा शहरी उजाले में रहने वाले मणि बरा को ऐसी मद्धिम रोशनी पसंद नहीं आयी। तिस पर हैजे से लोग मर रहे थे। शाम को ही धीरे-धीरे रात की छाती में सारी दुनिया सिमटी जा रही थी, उसके साथ ही विषाद का करुण स्वर भी बजने लगा था। देहाती चिड़ियों की चह-चह, दूर से आती किसी की चीख, सियार की बोली आदि मिलकर डाक्टर को लग रहा था, मानो सब एक अनंत क्रंदन में बदल गये हों।

कौर मुंह में डालते हुए ठगीराम ने कहा – "डाक्टर, सुन रहे हैं, आज एक बड़ी दुर्घटना हो गयी।"

डाक्टर ने सोचा, हैजे की बीमारी से मरने वाले किसी आदमी के बारे में कहेगा, इसलिए धीरे से पूछा – "आखिर हुआ क्या ?"

ठगीराम ने लंबी सांस लेकर अपने मणिपुरी बैलों को खोल ले जाने की करुण कहानी सुनायी। खेती की उपज से बची रकम से उसने वह बैलों की जोड़ी खरीदी थी। नये बैल, उम्र भी कम थी, इसीलिए गांव के ही एक आदमी से साठ रुपये कर्ज लेकर उसने बैल खरीदे थे। पर आखिर क्या हो, जमा-पूंजी का एक भी पैसा न बचा। और तो और, दूसरे साल धान बेच कर उसे कर्ज चुकाना पड़ा। इसी कारण दो साल लगान नहीं दे पाया। मौजादार ने कारिंदा भेजकर एक महीने पहले कुर्की का नोटिस जारी किया। उसके बाद ही यह दुर्घटना हुई। साथ ही ठगीराम ने डाक्टर से मौजादार की निर्ममता की बात बतायी।

डाक्टर ने ठगीराम की ओर क्षण भर देखकर कुछ सोचा, फिर कहा – "अब अगर कहीं से रुपया मिल जाये तो बैलों को छुड़ा पाओगे या नहीं ?"

ठगी को अचरज हुआ। फिर भी कहा, "हां, छुड़ा पाऊंगा। अगर ऐसे न हो तो नीलाम में भी ले सकूंगा।"

"तब रुपया मैं दूंगा।" कहकर खाना खा, डाक्टर हाथ धोने गया। ठगीराम और ज्यादा विस्मित हुआ। गांव से शहर जाने के दिन डाक्टर उसे साथ ले गया और वहां से लौटते समय ठगीराम के हाथ सौ रुपये का एक नोट भेज दिया।

लौटते समय कलं-तट पर घड़े में पानी भरती हुई सोनपाही से भेंट हुई। क्षण भर में उसके दिल में खुशी लौट आयी।

परंतु पहले की जिंदगी फिर वापस नहीं आयी। खुशी-खुशी साल भर खेती करने के बाद अचानक बाढ़ आ गयी। कलं का विकराल रूप देख लोगों के होश उड़ गये। बाढ़ में घर-बार डूब गये। खलिहान में धान सड़ गया। बहुत-से लोगों के मवेशी बह गये। सबके दिल निराशा से भर गये।

ठगीराम का मकान भी पानी में डूब गया। मगर वह निराश न था, सोनपाही आदि को ले वह ऐसी जगह चला गया जहां बाढ़ का पानी नहीं चढ़ा था। अपने बैलों को भी किसी तरह खदेड़ ले गया। थोड़ी-सी सूखी जगह मिलते ही ठगीराम ने पास के गांव में जाकर लोगों से मदद मांगी और बांस, फूस आदि जुटाकर एक छोटी-सी झोंपड़ी डाल ली। वहीं नये ढंग से उसका नया घर बस गया। उसका काम देखकर बाढ़ में पड़े लोगों में उत्साह जागा। वे

लोग भी एक-एक झोंपड़ी डालकर वहीं बस गये।

दिनों-दिन लोगों की तादाद बढ़ते रहने के कारण खाने-पीने की बड़ी समस्या खड़ी हो गयी। कलं की बाढ़ का पानी तब तक भी उतरा न था। पास के गांव के लोगों ने जहां तक बन पड़ा चावल आदि देकर मदद की, मगर इस तरह ज्यादा दिन काम चलना कठिन हो गया।

लगभग पंद्रह दिन बाद बाढ़ के पानी की छाती पर एक नाव दिखायी पड़ी। देखते ही लोगों ने चिल्लाकर नाव वालों को पुकारा। धीरे-धीरे नाव पास आ पहुंची।

उस नाव से पहले उतरे डाक्टर मणि बरा और शहर के कुछ नौजवान। डाक्टर ने ठगीराम को देखते ही हंसकर कहा – "मैं फिर आ गया।"

परेशान-सा होकर ठगीराम ने डाक्टर को प्रणाम कर कहा – "क्या चावल-वावल कुछ लाये हैं?" डाक्टर ने कहा – "हां।" अब लोगों के मुंह में पानी आ गया। डाक्टर ने ठगीराम से पूछा – "क्या यहां किसी को बीमारी-वीमारी हुई है?"

ठगीराम ने कहा – "नहीं।"

डाक्टर की चिंता कुछ कम हुई। कुछ नौजवानों को चावल बांटने में लगाकर किसे, कहां, किस ओर से जाना है, इस बारे में सलाह देकर डाक्टर ने अचानक कहा – "चलो ठगी दादा, तुमसे कुछ बात करनी है।"

दोनों धीरे-धीरे चलकर थोड़ी ऊंची जगह जाकर बैठ गये।

कलं की बाढ़ में बहकर आये एक लट्ठे को पकड़कर डाक्टर ने कहा – "कलं इस बार बहुत गुस्से में है।"

ठगीराम ने हामी भरी। कलं के तट पर वह लगभग तीस साल से रहता आया है। सिर्फ रहता ही नहीं, इसी के तट पर उसकी जिंदगी की सारी घटनाएं घटी हैं। कलं के उस पार वह कभी-कभी शहर भी जाया करता है। मगर वह शहर की बातें नहीं समझता। शहर की चाल-चलन अलग है। शहरी लोगों की बातों में मिलावट रहती है। उनकी कलम से जहर निकलता है। कलं के तट पर लौटे बगैर उसके दिल में चैन नहीं आता।

उसकी भावनाओं की तल्लीनता को भंग करते हुए डाक्टर ने कहा – "तुम लोगों के इस सुंदर गांव में सिर्फ एक बार आकर ही मेरा मन रम गया था। पर इस बार आज-कल करते-करते ही चौदह दिन निकल गये। देखता हूं, कलं ने तुम लोगों पर गजब ढा दिया है। मेरे आने में काफी देर हो गयी, क्या करें।"

"मगर देर क्यों हुई आखिर?" ठगीराम ने सरल भाव से पूछा।

"सरकारी कर्मचारियों से लड़-झगड़कर भी चावल और कपड़े जल्द जुटा नहीं पाया। आखिर करें क्या? यहां कोई मरा है?"

"मरे तो नहीं है। मगर ये सरकारी कर्मचारी भला सामान देते क्यों नहीं? हमारे दुखों का क्या उन्हें पता नहीं?"

"नहीं, वे विदेशी हैं, भला हमारे लोगों के बारे में क्या समझेंगे?" सुनकर ठगी स्तब्ध-सा

रह गया। राजा ही अगर प्रजा का दुख न समझे तो समझेगा कौन ? उसका संदेह खत्म नहीं हुआ, पूछा – "आप लोगों को इतना चावल कहां मिला ?"

"घर-घर से, दुकान-दुकान से मांगकर लाये हैं।"

"शहर के लोग हमारे बारे में क्या कहते हैं ?"

डाक्टर इस सरल-से प्रश्न के जवाब में हंस पड़ा। फिर बोला – "तुम्हें बहुत-सी बातों का पता नहीं है। गावों के लोग शहरों के बारे में नहीं जानते, शहरों के लोगों को गांवों के बारे में पता नहीं। पर एक बात सच है, इंसान की तकलीफ देखने पर इंसान का दिल पसीजे बिना रह नहीं पाता।"

ठगीराम को इंसानियत का यह संवाद बड़ा ही अच्छा लगा। कम से कम देश के लोग उन्हें यों ही मर जाने के लिए नहीं छोड़ेंगे।

डाक्टर इसी बीच पानी में बहता हुआ अधभीगे सन का एक मुट्ठा पकड़कर ऊपर ले आया और बोला – "शायद किसी के घर की छप्पर से निकलकर आया होगा ?"

"नहीं, यह सन का मुट्ठा शायद किसी ने अपने घर की छत छाने के लिए रखा होगा। देखते ही पता चल जाता है।" यह कहने के साथ-साथ ठगीराम को याद आया कि एक घर बनाने में कितनी मुसीबत होती है। सन काटकर लाने से लेकर नये घर में गृह-प्रवेश करने तक कितनी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं, इसका अंत नहीं। गांववालों को वैसे घर फिर बनाने में कितनी मुसीबत होगी। साल भर उनका और कोई काम नहीं होगा। यहां तक कि खेती-बाड़ी भी नहीं।

"खेती !" कहकर ठगी ने एक लंबी सांस ली।

डाक्टर चौंक उठा।

हैजा हो, बाढ़ हो, खेती-बारी हो या न हो, राजा का लगान तो देना ही होगा। बाढ़ से जान बचाकर भागे लोगों के टूटे घरों के दरवाजे पर कारिंदा आकर खड़ा हो गया। कुर्की में किसी के गहने, किसी की लोटा-थाली, किसी की गाय-बकरी जबरदस्ती लेकर गांववालों को सर्वहारा बना दिया गया। ठगीराम के बैलों को भी फिर ले गये। ठगीराम गुस्से से आगबबूला हो गया। "हमारे दुखों में ये कुत्ते झांकने भी नहीं आते, मगर लगान वसूल करते समय साहब से लेकर कारिंदे तक सभी छलांग मारकर पहुंच जाते हैं। इन्हें तो..." कहता हुआ वह दांत पीसने लगा। गांव के लोगों ने उसकी बात पर हामी भरी। मगर चारा क्या था ?

मन में गुस्सा लिये ठगीराम एक दिन डाक्टर के यहां पहुंचा। डाक्टर दोपहर को खाना खाकर सोने जा रहा था, पूछा – "क्या हुआ है, ठगी दादा ?"

ठगीराम ने गांव के लोगों की दुर्दशा के बारे में बताया। डाक्टर उसकी बातें ध्यान से सुनता रहा। फिर हंसते हुए कहा – "विदेशी राजा हमारी तकलीफ समझता ही नहीं, ठगीराम !"

ठगीराम के मन का क्षोभ उबल पड़ा, बोला – "ऐसे राजा के अधीन रहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। न बैल रहे, न भैंस। अब खेती कैसे करें ? और तो और, साल भर के बिहु

उत्सव के दिन पहनने के लिए लड़कियों के कानों का थुरिया[1] भी नहीं रहा।" क्षण भर रुक कर वह फिर कहने लगा, "हम तो ऐसे ही मारे गये, डाक्टर बाबू ! आप लोग कोई उपाय निकालिए न !"

डाक्टर ने क्षण भर सोचा, फिर धीरे-धीरे बोला – "तुम लोग एक सभा बुलाओ। उस सभा में बुदराम वकील को भी बुलाओ। और वहां अपने दुख-तकलीफ के बारे में एक प्रस्ताव पास करके सरकार के यहां भेजो। ऐसा ही कुछ करके देखो, देखा जाये क्या होता है ?"

असहयोग का जमाना था। कई ओर सभा-समितियां हो रही थीं। अखबार आदि में तरह-तरह के प्रस्ताव प्रकाशित हो रहे थे। इसी कारण डाक्टर ने ठगीराम को ऐसी सलाह दी।

ठगीराम को मनचाहा मिल गया। बोला – "सभा में आपको भी आना पड़ेगा, डाक्टर बाबू ! जानते ही हैं, हम पिछड़े गरीब, और अनपढ़ लोग हैं। आप नहीं आयेंगे तो आपको सैकड़ों लोगों का शाप लगेगा। सभा की खबर मैं आपको दे जाऊंगा।"

डाक्टर के कपाल पर चिंता की रेखाएं खिंच उठीं।

सभा हो गयी। सरकार को प्रस्ताव भी भेजे गये, पर कोई फल नहीं हुआ। सिर्फ मौजादार ने ठगीराम को बुलाकर कहा – "तेरा नाम सरकार के खाते में चढ़ गया है। जमाना बहुत बुरा है। तूने क्या सुना नहीं, झुंड के झुंड लोगों को पकड़-पकड़कर जेल में डाला जा रहा है ? जरा होशियारी से काम करना।"

ठगीराम ने विस्मय से पूछा – "भला मुझे जेल क्यों ले जायेंगे ?"

"मीटिंग करने के कारण। स्वराज की मीटिंग करना मना है," मौजादार ने बताया।

"लेकिन बाबूजी, हमने तो सिर्फ लगान की मीटिंग की थी।"

बड़ी-बड़ी आंखें दिखाकर मौजादार बोला – "लगान की मीटिंग और स्वराज की मीटिंग एक ही बात है।"

उस दिन ठगीराम घर लौटते समय पहले जैसी सामान्य मानसिकता लिये वापस नहीं हो पाया। खेती न कर पाने के कारण गांव वालों के मन में राग-द्वेष, क्रोध-असंतोष का तूफान चल रहा था। सबकी जुबान से अंग्रेजी राज-प्रशासन के विरुद्ध गाली-गलौज, अभिशाप निकलने लगे थे। ऐसी स्थिति में ठगीराम के मन में क्या करे, क्या न करे का द्वंद्व चलता रहा। जिधर नजर जाती उसी ओर लगता कि अंधेरा धरती को घेरे हुए है। कलं का उपद्रव भी घट गया था। नदी में पहले जैसा प्रवाह न था। सूखे की बीमारी में पड़ा छोटा बछड़ा जैसे बड़ी कठिनाई से चल पाता है, कलं भी मानो उसी तरह धीरे-धीरे बह रही थी।

घर पहुंचते ही उसने देखा, डाक्टर तल्लीनता से बैठा कोई अखबार पढ़ रहा है। और सोनपाही बैठी बटा में तामोल काट रही है। उसने पूछा – "आप ? आप कब आये ?"

डाक्टर ने ठगीराम के मुरझाये चेहरे की ओर देखकर हंसते हुए कहा – "ठगी दादा, एक

1. एक तरह का कनफूल।

बहुत जरूरी काम के लिए आया हूं। हाथ-मुंह धोकर कुछ खा-पी लो। फिर बैठकर बातें करेंगे।"

रात को काफी देर तक उनकी बैठक चली। स्वराज के बारे में बातचीत हुई। असम में चारों ओर गांवों में जो सभाएं हो रही थीं, जो जुलूस निकाले जा रहे थे, उनके बारे में डाक्टर जैसे परीकथा सुनाता गया। बीच में भारतवर्ष का एक छोटा-सा मानचित्र निकालकर, जगहों के नामों पर उंगलियां रखकर, पहले नगांव शहर दिखाया। उसके बाद गुवाहाटी, कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, पंजाब, बंबई और मद्रास के गांव-गांव में हो रही सभाओं और जुलूसों का वर्णन किया। वर्णन के अंत में जोरहाट, गुवाहाटी आदि स्थानों के आंदोलनों के बारे में एक संक्षिप्त आभास दिया। फिर हंसकर कहा – "इस बार हमारी बारी है, हम कलं-तट पर रहने वालों की।" फिर नक्शे में खींची गयी एक रेखा दिखलाकर डाक्टर ने कहा – "कलियाबर से नगांव, नगांव से गुवाहाटी।"

ठगीराम विस्मित हुआ। सोनपाही भी बीच-बीच में आकर बातचीत सुन रही थी। उनका बेटा माली भी पास बैठा बातचीत सुन रहा था। वे दोनों भी डाक्टर की बातों से विस्मित थे।

"हमें क्या करना होगा, डाक्टर बाबू?"

"जुलूस निकालना होगा। कलियाबर से युवक-युवती, बूढ़े-बूढ़ियां सबको नारे लगाते हुए पहले नगांव की ओर, फिर नगांव से गुवाहाटी तक जाना होगा।" डाक्टर ने कहा – "गुवाहाटी में समूचे असम के लोग इकट्ठा होंगे।"

"उससे क्या होगा?"

"क्या होगा? गोरों के राज्य की नींव हिल उठेगी। किसानों का जोश देखकर उनका जी दहल उठेगा। स्वराज की बाट खुल जायेगी।" डाक्टर ने जवाब दिया।

"क्या हमें लगान से माफी मिलेगी?"

डाक्टर ने ठगीराम की बांहों पर थपकी देते हुए कहा – "सब कुछ इन बांहों पर निर्भर करता है। पहले काम करें, उसके बाद फल मांगेंगे।"

कलियाबर के किसानों के जुलूसों के मारे कलं-तट की सड़कें कांप उठीं। 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', 'साम्राज्यवाद का नाश हो', और 'महात्मा गांधी की जय' आदि नारों के कंपन से कलं का वायुमंडल नाच उठा। कलं-तट युगों के बाद रण-नाद से मुखरित हो उठा। उस दिन किसी के घर चूल्हा नहीं जला। युवतियों के घड़े खाली पड़े रहे, चरवाहे मवेशियों को बांधकर दौड़ पड़े। सड़कों के किनारे-किनारे जनता का हुजूम। नारों पर नारे। नयी भावना से लोगों के मन-प्राण आंदोलित हो उठे थे। घरों से लोग निकलकर गांवों में जुड़े, गांवों से शहरों में जुड़े और नगरों से जिला-प्रांतों में मिलकर एक अपूर्व जन-प्रवाह बन गया। कलं के प्राण मानो पंछी बनकर गुवाहाटी की ओर उड़ चले। कलं की भाषा हवा बनकर तिरने लगी। कलं की आशा जाग उठी। गांव-गांव में लोग जाग उठे। गांव-गांव में स्वराज के हजारों सैनिक निकल आये। गुवाहाटी में स्वराज के नेताओं का हुंकार गूज उठा। धीरे-धीरे कदम बढ़े, फिर कदम धीरे-धीरे प्रचंड धारा में बदल गये। जनता का जीवन नये तेज से नाच

उठा। ... कलं जाकर लोहित से मिली, लोहित के तट पर नये इंसान का जन्म हुआ। सोने का लोहित, चांदी का लोहित, धारा की लहर-लहर में नाच उठा। ठगीराम के अंतर में नूतन स्पंदन जागा, गुवाहाटी में समवेत अपार जनता की आशा का उसे अनुभव हुआ।...

सारी राह चलते-चलते डाक्टर स्वराज के बारे में उसे बताता गया। भारत की छाती पर निकले हजारों जुलूसों का लक्ष्य क्या है, वह कथा सुनाता गया। सारी जनता के जीवन-स्रोत मानो आज एक हैं। आज कलं और लोहित में मानो कोई अंतर नहीं रह गया है। स्वराज के संगम में मानो दोनों मिल गये हैं।

बात ठगीराम की समझ में आ गयी। गांव-गांव में लोगों को दुख है, लगान देते-देते सर्वहारा बन जाने वाले सिर्फ वे ही नहीं, कलं से दूर के, पास के, इधर-उधर के चारों ओर के लोग आज जर्जर हैं, इसी कारण वे चाहते हैं स्वराज !

इस बार ठगीराम को जन-लोहित में नयी जीवन-धारा मिल गयी।

लोहित बहता रहा। और दस अगहन बीते। पर हर अगहन में लोगों का धान घटता ही गया। गाय-भैंस खरीदने के लिए पैसा न रहा। लगभग हर आदमी गले तक उधार में फंस गया। मगर राज-शासन के लगान में कमी नहीं हुई। ठगीराम का परिवार और बड़ा हुआ। माली की शादी हुई, बहू आयी और ठगीराम की अपनी भी एक बच्ची हुई। माली की बहू के आने की कहानी ठगीराम की भांति सुंदर नहीं थी। और हो भी आखिर कैसे ? पहले जैसा न धन रहा है, न धान। न वे सोने के कनफूल ही रहे, न वैसी लड़कियां ही रहीं। सभी चीजों की मोहकता और गुण घट गये। सुबह-शाम खाना-नाश्ता आदि न मिलने के कारण माली कभी-कभी पत्नी को मारता-पीटता और कभी मां-बाप को गालियां देते-देते पुरखों की खबर लेता। पुराने दिन, पुराने धर्म-कर्म, सब मिट गये। ठगीराम और सोनपाही के मन में दुख के बादल घिर आये। ...पहले जैसे कुर्की, जमीन की नीलामी, काबुली और महाजनों के उत्पीड़न चलते ही रहे।

ठगीराम अब भी डाक्टर के पास जाया करता। बुदराम वकील अब पहले जैसा नहीं रहा। गांव की सभा में बुलाने पर भी नहीं आता। सिर्फ डाक्टर ही उससे सदा हंसकर बातें करता, दवा-दारू देता, सभा-समिति बुलाने का सुझाव देता, और स्वराज के बारे में नयी-नयी बातों की चर्चा करता।

यौवन बीता, उसका अफसोस नहीं, मगर जिंदगी में सुख नहीं, बाल-बच्चों के लिए धन-दौलत न रहा। सोनपाही की केरूमणि भी कुर्की में दे देनी पड़ी। फिर भी उसके मन की आशा मिटी नहीं थी। फिर कभी अच्छे दिन लौटेंगे, जमीन पर पहले जैसी खेती-बाड़ी होगी, बैलों की कीमत घटेगी, लगान-माफी मिलेगी, कलं-तट की जमीन फिर अनाज से भरी-पूरी हो जायेगी। आशा तो बड़ी सुंदर है। पर वह कब फलेगी ? राज-शासन का दिल कब बदलेगा ? फिर कब खेती करने के लिए उन्हें स्वराज मिलेगा ? कब ?...

एक दिन अगहन में धान की दंवरी खत्म होते ही अचानक नगर से डाक्टर आ पहुंचा। लोगों ने उसे बिठाकर लगान के बारे में पूछा। गांव वालों ने साफ बता दिया, अब तो रुका नहीं जाता। लगान-माफी का आवेदन दिये आज दस साल हो गये, कहां, राज-शासन की नींद तो खुली ही नहीं। नहीं, नहीं, इस तरह से नहीं चलेगा। सिर्फ आशा के भरोसे रहने से कुछ नहीं होगा। लगान-बंदी आंदोलन चलाना होगा।

डाक्टर की बात पर लोगों ने हामी भरी। उस दिन शाम को अपनी जेब से भारतवर्ष का नक्शा निकालकर डाक्टर ने नगांव, गुवाहाटी, कलकत्ता, बंबई, पंजाब आदि स्थानों को उंगली से दिखा-दिखाकर बताया कि किसान आंदोलन कहां-कहां हो रहा है। ठगीराम को पुराने जुलूस की याद आयी। उस याद से उसका दिल फिर नयी आशा से भर उठा।

सही है, लगान देना बंद करना होगा। डाक्टर संतोष से हंस पड़ा।

कलं-तट की जनता फिर अंगड़ाई लेकर उठ खड़ी हुई। फिर कलं की भूमि पर स्वराज-सेना का जन्म हुआ। रण-दुंदुभि बज उठी। कलं-तट सूना हो गया। सिर्फ सोनपाही और उसके जैसी गृहिणियां ही घर में रह गयीं। खलिहानों में धान खत्म-से हो गये थे, धन भी राज-शासन ने हर लिया था। और इस बार कलं-तटवासी किसानों को ले गया। ठगीराम, माली जैसे कितने ही बाप-बेटे साथ ही कैद हुए और सरकारी जेलखाने में ठूंस दिये गये। राज-शासन के कारिंदों ने पुलिस-मिलिट्री मंगवाकर जबर्दस्ती लगान वसूल किया। ठगीराम के घर की बहू के उपहार में मिले गहने-बर्तन भी कारिंदों को सौंप देने पड़े।

कलं-तट पर पहले की रंग-भरी धुनें अब सुनायी नहीं देती थीं। बिहु-संक्रांति में लोग पहले जैसे रंग-तमाशे नहीं करते थे। चारों ओर उदासी छा गयी थी।

जेल से निकलकर गांव आने पर लोगों का टूटा मन देख ठगीराम फिर निराश हो गया।

पत्नी के सूने कान देख माली भी रोने लगा।

बाप-बेटे के दिल उदास देख सोनपाही बेचैन हो उठी। सोचा, इस दुनिया में अब धर्म नहीं रह गया, अधर्म का राज छा गया है। अफसोस करने से पेट नहीं भरता। शायद ईश्वर का ही अभिशाप है। सिर्फ उनकी वह नन्हीं बेटी कांचनमती उस समय सुख-दुख की बातें ठीक से समझ नहीं पा रही थी।

फिर भी ठगीराम निराश नहीं हुआ। कलं-तट जैसे-जैसे सूना होता गया, उसके अंतर में माली, उसकी बहू, बेटी और उन्हीं जैसे गांव के दूसरे युवक-युवतियों को लेकर चिंता जाग उठी। आगे उनका क्या होगा? खेती करने के लिए बैल-भैंस नहीं, रुपये-पैसे नहीं। अनेक लोगों के यहां जो थोड़ा-सा धान होता है, उससे साल भर का खाना पूरा नहीं पड़ता। मायाराम ओजा जैसे लोगों के दुष्कर्म और ज्यादा बढ़ गये। मायाराम पक्का मकान बनाकर धनी गांववालों से कुछ पैसे कमा लेता था। उसी से गुजारा चलता। खेती-बाड़ी में उसका मन न था, और जमीन भी नहीं थी। परंतु गांव के लोगों के पास जब धन-धान न रहा, तब पक्का मकान बनवाने वाले भी न रहे। साथ ही मायाराम के भी बुरे दिन आ गये। लाचार होकर वह

एक टोकारी[1] बजाता हुआ गीत गा-गाकर भीख मांगता फिरने लगा। मायाराम को देखकर ठगीराम आहें भरता। ऐसे गुणी लड़के की भला यह क्या हालत हो गयी ! ओह !...

फिर भी खेती तो करनी हो होगी, जैसे भी हो। दूसरे के बैलों से हल जोतकर माली और वह मिलकर खेती किया करते, पर पहले के बराबर जमीन पर खेती भी नहीं कर पाते थे और धान भी कम मिलता। फिर भी खेती तो करनी पड़ेगी। ठगी और माली बैठे कभी-कभी डाक्टर के बारे में चर्चा किया करते। क्या वह फिर कभी गांव में आयेगा ? "सुना है, सरकार ने उसे भी जेल में डाल दिया है। हे प्रभु, हमारा साथ देने के कारण बेचारे को कितनी तकलीफें झेलनी पड़ीं !"

और कई अगहन निकल गये। धन-धान और घटे। इसी बीच माली का भी एक लड़का जन्मा। नाती को पाकर ठगी-सोनपाही का प्यार बढ़ने की बजाय उल्टा ही हुआ। लड़कों के लिए ही जमाना बुरा आ गया, तो फिर नाती-पोतों को कौन पूछे ? दिन-ब-दिन कपड़े-लत्ते, तेल-नमक आदि की कीमतें बढ़ती जा रही थीं। अकसर तेल-नमक के अभाव में खाना ही नहीं बनता था।

सोनपाही एक दिन अलाव के पास बैठी दुखों की चर्चा कर रही थी, तभी बाहर से किसी ने आवाज लगायी – "ठगी दादा !" ठगीराम ने आवाज पहचानी। डाक्टर था। उस दिन तेल-नमक न होने के कारण उनके यहां रसोई नहीं बनी थी।

डाक्टर ने अंदर आते ही पूछा – "कैसे हो ?"

ठगीराम कुछ न बोला। सिर पर हाथ रखे बैठा रहा। सोनपाही ने डाक्टर के लिए एक पीढ़ा बढ़ा दिया। डाक्टर ने बैठकर कहा – "ठगीराम, यह सिर पर हाथ रखकर बैठने का समय नहीं है। देश मिलिट्री से भर गया है। चीजों की कीमतें आग हो रही हैं। सरकार के नाश के अलावा और कोई चारा नहीं है। हम भी निकले हैं, तुम्हें भी निकलना है। सबको निकलने के लिए कहो।"

डाक्टर की बातों का लहजा देखकर ठगीराम-सोनपाही चकित रह गये। इसी बीच माली और उसकी बहू भी वहां आ खड़े हुए थे। सिर्फ ठगी की छोटी बेटी कांचनमती अंदर चाय का पानी गर्म कर रही थी।

डाक्टर ने कहा – "बंबई में स्वराज की सभा हुई थी। तय किया गया है कि चाहे जैसे भी हो इस बार फिरंगियों को हमें देश से खदेड़ना ही है। करेंगे या मरेंगे।"

ठगीराम चुप रहा। माली ने डाक्टर से पूछा – "उन्हें हम कैसे खदेड़ेंगे ?"

डाक्टर माली के चेहरे की ओर क्षण भर एकटक देखता रहा। फिर बोला – "मुझसे क्यों पूछते हो ? अपने से ही पूछो। जमीन तुम्हारी है, देश तुम्हारा है। तुम लोग अगर किसी को थाने बनाकर कचहरी लगाकर रहने दो, तभी कोई यहां रह सकता है, नहीं तो नहीं।"

---

1. एक तरह का छोटा इकतारा।

"मगर क्या वे हमारी बातें मानेंगे ?" माली ने फिर पूछा।

"नहीं मानेंगे ? मानेंगे क्यों नहीं ? देश में पुलिस-मिलिट्री वाले हैं ही कितने ? वे एक हों, तो तुम लोग हजार होओगे। हर दिशा में निकल जाओ, थानों पर कब्जा करो। स्वराज की स्थापना तभी होगी। तभी अपनी इच्छा के अनुसार खेती कर सकोगे।" डाक्टर उत्तेजना के लहजे में कहता गया।

माली ने कुछ क्षण ठगीराम की ओर देखकर पूछा – "बाबा, क्या करना चाहते हो ?"

ठगीराम ने तेज आवाज में कहा – "करना क्या है ? आज अगर विदेशी को खदेड़ते नहीं तो कल खाओगे क्या ?" इतना कहकर डाक्टर की ओर देखते हुए बोला – "डाक्टर बाबू, इस राज-शासन से बिना लड़े चारा नहीं है। अकाल में तो मर नहीं सकते ! क्या करना है, हमें बताइए। सिर्फ मैं ही नहीं, हमारे परिवार के सभी लोग लड़ेंगे।"

डाक्टर के चेहरे पर नये संकल्प की आभा खिल उठी। ठगी के घर के अलाव के चारों ओर एक नया प्रकाश फैल गया। सबके चेहरे गंभीर थे, सबके चेहरों पर एक महान कर्तव्य का उत्तरदायित्व था।...

पांच शव ! अंधेरी रात। पहले शव के पास खड़े हो डाक्टर ने लिखा – "मालीराम, ठगीराम का बेटा, स्थान कलियाबर, नगांव थाने पर झंडा फहराते हुए पुलिस की गोली से मरा।" मृत्यु-वाहिनी द्वारा शव को हटाया गया। "उम्र छब्बीस साल, पांच हजार लोगों के जुलूस का नेतृत्व कर रहा था।"

इसके बाद मृत्यु-वाहिनी के दो नौजवान शव को उठा ले गये।

दूसरे शव के पास खड़े हो डाक्टर ने क्षण भर उसके चेहरे को अच्छी तरह से देखा, फिर धीरे-धीरे कहा – "मालीराम की पत्नी, उम्र बीस साल। फिरंगी मिलिट्री वाले जब बलात्कार कर रहे थे तब इसने एक सिपाही को छुरा घोंपकर मार डाला। उससे क्रोधित हो कैप्टेन ब्रिस्टल ने गोलियां चलायीं।"

इसके बाद शव को मृत्यु-वाहिनी वाले ले गये।

तीसरे शव के पास खड़े हो डाक्टर ने देखा, एक छोटा-सा बच्चा है। उम्र चौदह साल के लगभग होगी। बहुत नजदीक से टार्च की रोशनी में चेहरा देखकर डाक्टर के रोंगटे खड़े हो गये। "अरे ! यह तो सूर्य है।" धीमे स्वर में डाक्टर ने कहा।

अचानक अंधेरे में से आवाज आयी – "क्या है, डाक्टर बाबू ?"

डाक्टर बोला – "यह तो मेरा ही लड़का है।"

मृत्यु-वाहिनी के एक लड़के ने कहा – "वह हमारा सदस्य था। पिछली रात को शहर से साइकिल पर कामपुर का पुल पार करते वक्त मिलिट्री की गोली से मरा है।"

डाक्टर की आंखों से टप-टप आंसू झरने लगे। फिर भी वह लिखता गया – "डा. मणि बरा का लड़का, उम्र चौदह साल। दसवीं कक्षा का विद्यार्थी, मिलिट्री की गोलियों से मृत्यु।"

चौथे और पांचवें शव के नाम डाक्टर ने किसी तरह से लिखे, वे कलियाबर के किसान थे।

तब भी सुबह होने में काफी देर थी। मृत्यु-वाहिनी के लड़कों ने पूछा – "शवों को जलायें या दफना दें ?"

जलाने पर मिलिट्री की नजर पड़ सकती है। और तब बात भयंकर हो जायेगी – "नहीं, दफनाना ही अच्छा रहेगा।" डाक्टर की आंखों से तब भी आंसू बह रहे थे। मगर ठगीराम की राय ? कहते-कहते अचानक रुक गया। तभी डाक्टर की पीठ पर हाथ रखकर किसी ने कहा, "डाक्टर बाबू ! आप जो कर रहे हैं वही अच्छा है। जलाने पर शत्रु को हमारा सुराग मिल जायेगा। दफना देना ही अच्छा रहेगा।" आवाज ठगीराम की थी। ठगीराम की स्थिर आवाज से दुखी डाक्टर के प्राणों को कुछ सांत्वना मिली।

रात के आखिरी पहर में कलं-तट पर सारे शवों को जमीन में गाड़ दिया गया। शहीदों की मरण-भूमि पर धीरे-धीरे नये दिन की रक्तरंजित प्रकाश-रेखा फैल गयी।

ठगीराम और डाक्टर दोनों ने शहीदों की शयन-भूमि पर घुटने टेककर अंजुरी-अंजुरी फूल चढ़ाये, इसके बाद पांच धूपबत्तियां जलायी गयीं।

ठगीराम ने आंसू बहाते हुए कहा – "हमारे आबाल-वृद्ध-वनिता सबने हमारे लिए खून बहाया है। हमारे शरीर का रक्त खौल रहा है। अब हमारे मरने की बारी है। आइए, हम सभी आज यहां आकर संकल्प लें – करेंगे या मरेंगे।"

लाल सूरज के पहले प्रकाश ने आकर शहीद-स्थल के फूलों को प्रकाशित कर दिया। मृतकों को मृत्यु-वाहिनी ने सलामी दी, फिर वे वहां से हट गये।...

पांच अगहन और निकल गये। ठगीराम के परिवार में कांचनमती, सोनपाही और नतिन बच गये। शेष दोनों शहीद हो गये।

अचानक एक दिन आधी रात को गांव के नामघर में घंटा बज उठा। ठगीराम जाग पड़ा, पूछा, "क्या हुआ ?"

सोनपाही ने बताया – "क्यों, कल नगर के उस आदमी ने यह बात नहीं बतायी थी कि आज स्वराज आने वाला है ? वह स्वराज का समारोह हो रहा है।"

ठगीराम उठ पड़ा। बूढ़े की उम्र अड़सठ साल से भी ज्यादा हो गयी थी, तिस पर स्वराज की लड़ाई में चोट खाकर उसकी कमर में दर्द हो गया था। फिर भी स्वराज के नाम पर वह उठ बैठा। कांचनमती और नन्हीं नातिन को जगाया। बाहर अलाव जलाकर वह पत्नी, बेटी और नातिन को स्वराज की कहानी सुनाने लगा। कलियाबर के उस विशाल जन-समावेश के दिन से शुरू कर लगान-बंदी आंदोलन, और मालीराम आदि के संग्राम की कहानी सुनाते-सुनाते ठगीराम की आंखों से टप्-टप् आंसू गिरने लगे।

कांचनमती ने ठगीराम से पूछा – "तब तो बाबा, अब से हमें सुख मिलेगा।"

ठगीराम बोला – "हां ! मिलेगा बेटी, अब से लगान माफी मिलेगी, बैल-भैंस की कीमतें घटेंगी। कपड़े-लत्ते, नमक-तेल आदि की कीमतें कम होंगी, और हम खुशी से खेती-बाड़ी कर सकेंगे ?"

फिर बूढ़े ने कहा – "अब तो मुझे अकेले खेती के काम में लगना होगा। फिर भी जरूर करूंगा, अगर धान मिले तो खेती कौन नहीं करेगा ?"

मालीराम की याद आते ही सोनपाही की आंखों से आंसू बहने लगे।

और तीन अगहन बीते। कहां, लगान भी तो नहीं घटा, गाय-बैल की कीमतें भी नहीं घटीं। ठगीराम आदि का मन भी बुझ-सा गया। इतनी लड़ाई के बाद भी कुछ नहीं हुआ। "हाय-हाय ! हमारे बेटे-बेटियों-बहुओं ने यों ही जानें दीं।"... घर-घर में दुख-कष्ट बढ़ते ही गये। ज्यादातर घरों में गाय-बैल नहीं हैं, धान के खलिहान खाली हैं। तिस पर खाने वालों की तादाद बढ़ गयी। ठगीराम को अब खुद ही खोज-ढूंढकर खाना पड़ता है। मगर मांगने पर देने वाला कौन है ? ज्यादातर लोगों की वही हालत है।...

मायाराम ओजा ने एक दिन उसके आंगन में बैठे-बैठे कहा – "भैया, करें भी आखिर तो क्या करें ? हमारे गांव के साठ-बासठ नौजवान खेती-बाड़ी न कर पाने के कारण बेकार बैठे हैं। जमीन भी नहीं, बैल-भैंसें भी नहीं, क्या करें ? मेरे ही तीन लड़के हैं, जानते हो, सात पुरखों ने भी जो काम कभी नहीं किया था, वैसे कामों में जुटे हैं।" कहते-कहते धीमे से ठगीराम के कानों में कहा – "चोरी करने में लगे हैं, समझे। तुमसे क्या छिपाना ?"

ठगीराम ने तुरंत मायाराम के बेटों को बुलवाया। समझाते हुए कहा – "बेटो, यह गंदी आदत छोड़ दो। हम किसान के बेटे हैं, खेती-बाड़ी में जुट जाओ।" उन लड़कों ने ठगीराम को प्रणाम कर कहा – "काका, यह बात क्या हम नहीं समझते ? पर करें क्या ? जमीन भी नहीं, गाय-बैल भी नहीं ! लाचार होकर नगर के धनी-महाजनों के यहां चोरी-वोरी करने लगे हैं।" ठगीराम ने कहा – "बेटो, चोरी-वोरी करना उचित नहीं है। वे भी तो आखिर हमारे ही देश के आदमी हैं।"

लड़कों ने इस बार सीधे जवाब दिया – "इन्हें लूटकर खाये बगैर कोई चारा नहीं है। चाहे जो भी हो..."

ठगीराम का अंतर विषाद से भर गया। क्या करना है, क्या नहीं करना है, इन्हीं बातों को सोचते-विचारते बूढ़ा हर रोज गांव वालों से घर-घर जाकर चर्चा करता। सब लोग कहते – "स्वराज की लड़ाई लड़कर भला हमें क्या फायदा हुआ ? न लगान घटा, और न चीजों की कीमतें ही कम हुईं।" कोई-कोई कहते – "हमें जमीन दें, चोरी-बटमारी अपने आप खत्म हो जायेगी।"

ठगीराम निराश मन से घर लौटता। वह फिर इन बातों पर सोचने-विचारने लगा।

अचानक एक दिन डाक्टर आया। ठगीराम को मानो मनचाहा मिल गया। उसे बिठा

कर धीरे-धीरे सारी बातें बताने के बाद आखिर में पूछा – "बताइए तो डाक्टर बाबू, क्या यही स्वराज है ? क्या इसी के लिए हमारे बच्चों ने अपने जीवन का बलिदान किया था ?"

एक पल बाद डाक्टर ने अचानक कहा – "नहीं, यह स्वराज नहीं है, दादा ! स्वराज होने में अभी कुछ दिन और लगेंगे ।"

ठगीराम का चेहरा पीला पड़ गया, बोला – "स्वराज कब होगा, डाक्टर बाबू ? गांव-गांव में अकाल पड़ा है । सारे नौजवान लाचार होकर चोर बन रहे हैं । क्या करें हम ? उन्हें भी कुछ कह नहीं पाता । न अपना ही कुछ भला कर सका, न दूसरों का ।"

डाक्टर ने जवाब दिया – "फिर भी हमारे लड़कों ने जो कुछ किया है, उस काम को हमें पूरा करना है । दूसरे जो कुछ भी कहें, हम स्वराज के लिए आजीवन लड़ते रहेंगे ।"

डाक्टर के चेहरे की ओर देखकर, ठगीराम को जरा-सा प्रकाश दिखायी पड़ा । अचानक डाक्टर कह उठा – "हमें फिर स्वराज के लिए सभा जुटानी होगी ।"

ठगीराम ने पूछा – "कहां बुलानी है सभा ?"

डाक्टर ने जवाब दिया – "यहीं, कलं के तट पर । उस शहीद भूमि के पास । हमें सभा बुलानी ही होगी, नहीं तो..." डाक्टर का चेहरा अचानक कठोर हो गया । "तीस साल से हमारे देश पर अमीरों का शासन चल रहा है । गरीब-दुखिया की कहीं कोई सुनवाई नहीं ।" फिर कुछ क्षण रुककर कहा – "तुम डरो मत दादा, इस बार हम जरूर जीतेंगे । एक दुश्मन तो गया, ये दुश्मन भी जायेंगे जरूर ।"

ठगीराम के हृदय में फिर आशा का सपना जाग उठा ।

नवीन स्वराज की सभा में समूचे असम के अनेक लोग आकर कलं-तट पर जुटे । सभा हुई । नया संकल्प लिया गया, स्वराज के नये आंदोलन का शुभारंभ हुआ ।

सभा के बाद शहीद-भूमि पर घुटने टेककर सब ने शपथ ली — जब तक किसानों को आजादी नहीं मिलती, जब तक लगान-माफी नहीं मिलती, जब तक गांव के लड़कों को जमीन नहीं मिलती, तब तक हमारा स्वराज का आंदोलन समाप्त नहीं होगा । जब तक दो वक्त आराम से खाने-पीने की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक हमारा संग्राम जारी रहेगा । तब तक अपने मां-बाप, भाई-बहन आदि के द्वारा आरंभ किये गये अधूरे कामों को पूरा करने का प्रयास हम करते रहेंगे ।

ठगीराम को नयी राह मिली । ढलती उम्र में भी उसके शरीर में स्वराज का रक्त बिना बहे न रहा । उसने सोचा, उसके मर जाने पर बेटी-नाती आदि का क्या होगा ? गांव की हालत अगर ऐसे ही दिन-पर-दिन बिगड़ती रही तो फिर वे जिंदा कैसे रह पायेंगे ? जीतें या हारें, हम मरते दम तक लड़ेंगे । स्वराज के लिए लड़ेंगे । अपने गांव की उन्नति करने वाला भला हमारे सिवा और कौन है ?

ठगीराम डाक्टर से विदा लेकर सभा के समाप्त होने पर उस चांदनी रात को, हाथों में लाठी लिये कलं के घाट पर उतर गया। अचानक उसे सुनायी पड़ा :

कलङस न चले नाओ मोर भैयाइ ऐ, राइजर न चले पाओं,
संधिया आंधारत बंति न जले बुकु शुदा शुदा पाओं ॥

(यानी– अरे भैया, कलं में नाव नहीं चलती। जनता के कदम नहीं चलते। शाम के अंधेरे में दीपक नहीं जलता, दिल सूना-सूना-सा लगता है।)

ठगीराम ने अधीर होकर पुकारा – "मायाराम भाई, जरा इधर सुनते जाना।"

मायाराम पास की एक झोंपड़ी से निकलकर धीरे-धीरे पास आया।

"भाई, अब से यह गीत न गाना।"

"क्यों ?" मायाराम ने पूछा।

"जनता के कदमों को भी चलाना होगा, कलं में नाव भी चलानी होगी। मैं जो कहता हूं, सुनो। नहीं तो हमारे गांव की उन्नति होने वाली नहीं है।" ठगीराम ने कलं के पानी में अपनी लाठी जोर से पटकी।

मायाराम ने कोई जवाब नहीं दिया। ठगीराम ने फिर कहा – "भाई, आज तीस साल बाद यह बात समझ में आ गयी है कि अपने स्वराज को हमें खुद ही ले आना पड़ेगा।"

मायाराम ने पूछा – "कैसे ?"

कुछ जवाब न देकर उसे शहीदों की मजारों तक ले जाकर ठगीराम बोला – "हमारे बेटे-बेटियां यहीं हैं। इनके गीत क्यों नहीं गाते, भाई ?"

मायाराम का शरीर रोमांचित हो उठा। "भैया, यहीं माली आदि को दफनाया गया था न ?"

"हां, भाई। उनकी शपथ दे रहा हूं। अब वेदना के गीत न गाओ। नहीं तो उनकी आत्माओं को चैन नहीं मिलेगा।" ठगीराम बोला।

मायाराम ने मजार पर से मुट्ठी-भर धूल उठाकर सिर पर चढ़ायी। ठगीराम की आंखों में आंसू उमड़ आये।

ठगीराम कलं के तट पर से होकर चांदनी में धीरे-धीरे कदम बढ़ाता गया। साथ ही उसे अपने विगत पूरे जीवन की कहानी याद आ गयी। कलं की रेत पर, कलं के तट पर उसके जीवन के अड़सठ साल गुजरे हैं। गांव के लोगों के सुख-दुख की गवाह रही है यह कलं। कितने युगों से यह कलं बहती आयी है, कितने युगों तक बहती रहेगी। गांव की छाती पर हजारों ठगीराम आयेंगे, हजारों ठगीराम जायेंगे, पर कलं-तट की जमीन पर नये किसान जरूर जागेंगे। बाप के बाद बेटे आयेंगे, बेटों के बाद नाती अपने हाथों में हल पकड़ेंगे। उसकी जिंदगी के पिछले तीस सालों में लक्ष्मी नहीं आयी है। मगर बेटों-नातियों की जिंदगी में और कितने ही तीस

अगहन आ रहे हैं। उनके अगहनों में लक्ष्मी का आगमन हो इसके लिए हमें प्रयास करना होगा, जब तक शरीर में होश बाकी है, जब तक शरीर में प्राण है। जीवन तो एक नहीं, सौ कलं-जैसी निरंतर बहने वाली जल-धाराओं का प्रवाह है यह कलं-तट का जीवन !

तब बूढ़े के अंतर में एक नवीन भावी आनंद का सपना जगमगा उठा।

सोने की कलं, चांदी की कलं, धारा की लहर-लहर में नाचती है। कलं आज भी बहती जाती है – अतीत को पीछे छोड़कर ...

कलपटुवा[1] की मौत

जोगेश दास

"कृष्ण ! कृष्ण ! थूः थूः !" धनीराम गेट पर ही रुक गया।

दिन के उजाले में भी इस विशाल घर का ऐसा सूना, ऐसा गंभीर बना रहना क्या ठीक है ? पुराना दुमंजिला, लकड़ी का बना मकान। मगर पक्की ऊंची छत पर काई जम गयी है, ऊपर जाने की सीढ़ी अब गिरी कि तब गिरी। सारी खिड़कियां-दरवाजे खुले थे। मगर आदमी का कोई नामोनिशान न था। फूलों के पौधे काफी ताजे थे, फूल भी लगे थे, मगर वे भी सहमे-से जान पड़ते थे। हवा का एक झोंका भी नहीं आता, क्यों ? बड़े गेट की एक लकड़ी टूटकर निकल आयी थी, जिससे लगता था कि वह दांत निपोरे हुए है। उसे अमंगल की निशानी समझने में डर लगता है, छाती कांप जाती है। "कृष्ण-कृष्ण ! थूः थूः !"

फिर भी वह आगे बढ़ गया। जाना ही होगा। आगे-पीछे देखने से काम नहीं चलेगा। मौजादार से मिलना है। मौजादार न मिले तो उनके बड़े लड़के से। मौजादार बड़े दयालु हैं। हिसाबी हैं जरूर, बिना वजह एक फूटी-कौड़ी भी खर्च नहीं करते, मगर अब बूढ़े हो गये हैं, इसलिए बड़ा लड़का ही मौजे की देखभाल करता है। बड़ा लड़का बड़ा गुस्सैल है। इस मकान से तो उसी ने उसे खदेड़ दिया था। एक दिन रात को बीड़ी पीते-पीते उसने अपनी मच्छरदानी और तकिया जला लिये थे। बड़े लड़के का वह गुस्सा कौन देखे। एक दिन फुलवारी में गाय घुस गयी, बस, वह धनीराम को ही मारने दौड़ा। एक दिन सुबह उसे न जगाने के कारण वह गाड़ी न पकड़ सका, लौटकर धनीराम पर थप्पड़-घूंसे बरसाये। महीने भर का वेतन और नौकरी से जवाब मिला, वह अलग।

वैसे बड़े बाबू की नाराजगी की वजह कुछ और ही थी। वह जानता था, मगर किसी से उसने बताया नहीं। रूपे यानी रूपेश्वरी से शादी करने की बात धनीराम ने सोची थी। बड़े बाबू के घर में बच्चा हुआ था। इसीलिए धनीराम ने घर का काम-काज करने के लिए अपने गांव की एक टूअर लड़की रूपे को खोजकर ला दिया था। दिन बीतने के साथ रूपेश्वरी अप्सरा-सी हो चली। धनीराम की आंखें फटी-फटी-सी रह जातीं। हाथ-पैर कैसे चिकने-चिकने हो रहे हैं। छाती उभरी-सी हिलती जान पड़ती हैं। आंखें बड़ी गहरी-गहरी-सी लगती हैं। होंठों की हंसी ऐसी कि जान न्यौछावर करने को जी मचल उठता। उसका पूरा शरीर कांपने-सा लगता। रूपे युवती हो रही है। युवती। उससे शादी कर लेने की तबीयत हो आती है। मगर बड़े बाबू

---

1. केले के पौधे के छिलके का बना दोना, जिसे काम में लाने के बाद फेंक देते हैं।

ने एक दिन उसे अकेले में बुलाकर तर्जनी दिखाते हुए कहा था – "खबरदार, फिर अगर रूपे पर नजर डाली तो तेरी जान नहीं बचेगी।"

धनीराम ने जान बचाकर रूपेश्वरी को छोड़ दिया।

ऊंचे फर्श पर न चढ़कर वह किनारे-किनारे आंगन की ओर डरता हुआ आगे बढ़ गया। बड़ा बाबू क्या दया करेगा? छोटा बाबू होता तो भी कोई बात होती। कहने पर चुपचाप रुपया-पैसा निकालकर दे देता था। मगर वह अभी विलायत गया है। नहीं, नहीं, अमेरिका। फिर भी उसे तो जाना ही है। अगर लगान-माफी न मिले तब तो वह मर ही जायेगा। बेचारी बीमार बहन विधवा होकर उसके यहां रह रही है। दो बच्चे भी हैं। मां तो बिलकुल बूढ़ी हो गयी है, लाठी टेककर चलती है। बहन दो दिन रसोई बनाती है तो चार दिन बिस्तर पर पड़ी होती है। उसकी सहायता किसी भी तरह से कर नहीं पा रही है। पर किया क्या जाये? बहन, तिस पर औरत, भला उसे कहां फेंक दिया जाये? गरीब पति के साथ रहकर दिन गुजार रही थी, मगर वह भी चल बसा। शादी होने के पहले वह नन्हीं बच्ची की भांति कितनी चीजें पाने की आशा रखती थी। सोचती थी, बड़ा भाई शहर में मौजादार के यहां नौकरी करता है। कितनी ही अच्छी-अच्छी चीजें पाता होगा। वह सब लाकर देगा। मगर वह तो कुछ भी नहीं दे सका। थप्पड़ खा, वेतन और नौकरी से जवाब पाकर वह जिस समय अचानक घर पहुंचा, वह अपने पति के साथ थी, मगर तब तक वह उसे कुछ दे नहीं पाया था। छिः छिः छिः! बड़ी शर्म की बात है।

तिस पर इस बार बाढ़ से शाली धान की खेती बिलकुल चौपट हो गयी। 'आहू' धान लगाया है। ईश्वर चाहेंगे तो हो जायेगा। मगर धान बेचकर लगान देना तो फिर भी संभव नहीं होगा। इधर बहन के इलाज में डाक्टर लगाकर जमा-पूंजी भी खत्म कर दी। लगान दिये बगैर भी काम नहीं चलने का। बाढ़ से धान-खेती बर्बाद हो जायेगी, वह भला किसे पता था! अगर कुछ दिनों के लिए लगान-माफी न मिले तो जान नहीं बचने की। बड़ा बाबू चाहे तो माफी दे सकता है। बहन के दोनों बच्चों, मणि और टुनी का स्कूल में नाम लिखा दिया है। वे क्या बिना खाये-पीये जीयेंगे? हाय भगवान! मणि को क्या अभी से हल जोतने में लगा दिया जा सकता है? और दो-चार रुपये खर्च करने पर उसकी मां भी चंगी हो जायेगी।

रूपे को तो वह बड़े बाबू को सौंप गया था। रूपे को वह पा नहीं सका। बड़े बाबू को रूपे चाहिए। कितने ही दिन नजर में आयी है, एकांत में बड़े बाबू उससे कैसे चुहल कर रहे हैं। उसके पास से मौजादार के लिए अखबार लाते समय भी देखा है, बाजार-खर्च का पैसा बड़े बाबू से मांगते समय भी देखा है, मरम्मत के लिए मोची को देने के लिए मांजी की सैंडिल खोजते समय भी उसकी नजर रूपे पर पड़ी है। उसे देखते ही रूपे लाल हो जाती है और छाती पर से खिसकी चादर को सहेजने लगती, बड़ा बाबू सकुचाया-सा हंसता। और धनीराम की छाती में कहीं हूक-सी उठती।

अंदर के आंगन में भी कोई नहीं था। अचरज की बात है। आठ साल वह जिस घर में नौकर रहा, वह जैसे का तैसा ही है। मगर उसे कुछ-कुछ अनजाना-सा लग रहा है। बाहरी

हिस्से की भांति इस ओर के भी बड़े-बड़े लकड़ी के खंभे, और गिरती-सी काठ की सीढ़ियां पहले जैसी ही हैं। धुएं और कालिख लगा रसोईघर पहले ही जैसे आलस्य से खड़ा है। मुख्य मकान और रसोईघर के बीच लगा कपड़ा फैलाने का तार भी पहले ही जैसा है। फिर भी ऐसा लगता है कि कहीं कुछ खो-सा गया है।

वह बरामदे पर चढ़ गया। डरता-सा रेलिंग पर थपकी देकर आवाज दी। पर किसी की आहट नहीं आयी। वह विमूढ़-सा हो गया। सीढ़ी पर से ऊपर की ओर नजर डाली, जहां से ऊपरी मंजिल का बरामदा दिखायी पड़ता है और बड़े बाबू के कमरे का दरवाजा भी। परंतु वहां धनीराम को मोटे केले-पत्ते के रंग का परदा दिखायी पड़ा। और कोई वहां नहीं था।

रेलिंग को पकड़कर वह आंगन की ओर मुंह किये खड़ा रहा। किसी से मिलना होगा जरूर। शाली धान,...आहू की खेती,...बीमार बहन... मणि-टुनी,...लगान...

अरे, वह कौन है ? रसोईघर के पीछे की ओर से कोई लड़की आयी थी, उसे देखकर सहम-सी गयी, फिर मुड़कर तेजी से चली गयी। रूपे ही है न ? पीछे की ओर वह पक्का किया हुआ जमीन का टुकड़ा है, जहां बर्तन धोये जाते हैं, पास ही राख की ढेरी, एक पानी रखने का पीपा, उसके पास ही फूस की झोंपड़ी, उससे सटी हुई साग-सब्जी की बाड़ी, उधर कमरख का एक पेड़, एक मदार का पेड़, जिस पर पान की लता चढ़ी हुई है, कुछ सुपारी के पेड़, नीचे घास-भरी जमीन, जहां 'बिहलंगनी' और 'लेतेफु' के पेड़ भी हैं, किनारे-किनारे अनन्नास के पौधे। हां, वह तो रूपे ही है। सारा शरीर लाल-सा है। क्यों न हो, मजे में है न आखिर। छाती काफी फैल गयी है, ब्लाउज के दबाव से ही समझ में आ जाता है। पहले से क्या कुछ मोटी हो गयी है ? शायद हां, मोटी-मोटी-सी तो लग रही है।

उसे देखते ही रूपे तुरंत भाग गयी। भागेगी क्यों नहीं ? बड़ा बाबू नाराज हो जायेगा न ? हालांकि वह उससे हंसी-मजाक किया करता, चिढ़ाता भी। मदार के पेड़ के नीचे पान की पत्तियां बटोरते समय, एक दिन उसने उसका हाथ पकड़ लिया था, धीमे से हाथ छुड़ाकर वह बिलकुल लाल हो गयी थी और कह उठी थी – "जा, मरा कहीं का !" जब धनीराम ने एक दिन और कहा था – "तुझे बग्गी पर चढ़ाकर घर भगा ले जाऊंगा, ठहर !" तो उसने लकड़ी का एक टुकड़ा उसकी ओर फेंक मारा था। रसोईघर की खिड़की से अचानक देखकर मांजी फिक्क से हंस पड़ी थी। उसे बड़ी शर्म आयी थी। रूपे तुरंत भाग गयी थी।

हालांकि उससे शादी करने की बात वह बता नहीं पाया था। वह कह पाता इसके पहले ही बड़े बाबू ने 'जान नहीं बचेगी' कह दिया और वेतन दे, जवाब देकर निकाल दिया था। जाने दो, किसी लड़की को लेकर किसी से होड़ ठानने की भला जरूरत ही क्या है ? कितनी ही जवान लड़कियां पड़ी हैं। रूपे जैसी, रूपे से भी ज्यादा खूबसूरत, रूपे से कुछ कम। फिर नौकरी से निकाला जाकर जब वह गांव गया तो देखा कि अब किसी लड़की के बारे में सोचने का उसे समय ही नहीं मिलेगा। घर टूट-सा गया है। बूढ़े बाप तो नहीं रहे, बूढ़ी मां ने लाठी पकड़ ली है। अब खेती में जुट जाना होगा। अब वह नौकरी नहीं करेगा। लोगों के पास आधा-भागी में जो जमीन दे दी गयी है, उसे छुड़ाना होगा, क्योंकि लोग अब आनाकानी कर

रहे हैं। अब भला लड़की के बारे में क्या सोचे ? चलो छोड़ो, विधवा बहन भी आ गयी, बीमारी, भूख, मणि और टुनी को लिये हुए...

फिर भी वह उस ओर देखता रहा, जिधर रूपे गयी थी। यह नारी जाति भी अद्‌भुत होती है। चाहे जितनी विपद-आफत पड़े, नजर डालने का समय निकल ही आता है, नजर डालने की इच्छा हो ही जाती है।

सीढ़ियों से खाली पैर किसी के उतरने की धम्-धम् आवाज आयी। चौंककर उसने उधर देखा। मांजी ! उनकी आंखों से आंखें मिलीं। उन्होंने अपनी ओढ़नी पर यों ही हाथ चलाया। न जाने क्यों उसे देखते ही खप्प से सीढ़ी की रेलिंग पकड़े खड़ी हो गयीं। लगा जैसे ऊपर लौट जाना चाहती हैं। मगर गयीं नहीं। मांजी को बुलाना चाहते हुए भी वह बुला नहीं पाया। लगा, उसका गला सूखकर कड़ा हो गया है। एक बार उसकी ओर, और एक बार सीढ़ी पर नजर डाल मांजी धीरे-धीरे उतर आयीं। उनका भरा हुआ चेहरा कुछ पीला-सा पड़ गया है क्या ? लेकिन बड़ी गंभीर हैं। न उससे कुछ कहती हैं, न हंसती हैं। नौकरी छोड़ जाने के बाद भी वह कई बार यहां आया था। हर बार मांजी ने काफी हंसी-खुशी से बातें की थीं, चाय-नाश्ता दिया था, और खुद काटकर तामोल दिया था, खैनी भी। एक बार भी पूछा भी था कि क्या वह घर नहीं बसायेगा ?

आज जरूर कुछ हुआ है। ओ मां ! मांजी की आंखें तो छलछलायी हुई हैं। पलकों की बरौनियां भीगी हुई हैं। बड़ी-बड़ी आंखों के कोने लाल हैं। जरूर रो रही थीं। हे भगवान ! आज बुरा लगने पर ही उसे महसूस हो रहा है कि वह मांजी का कितना आदर करता है।

मांजी के नीचे पहुंचते ही उसने आवाज दी – "मांजी !"

मांजी ने हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "क्या है रे, धनी ?" नहीं, नहीं, यह मांजी की हंसी हो ही नहीं सकती। आखिर हो क्या गया है ? कैसी मुश्किल है, कुछ पूछा भी नहीं जा सकता है न।

मांजी ने कहा, "बैठो ! क्या काफी देर से आये हो ?"

बेंच पर धीरे से बैठकर उसने कहा, "नहीं, मांजी, अभी-अभी चला आ रहा हूं। मालिक वगैरह नहीं हैं क्या ?"

मांजी रेलिंग पकड़े उसी की तरह आंगन को देख रही थीं, कुछ बोलीं नहीं। उसने फिर पुकारा – "मांजी !"

"ऐं ! हैं – हैं धनी, मालिक हैं ! क्या किसी जरूरत से आये थे ?"

उसे बड़ा अचरज हुआ। मांजी कैसी हो रही हैं ! क्या हो गया है इनको ? मुश्किल है, कुछ पूछा भी तो नहीं जा सकता। उसने कहा – "हां, कुछ जरूरत तो थी।" अचानक उसे बच्चों की याद आ गयी। अचरज की बात है, अब तक उसे उनकी याद ही नहीं थी। तुरंत उसने पूछा – "मुन्ने लोग कहां हैं, मांजी ? कोई दिखायी नहीं पड़ता।"

मांजी ने कहा – "कल मामी आयी थी। उसके साथ ही चले गये। तुम तामोल खाओ,

वह बटा में है,काटकर खाओ। मैं जाकर मालिक से कहती हूं।"

वह जिस बेंच पर बैठा था,उसी पर रखे बटा की तरफ एक बार देखकर वह धीरे-धीरे ऊपर चढ़ गयीं। तामोल काटते-काटते वह सोचने लगा – 'मुन्ने आदि भला कल ही से दूसरों के यहां कैसे रह सकते हैं ? रह भी सकते हैं,बड़े हो गये हैं,और फिर मामी का मकान कहीं ज्यादा दूर थोड़ा ही है ? वहीं तो है।'

तामोल चबाकर खाना लगभग खत्म हो गया था,फिर भी ऊपर से कोई नहीं आया। इसके पहले तो मौजादार मालिक खुद उसे ऊपर बुला ले जाते या बड़े बाबू नीचे आकर आवाज देते। आज तो मांजी भी नहीं लौटीं। भला रूपे कहां अंतर्धान हो गयी ? इतनी देर तक तो बर्तन मांजती नहीं रह सकती। लकड़ी-घर में भी तो कुछ नहीं है करने को। बाड़ी में तो उसकी कोई जरूरत ही नहीं। या कहीं अनन्नास ढूंढती घूम रही है ?

ऊपर लकड़ी के फर्श पर खड़ाऊं की गंभीर आवाज सुनकर धनीराम मानो उछल पड़ा। मौजादार मालिक हैं। लंबे-चौड़े,काफी खूबसूरत हैं वे। आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा। शरीर पर दो जेबों वाली लांग-क्लाथ की कमीज,झकाझक सफेद। हाथ में बड़ी टेढ़ी-सी 'राइडां' बेंत की छड़ी। सीढ़ी के चार धाप नीचे उतरकर वे ठहर गये। बिलकुल स्थिर दृष्टि से उसे देखते रहे। नीचे दूर से ही धनीराम ने झुककर उन्हें प्रणाम किया। आज ही उसने पहले-पहल प्रणाम किया है। पहले आने पर घर के पुराने नौकर के रूप में बिना प्रणाम किये भी चल जाता था। मगर आज तो यह मकान मानो कुछ डरावना-डरावना-सा लग रहा है। मांजी न जाने कैसे-कैसे कर रही हैं। बड़े बाबू के डर से रूपे भी नहीं आ रही है। इसके अलावा वह लगान-माफी के लिए आया है।

मौजादार मालिक ने कहा – "ऊपर आ जा।" वे फिर ऊपर चले गये। खड़ाऊं की गंभीर आवाज उसके कानों में पड़ी। वे अपने बैठक के कमरे में गये हैं। जरूरी बातें वे वहीं किया करते हैं। वह डरता हुआ आगे बढ़ गया। मौजादार मालिक गंभीर आदमी हैं जरूर,मगर आज की तरह कम बातचीत उन्होंने पहले कभी नहीं की है। सीढ़ी पर पैर रखने के साथ ही एक बार उसने मुड़कर देखा। वह बिलकुल पसीने-पसीने हो गया था। नहीं,कोई भी तो देख नहीं रहा है,यहां तक कि रूपे भी नहीं।

सीढ़ी पर कदम रखता वह ऊपर पहुंच गया। बड़े बाबू का कमरा तो बंद है। मांजी भला कहां जाकर छिप गयीं ? बड़े बाबू क्या घर पर ही हैं ? मुन्ने आदि के बगैर घर अच्छा नहीं लगता है। उन्हें प्यार कर मन को हल्का कर लिया जा सकता था।

मौजादार मालिक के बैठने के कमरे के दरवाजे के सामने जाकर वह खड़ा हो गया। वे एक बेंत की कुर्सी पर बैठे बाहर की ओर ही देख रहे थे। राइडां बेंत की लाठी उनकी गोद में आड़ी पड़ी थी। उसने उधर से आवाज लगायी – "बाबू जी !"

उन्होंने उसकी ओर मुड़कर देखा,फिर बाहर की ओर देखने लगे। मिनट भर कोई बात नहीं हुई। धनीराम बड़े धीरज से रुका रहा।

"तू आयेगा,मैं सोच ही रहा था। किसलिए आया,बता।"

उसे पहले कुछ झिझक-सी लगी । पर धीरे-धीरे सारी बातें कह गया । बड़े हिसाबी हैं मौजादार मालिक । क्या पता क्या कह डालें ? उसे डर-सा लगने लगा । उसकी बात खत्म होने पर दोनों फिर मौन हो गये । कुछ क्षण बाद उसकी तरफ बिना देखे ही मालिक बोले – "बहन इतने दिन से बीमार है, डाक्टर को दिखाया या नहीं ?"

दोनों हाथ मलते हुए उसने कहा – "रुपये कुछ रखे थे, उन्हें खर्च कर डाक्टर को दिखाया । कुछ आराम हुआ है । मगर कुछ और दवा खाने को कहा है । अगहनी धान इस बार बाढ़ में बह जायेगा, सोचा ही न था । नहीं तो लगान की रकम रखे रहता ।"

उन्होंने कहा – "कागज-पेंसिल ले आ ।"

वह तुरंत लपककर कमर के दूसरे सिरे पर पहुंच गया । कोने में रखी मेज पर से कागज-पेंसिल ले आया, कागज के नीचे रखने के लिए एक बड़ी किताब भी लेता आया । वे लिखने लगे । वह जरा हटकर खड़ा हो गया । किसी के लिखते समय झांकते नहीं रहना चाहिए । मगर मालिक ने भला चिट्ठी क्यों लिखी ? और समय तो वे बड़े बाबू को जो कहना होता मुंह से ही कह देते थे । उसके मन में आया – वह आने वाला है, ऐसा जानते हुए भी, मौजादार बाबू ने यह किसलिए पूछा कि तू क्यों आया ? पता नहीं, विधाता के मन में क्या है ?

लिखे पर्चे को मोड़कर उन्होंने कहा – "यह पर्चा बड़े को दे दे ।" उसने पर्चा ले लिया, कागज-पेंसिल यथा स्थान रख दी ।

मौजादार ने कहा – "जाते समय फिर मुझसे मिल लेना, धनी !"

"ठीक है, बाबू जी !"

मगर बड़े बाबू से मिले कैसे ? दरवाजा बंद किये अंदर घुसे हैं । ओ, दरवाजा तो खुला है, अजीब बात है ! मौजादार बाबू जी का पर्चा जा रहा है, क्या इसी से खुल गया दरवाजा ? मोटा केले-पत्ते के रंग का पर्दा हिल रहा है । जरूर दरवाजा अभी-अभी खुला है । पर्दा उठा कर वह चला गया ।

राम राम ! राम राम ! उस बड़े से पलंग के सिरे पर बड़े बाबू सिर झुकाये बैठे हैं । धनीराम के घुसते ही सिर उठाकर उसे देखा । बाल बिखरे-बिखरे ! चार-छह दिन से हजामत नहीं बनायी है । दोनों आंखों के चारों ओर काला धब्बा पड़ गया है । झीने बैंगनी खद्दर की पंजाबी कमीज के बटन नहीं लगाये हैं । धोती मैली-सी ! गुस्सैल प्रतापी बड़े बाबू का भला ऐसा चेहरा ? राम राम ! राम राम ! जिसे बड़े बाबू से वह हमेशा डरता रहा है, आज उससे बड़ी संवेदना हो आयी ! आह बेचारा !

बड़े बाबू ने कहा – "आ जा, धनी !

ओह, बड़े बाबू की आवाज इतनी कोमल ! भला होगा क्यों नहीं ? मांजी तो साक्षात देवी हैं, लक्ष्मी ! पर्चे को आगे बढ़ाकर उसने पूछा – "बड़े बाबू, तबीयत क्या कुछ गड़बड़ है ?"

"नहीं, वैसा तो कुछ नहीं है । तू बैठ ।"

क्या वह बैठे ? बड़े बाबू उसे अपने कमरे में बैठने को कह रहे हैं ? अचरज की बात है । बड़े बाबू ने पेटी के पास पड़े स्टूल की ओर इशारा कर दिया । परंतु वह बैठा नहीं । पहले भी कभी नहीं बैठा है । बड़े बाबू ने पर्चा पढ़ा । कमरा कैसा अंधेरा-अंधेरा-सा लग रहा है ! खिड़कियों के पर्दे बिलकुल बराबर कर फैला दिये गये हैं । सिर्फ एक ही पर्दा सिकोड़ा हुआ है । बड़े बाबू का चेहरा काला पड़ गया है ।

पर्चा पढ़कर उन्होंने सिर उठाया । चारों ओर के कालेपन के बीच सिर्फ उनकी आंखें लाल हो रही थीं । वह उनकी आंखों की ओर एकटक देखता रहा । बड़े बाबू ने आंखें हटा लीं । बोले – "बैठ जा न, धनी !"

स्टूल को जरा-सा हटाकर आखिर वह बैठ गया । बड़े बाबू ने फिर उसकी आंखों की ओर देखा । फिर पर्चा पढ़ा । क्या मौजादार बाबू जी ने लगान-माफी के बारे में कुछ नहीं लिखा ? फिर लिखा क्या है उन्होंने ? अंत में उसने अपनी बातें फिर बड़े बाबू के सामने बतायीं । अगहनी धान, बाढ़, आहू धान, बहन, मणि, टुनी सबके बारे में ।

आखिर बड़े बाबू ने कहा – "धनी, बहन का इलाज न करवाने पर बुरा होगा । लगता है बीमारी बुरी है । डाक्टर को दिखलाता रह । आजकल बीमारियों का कोई ठिकाना ? मजाक नहीं है । लगान के बारे में भी सोचना पड़ेगा ।"

धनीराम गंभीर होकर बैठा रहा, मानो सिर पर आसमान टूटा हो । मौजादार बाबू जी ने क्या इतना कुछ लिख दिया है ? नहीं, उन्होंने जरूर इतनी सारी बातें नहीं लिखी हैं । तो भी बड़े बाबू इतनी बातें कैसे कह सके हैं । भगवान जाने, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है । धीरे-धीरे शाम ढलती आ रही है । बाहर धूप काफी तिरछी पड़ रही है, धीरे-धीरे अंधेरा होने वाला है । बड़े बाबू एक खिड़की के पास पहुंचे । वहीं से कहा – "धनी, क्या पिताजी ने तुझसे रूपे के बारे में कुछ कहा था ?"

"रूपे के बारे में ? नहीं, नहीं, कुछ भी तो नहीं बताया, बड़े बाबू !"

हरि हरि ! रूप के बारे में ? वह सोचने लगा – लगान-माफी के बीच फिर रूपे कहां से आ गयी ? वह तो बड़े बाबू के डर के मारे उसके सामने से ही भाग गयी ।

बड़े बाबू ने कहा – "सुन धनी, तू हमारा उद्धार कर । तेरे बगैर और कोई चारा नहीं है । लगान के लिए तुझे सोचने की जरूरत नहीं । तुझे कोई डर नहीं । बहन के इलाज के लिए दो सौ रुपये ले जा । तुझे कुछ भी सोचने की जरूरत नहीं ।"

बिलकुल नयी बात ! बड़े बाबू की जबान से ऐसी बात पहली बार उसके कानों में पड़ी थी । विश्वास तो होता नहीं, फिर भी विश्वास किये बिना भी तो चारा नहीं है । बड़े लोगों का मन ठहरा । बड़े बाबू ने कहा – "तू रूपे को ले जा । उसे चार महीने चढ़े हैं ।"

वह स्टूल पर से उछलकर खड़ा हो गया । रूपे को चार महीने का पेट है ? ओह ! इसीलिए उस समय वह कुछ मोटी-मोटी-सी दीख पड़ी थी । इसलिए वह नौ-दो ग्यारह हो गयी थी ।

इसी कारण यह घर दोपहर को ही डरावना लगता है । इसी कारण बच्चे मामी के यहां हैं । इसी कारण मांजी की आंखें इतनी डबडबाती हैं । इसी कारण मौजदार बाबू जी और बड़े बाबू की बातों में इतना मेल है । इसी कारण मौजादार उसके आने की बात सोच रहे थे !

उसकी ओर देखे बगैर बड़े बाबू ने कहा – "अगर तू नहीं मानेगा, तब तो धनी, हमारी मौत ही हो जायेगी । सिर्फ तू ही हमारा बेड़ा पार लगा सकता है । हमारा भी, रूपे का भी ।"

बड़े बाबू ने पास आकर दस-दस के नोटों का एक बंडल उसके हाथ में थमा दिया । शायद दो सौ होंगे । उन नोटों के स्पर्श से उसे बड़ा अच्छा लगा । दो सौ रुपयों से बहुत कुछ हो जायेगा । बहन की बीमारी के लिए तो चालीस रुपये ही काफी होंगे । शेष रुपये बचे रहेंगे । मणि-टुनी को कपड़े दे सकेगा । मगर रूपे ? उसके चार महीने हुए हैं ! भला उसे कैसे रखेगा ?

बड़े बाबू ने आवाज दी – "धनी !"

"मैं जरा बाबू जी के साथ बात कर आऊं ।" धनीराम ने कहा और बाहर निकल आया ।

दरवाजे के पास से बड़े बाबू का चेहरा ठीक से दिखायी नहीं पड़ता । मगर वह ऐसे खड़े हैं कि देखकर दुख होता है ।

बाहर मांजी से आमना-सामना हो गया । वह सीढ़ी से ऊपर आ रही थीं । फटी-फटी आंखों से उन्होंने धनीराम को देखते हुए कहा – "तू यहां से चला न जाना, समझा, चाय बना रही हूं । नीचे कुछ देर बैठना ।"

ओह, बेचारी मांजी कितनी अच्छी हैं ! उनकी यह हालत देखकर बहुत बुरा लग रहा है । नहीं, नहीं, रूपे को ले ही जाना अच्छा रहेगा । जो होना है, सो होगा । मेरी अच्छी मांजी जो कहें वही करना है ।

उसे बिलकुल पास खड़े देखकर मौजादार बाबूजी ने कहा, "धनी, रूपे को अगर तू ले जाये, तो उससे सिर्फ हमारा ही भला होगा, ऐसी बात नहीं, उसका अपना भी भला होगा । वह अच्छी तरह से रह सकेगी, हालांकि उसे कुछ होशियारी से चलना होगा । और तू अगर चाहे तो तेरे भी कम फायदे की बात न होगी । घर-परिवार का बोझ जब उठाया ही है तो फिर एक औरत के बगैर कैसे चल सकता है ? उसे ले जाने पर उसके साथ तेरा बेड़ा भी पार हो जायेगा ।"

वह चुप रहा । रूपे को ले जाने पर मौजादार बाबू जी, बड़े बाबू, विलायत, नहीं, नहीं, अमेरिका में रहने वाला छोटा बाबू, मांजी और रूपे, सबका बेड़ा पार हो जायेगा । मौजादार बाबूजी ने कहा है कि उसका भी बेड़ा पार होगा । और सब तो तुलसी हैं । ठीक, यह काम करने पर सबकी भलाई होगी । उसे भी एक पत्नी मिल जायेगी ।

वह जब नीचे की बेंच पर बैठकर मांजी के हाथ से चाय-मिठाई ले रहा था, तब बिलकुल शाम हो चुकी थी । ऊपर एक बत्ती जल रही थी । उसी पहले के पीतल के गिलास में ही आज भी मांजी ने उसे चाय दी है । मिठाई भी कागज में ही दी है । उसे ज्यादा आदर-मान नहीं दिखाया है, पहले जैसा ही बर्ताव किया है । मांजी को वह बड़े सम्मान की नजर से देखता है । वह किसी से कोई लाभ उठाने के लिए प्यार नहीं जतातीं । आज भी मौजादार और बड़े बाबू

की तरह नहीं किया। गिलास धोकर उसने बरामदे में रख दिया। मांजी के हाथ से तामोल लेकर वह पूछना ही चाहता था कि रूपे कहां है ? मगर अचानक उसकी नजर रूपे पर जा पड़ी। एक गठरी लिये वह आंगन में एक ओर अंधेरे में खड़ी है। उसने मांजी से फिर नहीं पूछा। उसके साथ इस बारे में उन्होंने चर्चा ही नहीं की तो फिर जरूरत ही क्या है ? इसके अलावा मांजी तो देवी ठहरीं। बिलकुल तुलसी। उसने "मांजी अब चलता हूं" कहकर झट से मांजी के पैरों को छूकर प्रणाम किया और तुरंत तेजी से उतर गया। मांजी चौक-सी पड़ीं। पर जबान से कुछ कह तो सकती नहीं थीं।

आंगन के अंधेरे में खड़ी रूपेश्वरी से उसने कहा – "चल, रूपे !" उसके पीछे-पीछे वह उस ऊंचे फर्श के किनारे-किनारे चल पड़ी। धनी ने फिर कुछ न कहा, और न मुड़कर देखा। बाहरी दरवाजे के सामने एक बग्गी खड़ी थी। अंधेरे में खड़ा था बड़ा बाबू। बग्गी का दरवाजा खोलकर रूपे को चढ़ाकर उसने धनी को भी चढ़ने के लिए कहा। धनी ने सवार होकर दरवाजा बंदकर दिया। बड़े बाबू ने कोचवान से कहा – "जा !" कोचवान ने बग्गी चला दी। धनीराम बड़े बाबू को प्रणाम करना भी भूल गया। उस समय वह सोच रहा था – एक दिन मंदार पेड़ के नीचे पान इकट्ठा करते समय उसने मजाक में रूपे को चिढ़ाते हुए कहा था – "तुझे बग्गी पर चढ़ाकर भगा ले जाऊंगा।"

तीन में से घटा तीन

महिम बरा

रविवार। हाट-बाजार का दिन। तिस पर खेत में हल जोतने, फावड़ा चलाने का भी कोई खास काम नहीं।

पूर्णकांत ने चटाई पर लेटे-लेटे एक बार करवट बदली। बड़ा लड़का दीवार के इसी ओर बड़े पीढ़े पर बैठा हिसाब लगा रहा था। शायद घटाव का हिसाब था। दो में से पांच नहीं घट सका, इसलिए एक दहाई उधार लेना होगा। एक दहाई, मतलब दस। कुल हुए बारह, बारह में से घटा पांच, बाकी बचा सात। उधर बचा तीन। तीन में से घटा तीन – कुछ नहीं, यानी शून्य।

वह 'मतलब', 'यानी', 'पर', 'फिर' आदि शब्द लगा-लगाकर कहता जा रहा था। इतनी आसानी से दस उधार ले सका है? फिर एक उधार लेने पर दस कैसे हो गया? एक नहीं, दो नहीं, सीधे दस, उधार भला दिया किसने? फिर तीन-तीन मिलकर बराबर नहीं हो सकते। अगर मिल पा सकते तो तुम तीनों भाइयों में ऐसी टकराहट नहीं होती। हां, तीन से तीन घट जरूर सकता है।

उधर रसोईघर में मंझले और नन्हें बेटे को लेकर चाय-जलपान बनाने-खिलाने में पत्नी की चीख-पुकार नियमपूर्वक शुरू हो गयी थी।

"अरे नहीं है रे, हांड़ी के कोने में जरा-सा लगा हुआ है। वह भी तुझे दे दूं तो तेरे बाप भला यह चाय कैसे पीयेंगे? पूरा जलपान गुड़ से लाल कर लिया है, भला और कितना चाहिए? बाप हाट-बाजार जाकर फिर ले आयेंगे न! तब खाना।"

बात समाप्त होते न होते एक और लड़के को वह डांटती हुई बोल उठी – "मत ले, मत ले, मत ले वह। सुबह-सुबह तेरे बाप क्या फीकी चाय पियेंगे? कहा न, बछड़ा बड़ा हो गया है, दूध नहीं निकलता। किसी तरह खींच-तानकर इतना-सा दूध निकाल पायी हूं। चाय कम से कम सफेद तो हो जाये। पी, पी, दूध के बगैर भी वह चाय पेट में जायेगी।"

सारी बातें पूर्ण फिर अपने मन में दुहराता गया। अचानक अंदर ही कोई रस पाकर उसने मुंह को फैला एक शब्दहीन हंसी हंस दी। दीवार के छेदों से आती हुई धूप से ही उसे सूरज उगने का आभास हो गया था, फिर भी उसने सिरहाने की ओर की खिड़की को जरा-सा परे हटा दिया। बांस की दीवार में कटी खिड़की, उस पर चटाई के टुकड़े को बांस की खपच्चियों से जोड़-बांधकर एक पर्दा बना है और उसे बेंत से लटकाये रखा गया है। किनारे से उसे कुछ बल लगाकर ठेल देने पर वह धड़-धड़ करता एक ओर हट जाता है। उसने खिड़की से ही

देखा, सूरज बांस के झुरमुट के ऊपर चला गया है। उठा तो जाता नहीं, काम है इसलिए उठना है। मगर वह उठकर भी क्या करेगा ? बाजार क्या लेकर जायेगा ? इन नन्हें बच्चों को वंचित करके ले जाना क्या उचित होगा ? उसने सिरहाने को हाथ से ही टटोलकर एक बीड़ी निकाली, जलायी और लेटे-लेटे ही पीने लगा।

कोई धमधमाता हुआ आया। ज्यादा गुड़ मांगने वाला उसका मंझला लड़का था।

"बप्पा, उठते क्यों नहीं ? क्या बाजार से गुड़ नहीं लाओगे ?" उसके हाथ-मुंह में जूठन लगी हुई थी।

दीवार के उस पार से 'तीन में से घटा तीन बराबर' करने वाला लड़का, जो दूसरी कक्षा में पढ़ता था, बोल उठा – "अगर बाजार जायें तो मेरे लिए एक दस्ता कागज लायें, बप्पा ! सिरीरामपुरी कागज, मेरी भूगोल की कापी के पन्ने खत्म हो गये हैं, मास्टर मारेगा।"

सबसे छोटा बेटा, जलपान का कटोरा हाथ में लिये जलपान को हाथ-मुंह में लपेटे, चाटता हुआ बाहर निकल आया। उसकी फरमाइश थी लार्जेस की !

"मेले लिए एक थो जालेन लाना, बपा !"

मगर उसने दूसरे ही क्षण सोचा, वह भी तो बाप के साथ बाजार जा ही सकता है। लार्जेस लाने का काम तो वही कर सकता है। इसलिए बोला – "मैं भी जायगा बाजाल तेले साथ।"

मां अंदर आ गयी।

"दोपहर हो चली, अब भी उठने का नाम नहीं।" शायद बच्चे के हाथ-मुंह धोने के लिए उसका एक हाथ पकड़ दूसरे हाथ से तीन उंगलियां दिखाकर वह बोली – "तीन तो मैंने देखे थे। साथ में और भी दो-एक चीजें खोज देखो तो बाड़ी में।"

आखिरी बात कहती हुई वह छोटे बच्चे को मुंह-हाथ धुलाने के लिए ले गयी।

उंगली से दिखायी तीन चीजों को वह भी जानता है, पहले दिन ही देख चुका है। वह कल से यह बात तय नहीं कर पाया है कि क्या करे। बच्चे का हाथ-मुंह धुलाकर लौटने पर उसे वैसे ही लेटे देख, आवाज को जरा सख्त कर वह बोली – "बांस की आग अब राख होकर पानी हो जायेगी। मैं फिर आग जला नहीं सकती। उधर डेंकी में बरा[1] डाला हुआ है।"

अब पूर्णकांत उठ पड़ा। सुबह की चाय छोड़ी नहीं जा सकती।

हाथ-मुंह धोकर पिछवाड़े के बरामदे में एक मोढ़े पर बैठते ही पत्नी ने चाय का गिलास सामने रखकर अपनी फरमाइश बतायी – "चालीस नंबर सूत भी पाव भर देखियेगा जरा ! सूत के बगैर करघे पर के अंगोछे ऐसे ही सड़ रहे हैं। हां, आधा पाव कपड़ा धोने का साबुन भी लेते आना।"

"कपड़ा धोने का साबुन। क्यों, वह तो पिछले रविवार को ही लाया था न ? खत्म हो गया क्या ?"

"पिछले रविवार को कहां ? बीच में एक रविवार और निकल नहीं गया ? आपके कपड़े

---

1. एक तरह का कोमल चावल जिसका आटा बनाकर खाते हैं और पीठा आदि भी बनाते हैं।

क्या दो बार नहीं धोये गये ? इनके पैंट-कमीज आदि को जरा-जरा साबुन लगाकर केले की राख डालकर उबाल दिया था, इसलिए दो सप्ताह चला। इसके अलावा कभी-कभी सिर-मुंह धोने के लिए भी तो चाहिए।"

"नहाने के लिए ? नहीं, हमें साबुन लगाकर विलायती बनने की कोई जरूरत नहीं।" पूर्ण ने चाय की घूट मुंह में ली। सिर-मुंह धोने की बात का मतलब पूर्ण ने या तो नहीं समझा, या समझने की कोशिश नहीं की।

"दादा हैं क्या ?" बाहर से टंक की आवाज आयी।

"दादा, आओ, अंदर आ जाओ। हाथ-मुंह धोकर चाय की घूंट ले रहा हूं।" गिलास नीचे रखकर पूर्णकांत ने दीवार की ओर रखे पीढ़े को खींचकर सामने कर दिया।

"इतनी देर से चाय पी रहे हो ?" बाजार के लिए सामान से भरा छोटा-सा कोंवर एक ओर रखकर टंक पीढ़े पर बैठ गया।

शादी के बाद इन दोनों ने एक ही साथ दीक्षा ली थी। इसलिए दादा का संपर्क आध्यात्मिक भी था। टंक का घर मील भर दूर के गांव में है। बाजार इसी राह से जाना पड़ता है।

"मैं तो आज बड़े सवेरे ही जाग पड़ा था। बाड़ी की टट्टी की मरम्मत की, गायों ने तोड़ डाली थी। बाड़ी में खोज-ढूंढ़कर केले का एक फूल, और कुछ नीबू मिले। लकड़ी के लिए कुछ सूखे बांस खोजकर फाड़े। फिर नहा-धोकर घर से चार छीमी आठिया[1] केले पके देखकर कांवर बनाकर बाजार जा रहा हूं।"

"यह जीने-खाने का लक्षण है, भैया !" कहते हुए पूर्णकांत ने मुस्कुराते हुए चाय का गिलास फिर उठा लिया।

तभी पूर्णकांत की पत्नी चादर से चेहरे का एक सिरा ढंककर एक कटोरा फीकी चाय थाली में सजाकर ले आयी और टंक के सामने की जमीन को हाथ से पोंछकर रख दिया। दादा को चाय या तामोल, चाहे कुछ भी देना हो, यही नियम है।

उसके पास खड़ी होकर चादर को सहेजते हुए पति की ओर देख हंसकर कहा – "देखिए, लोगों के कामों की तो गिनती नहीं। एक हमारे 'ये' हैं, कहते-सुनते अब जाकर इनकी कुंभकर्णी नींद टूटी है। बाड़ी में तो अभी जाना ही है। खोजने-ढूंढने पर खेखसे, केले के फूल हमारे यहां भी निकलेंगे।"

"अच्छा", .. कहकर पूर्णकांत ने और एक घूंट चाय मुंह में डालकर पहले की भांति मुस्कुराते हुए कहा – "पीओ दादा, ख़ाली चाय है। तिस पर फीकी।"

"गाय लात चलाती है। थन पर हाथ ही नहीं रखने देती।" पास खड़ी पत्नी ने सुर मिलाया, "कुछ पहले आ जाते, तो एक के हिस्से के दूध से दोनों की चाय कुछ सफेद हो जाती।"

---

1. एक तरह का केला जिसमें काफी बीज होते हैं।

"इस गाय को बेचकर एक दुधारू गाय खरीद लो।" चाय की चुस्की लेते हुए टंक ने कहा।

"ऊंह, पाप होगा, दादा! धर्म ऐसा नहीं कहता।"

टंक इस बार हो-हो करके हंस पड़ा। बोला – "तुम भी पुराने जमाने के बने रह गये, दादा! आजकल का युग अलग है। पहले की बातों को पकड़े रहने से काम नहीं चलेगा! पिछली लड़ाई में तुमने नहीं देखा, मिलिट्री के लिए गाय-बैल का ठेका बड़े-बड़े हिंदुओं ने लिया था। हम जैसे हलवाहे अगर धरम का पालन न करें तो भी चल जायेगा। बच्चों को दूध चाहिए, तभी उनका दिमाग अच्छा होगा।"

बीच में ही पूर्ण की पत्नी बोल उठी – "भला बच्चों को दूध कहां से मिले? जब दूध होता था, तब भी थोड़ा-सा चाय के लिए रखकर मुहर्रिर के यहां उठौना देते रहे। तय था कि उसी से लगान की रकम चुकता होती रहेगी। मुहर्रिर भी कहता रहा, लगान का पैसा जमा कर दिया था, और इधर आयी कुर्की। अच्छा! दूध दूसरों से खरीदने जायें तो एक रुपया सेर लगता है – जबकि हमें देते हैं छह आने।..." एक ही सांस में इतना कह चुकने पर युगों से लोग जिस चिरंतन सत्य का स्मरण करते हैं, अपने अनुभवों से उसकी याद करती हुई बोली – "गिरे पेड़ पर ही सभी कुठार चलाते हैं, यह बिलकुल सच है।" ये सारी बातें कुछ पाने की आशा से नहीं, क्योंकि दादा की हालत भी उनसे कुछ अच्छी न थी, बल्कि अपने मन को हल्का करने के लिए कही गयी थीं। अपने आदमी से भी ये बातें वह पहले कह चुकी थी।

पूर्णकांत दादा को तामोल-खैनी खाने के लिए देकर आंगन से ही शुरू होने वाली बाड़ी में बड़े तेजी से घुस गया।

इस बीच पूर्ण की पत्नी ने तामोल का बटा और चिलम भरकर तंबाकू टंक के सामने रख दिया। इसके बाद पास के दरवाजे को पकड़कर खड़ी हो गयी और बाड़ी की ओर देखती हुई बोली – "हाट-बाजार में ले जाने लायक सामान में है – मालभोग[1] केले की कुछ छीमियां। दरिद्र की किस्मत में हंस के अंडे में जैसे जर्दी न रहे, वैसे ही उस घौद में भी केलों की सिर्फ तीन ही अच्छी छीमियां निकलीं। बाकी तो वैसे ही सूखे-पतले। बच्चे कहीं देख न लें, इस डर से खलिहान में छिपाकर रखा था। अच्छी वाली तीनों छीमियां पककर एकदम तैयार हैं। बाड़ी की अच्छी चीज है, मानकर देवता को एक छीमी चढ़ाना चाहा था। इनका बप्पा कहता है, एक-एक केले का एक-एक आना मिलेगा। उससे आधा सेर चना लाकर चढ़ा देने से ही हो जायेगा... मगर उन केलों को निकाल ले जाना ही कठिन हो रहा है, अगर किसी तरह नन्हें बच्चे की नजर पड़ गयी तब तो हो गया। बिलकुल कछुवे की पकड़ है।"

अब तक टंक सिर झुकाये तंबाकू पीता हुआ उसकी बातें सुनता रहा। कुछ न कहना भी तो ठीक नहीं, पर कहने को है ही क्या? फिर भी बोला – "हां, मालभोग केले अगर बच्चों को खिलाये जायें, तो उनके शरीर में बल-शक्ति बढ़ती है। चेहरा भी मालभोग केले जैसा ही

---

1. असम में होने वाला एक प्रकार का बढ़िया केला।

हो जाता है। शहरवाले तो खरीदकर खिलाया करते हैं। इसीलिए उनके बच्चे पढ़ने-लिखने में भी तेज होते हैं। देखने में भी खूबसूरत। हमारे बच्चे हैं सूखे-दुबले मालभोग केले।..." टंक ने पूर्णकांत की पत्नी की बात ही दुहरा दी।

वह टंक को तामोल-खैनी देकर बरामदे के एक सिरे पर लगी ढेंकी कूटने चली गयी।

पूर्णकांत ने बाड़ी से खोज-ढूंढ़कर केले के दो फूल, पंद्रह-बीस खेखसे लाकर फर्श पर रख दिये और जल्दी से एक घड़ा पानी शरीर पर ढालने के लिए तैयार हो गया।

जाने के पहले हाथ में एक फटा कपड़ा लेकर खलिहान का दरवाजा खोल अंदर घुस गया और पुआल के अंदर से केले निकाले। पके केलों को देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। तीन छीमियों के अलावा कुछ और छीमियां थीं, जो उतनी बढ़िया नहीं थीं। वे अगर पकें भी तो बीच-बीच में गुठरी मारे रहेंगे।

"कम से कम तीन रुपये नकद मिल जायेंगे। कागज का एक दस्ता, चालीस नंबर का सूत.. फिर अंगोछा बेचकर एक-एक अंगोछे के डेढ़-डेढ़ रुपये मिलेंगे – गुड़ के बिना भी नहीं चलता। नमक, लार्जेस भी चाहिए...दाल, मछली तो खैर लाने की जरूरत नहीं...।"

चोर की भांति केले कपड़े में बांधकर वह उतर ही रहा था, तभी मंझला लड़का जो कहीं खेल रहा था, मौजादार के कारिंदे की भांति वहां आ धमका।

"बप्पा, वह गठरी में क्या लिया है ?"

"कुछ...भी...नहीं...।" क्या बहाना करे झट सोच न पाकर पूर्ण बोला – "जाओ, तुम सब खेल रहे थे न, खेलते रहो।"

लड़के ने दौड़कर गठरी पकड़ ली।

"अरे ! अरे ! छोड़ दे ! छोड़ दे, खराब हो जायेगा..."

"क्या खराब हो जायेगा ?"

खींच-तान में कपड़े के खुले हिस्से से खरे सोने जैसे केले दमक उठे।

"केला - केला - केला - कहां मिला ? एक दे मुझे, दे दे।"

"केला - केला - केला" चिल्लाता हुआ छोटा लड़का भी कहीं से दौड़कर आ गया।

कुछ समझदार-सा बड़ा लड़का थोड़ा अलग खड़ा मानो कुछ सोच रहा था। चीख-पुकार सुनकर मां भी ढेंकी छोड़कर दौड़ी आयी। इस बीच टंक भी उठकर आ गया था।

उसके बाद शुरू हो गयी – "केला दो – केला दो" की चीख पुकार।

मां ने एक छड़ी हिलाते हुए कहा, "गुड़ से जब तक कटोरी लाल न हो जाये, जलपान नहीं खाता, भाजी के बगैर भात मुंह में नहीं जाता। वह सब भला कहां से आयेगा, अगर इन केलों को बाजार में न बेचें ?"

पिटने का डर उन्हें न था। उन्हें केले ही चाहिए थे। पूर्ण ने गठरी को सिर पर से उठाकर कहा – "तुम लोगों के लिए खलिहान में और हैं न ! कल तक पक जायेंगे, खाना।"

बात कहते ही हंसी उल्टी की भांति निकल आकर गले के पास अटक गयी। वह हंसी

सुबह से लगी हुई थी। खलिहान में केले होने की बात सुनते ही मंझला लड़का उधर दौड़ पड़ा। मगर नन्हें ने हठ पकड़ लिया था। हाथ की चिड़िया को छोड़कर वह झाड़ी की चिड़िया पकड़ने नहीं गया।

बड़ा लड़का पास आकर उसका हाथ पकड़ समझाने लगा – "बप्पा तुम्हारे लिए बाजार से अच्छा लाजेन खरीद देंगे न – केले बेचने पर ही तो लाजेन मिलेगा।"

"मुझे लाजेन चाहिए, केले भी चाहिए।" उसने बाप के पैरों को बांहों में भर लिया और बाप के सिर पर के केलों की ओर देखते हुए तुतला-तुतलाकर जवाब दिया।

"आज जलपान में खाने के लिए गुड़ लायेंगे न, मेरे लिए कागज भी...," बड़े ने फिर समझाने की कोशिश की।

"नहीं चाहिए" – कहकर वह जोर से गरज उठा। समझाने से उसे मानो मिर्चें लग रही थीं।

बाप ने उनकी मां की तरफ देखा। मतलब – एक दे ही दूं? "नहीं, न देना। एक देने से तो होगा नहीं, तीन चाहिए। तीन आने पैसे यानी सेर भर नमक, पाव भर गुड़ या आधा पाव साबुन मिल सकता है। केले तीन तो टप् से निगल ही जायेंगे साथ-साथ ...(दादा ने कहा था – दिमाग बढ़ेगा! तीन केलों से भला कौन सा दिमाग बढ़ेगा?)" कहती हुई, पास जाकर नन्हें का हाथ पकड़कर वह पति के पास से उसे खींच ले गयी, बोली – "बेकार में केले तोड़ लेने पर छीमी टूट जायेगी, भला कौन खरीदेगा?" कहकर उसने पति को चले जाने के लिए आंखों से इशारा किया।

दोनों आताई[1] निकल गये जल्दी से बाहर।

कांवर पर ले जाने को सामान कम था, लेकिन कांवर लेकर न जायें तो जरा संकोच-सा लगता है। पूर्ण ने पहले के जमाने के अंग्रेजी स्कूल की दूसरी श्रेणी तक पढ़ाई की थी। अब तो अंग्रेजी की क्या बात, बंगला[2] अक्षर भी बर्तनी लगाकर पढ़ता है। "अनभ्यासे हता विद्या।" टूटी-फूटी ही क्यों न हो, एक साइकिल थी। उसी को धकेल-धकेलकर हाट-बाजार किया करता था। उस दिन कुर्की वाले आकर उसके मुंह पर आठ रुपये मारकर वह भी ले गये। सुना है, रुपया न देने पर साइकिल नीलाम कर दी जायेगी। सूत लाने पर अंगोछे बनेंगे, अंगोछे बेचकर रुपये आयेंगे, आज भी केले बेच कर दो रुपये... नहीं, नहीं, कहां बचेगा उतना...?

बाजार लगभग डेढ़ मील दूर था। दोनों तेजी से आगे बढ़ गये।

रास्ते में ही हलधर बनिया मिला। तुंदिल, दढ़ियल, हलधर बुड्ढा बाजार के दिन घात लगाये रहता है। उधार में सामान लेकर उधर मुंह न करने वाले ग्राहकों को पकड़कर गालियां बकता है, और पैसे न मिलें तो कोई सामान रखवा लेता है।

"क्यों रे पूर्णकांत, क्या ला रहा है?"

---

1. एक ही गुरु के चेले। गुरु-भाई।
2. उस जमाने में असम के स्कूलों में प्राय: बंगला पढ़ायी जाती थी।

"क्या लायेंगे भला, दादा ? केले की तीन छीमियां, दो-चार खेखसे, केले के दो फूल, बस यही...।"

"भीम केले के फूल ? देखें, देखें । मैं खोज ही रहा हूं। कितना दाम मांग रहा है ?" कह कर आगे बढ़ा और केले देखकर चकित हो गया । "अरे मुझे भी एक छीमी देता जा ! कितना मांगता है, बता ?"

"एक-एक आने का । जल्दी कीजिए । मुझे बाजार पहुंचना है ।"

"एक आने का एक ? अरे क्या शहर समझ रहा है ? दो-दो पैसे में दे ।"

"नहीं, नहीं । बाजार में एक-एक के छः-छः पैसे भी मिल सकते हैं ।"

"छः-छः पैसे क्यों, कोई आंख का अंधा गांठ का पूरा दो-दो आने भी दे सकता है । मगर तीन माह पहले एक सेर गुड़, एक सेर नमक, पाव भर तंबाकू लिया था उधार, याद है ?"

पूर्ण के चेहरे पर मानो किसी ने होली की तेलसनी कालिख पोत दी हो । वह तो बिलकुल भूल ही गया था । बाजार में कोई चीज बेच न पाने के कारण लौटते समय इस दूकान से उधार में माल ले गया था । वैसे आम तौर पर इस दूकान से वह माल नहीं लेता, पास की दूसरी दूकान से लेता है । फिर भी बूढ़े ने धर्म के नाम पर उस दिन उधार दे दिया था ।

"लेने के समय सबको याद रहता है – देने के समय नहीं ?" बूढ़े के वाक्य-बाणों ने उसे जर्जर करना शुरू कर दिया ।

आखिर मोल-तोलकर केले की एक छीमी, एक केले का फूल और बारह खेखसे देकर उसने उधार चुका दिया । जो हो, बोझ तो हल्का हो गया । तीन में से एक केला गया ।

बाजार के छोर पर पहुंचते ही गठरी को आताई के कांवर में मिला दिया । नहीं तो इन्हीं थोड़ी-सी चीजों के लिए हाट वाले को अलग से दो पैसे भरने पड़ेंगे । जो भी लाभ हो वही अच्छा ।

बाजार में चुने हुए स्थानों पर इसी बीच व्यापारी बैठ चुके थे । उन दोनों ने छायादार जगह देखकर अपने सामान लगा दिये । पूर्ण के हाथ सामान सौंपकर टंक बाजार देखने गया । उसे खास तौर पर एक गज ननगिलाट[1] कपड़ा पत्नी के लिए चाहिए था । पत्नी ने जमा किया हुआ डेढ़ रुपया देकर भेजा है ।

पूर्ण वहां से जरा हटकर एक पीपल की बढ़ी हुई डाली के नीचे खड़ा होकर ग्राहकों की बाट जोहने लगा । धूप भी काफी कड़ी हो आयी थी । कुछ ही हटकर मछली-बाजार था । गर्मी के मारे नारो-बाटो[2] मछलियों की बदबू फैल रही थी । मधुमक्खियों की तरह भनभनाती हुई भेना[3] मक्खियों ने मछलियों की टोकरियों को घेर लिया था । मक्खियों को गिन पाना भले संभव हो, पर वहां मछली खरीदने के लिए धक्कम-धक्का करने वालों को गिन पाना संभव न था ।

---

1. लांग क्लाथ ।
2. एक तरह की छोटी मछलियां ।
3. एक तरह की बड़ी मक्खियां, जो सड़ी-गली चीजों पर ज्यादा पड़ती हैं ।

मछली खरीदने की तो बात ही नहीं थी, यों ही रंग-ढंग एक बार देख भर लेने के लिए मछली-बाजार का एक चक्कर लगाने के बारे में उसने मन ही मन सोचा था, मगर इस धक्कम-धक्के के बीच क्या जरूरत पड़ी है वहां जाने की ? बेकार में लालच बढ़ेगा। दो सप्ताह पहले बच्चों की रिरियाहट पर धान देकर मछली-व्यापारी से मछली खरीदी थी, इसके बाद फिर नहीं। क्योंकि धान इस बार पूरा पड़ेगा या नहीं, इसमें भी संदेह है।

सफेद हाफ-पैंट और शर्ट पहने, आंखों पर चश्मा लगाये स्थानीय डाक्टर आकर उसके सामान के सामने खड़ा हो गया। पूर्ण आगे बढ़ आया।

"केले तो बढ़िया हैं, कितने लाये थे ?"

"दो ही छीमियां हैं। सिर्फ तीन छीमियां अच्छे केलों की हुई थीं।"

"घर में सिर्फ एक छीमी रखी है ? असल में सब बच्चों को खिलाना चाहिए। बड़ी अच्छी चीज है। वह सरकारी कागज वहां लगाया गया है, देख रहे हो या नहीं ?"

डाक्टर ने उंगलियों से जिधर दिखाया था, उस ओर नजर डालकर पूर्ण ने देखा, पीपल के पेड़ के तने पर एक कागज लगा दिया गया है, जिसमें एक गिलास दूध, एक केला, कुछ फल-फूल और मछली के चित्र हैं, और उनके पास एक मोटा-सा, हंसमुख बच्चा हंस रहा है।

किताबों में तो ऐसी बातें लिखते ही हैं। तस्वीरों में भी बहुत कुछ दिया रहता है। उसने धीरे-धीरे अपनी आंखें मोड़कर केलों पर टिका दीं।

"एक छीमी लेते जायें, सर !" उसने केले की एक छीमी उठाकर डाक्टर के सामने कर दी।

"कीमत क्या लोगे ?"

"घर की चीज है, कीमत नहीं चाहिए।" इसी डाक्टर ने पिछली बार बड़े लड़के की बीमारी में कई बार जाकर सिर्फ दवा की कीमत लेकर सुई दी थी, इलाज किया था। विजिट के रूप में सिर्फ एक अंगोछा देकर पत्नी ने रो-रोकर कहा था – "आप देवता हैं, नहीं तो मेरे बच्चे की भला जान कैसे बचती ?" आज उसी डाक्टर से कैसे कीमत ले सकेगा ? ऐसा करना उचित न होगा।

डाक्टर ने आठ आने दिये। उसने वापस कर दिया। अंत में डाक्टर ने चार आने देकर केले के फूल और खेखसे ले लिये। साथ आये नौकर ने चीजों को थैले में डाल लिया।

तीन में से दो गया, बाकी बचा एक।

जाने दो, एक तरह से भले काम में ही लगा। डाक्टर भी हाथ में रहना चाहिए। बाल-बच्चे नहीं हैं। प्रौढ़ सज्जन हैं, नाम है – कोई रहमान। शिवसागर की ओर के हैं – चार आने के कागज खरीदने होंगे।

वह फिर लौटकर उसी पीपल-तले जाना चाहता था। तभी पास कोई जानी-पहचानी आवाज सुनी, और मुड़कर देखा – मुहर्रिर था।

"क्या है पूर्णकांत, खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है ?"

बीच-बीच में सफेद हो आये बालों की सुंदर ढंग से मांग निकाले, साफ चिकना काला-सा चेहरा, और फड़कती आवाज वाला प्रौढ़ आदमी। मौजादार से भी ज्यादा प्रतापी, मुहर्रिर आगे बढ़ आया। पूर्ण कोई जवाब देता इसके पहले ही उसने कहा – "क्यों रे, मुझे देने को दूध नहीं होता, दूसरों को कैसे दे रहा है ?"

चौंक-सा पड़ा पूर्णकांत – "श्री विष्णु भैया जी, आपसे क्या छिपाना ? सुबह-सुबह फीकी चाय पीकर आये हैं आताई के साथ। अगर पूछना चाहें तो पूछ लीजिए, आताई शायद आ ही रहा है। कपड़ा खरीदने गया है।"

हालांकि मुहर्रिर को पता था, बात झूठी है। फिर भी बोला – "हां, अब मैं इस बात को बाजार के बीच आताई से पूछने जाऊं, क्यों ? मगर मैंने दूध की कीमत तो लगान में कटवा दी थी, तेरा पहले का लगान बाकी था, इसलिए कुर्की हुई। जल्द रकम का इंतजाम कर साइकिल ले जाना, नहीं तो नीलाम कर दी जायेगी।"

"पहले का लगान तो बाकी नहीं था।" कुछ सहमते हुए पूर्ण ने कहा।

"पता नहीं, बाकी था या नहीं। जाकर देख लेना। जो कहना था कह दिया, पीछे दोष न देना।" इसके बाद जरा नरम आवाज में कहा – "यह चीज तेरी ही है न ?"

"मेरे कहने को तो ये केले भर हैं। और चीजें दादा की हैं।"

"हां, केले तो बढ़िया हैं। अच्छी चीजों में हिस्सा हमें नहीं मिलता। सिर्फ मुसीबत में 'भैया, भैया' करता है। कीमत कितनी कह रहा है ?" कहकर उसने हाथ से यों ही केलों को दबाकर देखा। फिर केले ऊपर उठे, फिर एक ठहुवे[1] से बांध देने पर वे हाथ में टंग गये।

"कीमत भला कितनी कहूं ?" केले के प्रसंग में कही दूसरी बातों को पचाकर मुख्य विषय के बारे में पूर्ण ने कहा, "छीमी के हिसाब से लेने पर डेढ़ रुपया।"

"हूं, डेढ़ रुपया लेना हो तो घर आकर लेना। अभी-अभी डाक्टर को तूने यों ही नहीं दिया था ? क्या मुझे डाक्टर से पता नहीं चला ? तेरा रंग-ढंग तो देख रहा हूं।...हूं ! जमाना कितना बदल गया ? डाक्टर सूई में सिर्फ पानी भरके दे देता है, उसी पर इतनी खातिरदारी, और मैं सब कुछ नीलाम से बचा देता हूं, फिर भी अंगूठा दिखा देते हैं लोग।..."

"नहीं भैया, बहू की..."

"हं:", कहकर बीच में टोकते हुए मुहर्रिर ने कहा, "ठीक है, ठीक है, जो कीमत लेना चाहता है, लगान में लिखा देना। मैं नीलामी के दिन उसी में कटवा दूंगा।"

बनावटी गुस्सा दिखाकर भनभनाता हुआ मुहर्रिर चला गया।

वह भी कोई ऐरा-गैरा नहीं, लोगों पर उसकी भी धाक है — ऐसी आत्म-संतुष्टि का भाव उसके चेहरे पर बनावटी गुस्से के बीच भी खिल उठा।

दूसरी ओर से टंक पसीने-पसीने होकर आ गया। उसके हाथ में एक छोटी-सी पोटली थी और चेहरे पर नाराजगी की एक बड़ी-सी पोटली।

---

1. केले के पत्ते के बीच के डंठल से निकाला गया पतले बेंत जैसा टुकड़ा।

"अरे ! ये सारे के सारे रक्त-शोषकों के झुंड जुट गये हैं। सात दुकानों का चक्कर लगाया, एक रुपये बारह आने से कम में एक गज कपड़ा कहीं नहीं था। दुकानदार से लेकर व्यापारी तक, एम.एल.ए. से लेकर मंत्री तक, सभी हम हलवाहों पर ही अपना बड़प्पन दिखाते हैं। देखना आताई, ये कमूनिस्ट ठीक ही कहते हैं, लोगों को कमूनिस्ट ही बनना होगा, मैं शर्तिया कह रहा हूं। ओह ! तुम्हारे केले बिक गये ?"

"लंका में जो जाता है, वही रावण होता है, आताई ! सोशलिस्ट हो या कमूनिस्ट हो, गरीब का दुख कोई मिटाने वाला नहीं है। देश स्वतंत्र तो हुआ, मगर वह कहीं और हुआ है। केले की बात कह रहे हो ? हां, बोझ तो हल्का हो गया है। जानते तो हो, तीन घटा तीन बराबर शून्य यानी खत्म !" यह कहकर पूर्ण ने मुहर्रिर की बातें दुहरा दीं।

"बहंगी से मारकर उसे लंबा क्यों नहीं कर दिया ? कैसे आदमी हो तुम, आताई ? बच्चों के मुंह से छीनकर ले आये थे। सब यहां ऐसे ही बेकार में चले गये ? छिः ! छिः ! इस् इस् इस् इस् ! मेरे शरीर में लावा फूटने लगा है। आज मैं यहां होता तो मुहर्रिर को..."

"जाने भी दो, आताई ! अपनी किस्मत भला कौन छीन सकता है ? खुद राजा भी नहीं !" कहते हुए पूर्ण ने आताई को छाता सौंपकर कहा – "जरा ठहरना, मैं बाजार का एक चक्कर लगा आऊं।" और वहां से चला गया। क्योंकि टंक को इतना गुस्सा चढ़ आया था कि उसका वश चलता तो वह उन केलों को दौड़कर छीन लाता। यहां तक कि वह पूर्ण को भी यों ही नहीं छोड़ता। गुरुभाई ठहरा, उससे जबान लड़ाना उचित नहीं, मानकर पूर्ण ने वहां से हट जाना ही ठीक समझा।

मगर अब वह खरीदे तो क्या खरीदे ? कागज तो लेना ही होगा। किताब-कागज की दूकान नाम के एक छप्पर की ओर वह बढ़ा, तभी उसने देखा कि नरोराम गुड़ बेच रहा है। पाठशाला में नरोराम उसका सहपाठी था। हिरन के कलेजे की तरह दमकता गुड़ देखकर अनेक लोग खरीदने के लिए इकट्ठे हो गये थे। नरोराम के साथ बैठा उसका भाई पैसे ले रहा था। नरोराम को दम लेने की फुरसत न थी। वह गुड़ तोल रहा था। पूर्ण कुछ देर खड़ा रहा।

एक बार अचानक दोनों की आंखें चार हो गयीं।

"पूर्ण हो क्या ? बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई ?"

"हां, तुम्हें भी तो नहीं देखा। अच्छे हो न ?"

"हां, हूं तो ! क्या तुम्हें भी गुड़ चाहिए ?"

"नहीं..ई, यों ही देख रहा हूं।" कहते-कहते वह पसीने-पसीने हो गया। वह भला नरोराम से कैसे बताये कि उसे आधा सेर या एक सेर गुड़ उधार चाहिए ? उससे तो कभी उधार नहीं लिया। उन दिनों नरोराम स्कूल में गुड़ के मौसम में गुड़ की रेह आदि तरह-तरह की चीजें लाकर बांटा करता था। पूर्ण को हिसाब सिखा देने के कारण ज्यादा देता था।... अब इतने लोगों के बीच, तिस पर छोटे भाई के सामने...ठीक है, बाद में फिर कोशिश करूंगा। नरोराम फिर गुड़ बेचने में जुट गया। पूर्ण भी कदम बढ़ाता धीरे-धीरे किताब की दूकान पर पहुंचा।

"श्रीरामपुरी कागज चाहिए था, दस्ता क्या भाव है ?"

"एक रुपया।"

"बाप रे बाप ! लड़कों-बच्चों को भला कैसे पढ़ाया जा सकता है।"

"अब यह बात न पूछो ! तुम्हें कितना चाहिए ?"

"आधा दस्ता चाहिए था। मगर पैसा शायद पूरा न पड़े। दो-चार आने क्या उधार दे सकोगे ?"

दुकानदार ने मानो कड़वे चिरायता का पानी पी लिया हो – ऐसे मुंह बिचकाकर बोला, "उधार की बात न करो। कितने लोगों के बच्चे बड़े होकर, बाल-बच्चों के मां-बाप बनकर उन बच्चों का स्कूल में नाम लिखवाकर उनके लिए (यहां जरा-सा दम लेकर उसने फिर जोर से बोलना शुरू किया) किताब-कागज उधार लेने के लिए मेरे ही पास आते हैं। इसी दुकान में, समझे न ? अभी भी बही में..."

"ठीक है, तब जितना मिले उतना ही दे दो।" पूर्ण बोला – "मगर पैसे तो सिर्फ चार ही आने हैं। बस, उतने का ही दे दो।"

कागज लेकर और एक चक्कर लगाते समय उसने देखा, एक दूकान में डाक्टर बड़े-बड़े खसिया आलू ख़रीद रहा है। आलू देखते ही खाने की तबीयत हो आती है। बड़ा लड़का एक बार किसी शादी में गया था तो दाल और खसिया आलू की सब्जी के साथ पूड़ी खा आया था और वैसी ही सब्जी बनाने के लिए मां से हठ कर रहा था। मगर बात बने तो भला कैसे ? आलू की कीमत इतनी अधिक है।

उस पर डाक्टर की आंखें पड़ने के पहले ही वह हट गया। समय भी काफी हो गया था। सोचा, शायद आताई का सामान बिक चुका हो। फिर भी एक चक्कर नरोराम के यहां लगा लेना उसने उचित समझा। नरोराम का गुड़ बिक चुका था, वह सामान सहेजने में लगा था।

"क्यों नरो, आज तो अच्छा दांव मारा है।"

"दांव मारने की क्या बात है ? लेकिन हां, गुड़ बढ़िया था।"

"हां, हां, ठीक कहते हो। मुझे भी कुछ चाहिए था, मगर उस समय उतने सारे लोगों के सामने कहना भी अच्छा नहीं लगा। समझे न ? सोचा तुम भी न जाने क्या सोच लो।" कहता हुआ पूर्ण उसके बिलकुल पास पहुंचकर नरोराम के पास ही बोरे के एक सिरे पर बैठ गया।

"क्यों ? कहा क्यों नहीं ?"

"उधार।"

"उंह, फिर भी, 'मेरे लिए सेर भर रख देना' यह बात भी क्या तुम्हारी जबान से नहीं निकली ? छि:, भला कैसे आदमी हो तुम भी ?"

"टीन को खुरचकर जितना निकले वही दे दो ? तुमसे छिपाना क्या ? मेरे पास एक भी पैसा नहीं है।"

नरोराम ने कुछ हटकर सामान सहेजने में लगे अपने भाई की नजर बचाकर चुपके से चार

आने उसे देकर कहा – "टीन में भला क्या मिलेगा ? जाओ किसी के यहां मिल जाये तो ले लेना। मुझे बाद में याद करके दे देना।"

गद्-गद् होकर पूर्ण वहां से हट आया।

दोनों आताई घर लौटे।

लाजेन नहीं ले सका, सूत नहीं लिया, साबुन भी नहीं।

बाजार में तरह-तरह के लोगों का मिला-जुला शोर-शराबा, उनके तरह-तरह के रूप पूर्ण की आंखों से ओझल हो गये। उसकी आंखों के सामने एक केले के लिए उसे बांहों में घेरे रोते हुए नन्हें बच्चे की तस्वीर उभर आयी। उसके पैरों पर टप्-टप् झरते उस बच्चे के आंसुओं की बूंदें... साफ झलकने लगीं। पीले चेहरे वाले करुणाभरी नजरों से देखते बड़े लड़के की तस्वीर और छोटे बच्चे को समझाने की उसकी आवाज कानों में गूंजने लगी...

फिर एक बार बहुत जोर से हंसने की इच्छा हो आयी उसकी, मगर वह संभल गया। उसे हंसते देखकर राह चलते लोग क्या उसे बावला न समझेंगे ?

गुरु-पर्व

लक्ष्मीनंदन बरा

आदिगुरु के पिता की कोई भी बात सीधी नहीं होती । उनका टेढ़ी-मेढ़ी बातों वाला प्यार अंतर में सीधे घुस जाता है । अगर कभी आंगन में दंवरी को छोड़कर अंदर गया होता और पूलों को उकेरना होता, तो वे अंदर देखकर पुकार लगाते – "अरी बेटी, उसे अच्छी तरह से बनाकर एक तामोल खिला और इधर भेज दे ।" शरमाकर मैं झट से बाहर निकल आता, क्योंकि शादी को सिर्फ दो ही महीने हुए हैं । "अंदर जाकर कपड़े बदले ले" वह कहें, तो समझना चाहिए कि खेत में जाने का समय हो गया है । "धोती सहेज ले" कहें, तो समझना होगा कि बांस काटना है । सुबह-सुबह अगर पुकारकर कहें – "मुन्ना, बैलगाड़ी पर छत लगा देना", तो पत्नी से बात करने की समाप्ति समझनी चाहिए । "मैं उसे अभी नहीं भेजूंगा", मेरे कथन का वह विपरीत आदेश है ।

उनके बाद के गुरु को पिता के आदेश से ही वरण करना पड़ा था । वे मेरे गंधर्व-गुरु थे । उन्हीं से मैंने गीत-पद और सूत्रधारी अभिनय आदि सीखा है । पाठशाला में जिन्हें पाया था, उन शिक्षा-गुरुओं की अब चर्चा ही क्या करूं ? वे सब सरकारी वेतन पाने वाले गुरु थे, सिर्फ मेरे ही नहीं, गांव भर के गुरु रहे ।

एक दिन पिताजी बाहरी कमरे में बैठे बेंत की कमाची छील रहे थे । मैं पास के कमरे में बैठा था, पत्नी के साथ तामोल चबाता । तभी पिताजी को आवाज देते हुए श्रीधर, भोटोक, भोकोला और वसंत ताबै[1] वहां आ पहुंचे । ये चारों बुधवारी गोसांई से एक ही साथ दीक्षित हुए थे । पिताजी ने "गृहत थाकिया पेखिलों तयु चरण" (यानी घर में रहते हुए आपके चरणों का दर्शन किया) यह घोषा[2] पद गाकर दंडवत् किया । उसके बाद आपस में हथेली फैला जमीन पर रख, सिर नवा आसन पर बैठे गये । मैंने एक बार बीच में आकर एक नजर डाली और अंदर चला गया । पहले-पहल वसंत चाचा ने आवाज दी – "बांछा आतै[3], अरे समझे न, जमाना बिलकुल बदल गया है । लदर सूत्र ने गांव छोड़ दिया, कई दिन पहले । सुना है, कांहिगुड़ी में मास्टरी मिली है । साथ ही जमीन लेकर खेती-बाड़ी करने की भी इच्छा है । भादो महीने में भी, सुना है, आ नहीं सकेंगे ।"

---

1. दो दोस्तों के पिता । संबंध में चाचा ।
2. नाम-कीर्तन के साथ गाया जाने वाला पद या पंक्ति ।
3. गुरुभाई ।

उनकी बात खत्म होते न होते भोकोला भाई बोल उठे – "कहते हैं न, कि 'धन रैल परि, देहा गैल उरि तथापि मानिष विषय-विकल' यानी, धन पड़ा रहा, देह उड़ गयी फिर भी मनुष्य विषय-विकल है। हरि-हरि, भला कितने दिन खिला-पहनाकर इस सड़े-गले शरीर का बोझ ढोते रहेंगे ? फिर भी यह करतूत ?"

तभी घर की छत पर एक छिपकली के टिक्-टिक् करते ही उत्साह के मारे जमीन पर तीन ठोकर मारकर, 'सत्य, सत्य' कह श्रीधर बामन बोले – "इन्होंने सच्ची बात कही है। कहा है न, 'विषयर सुख इटो, तिले करि चूर, यमर किंकरे धरि निबे यमपुर' यानी इस विषय-सुख को पल में चूरकर यमदूत पकड़कर यमलोक ले जायेंगे। फिर भी तो लोगों को सुमति नहीं आती। हमारा कहना था कि हे सूत्र, इस घट को छोड़ने के और कितने दिन हैं ? इन थोड़े-से दिनों को आंखों के सामने रखकर हरिनाम जपते हुए ही आंखें क्यों न मुंदें ? मगर सूत्र का विचार तो उलटा है।"

तीनों के विचार सुनते हुए पिताजी अब तक मौन थे। मानो उनकी राय जानने के लिए ही उन लोगों ने ये बातें कही थीं। आखिर पिताजी की गंभीर आवाज कान में पड़ी – "सूत्र ने अच्छा काम किया या बुरा किया, निश्चित रूप से कुछ बता नहीं सकता, प्रभुगण ! इस बारे में मुकुंद गोसांई का विचार मैंने अपना लिया है। उनका कहना है, विषय-वासना को छोड़ने की भावना होने पर भी, उन बातों को जबान से उच्चारण न करना ही अच्छा है। छोड़ने की बात कहते फिरते हैं, छोड़ न पाने के कारण ही। वे सब ज्यादा ही जकड़कर बांध लेते हैं। भला हममें कौन आदमी संसारी नहीं है ? खैर, वह सब छोड़ देते हैं। क्या सूत्र के साथ कोई अनहोनी हो गयी ?"

पिताजी की बात से मानो तीनों ही मायाजाल में फंस गये हों, ऐसा अनुभव कर सभी कुछ क्षण स्तब्ध-से रह गये। अब तक चुप्पी साधे रहने वाला भोटोक गायन अब असली मुद्दे पर आया। उसने कहा – "भला ये सारी बातें सोचकर हमारा क्या भला होने वाला है ? सूत्र को भला हित-अहित का ज्ञान कौन दे ? जिसे हम देख नहीं पाते, उस विषय में आवाज उठाकर हमारा क्या लाभ होगा ? यह बात खैर छोड़ ही दे रहे हैं। धर्ममूर्ति माधवदेव[1] की तिथि पर कोई नाटक अभिनय किये बगैर कैसे चलेगा ? इतने दिनों से, उस भेदो सूत्र के जमाने से ही सूत्र सभासदों को तन्मय कर देने वाले भाओना[2] अभिनय की पतवार पकड़े हुए था। मगर अब तो हम लाचार हो गये हैं। आदमी में भी कैसे अजीब-अजीब गुण होते हैं। बांछा आतै, लेकिन नामघर सूना नहीं रह सकता।"

यह बात सुनते ही सभासद-गण गंभीर हो गये। पास के कमरे से अब उनकी बातें मुझे सुनायी नहीं दे रही थीं। शायद किसी गोपनीय बात की चर्चा होने लगी थी। कुछ क्षण बाद पिताजी की आवाज आयी – "पिछली बार, राजा का अभिनय करेगा, ऐसा मुझे बताकर मुझसे दस रुपये ले गया था, मगर पैसा खर्च किये बगैर लाल-लाल कागज की जीभ लगाकर असुर

1. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के प्रमुख शिष्य।
2. शंकरदेव-माधवदेव एवं उनके शिष्यों द्वारा रचित धार्मिक नाटक।

बनकर निकला था, मुझे उसने पहली और आखिरी बार धोखा दिया था, पर इस बार वह कैसे बच सकता है ?" प्रकारांतर से पिताजी मुझे ही डांट रहे हैं, यह बात समझने में बाकी न रहने पर भी मुझे कोई खास डर नहीं लगा था। लगा था, वे यह बात हंसते हुए कह रहे हैं। लगा था, गुरुभाई लोग, मेरी बड़ाई ही कर रहे हैं। अचानक पिताजी ने अंदर देखते हुए आवाज लगायी,– "अब तक उसका कंघी करना क्या खत्म नहीं हुआ ?" मतलब कि मुझे वहां हाजिर होना है। जैसे ही वहां पहुंचा उन्होंने कहा – "तुझे लोदो के सूत्र का अभिनय करना होगा। भाओना के लिए अब सिर्फ बीस दिन हैं। कल ही मुकुंद गोसाई से कह दूंगा, वे घर पर ही आकर सिखला देंगे। उनके घर में तो लड़कों-बच्चों के कारण ही हो-हल्ला मचा रहता है। सुन रहा है न ?"

मैंने भी 'हां' कह दिया और दंग होकर खड़ा रहा। नहीं कहने का तो कोई उपाय ही न था। सूत्रधार बनने का मौका पाकर अचानक मन दमक उठा, अपनी नयी पत्नी को नये पद का गौरव दिखलाने के लिए, अपने नवविवाहित मन को 'रुक्मिणी-हरण' नाटक में समोये रखने का मौका मिलने के कारण।

मुकुंद गोसांई का नाम बचपन से सुनता आ रहा हूं। नगांव के भाठी की तरफ उनका बहुत नाम था। गोसांई की रागिनी जिसने एक बार सुन ली, उसके कानों में वह कई दिनों तक बजती रहती थी। लोगों के विचार से शुद्ध रूप से धनश्री राग गाने वाला उस इलाके में गोसांई के सिवा और कोई रहा ही नहीं। मगर मैंने गोसांई को देखा न था। गोसांई चरिपोता सत्र के थे, जो हमारे घर से दो मील दूर है। हमसे उनका संप्रदाय भी अलग है और हम भगत[1] भी न थे। इसी कारण उनसे हमारा संबंध कम ही था। तिस पर बूढ़े हो जाने के कारण गोसांई बाहर ज्यादा नहीं निकलते थे।

पिताजी के मुंह से ही सुना था कि चरिपोता सत्र के प्रभु लोग खोल[2]-ताल आदि में दक्ष थे। सुना है, किसी चरित-पोथी में यह लिखा हुआ है कि एक बार गुरु-पुरुष शंकरदेव एवं धर्ममूर्ति माधवदेव जब नाव में भाठी की तरफ जा रहे थे, तब उसी जगह उस नाव का एक चरि यानी डंडा गाड़कर चावल उबाला था। तभी से उस सत्र का नाम चरिपोता पड़ गया। वह सत्र पुराने जमाने का था। उनके पूर्वजों को देवताओं की कला के ज्ञाता मानकर सम्मान दिया जाता था। मुकुंद गोसांई में अनेक गुण हैं। महापुरुष शंकरदेव के चार नाटक वे जबानी बोल सकते हैं, राग-रागिनी, तोट्य-भटिमा[3] की तो बात ही क्या ? खोल-ताल, गीत-पद, गायन, भाव-भक्ति आदि से वे पूर्वजों के गुणों की रक्षा करते आये हैं। फिर भी पहले की वह भरी-पूरी, जय-जय की स्थिति अब नहीं रही। शिष्य-भक्त आदि भी दिनों-दिन घटते गये हैं। मगर गोसांई को कोई खास परेशानी न थी। इकलौती बेटी की शादी करने के बाद बिलकुल स्वतंत्र हो गये थे। मगर विधवा भ्रातृवधू के बच्चे-पोसने में गोसांई लाचार हो गये हैं।

1. शंकरदेव-माधवदेव एवं अन्य वैष्णव संतों के चेले।
2. मृदंग।
3. स्तुति आदि।

बैलों को खेतों में छोड़ आने के बाद आंगन में आकर देखा, पिता जी एक आदमी से बातें कर रहे हैं। एक मैली-सी धोती पहने और शरीर पर एक झीनी चादर डाले गोरे-से, सुंदर सज्जन। लंबी नाक और उभरे ललाट के कारण पहले-पहल देखने में दूसरों से अलग जान पड़े। कपाल पर चंदन-तिलक और लंबे बालों के सिरे पर तुलसी के पत्ते, पवित्र-भावना जगा रहे थे। मैं समझ गया, ये ही गुरु हैं। 'मैं वहां जाऊं कि न जाऊं' के पेशोपेश के बाद मेरे अंदर घुसते ही पिताजी ने कहा, "चटाई दीवार से टिकायी हुई है।" बैठने का निर्देश पाकर मैं भी उसी प्रकार बैठ गया। पिताजी की बातें शुरू हो गयीं – "बंदे का है, ऐसा गर्व भला क्या करूं? प्रभु ने इसी को जिलाये रखा है।" लगा कि दूर से ही उन्होंने आंखों के संकेत से मेरी तरफ इशारा किया।

मेरा परिचय पाने के बाद दास्य-भक्ति के विनयावनत स्वर से गोसांई ने अपनी बात का आखिरी हिस्सा यों कहना शुरू किया, "मन में उमंग आ जाने पर जैसे कौवे कांव-कांव करते हैं, हम भी उसी तरह नामघर[1] में घुसकर शोरगुल किया करते हैं। बस इतना ही है। किसी जमाने में बरगीत[2] वन की हिरनी भी कान खड़ेकर तल्लीन हो सुना करती थी। हिंसक जंतु भी शिकार करने की भावना छोड़ देते थे। बराड़ि राग से सागर में रहने वाली मछलियों में भी खलबली मच जाया करती थी। कहा है न,

'मत्स्य मगर सागर तर किर जाय।
सेहि बेला कानाइ बराड़ि राग गाय॥'

यानी – जब कन्हैया बराड़ि राग गाते थे तब मछलियां, मगर आदि सागर में खलबली मचा देते थे।...ऐसी भी वह देव-विद्या। क्या हम उसके लायक हैं?"

गोसांई की इस विनम्रता से मैं मुग्ध हो गया। संकेत पाकर दक्षिणा के साथ सुपारी के बटा को सामने कर घुटने टेकने के लिए ज्योंही बैठना चाहा, पिताजी ने आवाज लगायी – "तुम लोग पढ़े-लिखे लड़के हो न? तुमसे एक बात पूछता हूं – कृष्ण थे जगद्गुरु, अर्जुन के सखा। फिर भी बाण मारते समय अर्जुन किसका स्मरण करता था?" थोड़ा विचारकर सिर खुजलाते हुए मैंने धीमे से कहा – "शिक्षा-गुरु द्रोण का।" जवाब से संतुष्ट होकर गोसांई बोले, "सच कहा। शिक्षा-गुरु द्रोण का ही स्मरण करता था। द्रोण दरिद्र था, अंत में उसने पांडवों के विरुद्ध लड़ाई भी की थी। फिर भी गुरु पर अर्जुन की अविचल भक्ति थी। इसी कारण अर्जुन ऐसा महान धनुर्धर बन सका, जिसके सारे बाण अव्यर्थ थे।" नवागत गुरु के प्रति श्रद्धा दिखानी चाहिए, ऐसा सोचकर जमीन को हाथ से पोंछ, बटा उनके सामने रखकर मैंने प्रणाम किया। गोसांई प्रभु ने भी सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया – "विद्या बढ़ती रहे, मनोकामना सिद्ध होवे!"

दूसरे दिन से शिक्षा शुरू हो गयी। पहले-पहल उन्होंने कुछ गीतों की धुनें और सूत्रधारी-नृत्य में आवश्यक मृंदग के बोल सिखाने का निश्चय किया। पहले दिन उन्होंने बताया

1. वह स्थान जहां लोग पूजन, कीर्तन आदि करते हैं।
2. महापुरुष शंकरदेव-माधवदेव रचित ब्रजावली भक्ति-पद।

कि "खोल-ताल, नगाड़ा, घंटा आदि देववाद्यों की क्षमता अपार है। गुरु-पुरुष शंकरदेव ने पहले पहल जब खोल बनाकर उस पर मसाले का लेप किया था, तब ऐसी आवाज नहीं हुई थी। एक दिन लेप लगाकर उन्होंने खोल को धूप में रख दिया था। तब एक कौवे ने उसमें चोंच मार दी। उसके बाद ही देखा गया कि गुरु-पुरुष ने जैसा चाहा था, वैसी ही आवाज उस खोल से आ रही है, क्योंकि उस कौवे की चोंच में जूठी पत्तल का भात लगा हुआ था। मसाले से उसका संपर्क होते ही खोल इस तरह की आवाज करने लगी। कौवे की यह घटना भी प्रभु का संकेत भर थी। इसी कारण आज भी खोल पर मसाले का लेप किया जाये तो उसमें बासी भात पीसकर मसाले पर लगाये बगैर अच्छी आवाज नहीं निकलती। मृदंग के बारे में भी वही बात है। पहले-पहल मृदंग बनाकर उसे बजाने के बारे में सोचते हुए गुरु-पुरुष चबूतरे पर आ बैठे। कई दिन बीत गये पर उनकी समझ में कुछ नहीं आया। एक दिन जब वैसे ही बैठे हुए थे, तो आकाश से एक चिड़िया उड़ती हुई आयी और उनकी तरफ सीधे कुछ बोल छोड़ती गयी। उन्हीं बोलों को उन्होंने मृदंग की धुन बना लिया। उस चिड़िया का नाम है भेदो कालि। सुनते हैं कि आज भी वह साल में या कई साल बाद एक बार संसार में आती है।" ये बातें जैसी भी हों लेकिन, चूंकि गुरु की जबान से वाद्य-यंत्र के बारे में पवित्र-भाव से कही गयी बातें हैं, अतः सुनकर कुछ बड़ा काम करने के लिए उत्साहित मेरे मन में उथल-पुथल मच गयी थी।

सूत्रधारी सिखाने के लिए उन्होंने शंकरदेव का रुक्मिणी-हरण नाटक चुना। गुरु हमेशा दिन-ढले आते और शाम होते ही चले जाते। नयी-नयी राग-रागिनी और भटिमा की तान और धुनें सीखने में मुझे बड़ा आनंद आता। अर्थ-व्यंजक हाथ चलाने में मेरी बड़ी दिलचस्पी थी। गुरुजी के मुंह से रागिनी सुनकर मैं अभिभूत हो जाता था। कंठ स्वर के कंपन से हर्ष-विवाद की लय अच्छी तरह समझने लगा था।

मैं मन लगाकर सीखने लगा, इससे पिता जी के मन में भी हर्ष था। गोसांई के जाते ही वे एक-दो पूरा[1] धान नौकर के हाथ उनके घर भिजवा देते, जिससे गोसांई को पता न चले। नौकर कभी जाने में आनाकानी करता तो पिताजी कहते – "तुम सब क्या समझोगे ? ऐसे पुरुष जो हमारे यहां आते हैं, यह भी अपना परम भाग्य है।"

गुरु-कृपा से हो, या पिताजी के प्रयास से मैं किसी तरह भाओना में सूत्रधार की भूमिका करने लायक बन गया। नौजवान सूत्रधार बड़ा ही मन-पसंद हुआ है, गांव के सभी लोगों ने एक स्वर से कहा। गुरुजी के प्रति कृतज्ञता से सिर झुक गया। भादो का महीना निकल गया। पिताजी के अनुरोध से गुरु और एक पखवाड़े तक आते रहे।

अगहन में फिर रास-यात्रा के लिए तैयारी करनी पड़ी। गुरु न होने के कारण रिहर्सल-घर में मेरी अवस्था कैसी हो गयी, मैं ही जानता हूं। कुछ दिन रिहर्सल करने के बाद ही अपने को धिक्कारने लगा। केलि गोपाल[2] के आखिरी हिस्से के कई श्लोक ठीक से गा नहीं पाता था। ऐसे उत्तम गुरु से भी अच्छी तरह से सीख न पाने के कारण अपने को बड़ा असमर्थ-सा महसूस

---

1. लगभग पांच सेर का तौल।

2. शंकरदेव-रचित नाटक।

करने लगा। गुरु के पास जाना भी संभव न था। वे बीमार हो गये थे।

एक दिन दोपहर को नाटक हाथ में लेकर मन मारे बैठा था, तभी हेमारबड़ी का रूपाइ सूत्र आ पहुंचा। मन के दुख से अपनी सारी दुर्बलता उससे प्रकटकर दी। दोनों नाटकों के सारे श्लोक और गीत-पद आदि वे बड़े सुंदर ढंग से गा सकते थे। मेरी हालत सुनकर उन्होंने जो कहा, वह नुकीले बाण जैसा मेरे दिल में चुभकर मुझे बिलकुल निढालकर गया। सूत्र ने बताया कि राग गाने-समझने का एक बढ़िया नियम है। उदाहरणस्वरूप, सिंधुरा राग के प्रारंभिक सात अक्षरों को कोमल रूप में लाकर पीछे की ओर चढ़ा देना होता है। अहीर राग में पहले के दो अक्षरों को अलग से खींचकर पिछला हिस्सा करुण स्वर से एक ही साथ गाते जाना चाहिए। श्रीगांधार में पहले के तीन अक्षरों को तेजी से गाकर पिछला हिस्सा धीरे-धीरे घटा लाना चाहिए। इस तरह दस-बारह श्लोक गाने के बाद बात मेरी समझ में आ गयी थी। जाते-जाते वे कह गये – "आपको सिखाने वाले ने बार-बार गाकर कुछ स्वरों को याद करवाना चाहा है, पर किस राग की पहचान कैसे कर सकते हैं, एक का दूसरे से क्या अंतर है, इसके विश्लेषण की कोई जानकारी उन्होंने नहीं दी।" यह बात मुझे जहर-सी लगी। सीख न पाना मेरा दोष हो सकता है, मगर इसी कारण असमर्थ शिष्य के गुरु तो दोष के भागी नहीं हो सकते।

सूत्र के जाने के बाद जाइंमला बूढ़ी अंदर से निकली। लगता था, वह हमारी बातें अंदर से सुन रही थी। दूसरों के कपट की बातों का प्रचार करती फिरने वाली, पर खुद कपटी, इस बूढ़ी को देखते ही मेरे शरीर में आग लग जाती है। बुढ़िया ने लहजेदार आवाज में कहा – "मुन्ना, मैं भी यही कहती हूं। सूत्र असली बात की तरफ इशारा कर गया है। हजार हो, वे ठहरे गोसांई। गोसांई आदमी के लिए किसी शूदिर (शूद्र) को निष्कपट रूप से सब कुछ दे देना कठिन है। किसी शूद्र का बेटा नाचने-गाने में जाना-माना बन जाये, ऐसा करने को गोसांई का मन नहीं होगा। यह सब विद्या उनकी निजी संपदा है।"

इस बात पर मेरी ओर से कोई उत्साह न मिलने के कारण बुढ़िया चुप रह गयी। वह जा नहीं रही थी, यह देखकर मैंने गुस्से से कहा, "मुंहझौंसी बुढ़िया, यहां से भाग। बेकार की बातों में सिर न खपा। परनिंदा में ही तो तेरी तीन-चौथाई जिंदगी बीत गयी।" अपने बेटों की भांति मेरी अवज्ञाभरी डांट सुनकर बुढ़िया नौ-दो-ग्यारह हो गयी।

बार-बार गुरुजी की याद आने लगी। सोते समय सोचा – गुरुजी, एक महीने से बीमार पड़े हैं। इसीलिए जाइंमला बूढ़ी यह बात कह सकी, रुपाइ सूत्र अपनी पंडिताई दिखला सका। गुरुजी चंगे हो जायें। सब कुछ पूरा-पूरा सीखकर इन निंदकों के चेहरों पर कालिख पोत दूंगा। गीत-पद-रागिनी आदि तो स्कूलों में सिखाया जाने वाला गणित का हिसाब नहीं कि नियम सीख लेने पर ही सब कुछ हो जायेगा। अपने को धिक्कारते सूत्रधार पद ग्रहण करने के कारण शर्मिंदा और दिल पर बोझ बनी अनेक बातों पर सोच-विचार करते आधी रात बीत गयी। बिस्तर से उठकर आंगन में आया। देखा, पिता जी आंगन के बीच आत्मलीन-से खड़े हैं। गहरी रात। दूर से आती हुई उल्लू की बोली, और पास की बांस की झाड़ी के घुप्प अंधेरे में झीना उजेला बिखेरते जुगनुओं के कारण रात और ज्यादा गहरी लग रही थी। मेरे पास आकर

पिताजी ने पूछा, "कुछ सुनायी दे रहा है ?" मैंने अच्छी तरह कान लगाकर सुना, तो मेरी छाती अचानक दहल उठी। दूर खेतों की ओर से शायद धमपुरा पोखरे के किनारे से किसी औरत के रोने की आवाज आ रही थी। पिताजी ने गंभीर आवाज में सिर्फ इतना कहा – "वह किसी ऐरी-गैरी औरत की रुलाई नहीं है। वह हमारे अंचल की भाग्यलक्ष्मी है। किसी संत-महात्मा के जाने का समय होने पर, देश की धरती हिल उठेगी, इसी आशंका से भाग्यलक्ष्मी फूट-फूटकर रोया करती है। इस बार पछंद बाप[1] के चलाचली के समय भी ऐसी ही रुलाई सुनी थी। लगता है, मुकुंद गोसांई भी शुक्ल पक्ष तक रह नहीं पायेंगे।"

पिताजी की बातें मुझे उस रुलाई से भी ज्यादा भयावह जान पड़ीं। उसी दिन से वे हमेशा गुरु के यहां जाते और मैं भी तीन-चार दिन के अंतर से जाता रहता। राग-पद या सूत्रधार आदि की बातें मन से हट चुकी थीं। गुरु के घर की फूस-झड़ी, छत, भ्रातृ-वधू का बिखरे बालों वाला करुण चेहरा, और बच्चों की दयनीय स्थिति देखकर सोचा करता – इस स्थिति में भी रुक्मिणी के रूप-वर्णन के सुंदर चपय[2] प्रेम उमड़ाने वाले विरह-गीत, और मुक्तिमंगल भटिमा[3] आदि का इतना हृदयस्पर्शी गायन गुरुजी कर पाते थे, यह कितनी अद्‌भुत बात है। कठोर चट्टान पर संगीत की जड़ जमा सकना ही मानो उसका व्यतिक्रम है।

पड़ोसी और धनहीन भगतों की सेवा-टहल के बावजूद गुरु की हालत सुधरने की ओर नहीं आयी। पुट्ठे सूख गये, कानों की लुटकियां ढीली पड़ गयीं। दवा पिलाते समय पीने से इनकार करते। नमक गर्मकर शरीर सेंकने की बात पर कह देते – "मरी हुई बत्तख के लिए चटाई बिछा रखने की कोई जरूरत नहीं।" हम निराश हो बैठे रहते।

एक दिन शाम को गुरु जी के पास सिर्फ पिताजी और हम थे। उन्होंने हम दोनों को पास बुलाकर कहा – "बांछा आतै, आज दो दिन से तुम्हें और सूत्र बेटे को एकांत में पाने की बात सोच रहा था। आज वह मौका मिला है। नहीं तो शायद मन की बात मन ही में रह जाती। बात बड़ी जटिल है। मैं तुम्हारा और सूत्र बेटे का अपराधी हूं। सब कुछ मुझे कह लेने दो। बीच में टोकना मत। सब कुछ कह लेने पर मेरा मन शांत हो जायेगा। मरने में तो अब चार दिन भी नहीं है। अपने शरीर से ही मुझे अनुभव हो रहा है। तुम भी शायद दो-एक लक्षण देख रहे हो। तिस पर कल एक सपना देखा है। बालि सत्र के आतां[4] को स्वर्गवासी हुए लगभग नौ साल हो गये। कल देखा कि उनसे बातें कर रहा हूं। पता चला, वे आजकल बरदोवा[5] के उधर डेला डालकर अनेक साधु-संतों के साथ हरिकीर्तन करते हुए अमृत-आनंद में हैं। मुझे भी वहां ले जाने को आये हैं। बार-बार समझाने पर मैं भी लाचार होकर सहमत हो गया और दोनों शांति-जान[6] से होकर उजान की तरफ नाव से चल पड़े। तभी नींद खुल गयी। सपने

---

1. गुरु आदि के लिए प्रयुक्त होने वाला सम्मानपूर्ण वैष्णवी संबोधन।
2. एक छंद।
3. स्तोत्र।
4. शंकरदेव माधवदेव के परवर्ती धर्मगुरुओं को आता कहते हैं।
5. शंकरदेव का जन्मस्थान।
6. एक नदी का नाम।

से पता चल गया, मेरी आयु अब खत्म हो चुकी है। तुम तो जानते ही हो, सपने में अगर कोई मृत व्यक्ति बार-बार चेहरे की ओर देखे तो सपना देखने वाले के प्राणों पर संकट आता है। चेहरे की ओर प्यार से देखने की बात तो दूर, हम तो एक-दूसरे से सटकर बैठे थे।"

लेटे-लेटे एक बार करवट बदलकर लंबी सांस लेकर वे फिर कहने लगे – "खैर, जो भी हो। आप लोगों से एक बात बताना रह गया है। अगर कह न जाऊं तो शायद मरने पर भी शांति न मिलेगी। इस लड़के को मैंने जो सिखाया था उसमें बहुत खामी रह गयी थी। पहले ही महीने उसे काफी अच्छी चीजें दे सकता था, मगर मेरे इस जर्जर पातकी मन ने रुकावट डाल दी। सोचा था, इसे जो-जो जरूरत होगी कार्तिक महीने तक सिखाता रहूंगा। हालांकि बीमारी की वजह से वह भी संभव न हो सका। असली बात कहने को जबान ही नहीं खुलती।"

गुरु जी की आवाज धीरे-धीरे कांपने-सी लगी। तब पिताजी ने "वह सब बीती बातें छोड़ दें" कहकर ज्यों ही कुछ कहना चाहा, गुरुजी ने उन्हें रोककर ऊंची आवाज में कहा – "इस लड़के से ईर्ष्या करने के कारण नहीं, बांछा आतै! विषय-जंजाल में पड़कर ही ऐसा किया था। यह तो जानते ही हो कि घर में बच्चों की कैसी मुसीबत है। सावन के बाद से घर में मुट्ठी भर धान नहीं रहता। आज दो साल से एक-दो टुकड़ा जमीन बेचकर किसी तरह से चल रहा था। पूस के पहले कभी करार का धान नहीं मिलता। यह तो हालत है मेरी! इसी बीच आपके अनुरोध पर इस लड़के को सिखाना पड़ा। हमने कभी कोई चर्चा नहीं की, फिर भी विज्ञ मानकर आप दो मुट्ठी धान देते रहे उसी से किसी तरह चलता रहा। मगर एक बात मन में आते ही मेरा मन पिशाच बन गया। मगर बांछा आतै, यह साधारण-सी बात भी भला पहले मन में क्यों नहीं आयी?"

कोई गंभीर बात कहते-कहते गुरुजी अचानक रुक गये। मानो किसी ने उनका गला दबा दिया हो। पिताजी ने अंदाजा लगाकर गुरुजी के मन को हल्का करने के उद्देश्य से पूछा, "क्या बात है, प्रभु?"

गुरुजी ने कहा, "मेरे मन में यह बात आनी चाहिए थी कि मुन्ने को सिखा चुकने के बाद भी उससे या आपसे मेरा संपर्क कट नहीं जायेगा। संकट के दिनों की बात सुनकर मैं न जाने कैसा बन गया था। इसी कारण उसे जल्दी-जल्दी सब कुछ सिखाने से बचता रहा।" गुरुजी ने बात इतने आवेग से कही, मानो वे मेरी उपस्थिति बिलकुल भूल ही गये हों।

पिताजी भी स्तब्ध-से हो गये थे। गुरुजी की ओर नजर डालकर देखा, उनके चेहरे पर कई रंग बदल रहे हैं। कुछ क्षण रुककर पिताजी की ओर असहाय भाव से देखते हुए फिर बोले – "और ऐसी भावना भला होगी भी क्यों नहीं, बांछा आतै? आज मुट्ठी भर पेट में डालने के बाद कल की क्या व्यवस्था होगी, यही चिंता जलाती रहती है। हम गोसांई लोगों के दुख की जलन का अनुभव दूसरे नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में सुबह-शाम नहाने से या माथे पर चंदन का तिलक लगाने से ही क्या अंतर पवित्र हो सकेगा? देव-विद्या सिखाने के लिए भी इस अंतर को मरोड़कर रख नहीं सका। शास्त्रों में पढ़ा था कि भावी दिनों के बारे में सोचना-विचारना नहीं चाहिए। उसके बारे में भावी दिन स्वयं ही विचार करेंगे। इस बात का

मर्म समझ पाने पर भी मेरा विचार है कि शास्त्रों के सभी मतों को युगधर्म नहीं अपनाता। चालीस साल तक दिल लगाकर कितने ही लोगों को सिखाया था, उन दिनों मेरे चारों ओर सब कुछ की बाढ़ थी, सत्र के हर लय से मन निर्मल हो उठता है। अब सोचता हूं – हे प्रभु, भाग्य देकर इस सेवक से उसका हृदय भी छीन लिया। पूजा-घर में ताल बजाता हूं, गीत गाता हूं, विनय-घोषा के पद दुहराता हूं। पर उसमें भी चाह न पाकर पद्य-छंद, ताल-मान छोड़कर नीरस गद्य में ही कहता हूं – हे प्रभु, सेवक भला तुम्हारी महिमा क्या समझे ? तुम्हारे द्वारा सृजित मुट्ठी भर जीवों में एक सामान्य जीव ठहरा। फिर भी मन में यह विश्वास है कि हमें जब दुख होता है तो शायद उससे तुम भी दुखी होते हो। यह लघु-सांत्वना लिये ही अब तक जीता रहा। इसी कारण, बांछा आतै, जीवन में इस मूढ़मति ने जो पहला और आखिरी अहित किया, उसे जैसे निज गुण से क्षमा कर दें। और एक बात, अंत में कहे देता हूं। उस मचान पर जो बही है उसमें राग और ताल की सारी बातें विस्तार से लिखकर रखी हुई हैं। मेरी चिता की आग बुझने के पहले ही इसे अपने घर ले जायें। यह पुस्तक मुझसे दो पीढ़ी पहले के एक आता ने लिखी थी। यह लड़का उसी से जो हो सके, सीखे। देव-विद्या का बीज इसी तरह अगर एक-दो के बीच न रह जाये तो संसार सूखी रेत भर रह जायेगा।"

फिर मेरी ओर देखते हुए कहा, "बेटे, मुझ पर रोष न रखना।" मेरी आंखों से आंसू बहने लगे।

बात खत्म होने पर गुरुजी पिताजी के हाथ पकड़कर उनके मुंह की ओर देखते रहे। पिताजी ने भी रुंधे गले से कहा, "अब इतने पर ही..." और ज्यादा कुछ कह नहीं सके। पिताजी के भाव को ताड़कर उनमें कातरता देखकर गुरुजी को विश्वास हो गया और क्षण भर में उनके पीले पड़े चेहरे पर खून की लाली आ गयी। मगर मुझे गुरुजी की सेवा-टहल करने के लिए दो दिन का समय भी नहीं मिला। उनके शव के पास निढाल पड़ी बुढ़िया भ्रातृ-वधू आखिरी बार के लिए फूट-फूटकर रोयी, क्योंकि अब तो जिंदगी में उसे और किसी के लिए रोना नहीं है। असहाय बच्चे आगा-पीछा कुछ भी सोच न पाकर अवाक् होकर देख रहे थे। आंगन में इकट्ठे सारे लोगों की आंखें उस गुणीजन की यादों के आसुंओं से तर थीं। इस कारण शायद भाग्यलक्ष्मी उस प्रकार से फूट-फूटकर उस दिन रोयी थी।

बच्चों के पुतले जैसे चेहरों पर भविष्य की करुण तस्वीर देखकर सोचता रहा – अगर इंसान के प्यार से जिंदा रहने के दिन चले गये हैं, तब तो इनके कठोर जीवन में कभी इनकी जुबान से गीत-पद नहीं निकलेंगे। बचपन में ही लोगों के सामने हाथ फैलाकर ये बस यही टोकारी गीत[1] गाते फिरेंगे –

"ए मन सुंदर देहा कौन दिया जाय, ऐ मन भारसा नाइ...।"

(यानी — यह सुंदर देह किस दिन चली जाये, रे मन, इसका कोई भरोसा नहीं।)

---

1. एक तरह का लोकगीत।

परदा

होमेन बरगोंहाइ

शराब का अधपीया गिलास मुंह से लगाये मि. परेरा, रंजीत और उसके साथियों के साथ बौद्ध-दर्शन की व्याख्या कर रहे थे। उसी समय वहां मुनीन और मैं पहुंच गया। अचानक परेरा थम गये। गिलास को पूरा खाली करके मेज पर झट से रख, उन्होंने सिगरेट के लिए मुनीन की जेब में हाथ डाल दिया। किसी बड़े संकट से छुटकारा मिल गया हो, ऐसी मुखमुद्रा बनाकर सतीश ने मेरी ओर देखा और चैन की सांस ली। उसके मन की भावना समझकर कुछ दुष्टता के ख्याल से मैंने परेरा को आवाज दी – "ठहर क्यों गये, परेरा ? आज आपका बौद्ध-दर्शन सुनने के लिए ही मैं यहां आया हूं।"

"बौद्ध-दर्शन भला क्या सुनेंगे, बरुवा ? सारे दर्शनों का मर्म मुझे मिल गया है, यू नेवर कैन टेल के बोहान की इस पंक्ति में –

इट्स अनवाइज़ टु बी बॉर्न
इट्स अनवाइज़ टु बी मैरिड
इट्स अनवाइज़ टु लिव
ऐंड इट्स वाइज़ टु डाइ।"

परेरा ने अपने बहुविज्ञापित जीवन-दर्शन की फिर एक बार घोषणा की।

मुनीन उन आदमियों में है, जो अपने जीवन के दुख और व्यर्थताओं की कथा लच्छेदार शब्दों में सुनाकर दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने से बड़ी नफरत करते हैं। परेरा का स्वभाव इसके बिलकुल उलटा है। इसी कारण परेरा की जबान खुलते ही मानो मुनीन के शरीर में आग लग जाती है। आज परेरा का चेहरा देखकर ही उसने समझ लिया कि यह भाषण की शुरुआत ही है, असली बातें तो अभी बाकी हैं। इसलिए भावी संकट से छुटकारा पाने के लिए वह 'चंपा, ओ चंपा' पुकारता हुआ अंदर चला गया।

सतीश हैमलेट की भांति चेहरे को लाल बनाकर परदे के उस पार रक्ताभ अंधकार की ओर दंग होकर देखता रहा। परेरा ने आईने में चेहरा देख मुंह का भाव हंसने जैसा बनाकर ख़ाली गिलास पर नजर टिका एक विषण्ण हंसी हंस दी। रंजीत मुंह के अंदर ही कोई गीत गुनगुनाने लगा। थोड़ा-सा भी होशियार कोई आदमी यह समझ सकता है, कि उसकी वह गुनगुनाहट किसी मानसिक आवेग का स्वतःस्फूर्त प्रस्फुटन नहीं है, मन की किसी दमित उत्तेजना को छिपाये रखने के लिए एक झूठा आवरण भर है।

मुझे करने को कुछ न था। मैं सिर्फ नीरव दर्शक था। सतीश के यहां शराब पीना शुरू करने के समय से ही देख रहा हूं कि कभी कोई बहाना बनाकर मुनीन लाल परदा हटाकर अंदर घुस जाता, और साथ ही सतीश, रंजीत और परेरा में उपर्युक्त लक्षण प्रकट होने लगते। इसमें कौन-सा रहस्य छिपा हुआ है, पता नहीं। सिर्फ एक बात समझ गया था कि कहीं एक तार अवश्य है, जिस पर चोट करने से इन सबके दिलों में एक ही साथ झंकार उठती है। मगर है कहां वह तार?

"आप कहानी लिखते हैं?" परेरा ने अचानक मुझसे पूछ लिया।

उनकी जबान से ऐसा प्रश्न सुनने के लिए मैं जरा भी तैयार न था। मैं कुछ सहम-सा गया। उनकी बात में कोई उपहास का संकेत है या नहीं, यह समझने के लिए कुछ देर परेरा के चेहरे की ओर देखता रहा। परंतु उसका चेहरा देखकर कुछ भी अनुमान लगाना संभव नहीं था। अकालप्रौढ़ता की बलि-रेखा से अंकित वह सख्त और बदसूरत चेहरा कभी भी किसी आवेग की लहर से चंचल नहीं हुआ होगा। परेरा के सवाल का जवाब देना भूलकर मैं सिर्फ उनके चेहरे की ओर देखता रहा – ऐसे विस्मय के भाव से, जिंदगी में मानो पहली बार देखा हो।

"मैं असमिया भाषा नहीं जानता। आपकी कहानियां पढ़ने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला।" मेरे जवाब की प्रतीक्षा किये बगैर परेरा अपने-आप कहता गया – "मुनीन से आपके लेखन के बारे में सुना है। आपकी बदनामी भी काफी सुनी है, सतीश आदि की जबान से। पतित मानवात्मा के अंधकार संग्राम की कथा लोगों को सुनाने जाकर आपके व्यक्तिगत जीवन के प्रति वीभत्स संकेतों से पूर्ण जो तिरस्कार आपको सुनने को मिले हैं, आपके मित्र के रूप में उनके लिए मैं गौरव का अनुभव करता हूं।"

परेरा के गुरु गंभीर भाषण का तात्पर्य आखिर क्या है – यह सोचकर भी पार न पा सका। परंतु इस आदमी का स्वभाव ही ऐसा है। भाषण की विषयवस्तु, बौद्ध दर्शन हो या परकीया प्रेम, उसके शब्द-चयन और वचनभंगी में सदैव वही एक जैसी निपुण सतर्कता रहती है। मेरे कहने को कुछ था नहीं। मैं सिर्फ सुनता गया।

"एक कहानी कहूं, सुनेंगे? आपके काम आ सकती है।" कहते हुए परेरा ने सतीश की ओर देखते हुए कोई संकेत किया। साथ ही मेज पर एक और बोतल आ गयी। लेकिन मैं अंदर ही अंदर मुनीन के लिए उत्कंठित हो उठा। इतनी देर तक भला वह कर क्या रहा है? एक बार उत्सुकता दबा न पाने के कारण पुकारा भी – "मुनीन!" सुनते ही वह नाटकीय प्रवेश की भंगिमा में परदा उठाकर आ गया – मानो वह मेरी पुकार की ही बाट जोह रहा हो। दूसरों की नजर बचाकर मैंने छिपे-छिपे देख लिया – उसका चेहरा लाल था, बाल बिखरे हुए थे और बहुत ज्यादा नशा किये आदमी की भांति विह्वल थी उसकी दृष्टि। परंतु दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि मैं ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति उसे छिपे-छिपे देख रहा है, हालांकि हर व्यक्ति की धारणा है कि वह दूसरे की नजर में नहीं आया है।

परेरा ने गिलास से एक घूंट पीकर चारों ओर नजर घुमायी। कहानी सुनने के लिए सभी उत्सुक थे। वे काफी उत्साहित-से लगे। कुछ देर तक सिर झुकाये मौन रहे। कहानी कहां से शुरू करने पर ज्यादा मनोग्राही हो सकती है, जरूर वे यही बात सोच रहे होंगे। अचानक एक बार सिर उठाकर मेरी आंखों में आंखें डालकर उन्होंने बिलकुल क्लासिकल शैली में शुरू किया –

"किसी समय की बात है। एक लड़की थी। उसका नाम था – मान लें – रानी। जिंदा रहने की क्लांति से मलीन, शराब के फेन से उच्छल उनींदी रजनी की विहाग रागिनी से गुंजरित एक रहस्यमय जगत में वह अकेली निवास करती थी। इस दुनिया में वह कैसे आयी, कोई नहीं कह सकता। उसके बारे में कहने को सिर्फ एक ही बात है – और वह है उसका अनिंद्य सौंदर्य। उसे देखने पर ऐसा लगता जैसे किसी मानव-मानवी के संगम के फलस्वरूप उसका जन्म नहीं हुआ। उसकी सृष्टि एक अतिप्राकृतिक शक्ति का विस्मयजनक विधान है। पितृ-परिचयहीना उस लड़की के मुख की गठन अजंता की अदभुत, लावण्यमंडित नारी-प्रतिमाओं जैसी थी – पाषाण-वक्ष में चिर काल के लिए स्तंभित से हो जाने वाले उस अमर सौंदर्य का स्वप्नावेश उसकी आंखों में विद्यमान था। उसकी उभरी छाती, पुष्ट उरोज, देह के उतार-चढ़ाव, मुझे जार्ज कीट द्वारा बनायी तस्वीरों की याद दिला देते, जो मनुष्य की सारी इंद्रियानुभूति को ध्वस्त कर उसके बीच एक अतींद्रिय सुधा जगा देती हैं। उसकी सुंदरता की तुलना प्रकृति की महिमा, प्रतिभा के संज्ञातीत रहस्य और मानव के मधुरतम विषाद के साथ ही की जा सकती है।"

लगा कि वह विस्मयकारी सौंदर्य परेरा उस क्षण अपनी आंखों के सामने देख रहे हों – वैसी ही एक तल्लीनता की भावना से वे क्षण भर स्तब्ध से होकर बैठे रहे। उसी मौके का फायदा उठाकर मैंने कई ओर नजर घुमाकर देख लिया। जो मुनीन परेरा के जबान खोलते ही बेचैन हो उठता था, वह प्रार्थना की भंगिमा में सिर झुकाये बैठा, तन्मय हो परेरा की कहानी सुन रहा था। गिलास की आधी पी हुई शराब पीना भी वह भूल-सा गया था। एक विशाल स्वप्न का उबलता आवेश अथवा अनेक शत-शताब्दियों की स्मृति-जर्जर अंतर्लीन सत्ता ने मानो अचानक उस पर कब्जा कर लिया हो – वैसी ही एक निरुपाय आत्मसमर्पण की दीनता से उसका समूचा चेहरा भाराक्रांत हो उठा था। परंतु ये सब बातें सोचकर फायदा भी क्या है – कहानी तो बस कहानी है।

परेरा ने फिर कहना शुरू किया –

"रानी जिस घर में रहती थी, वहां दो-एक उच्च वर्गीय अभिजात युवक सदा आया करते, एक रात के लिए नारीदेह का संपर्क पाने के लिए। हालांकि रानी नियमित व्यापार न कर किसी एक की रखैल बना रहना ज्यादा पसंद करती थी। एक दिन अशोक नाम के एक युवक के साथ उसका परिचय हो गया। अशोक एक उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारी था। मां-बाप के मरने के बाद घर से उसका कोई संपर्क न था। जिंदगी में उसे किसी का प्यार नहीं मिला था। संसार में ऐसा कोई न था, जो उसे प्यार दे सके। किसी के प्रति प्यार-मुहब्बत, या

कर्तव्यबोधजनित कोई भी दायित्व न रहने के कारण अशोक स्वभावतः उच्छृंखल और मनमौजी बन गया था। उसके लिए मानव की स्वाभाविक संग-प्रियता गहरे कलानुराग में बदल गयी थी। लोगों के साथ संपर्क स्थापित न कर पाने के कारण उसने साहित्य, दर्शन और काव्य का आश्रय ले लिया। पर गंभीर ज्ञान-बोध न होने पर बहुधा काव्य-पाठ से भी थकावट आती है। मन की वैसी निरालंब स्थिति में अशोक ने शराब पीना शुरू कर किया। आखिर में लंबी आदत के कारण शराब के बगैर वह पल भर भी नहीं रह पाता था। बहुत ज्यादा शराब पीने के कारण उसके शरीर में दो तरह की प्रतिक्रियाएं देखी गयीं। पहली – फेफड़े की तपेदिक से बुरी तरह आक्रांत हो गया, और दूसरी – उसका पुरुषोचित सामर्थ्य घट गया है, ऐसा उसने अनुभव किया।

"उस दिन शराब के नशे में मदहोश, अपनी बांधवी का घर समझकर, वह रानी के घर में जा घुसा। परदा उठाते ही उसे अपनी गलती महसूस हुई, मगर गलती के लिए अफसोस करने का समय नहीं मिला। निर्जन कमरे में रानी मन ही मन अनेक बातें सोचती हुई बिस्तर पर लेटी थी। उसके शरीर के कपड़े भी ज्यादा संयत स्थिति में न थे। एक अजनबी को अचानक दरवाजे के सामने देखकर वह बिस्तर पर उठ बैठी। विभ्रांत और विह्वल दृष्टि से वह अशोक की ओर देखती रही। दूसरी ओर अशोक, जैसे आसमान से गिरा हो, स्तब्ध होकर जहां का तहां खड़ा रह गया। रानी के दुःसह सौंदर्य की लेलिहान शिखा ने उसके समूचे मुखमंडल को मानो जलाकर भस्म कर दिया हो। उसकी नजरों के सूनेपन में एक वैसी ही भावना खिल उठी। रानी क्षण भर अवाक् होकर उसकी ओर देखती रही। दूसरे ही क्षण उसकी चेतना लौट आयी। हमेशा जिस तरह अनेक अपरिचित मेहमानों को अपने बिस्तर पर आमंत्रित करती आयी है, बिलकुल उसी तरह अपने चेहरे पर रहस्यमय हंसी खिलाकर उसने बैठे ही बैठे अशोक को आवाज दी – 'आ जाइये।'

"रानी के उस आह्वान में न आमंत्रण था, न तिरस्कार की भावना थी। मगर उसी में उसका जो परिचय मिला अशोक मानो उसके लिए तैयार न था। यह अलोक-सामान्य सौंदर्य, नारी-देह की यह परिपूर्ण महिमा, लोगों की पशु प्रवृत्तियों को चरितार्थ करने हेतु कभी सृजित नहीं हुई, होना उचित भी नहीं है। बिलकुल निस्पृह भाव से वह यंत्र की भांति रानी के बिस्तर की तरफ बढ़ गया और उसकी अनुमति की प्रतीक्षा किये बगैर बिस्तर के एक सिरे पर बैठ गया। रानी अपने शंख जैसे सफेद और सुंदर गले को थोड़ा मोड़कर अशोक की तरफ देखती रही। अशोक ने सिर्फ एक बार सिर उठाकर उसकी तरफ देखा। इसके बाद पूरा समय वह सिर झुकाये रहा। इस तरह कुछ देर बीतने के बाद, अचानक एक अद्‌भुत आवेग मानो अशोक की छाती में उफनने लगा। उसके अनजाने ही आंखों से लगातार आंसुओं की धारा बहने लगी।

"अशोक का कांस्य-प्रतिमा जैसा मुखमंडल, होंठों के सिरों पर खिला हुआ मधुर विषाद और कपाल पर खिंची हुई चिंता की छाप देखते ही रानी के मन में एक ऐसी भावना जाग उठी, जो इससे पहले कभी नहीं जागी थी। अब अचानक उसे इस तरह से रोते देखकर वह भी

विचलित-सी हो उठी। पर बाहर किसी तरह की चंचलता दिखाये बगैर शांत भाव से उसने पूछा – 'भला, आप रो क्यों रहे हैं ?'

'तुम कितनी खूबसूरत हो...' अशोक के मुंह से निकली यह बात निरुद्देश्य प्रार्थना जैसी लगी...

दूसरों की नजर बचाकर मेज के नीचे से मैंने मुनीन के हाथ को अपनी मुट्ठी में दबा लिया। उसके रक्त-प्रवाह के द्रुत स्पंदनों को रोकने के लिए मैंने पूरा बल लगाकर उसका हाथ पकड़ लिया। वह ऐसा निस्पंद-निश्चल बैठा था, मानो उसकी सारी बाहरी चेतना लुप्त हो चुकी है। मैंने उसके चेहरे की ओर नजर डाली। वहां दिखायी पड़ी मृत्यु की शीतल छाया।

"उस घटना के कुछ दिन बाद", परेरा ने फिर शुरू किया – "रानी का विवाह महेश नाम के एक आदमी के साथ हो गया। विवाह का मतलब किसी तरह समाज-विहित विवाह नहीं। महेश के साथ रानी को पति-पत्नी की तरह रहते देखा गया। बस इतना ही। महेश था शराब का चोर-बाजारी। महेश का मकान ही अशोक के शराब पीने की जगह थी। महेश की उम्र लगभग चालीस साल की थी। वह बड़ा पियक्कड़ था। बेचने की अपेक्षा वह ज्यादातर पीकर ही शराब खत्म कर देता था। उसका चेहरा भी देखने में बैल जैसा था। जान-बूझकर ही अशोक ने उसके खान-पान का दायित्व काफी दिन पहले अपने ऊपर ले लिया था। एक तरह से वह अशोक का आदमी था। पर अशोक के अलावा एक और आदमी से महेश की सद्भावना थी। वह था आर्नल्ड– एक ऐंग्लोइंडियन, उसकी दुकान का नियमित ग्राहक। असल में आर्नल्ड की आजीविका का एकमात्र जरिया था जुआ खेलना। बात यह नहीं थी कि वह दूसरे कामों के लिए अनुपयुक्त था। पर समाज के सभी वर्गों के हजारों मानसिक व्याधि-ग्रस्त लोगों की भांति आर्नल्ड भी लोगों की स्वस्थ एवं सामाजिक जीवन-यात्रा को भय की नजर से देखता था। दिन भर जुआ खेलकर जो मिलता, उससे एक सस्ते-से होटल में खाना खाकर, रात को महेश के यहां शराब पीता। यही उसकी दैनिक जीवन-यात्रा थी।

"महेश के यहां जब उसने रानी को देखा, तो आर्नल्ड के मानस में एक नया विप्लव-सा उठ खड़ा हुआ। इसमें कुछ रहस्य है, यह बात पहले से ही उसके मन में पैठ चुकी थी। उसके मन में भी रानी का सान्निध्य पाने की एक उग्र लालसा जाग उठी थी। मगर मित्रता का असम्मान करने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। अतृप्त वासना के ताप से जलता हुआ वह मौन रहा।

"अशोक पहले से ही महेश के यहां शराब पीने आता था। मगर रानी जब से महेश के यहां आयी, अशोक में एक बड़ा बदलाव आया। वह बातें कम करता, शराब भी कम पीता। लोग कहने लगे कि उसने अपना फक्कड़पन छोड़कर लिखने-पढ़ने में मन लगा लिया है। जिस दिन एक सामाजिक पत्रिका में अशोक की एक कहानी छपी, उसकी जान-पहचान के लोग दंग रह गये। रचना-शैली अपुष्ट थी, कहानी की संरचना कमजोर थी, फिर भी कहानी में एक नवीन जीवन के प्रति अनुराग, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की कामना झलक रही थी। किसके यंत्र के प्रभाव से ऐसा चमत्कार संभव हो सका? दो-एक आदमी इस विषय में थोड़ा-बहुत अंदाजा लगा सके थे। उसमें आर्नल्ड भी एक था।

"आर्नल्ड के मन में दृढ़ निश्चय हो गया कि नारी का प्रेम ही अशोक के हृदय के मरुस्थल में नवीन विश्वास का फूल खिलाने में समर्थ हुआ है। और इसमें कोई संदेह नहीं कि वह नारी है – रानी। परंतु रानी के पति यानी महेश के होते हुए ऐसी बात भला संभव कैसे हो सकी ? आर्नल्ड देखता रहा है – अशोक आजकल बाहर दूसरे ग्राहकों के साथ बैठकर शराब नहीं पीता। महेश के बाहर रहने पर भी सीधे अंदर चला जाता है। एक स्त्री और एक पुरुष की सम्मिलित हंसी-मजाक की उच्छल लहरें आकर दरवाजे पर के रंगीन परदे के पास ही खत्म हो जातीं। परदे के उस पार नेपथ्य में जीवन के जिस अज्ञात रहस्य का नर्तन चल रहा है, उसकी कल्पना न कर पाने वाले भग्न-स्वास्थ्य, अधमरे-से लोगों की धंसी हुई आंखें फैली रह जातीं।

"आर्नल्ड आदि शराब पीकर जल्द ही अपने अपने घर चले जाते। अशोक कभी जाता है या बिलकुल जाता ही नहीं, इस बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं। एक दिन इस अभिनय को आखिर तक देखने की आर्नल्ड की बड़ी इच्छा हुई। मगर रात को वहां रहा कैसे जाये ? उसके दिमाग में एक भयावह युक्ति सूझ गयी। उस दिन शराब पीने बैठते ही मानो अचानक गिर गयी हो ऐसा भाव दिखाकर उसने बोतल से जरा-सी शराब जांघ के कपड़े पर डाल ली। कुछ देर बाद सिगरेट जलाने के लिए दियासलाई जलाकर मानो असावधानीवश जलती तीली को कपड़े पर उसी जगह गिरा दिया, जहां शराब गिरी थी। भक से आग जल उठी। महेश आदि ने दौड़कर आग बुझा दी, परंतु उसके पहले आर्नल्ड की आशा के विपरीत उसके दोनों पैर काफी जख्मी हो गये, जला हुआ घाव सूखने में महीना भर लगा। घाव सूखने पर देखा गया कि उसके चलने-फिरने की ताकत बिलकुल खत्म हो गयी है। पंगु, विकलांग बनकर आर्नल्ड महेश के आश्रित के रूप में उसके घर ही रहने लगा।"

इतना कहकर परेरा ने सतीश की आंखों में आंखें डालीं। एक जलते-से आवेश को दबा रखने के प्राणांतक प्रयास से उसका चेहरा पीला पड़ गया था। मैं इसका कोई मतलब समझ नहीं पाया। लगा कि उस कहानी से उसे उत्तेजना की काफ़ी खुराक मिल गयी थी। अपनी आंखें वहां से हटाकर परेरा फिर कहने लगा –

"जब से महेश के यहां रहने लगा था, तभी से आर्नल्ड ने गौर किया था कि महेश और रानी में पति-पत्नी जैसा संपर्क नहीं है। दोनों एक-दूसरे से काफी दूरी बनाये रखते हैं। एक और बात उसके ध्यान में आयी कि महेश की आंखों के सामने ही अशोक रानी पर काफी अधिकार जताया करता है। कभी-कभी उनका व्यवहार शालीनता की सीमा भी पार कर जाता है। इस पहेली का हल ढूंढ़ने का उसने दृढ़ संकल्प किया। महेश को कई तरह से उकसाकर आर्नल्ड ने उससे जो बातें उगलवायीं उनका सार यह है –

"अशोक ने रानी के प्रेम में आकंठ डूबकर उसे अपनी जीवन-संगिनी बनाना चाहा, परंतु उसकी सामाजिक मर्यादा, ऊंची सरकारी नौकरी और सामाजिक संस्कार-बोध ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। शरीर का व्यापार करने वाली एक औरत के साथ आत्मीय संबंध बनाये रखने में भी उसे संकोच होता। दूसरी ओर, रानी का दुर्निवार आकर्षण था – इन दोनों के संघात में पड़कर उसने बीच का रास्ता अपनाया। उसने अपने पूर्व-परिचित लोभी महेश को

कुछ हजार की रकम देकर उसे रानी को इस शर्त पर अपनी पत्नी के रूप में रखने को विवश किया कि वह उनके दांपत्य जीवन में कोई रुकावट नहीं डालेगा, लेकिन महेश को याद रखना होगा कि रानी के साथ अशोक की मुहब्बत में भी महेश कोई रोक-टोक नहीं कर सकेगा। मानसिक बोध की दृष्टि से महेश वैसे भी निचले दरजे का आदमी था। स्वाभाविक स्थिति में ऊंची कीमत देकर रानी का सान्निध्य खरीद पाना उसके लिए संभव नहीं था, इसलिए यह व्यवस्था उसे बड़ी लोभप्रद लगी।

"इस बात का पता चल जाने पर आर्नल्ड के मन में रानी के बारे में एक नयी अनुभूति जाग उठी। ऐसी अद्‌भुत घटना भी ईश्वर की इस दुनिया में हो सकती है? रानी– सृष्टि का विस्मय, साकार सौंदर्य, इस रूढ़ि-जर्जर संसार में अपने लिए नये ढंग से जिंदा रहने की महान प्रेरणा है – उसके साथ अगर उसके जीवन का जरा भी संबंध जुड़ जाये, तो उस वेगवान प्रेरणा की बहती धारा में स्वयं अवगाहन कर इस पंकिल ज़ीवन-यात्रा के पाप और पतन से उसे छुटकारा मिल जायेगा, सौंदर्य की वेदी पर आत्मनिवेदन द्वारा वह प्रकृति के साथ नये ढंग से परिचित हो सकेगा। इस गरिमामय सुखानुभूति के बीच वह नये ढंग से जीवन और जगत को प्यार करना सीखेगा। महेश की जबान से सारी बातें सुनकर और रानी के बीते दिनों की जानकारी पाकर आर्नल्ड का संकोच मिट गया। एक दिन दोपहर को एकांत क्षण में उसने रानी से प्रेम-निवेदन किया। उसने रानी को बता दिया कि उसने रानी की कण भर सहानुभूति पाने को ही जिंदगी भर के लिए यह पंगुता अपना ली है।

"नारी जिस-तिस को झट से प्यार नहीं करने लगती, हालांकि प्रणयार्थी के ऐकांतिक प्रेम-निवेदन से मन ही मन पुलक अनुभव करती है। रानी आर्नल्ड की बातों से विचलित-सी हो उठी। परंतु अशोक की सीख पाकर और स्वभाव से भी वह गंभीर थी। उसने आर्नल्ड से कहा – 'किसी एक को एकांत रूप से प्यार करना, किसी के गहरे प्रेम में अपना सब कुछ न्यौछावर कर देना, जिंदगी का कितना महान अनुभव है, यह बात अशोक से प्रेम करके ही मेरी समझ में आयी है। इस दुनिया में अब किसी से और कुछ भी मैं पाना नहीं चाहती। हम जैसे लाखों लोग हैं जो अपने ज्ञान से या सेवा से संसार का कोई उपकार नहीं कर सकते, परंतु हममें से हर आदमी कम से कम एक-एक आदमी को अपने सामर्थ्य के अनुसार जितना हो सके, सुखी बना सकता है। और खुद भी सुख से रह सकता है। सही माने में सुखी आदमी भले ही कुछ करे या न करे, अपने सुख की ही महिमा से दुनिया का उपकार करता है।... आपको मैं और कुछ तो नहीं दे सकती, पर अपनी मित्रता जरूर दे सकती हूं।'

"आर्नल्ड मंत्र-मुग्ध-सा रानी की बातें सुनता रहा। उसका कथन खत्म होने पर अचानक उसे लगा कि रानी की जबान से वह अशोक का ही कथन सुन रहा है। असल में अशोक अपनी तेज बुद्धि से पहले ही समझ गया था कि आर्नल्ड कभी न कभी रानी से प्रेमयाचना अवश्य करेगा। इसलिए उसने हर बात रानी को रटा दी थी। अशोक और रानी की आत्माएं प्रेम के ताप से पिघलकर एक हो गयी हैं। रानी की अब कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं रही है। आर्नल्ड को बड़ी ईर्ष्या हुई।...विस्मय से वह अवाक् हो गया, मुग्ध हो गया। उसे यह नयी सीख मिली

कि जीवन का विकास सदैव वातावरण पर निर्भर करता है। कोई इंसान जन्म लेते ही हीन या कलुषित बनकर नहीं आता, विवश होकर कोई बुरा हो भी जाये तो भी प्रेम, दया, सौंदर्यबोध, कलानुराग आदि चिरंतन भावनाएं आदमी के मन से बिलकुल विलुप्त नहीं हो जातीं। प्रेम के जादू की छड़ी के स्पर्श से रानी को नया जन्म मिल गया है। अशोक की लीला-संगिनी है – उसका कोई और परिचय नहीं है। वह किसी समय की गणिका नहीं, महेश की तथाकथित पत्नी नहीं, वह सिर्फ एक सुगठित नारी-देह भर नहीं है। अचानक आर्नल्ड आनंद से झूम उठा। उसे लगा, रानी ने भले ही उसे कुछ और न दिया हो, एक ऐसा विश्वास दिया है, जिसके प्रकाश में वह मौत के दरवाजे तक अनायास अकेले आगे बढ़ता जा सकेगा। कृतज्ञता से उसकी आंखें आंसुओं से छलछला आयीं।"

इतना कहकर परेरा अचानक रुक गया। मैंने उनके चेहरे की ओर देखा, उसकी आंखें डबडबा रही हैं। मुनीन की आंखें आग जैसी जल रही हैं। रंगे हाथों पकड़े गये अपराधी की भांति सतीश कुंठित और मैं निर्बुद्धि-सा इधर-उधर तकने लगा। तभी अचानक देखा, एक छाया-प्रतिमा परदे के उस पार तेजी से अंदर चली आ रही है। साथ ही मेरी आंखों के सामने से भी जिंदगी के करुण रहस्य का एक रक्तरंजित परदा खुल गया। न जाने किस अंधे आवेश में आकर मैंने खड़े हो परेरा के पैरों पर से कपड़ा हटा दिया। देखा – उसकी दोनों जांघों पर श्वेत कुष्ठ जैसे जलने का निशान और सिकुड़ी, पर उभरी हुई नसें हैं। एक असाधारण रूपसी नारी को केंद्रित कर तीन उखड़े इंसानों की जिंदगियां चक्कर लगा रही हैं। एक ही नारी में एक को मिला है संभोग का आनंद, दूसरे को प्रेम की स्वर्गीय ज्योति और तीसरे को रूढ़ि-जर्जर संसार में नये ढंग से अपने लिए जिंदा रहने की महत् प्रेरणा। उन तीनों में सबसे ज्यादा फायदा किसका हुआ है, यह समझने के लिए मैंने सतीश, मुनीन और परेरा के चेहरे की तरफ एक तरफ से नजर डाली। मगर इस सवाल का सही-सही जवाब तो एकमात्र वह रहस्यमयी नारी ही दे सकती है, जो दरवाजे पर के लाल परदे के उस पार अदभुत, रहस्यमंडित-सी एक बिस्तर के कोने पर बैठी अपने दिल का परदा उठाने की कोशिश कर रही है। उसमें सतीश, मुनीन और परेरा की जगह कहां है?

कब्रगाह

भवेंन्द्र नाथ शइकिया

पूरब में मांस की दुकान वाले चौराहे और पच्छिम में चेराप भाटी के बीच के अंचल की सड़क पर दीन की ड्यूटी लगी थी। सड़क के किनारे-किनारे इधर-उधर देखता हुआ कभी-कभी वह मांस की दुकान के पास तक जाता, फिर वहां से मुड़कर चेराप भाटी आ जाता। मगर ज्यादातर वह बीच के पूजा-मंडप के पास ही चहलकदमी करता रहा। पूजा-मंडप के बिलकुल पास ही बस-अड्डा था। विभिन्न चेहरों वाली बसों की गति उस अड्डे के आस-पास बीच-बीच में तेज हो जाती थी और बीच-बीच में रुक जाती थी। आधा घंटा पहले अगर करमतला से 'मां शीतला' नाम की बस आकर रुकी है, तो आधा घंटा बाद ही 'भाग्यलक्ष्मी' नाम की बस पलाशीन की ओर रवाना हो गयी। इसी बीच 'दीपक' नाम की बस का हैंडीमैन लड़का कुरूबधरा तक सड़क के दोनों ओर जो-जो गांव आते थे, उन सबके नाम जोर से पुकारने लगा था। इस बस-अड्डे से वैसे आम-तौर पर दिन में चार-पांच बसें ही छूटती हैं, उनके अलावा शहरों में और जितनी बसें हैं, उनके ड्राइवर, हैंडीमैन आदि उन्हें पास की यखिनीमारा नाम की नदी के किनारे ले जाते और ऊपर से नीचे तक उन बसों की अच्छी तरह से धुलाई करते। इन दिनों पूजा के कारण बस-अड्डे की चहल-पहल बहुत ज्यादा बढ़ गयी थी। 'यखिनीमारा' के किनारे कोई बस नहीं जाती थी। हर बस अस्वस्थता, जड़ता, बुढ़ापा सब-कुछ को नजर-अंदाज कर चारों ओर के गावों के साथ इस शहर का उत्सवसूचक संपर्क जोड़े हुए थी।

किसी बस के अड्डे पर पहुंचते ही दीन-पूजा-मंडप से थोड़ा आगे बढ़कर बस के हर यात्री को ध्यान से देखने की कोशिश करता। शहर के चारों ओर पंद्रह-बीस मील के अंतर के इस अंचल में जनजातीय लोगों और चाय-बागान के मजदूरों की आबादी बहुत ज्यादा है और पूजा देखने का उत्साह भी उन्हीं का अधिक है। इसलिए बसों से वे ही लोग झुंड के झुंड उतरते। रंगीन रेशमी साड़ी पहने, चेहरे पर तेल लगा चमकीली बनी, पुष्ट शरीरों वाली काली-काली नवयुवतियां, बच्चों को गोद में लिये या पीठ पर बांधे प्रौढ़ औरतें, ठीक से कंघी करके बाल संवारे, गले में रूमाल लपेटे मुखिया जैसे भावों वाले नौजवान। "पहले जमाने की-सी पूजा अब क्या देख पाओगे ?" कहकर उपेक्षा और बहादुरी का भाव दिखाते बूढ़े आदि तरह-तरह के यात्री आ-जा रहे थे। हर बस के रुकते ही दीन ध्यान से देख रहा था कि इनमें लखिमी और सरूमा भी कहीं है या नहीं ? उन्हें न देखकर एक ओर जहां उसे निराशा होती, दूसरी ओर चैन भी आता। दूसरी बस के न पहुंचने तक वह मांस की दुकान वाले चौराहे या चेराप भाटी की

तरफ टहलता और फिर कुछ देर बाद फिर आकर पूजा-मंडप के पास चहल-कदमी करने लगता। कभी-कभी उसे लगता कि कहीं उसके वहां न रहने के समय ही कोई बस न आ गयी हो, और उसी में लखिमी आदि भी आयी हों। इसी संदेह के मारे वह हर बार लौटते ही बस-अड्डे के आस-पास ठीक से देख-भाल लेता और सोचता – नहीं, वे अभी नहीं आयी हैं।

दीन को बड़ी विरक्ति होने लगी थी। यों तो ऐसी-वैसी गरमी की उसे कोई परवाह ही नहीं होती, तिस पर उस दिन तो कोई ज्यादा गरमी भी नहीं थी, फिर सड़क पर चक्कर लगाना छोड़कर, पूजा-मंडप के साये में एक बेंच पर बैठे रहने की उसे इच्छा हुई। बांह पर झूलती सीटी की डोरी के पास का उसकी खाकी कमीज का हिस्सा पसीने से भीगा हुआ था। सिर की टोपी को दो-तीन बार उतारकर उसने देख लिया था कि तेल से चीकट हुआ उसका भीतरी हिस्सा कुछ भीग-सा गया था। अपने पैरों की पट्टी, जूते, कमर की पेटी – सब कुछ खोलकर, स्वच्छंद हो बैठे रहकर टोपी से हवा करते रहने की उसकी इच्छा हुई।

और दिनों की भांति सड़क-किनारे के दुकानदार से बातें कर, दो-एक पान के बीड़े खा कर, हंसी-मजाक करते हुए ड्यूटी भी कर नहीं पा रहा था। जरा-जरा-सी बात पर उसका दिमाग गर्म हो रहा था, मिजाज चिड़चिड़ा हो रहा था। जैसे ही एक रिक्शेवाला 'हैं-हैं' करता झगड़ा करने लगा, वह पास गया, पूछा – "क्या हुआ ?" होने का मतलब यह है कि शक्तिधारिणी श्री-श्री दुर्गापूजा के उपलक्ष्य में देशी शराब पीकर शक्ति संचय कर चाय-बागान में काम करने वाले दो उत्तर भारतीय रिक्शे पर सवार हो समूचे शहर का चक्कर लगाकर वहां पहुंचे और रिक्शे से उतरे। रिक्शेवाला किराया मांगता था डेढ़ रुपये। वे दोनों दे रहे थे चार आने। रिक्शेवाले का कहना था कि वे दोनों डेढ़ घंटे से उसके रिक्शे पर से उतरे तक नहीं। उन दोनों का कहना था कि वे अपनी पूरी जिंदगी में बीस या पचीस मिनट से ज्यादा रिक्शे पर चढ़े ही न थे। दीन ने उन दोनों को डांट पिलाकर एक रुपया देने को विवश कर दिया। रुपया अदा कर वे दोनों "सारी दुनिया ही बेईमान है" जैसी दो-चार बातें बड़बड़ाते हुए वहां से हट गये। घटना वहीं खत्म हो जानी चाहिए थी, मगर नहीं। दीन उस रिक्शे वाले के साथ लगा रहा, "पहले से किराया न तय करके पसिंजर चढ़ाता है" कहते हुए उसने अपनी लाठी कई बार रिक्शे वाले की नाक पर मारने की कोशिश की। एक बार तो आगे निकलते उस रिक्शे के पीछे की ओर उसी लाठी से 'धम्म' से मार दिया और कहा, "जाओ, भागो।"

असल में उस दिन दीन की ड्यूटी नहीं थी। पंद्रह दिन पहले से उसने थाने के ऊपर वाले से अनुरोध कर रखा था कि इस बार पूजा के दिनों में किसी एक दिन उसे छुट्टी जरूर दी जाये। और किसी तरह से यह संभव न हो तो रात को ही उसे ड्यूटी दी जाये। मां की बीमारी, जमीन की गड़बड़ी ठीक कराने, बहन सरूमा के लिए लड़का देखने जाने और बीच-बीच में लखिमी को देखने के लिए नहीं, यों ही घर जाने-आने में उसकी छुट्टियां खत्म हो चुकी थीं। अगर ऐसा न होता तो ड्यूटी से छुटकारा देने हेतु ऊपर वाले से कभी अनुरोध नहीं करता। काफी नीचे से प्रोमोशन पाते-पाते ऊपर पहुंचने वाला अफसर बड़ा सख्त आदमी है। सिपाही की ड्यूटी इधर-उधर करना और इस पैर का जूता उस पैर में पहनना उसके लिए बराबर है। संभव होने

पर भी कहता – नियमविरुद्ध है, कष्टकर है, अशोभनीय है। फिर भी उसने वचन दिया था, ठीक है, एक दिन, दिन के समय, दीन को छुटकारा दिया जायेगा। परंतु किसी दिन होने से तो काम नहीं चलेगा। निश्चित रूप से किस दिन उसे छुटकारा मिलेगा, यह जान लेना दीन के लिए बड़ा जरूरी था, क्योंकि तभी वह पहले से इंतजाम कर सकेगा। आखिर तय हुआ था – नवमी पूजन के दिन रात को दस बजे तक उसकी ड्यूटी नहीं रहेगी। यह तय होने के दूसरे ही दिन वह गांव जाकर निश्चित कर आया कि नवमी के दिन दोपहर को लखिमी और सरूमा शहर पहुंचेंगी, शाम होने तक वह दोनों को पूजा दिखलायेगा, शाम को वह खुद उन्हें छोड़ आयेगा, फिर अगर जरूरी हुआ तो, रात की ड्यूटी करेगा। आने-जाने में उन्हें कोई असुविधा नहीं होगी, क्योंकि पूजा के दिनों में उनके गांव की सड़क पर आधी रात तक बसों का आना-जाना जारी रहेगा।

लेकिन सरूमा ने एक असुविधा की चर्चा की थी। "वे दोनों तो लड़कियां हैं। टाऊन जाना...।" "नहीं, नहीं यह क्या बात हुई ?" दीन के लिए तो वह बस बीस मील की दूरी है। "वहां जाकर बस पर चढ़ जाना, सीधे शहर पहुंचोगी और वहां बस-अड्डे पर तो मैं रहूंगा ही।" दीन ने शहर और अपने गांव को किसी खिड़की वाली झोंपड़ी का इस ओर-उस ओर जैसा मानकर बात को हल्का कर दिया।

घर से वापस आते समय दीन के मन में एक संदेह जाग उठा था, क्या जाने लखिमी फिर कोई अड़चन बता दे ? क्या इस विषय में बहन से पूछकर देखे ? मगर उसने पूछा नहीं। बार-बार बहन से लखिमी की बात करने में उसे शर्म आयी। तिस पर सरूमा के कहने पर लखिमी समझ गयी थी कि सारा इंतजाम दीन ने ही किया है, यह सुनने पर वह इनकार नहीं करेगी।

आजकल लखिमी से दीन को सचमुच बड़ी शर्म आती है। आमना-सामना हो जाने पर बात शुरू करने में तो उसे खास असुविधा नहीं होती। प्रचंड साहस रखने वाला सिपाही ठहरा। कितनी ही औरतों, युवतियों को अफीम बेचने, गहने चुराने, दरवाजा खोलकर खुद चोर को अंदर आने देने आदि के जुर्म कबूल करवाने के लिए डांटकर उसने रुला डाला है। इसके बावजूद कोई बात पूछने पर लखिमी जैसा करती है, उससे दीन को शर्म महसूस होने लगती है। दूसरी बार कोई बात पूछने में उसे ही संकोच-सा होने लगता है। किसी समय शहर के स्कूल के हमउम्र साथियों में सीखी रसीली बातों से उत्साहित होकर उसने सात साल की लखिमी की फ्राक के फटे हिस्से की ओर इशारा करते हुए उसे चिढ़ाया था – "क्यों री, हवा लगने के लिए मां ने कमीज में खिड़की काट दी है क्या ?" तब लखिमी ने तुरंत मुड़कर फ्राक का फटा हिस्सा दीन के सामने से हटा लिया था।

अब लखिमी दीन के आमने-सामने होने पर अपना समूचा शरीर उससे ओझल करने के उद्देश्य से चादर को खींच-खींचकर फाड़ डालने का उपक्रम करती है। उसे लगता है, मानो सबकी नाप के बराबर बुनी हुई चादरें उसके लिए छोटी पड़ गयी हैं। किसी समय जैसा कि दीन ने मजाक में कहा था, वह खिड़की अब लखिमी ने चुपचाप अपने मन में बना ली है और

चूंकि वह खिड़की सदा खुली रहती है, इसी कारण दीन से आमना-सामना होते ही वह लाल हो जाती, गूंगी हो जाती।

लखिमी के मां-बाप चल बसे थे, वह अपनी दादी के साथ रहती थी। दूर रहने वाला एक मामा उनकी जमीन की देखभाल किया करता था। देखभाल का मतलब है कि लखिमी और बूढ़ी दादी को साल भर के लिए जितने धान और दाल की जरूरत होती, वह दे देता, शेष अपने लिए रख लेता। लखिमी एक ओर निकल जाये और बुढ़िया इस दुनिया से विदा हो ले, तो फिर धान-दाल देने की जरूरत नहीं रहेगी – मामा सोच रहा है। दीन के साथ लखिमी की शादी की बातें चलने जैसा कुछ हो रहा है, सुनते ही वह व्यस्त अभिभावक की भांति शहर के थाने में आ पहुंचा और दीन से पूछा था – "तो फिर शुभ कार्य में विलंब की भला क्या जरूरत है ?"

दीन ने सकुचाते हुए कहा था – "दूसरी तो कोई असुविधा नहीं, सिर्फ बहन याने सरूमा की व्यवस्था अगर पहले कर सकें तो अच्छा हो।" उसने और भी आशा प्रकट की थी कि लखिमी के मामा को भी अगर उधर कोई अच्छा लड़का मिले, तो बात चलाये। मामा "ठीक है, ठीक है", कहते बड़े जोश से वायदे कर गये, मगर जाने के बाद चुप्पी लगा गये।

उसके अलावा लखिमी का कोई और अभिभावक नहीं है। सरूमा भी ज्यादातर उसी के साथ रहती। सरूमा की मां भी हमेशा बुढ़िया की पूछ-ताछ किया करती। बुढ़िया कभी-कभी लखिमी को पास बुलाकर उपदेश देती – "तू अभी से उसके साथ ज्यादा मेल-मिलाप न करना, गांव के लोग बदनामी करेंगे।"

मगर गांव वाले दीन को बड़ा प्यार करते थे। वह लखिमी से कभी मिलता-जुलता भी तो लोग उसका बुरा नहीं मानते। आज जब वे लोग शहर जा रही थीं तो बुढ़िया ने कहा – "जाओ, मगर दिन रहते लौट आना।" बस में चढ़ते समय दो-एक प्रौढ़ लोगों ने कहा – "ठीक है, जा रही हो, जाओ। मगर वहीं न रह जाना।" उसके बाद लोगों ने और कुछ नहीं कहा। इस सुविधा के कारण ही बहुत दिनों से दीन के मन में एक शौक जाग उठा था – किसी उत्सव के दिन लखिमी को अगर एक बार शहर अच्छी तरह से दिखला सकता तो कितना मजा आता ! शहर में कभी कोई देखने योग्य चीज दिखायी देते ही उसे तुरंत लखिमी की याद आ जाती। ओह, किसी तरह से उसे भी यह सब दिखला सकता। शहर में सभा-समिति, तीज-त्यौहार, कुछ भी हो लाठी हाथ में लिये सिर्फ गोलमाल, गड़बड़ी आदि सूंघते फिरना बड़ा वीभत्स काम है। उसके बीच इक्का-दुक्का लोगों की मौज-मस्ती देखते फिरना भी बड़ा बुरा लगता है। ड्यूटी में न रहे तो कमरे में घुसे रहना और ज्यादा परेशानी का सबब हो जाता है। घर का मतलब है एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें दस चारपाइयों को एक-दूसरे से बिलकुल मिलाकर रख दिया गया है। रात को पांच पर लोग सोते हैं, शेष खाली पड़ी रहती हैं। कमरे के चारों ओर कूड़ा-करकट और अंटसंट चीजें बिखरी रहती हैं – मच्छरदानी बांधने की रस्सी, कपड़े टांगने की रस्सी, पेटी टांगने की रस्सी, टोपी टांगने की कांटी। इनके अलावा भी कभी-कभी समय-असमय ताश के पत्तों का ट्वेंटी नाइन का खेल, बीड़ी की बदबू, मार-पीट, चोरी-डकैती

की खूंखार खबरें, नये शिक्षार्थी की सीटी की पीं-पीं और हर काठ की दरार में खटमलों का उपद्रव। बाहर पूजा आदि हो तो घर में बैठे यह सब सहन करने में दीन को बड़ी तकलीफ होती। वह प्रायः सोचता कि ऐसे ही किसी दिन अगर लखिमी आये और उस दिन उसकी ड्यूटी न रहे।

इस बार उसने वही इच्छा साकार करने की व्यवस्था की थी। उसकी ड्यूटी नहीं होगी, दोपहर को लखिमी आदि आयेंगी, धीरे-धीरे चक्कर लगाकर वे पूजा देखेंगे, होटल में चाय पीयेंगे, मैटिनी शो सिनेमा देखेंगे। शौक की दो-चार चीजें खरीदेंगे, और बाद में अगर उसे या लखिमी को बहुत शर्म न आये तो वे एक फोटो खिंचवायेंगे। इसके लिए दीन ने पैसे जुटा रखे थे। खाकी लांग-पैंट में ड्यूटी की बू रह जाती है, इसी कारण उसने पहले से ही एक सफेद पैंट और सफेद कमीज धोबी से धुलवा रखी है। और तो और, उस पैंट में कमर में जहां हुक लगायी जाती है, वहां का एक लाल धब्बा छुड़ा न पाने के कारण उसने धोबी को डांटा भी था। और "जंग का धब्बा भला कैसे मिट सकता है?" कहकर धोबी ने भी उस पर छींटाकशी की थी।

परंतु कुछ भी नहीं हो पाया। मोटर पर मशीन आदि लादे घूमने-फिरने वाली एक कंपनी पास के गांव के खुले मैदान में पूजा के दिनों में सिनेमा दिखाने का इंतजाम कर रही थी। कल अष्टमी पूजा के दिन रात को वहां बड़ी मार-पीट हो गयी थी। मार-पीट की आग तो रात को ही बुझ चुकी थी, पर उसके अंगारों में सूखी पत्तियां डालकर आग तापते कुछ बदमाश लोगों को देखा गया था, इसलिए इस अंचल में इन कुछ दिनों के लिए पुलिस के सिपाहियों को तैनात करना पड़ा। फलस्वरूप शहर में सिपाहियों की तादाद कम हो गयी और दीन की भी ड्यूटी पड़ गयी।

यह खबर मिलते ही दीन ऊपरवाले के पास दौड़ा गया। जाकर हाथ-पैर जोड़े। जवाब में ऊपरवाले ने बताया कि दूसरे ऊपरवाले ने तो दीन को उसी गांव में भेजने की बात सुझायी थी। उन्होंने ही जुगाड़ बिठाकर उसे यहां रखवाया है। तिस पर पूजा के दिनों में 'इमरजेंसी' चल रही है। इसी कारण दीन पूरब में मांस की दुकान वाले चौराहे और पच्छिम में चेराप भाटी वाले अंचल में ड्यूटी कर रहा था और बार-बार बेचैनी से पूजा-मंडप तक वापस आकर आये हुए यात्रियों के बीच लखिमी और सरूमा को खोज रहा था। पूजा-मंडप के पास ही ज्यादा गड़बड़ी हुआ करती है, अपने आप रची इस युक्ति के आधार पर उसने ज्यादातर समय वहीं चक्कर लगाने का मौका निकाल लिया था। हर बस के यात्रियों को देख-देख और उनमें लखिमी आदि को न पाकर वह हताश-सा हो गया था और कभी-कभी आश्वस्त-सा भी होता था, कोई ऐसी वजह आ जाये, कि उनका आना न हो सके, तो भी अच्छा है। अगर वे आ भी गयीं तो भला वह क्या कर सकेगा? उसकी ड्यूटी कब खत्म होगी? उसे कब छुटकारा मिलेगा, तब भला लखिमी आदि को दिखाने के लिए कौन-सी उमदा चीज रहेगी? और उनको तो छोड़ने भी जाना पड़ेगा। नहीं, नहीं – उन्हें नहीं आना चाहिए।

मगर दूसरे ही क्षण दीन का मन फिर अफसोस से भर आता। उसने अपने को बड़ा असहाय-सा अनुभव किया। आज के दिन की उसने कितनी प्रतीक्षा की थी ! उसके वे सफेद कपड़े जैसे के तैसे तह किये, सूटकेस में पड़े हैं। उसकी छाती की जेब में तीस रुपये हैं, फोटो की दुकान में यह पता कर आया है कि एक फोटो के लिए दस रुपये लगेंगे। बनवारी लाल की दुकान आज खुली रहेगी, यह भी पता किया हुआ है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज काफी समय तक लखिमी का चेहरा देखते रहने की एक अदभुत आशा उसके मन में है, इस शहर को नये ढंग से देखने की प्रथम अभिलाषा उसके मन में जाग उठी है।

दीन धीरे-धीरे चेराप घीटी की तरफ आगे बढ़ गया। वहां से मुड़कर लौट रहा था, तभी पीछे की ओर से आती एक बस उसकी नजर में आयी। बस उसे पारकर जैसे ही आगे बढ़ी, उसने सिर उठाकर देखा। और उसकी नजर में आयी – खिड़की के पास बैठी हुई लखिमी। हां, वही तो है। बस तेजी से आगे बढ़ गयी थी। दीन का पूरा शरीर झनझना उठा। क्षण भर के लिए मानो उसका अच्छे-बुरे का बोध खत्म हो गया। झट उसने जेब से सीटी निकालकर पूरी ताकत से बजा दी। कुछ दूर जाकर बस रुक गयी। पूजा-उत्सव के दिनों बसें अपराध के काम ज्यादा किया करती हैं। यह बात बस के ड्राइवर-कंडक्टर आदि अच्छी तरह से जानते हैं। इस कारण वे दोनों चौंक पड़े, इस बार फिर यह कौन-सी झंझट आ पड़ी है ? यात्रियों से ठसाठस भरी बस के पीछे के दरवाजे पर खड़ा होकर दीन ने भी सोचा – अब भला वह क्या बताये कि बस को उसने किस लिए रोका है ? वह पहले गंभीर-सा हो गया और फिर कंडक्टर को बस आगे बढ़ाने को कहा, इसके बाद चारों ओर नजर ऐसे दौड़ाई जैसे कि सिर्फ इसी बस में नहीं, हर बस में वह किसी भगोड़े बदमाश को यात्रियों के बीच ढूंढ़ रहा है। बस के अंदर खड़े लोगों के बीच से होकर सरूमा और लखिमी के पास पहुंच जाने की उसे बड़ी इच्छा हो रही थी, मगर उसे उसने मन में दबा दिया।

बस-स्टैंड पर उतरते ही लखिमी ने एक बार शर्मीली नजर से दीन की ओर देखकर मुस्कुरा दिया। दीन ने उसके समूचे शरीर पर एक बार नजर डाल ली। दो महीने पहले उसने लखिमी को एक सिल्क की चादर दी थी। उसे ही शरीर पर डाले वह आयी है। शहर की जमीन पर पैर रखते ही मानो उसका चेहरा खिल गया है। उसके गाल, बांहें, हाथ मतलब कि समूचा शरीर बड़े सुंदर ढंग से भर गया है। उसके चेहरे के गोरे रंग पर इसी बीच थोड़ी लाली-सी आ गयी है, इन बातों पर दीन ने मानो इतने दिन ध्यान नहीं दिया था।

दीन सोच रहा था कि सरूमा और लखिमी के पहुंचते ही वह अपनी बदकिस्मती की बात उन्हें बतायेगा। परंतु लखिमी की ओर से नजर हटाते ही सरूमा से उसकी आंखें चार हो गयीं तो झिझकते हुए पूछ लिया – "तुम लोगों को इतनी देर क्यों हो गयी ? मैं कब से बस की बाट जोह रहा हूं। आखिरकार मान लिया था कि तुम लोग अब नहीं आओगी।"

सरूमा ने बताया कि बस में सीट नहीं थी। हम दोनों रुकी हुई थीं। कोई बस रुकी ही नहीं। एक बार तो ऐसा लगा कि वे आ ही नहीं सकेंगी।

"आओ" – कहता हुआ दीन उन्हें सड़क के किनारे-किनारे थोड़ा आगे ले गया। मगर वे कहां जायें? दीन का मन फिर खराब हो गया। तभी सरूमा ने पूछा – "अभी तुम्हारी ड्यूटी है क्या?"

"अरे कुछ मत पूछ!" दीन के चेहरे पर नाराजगी उभर आयी। अपनी खाकी पोशाक उसे भद्दी, बदबूदार, शेर की कच्ची खाल जैसी लगी। कमर की पेटी, सीटी की डोरी आदि लोहे की जंजीरों-सी लगने लगीं। माथे की टोपी असह्य बोझ-सी लगी। बोला – "इन गुंडों-बदमाशों के मारे शांति नहीं है। कहीं किसी ने मार-पीट की, बस मेरी छुट्टी कट गयी।"

गुंडों-बदमाशों का नाम सुनकर सरूमा और लखिमा दोनों ने दीन के चेहरे की तरफ देखा। गुंडों-बदमाशों की तो बात ही नहीं, साधारण झगड़े-टंटे की बात से ही उन्हें बेहद डर लगने लगता है। खून बहने का नाम सुनते ही लखिमी का सिर चकरा जाता है। सरूमा ने पूछा – "कहीं झगड़ा-लड़ाई हुई है क्या?"

दीन ने बात को मोड़कर हल्का कर दिया। सरूमा ने फिर पूछा – "तुम्हारी ड्यूटी कब खत्म होगी?"

"क्या जाने, कुछ कह ही नहीं सकता। नियमानुसार तो छह बजे खत्म हो जानी चाहिए थी।" नाराजगी दीन के अंदर कांच की बोतल में रखी जिंदा मछली की भांति ऊपर-नीचे हो रही थी।

लखिमी ने सरूमा से धीमी आवाज में कुछ कहा। सरूमा ने 'हां' कहकर हुंकार भरी। लखिमी ने अब तक कोई बात नहीं की थी, इसी का कारण दीन ने आग्रहपूर्वक बहन से पूछा, "क्या हुआ?"

"कुछ नहीं। वह कह रही है, आज हमारा न आना ही अच्छा था।"

दीन संत्रस्त-सा हो उठा – "नहीं, नहीं, कोई खास बात नहीं है। मेरी ड्यूटी नहीं है। ड्यूटी का मतलब है रास्ते-रास्ते चक्कर लगाकर पूजा देखते हुए घूमना-फिरना। बस! तुम्हें कोई असुविधा नहीं होगी। आओ!"

"ठहरो भी, क्या हम इतनी तेजी से चल सकती हैं?" सरूमा ने कहा।

दीन ठमक गया। उसने बहुत तेजी से कदम नहीं बढ़ाया था, फिर भी कुछ आगे बढ़ गया था। कदम मिलाकर चलने की उसे काफी आदत है। मगर लखिमी आदि जैसे लोगों के साथ कदम मिलाकर चलने की आदत उसे बिलकुल नहीं। लखिमी के पैरों पर उसकी नजर गयी। शहर की लड़कियों का छोटे-छोटे बहुत ही धीमे-धीमे कदम बढ़ाना उसने काफी देखा है। लखिमी भी वैसे ही कदम बढ़ा रही थी। उसका मन प्रसन्नता और संतुष्टि से भर उठा। सिर्फ उसके अपने पैरों की बूटों से निकली कर्कश आवाज ही उसे परेशान करने लगी।

वे पूजा-मंडप के पास पहुंचे ही थे कि तभी मनोहर प्रसाद नामक आमों के व्यापारी ने, जो दीन के साथ मेल-जोल रखने की कोशिश करता आ रहा था, सड़क की दूसरी ओर से आवाज देकर, इशारे से दीन को पुकारा। दीन रुक गया। लखिमी-सरूमा आगे बढ़ गयीं।

सड़क पारकर मनोहर प्रसाद ने आकर ऐसे पूछा मानो कोई गोपनीय बात कह रहा था – "क्या हुआ ?"

दीन ने बदले में पूछा – "किस बात का क्या हुआ ?"

मनोहर प्रसाद ने आंखों के इशारे से लखिमी-सरूमा को दिखाया। क्षण भर में मानो खून की एक बाढ़ दीन के सिर की ओर चढ़ गयी। मनोहर प्रसाद के संकेत को उसने पूरा होने नहीं दिया, तुरंत बोल उठा – "वह मेरी बहन है, और वह हमारे गांव की ही लड़की है, उसकी सहेली।"

मनोहर प्रसाद ने तुरंत आश्रम की कन्याओं की देख-रेख में रहने वाले बूढ़े ऋषि की भांति सौम्य मूर्ति धारण कर ली। पान के बीड़े, किमाम और जर्दे के इस्तेमाल के रक्तपर्णी दांत निपोर कर वह एक बार 'ही-ही' कर हंस पड़ा। फिर कहा – "पूजा देखने आयी हैं ? दिखाइए, दिखाइए। हमारे बड़े बाजार के उधर भी एक पूजा हो रही है। उस ओर भी ले जाइए एक बार।"

दीन जैसे सिपाही आम तौर पर गोल-माल में लगे लोगों के साथ-साथ कदम बढ़ाकर चलते हैं और प्रायः थाने की तरफ आगे बढ़ जाते हैं। ऐसे पूजा-त्यौहार के अवसरों पर कभी-कभी गांव से आयी कोई औरत या लड़की, जिनके साथ कोई अभिभावक नहीं होता, संकट में पड़ जाती हैं और ऐसी औरतों-लड़कियों के उद्धारकर्ता कुछ लोग शहर में लगातार चक्कर लगाया करते हैं।

'पूजा निकल जाये, इसके बाद इसे थोड़ी तमीज सिखानी होगी।' दीन ने मनोहर प्रसाद के नाम पर एक बार दांत पीसा।

कहीं किसी मोटर-साइकिल की भर्र-भर्र सुनकर दीन के कान खड़े हो गये। उसने पता लगाया। नहीं, यह दूसरी है। थाने के ओ.सी. की मोटर-साइकिल की आवाज वह पहचानता है।

वह लखिमी और सरूमा के समीप पहुंच ही रहा था कि अचानक उसके पैरों की गति रुक-सी गयी। यों लखिमी-सरूमा के साथ-साथ चलने में एक असुविधा और भी थी। किसी कारण से अगर उसका ऊपर वाला आ निकले, खासकर वह तिवारी नाम का अधिकारी, जो अपने बाल-बच्चों को सात सौ मील दूर रखकर सिर्फ पोस्टकार्ड, मनीआर्डर पर भरोसा रखते हुए बड़े आराम से साल-पर-साल गुजारे जा रहा है, लखिमी-सरूमा को साथ लिये उसे ड्यूटी करते देख ले तो क्या यों ही छोड़ देगा ?

आगे-आगे जाती हुई लखिमी की ओर दीन ने करुण दृष्टि से देखा। कदम बढ़ाते समय उसका समूचा शरीर मानो धीर गति से नाच रहा हो। उसने खुद जो चादर खरीदकर दी वह चादर उस नर्तन में उलझाव पैदा कर रही थी। एक बार लखिमी की पीठ हाथ से सहलाने की दीन की बड़ी इच्छा हो आयी।

उनके बराबर आ जाने के लिए दीन ने कदम कुछ तेज कर दिये। जो होता है, हो। वह

घूमेगा और ड्यूटी भी करेगा। उसके बाद शाम को ड्यूटी खत्म होने पर उन्हें घर पहुंचा आयेगा। परंतु मांस की दुकान और चेराप भाटी के बीच ही चक्कर लगाना है।

एक बार सकुचाता-सा धीमी आवाज में दीन ने सरूमा की ओर देखते हुए, लखिमी को सुनाते हुए कहा – "असल में यहां टाउन के नाम पर बस यही सड़क है। समझी न! अच्छी-अच्छी दुकानें भी सब यहीं हैं। उधर एक सड़क और है, वहां कचहरी, सिनेमा हाल, हमारा थाना वगैरह है। बड़ा शोर-गुल, भीड़-भड़क्का होता है उधर। तिस पर पूजा के मौके पर कुछ दिनों भले लोगों ने उधर घूमना-फिरना बंद-सा ही कर दिया है।"

शहर छोटा है जरूर, मगर दीन ने जैसा कहा था, उतना छोटा भी नहीं। यह बात कहकर दीन को खुद अफसोस होने लगा। किसी तरह अगर इसी क्षण इमरजेंसी ड्यूटी खत्म हो जाये, इसी क्षण अगर गांव से सिपाही वापस आ जाये और अगर कोई सिपाही सिर्फ घंटे भर के लिए उसे ड्यूटी से छुटकारा दे दे!

उसकी संभावना तो है ही नहीं, इधर उसके हाथ में जो कुछ घंटे हैं, वे भी निकले जा रहे हैं। इसलिए उसे जो-जो करना है, शुरू कर देना ही अच्छा है।

"क्या तुम लोगों को भूख नहीं लगी है?" और कुछ दूर जाकर दीन ने पूछा। लखिमी की ओर देखा तो उसने सिर झुका लिया। सरूमा ने भी कोई जवाब नहीं दिया।

"तो चलो!" कहकर जैसे ही उसने होटल का उल्लेख करना चाहा, अचानक ठहर गया। कुछ दूर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी।

"तुम लोग एक काम करो।" दीन व्यस्त-सा हो उठा था। "चलो, उस पूजा-घर में देवी-दर्शन भी कर लो और कुछ देर वहीं बैठी भी रहो। मैं झट से, वहां क्या हो रहा है, देख आता हूं।"

गड़बड़ी कोई खास नहीं थी। एक आदमी अपनी छुरी-कटारी आदि हर माल आठ-आठ आने में बेचने लगा था। इससे खरीदने वालों की भीड़ लग गयी और उसी बीच एक ग्राहक बगैर पैसा दिये कोई चार छुरियां उठा ले गया था। कौन ले गया, क्या पता? मगर वहां इकट्ठे लोगों में से अगर वह किसी पर शक करेगा तो वे लोग छुरी से ही उस व्यापारी का पेट फाड़ डालने की घोषणा कर चुके थे। तभी दीन वहां पहुंच गया। ज्यादा पूछ-ताछ करने का धीरज दीन को नहीं था। सरकारी सड़क पर फटा चीथड़ा फैलाकर दुकान लगाने के अपराध पर उसने व्यापारी के सिर पर दो-तीन लाठी ठोंकी और अपने हाथ से चिथड़ा समेटकर छुरी-कटारियों की एक गठरी बना, सड़क के किनारे के एक बरामदे में धप्प से पटककर पूजा-मंडप में वापस आ गया।

पूजा-मंडप में लखिमी और सरूमा एक-दूसरे से सटकर खड़ी थीं। उनके पास ही एक बेंच भी थी, परंतु वे उस पर बैठी न थीं। कहां की बेंच, किसने क्यों लाकर रखी है, क्या पता?

दूर से उन्हें देखकर दीन को मन ही मन बुरा लगा। उन दोनों के चेहरे मुरझा गये थे। दीन को लगा, वे डर गयी हैं और उन्हें थकान हो गयी है। चारों ओर से नजरें डालकर उन्हें ही

देख रहे थे । दीन अपने को अपराधी मानने लगा । नहीं, वह अब उन दोनों के साथ ही रहेगा ।

पर वैसा कहां हो सका ? सूरज ढलने के साथ-साथ मानो पूरे शहर के लोगों के काम खत्म हो गये थे । नवमी पूजा की शाम को मस्ती करने के अलावा मानो किसी के पास कोई काम नहीं बचा था । दुकानें, सड़कें, गलियां लोगों से भर गयी थीं और सभी लोग उमंग से भर उठे थे ।

एक बार लखिमी और सरूमा को सड़क के किनारे खड़े रहने को कहकर, उसने पहले, मन ही मन जहां तयकर रखा था, उस दुकान में औरतों के लिए अलग से परदे डालकर बनाये गये कमरों में झांक आया । कोई भी कमरा खाली न था । हर कमरे में पुरुष बैठे हुए थे । कुछ देर बाद फिर एक बार आकर देखेगा यह सोचकर, उन दोनों को मांस की दुकान वाले चौराहे तक ले जाकर फिर वहीं वापस आ गया । उन दोनों के कदम धीमे हो गये थे, इसलिए जब दूसरी बार भी दुकान के सभी कमरों को लोगों से भरा हुआ पाया, वह तब हिम्मत कर उसने एक खाली मेज के पास उन्हें बिठा दिया और खुद उनके सामने बैठ गया । बैठते ही संकोच भरी नजरों से उसने अपने चारों ओर देखा और लगभग हर आदमी की आंखों से उसकी आंखें चार हुईं । उस बंद-से कमरे में हवा लगभग नहीं थी । अपनी खाकी पोशाक की गर्मी से वह अंदर ही अंदर पसीने-पसीने होने लगा ।

"तुम लोगों के पैर दुख गये होंगे ?" अपने अपराधी मन को दबाकर लखिमी और सरूमा की खुशामद करने की उसने कोशिश की । सरूमा ने धीमी आवाज में "नहीं" कहा । लखिमी का चेहरा लाल हो उठा । उसकी नजर से नजर मिलते ही दीन का मन एक अजीब उत्तेजना से भर गया । इतने पास, ऐसे आमने-सामने लखिमी के साथ वह पहले कभी बैठा न था, इस तरह से उसे कभी देखा न था । ड्यूटी की परेशानी और लखिमी की समीपता के परस्पर-विरोधी दबाव में सारी बातें उसके दिमाग में उलझ-पुलझ गयीं । जब तक चाय मेज पर नहीं आ गयी, तब तक वह शहर की पूजा, सिपाही का उत्तरदायित्व, अभी तो किसी तरह से रह रहा है, जल्दी ही रहने को अलग घर मिल जायेगा जैसे विभिन्न विषयों पर बहुत सारी बातें कहता गया । आखिर में लखिमी की आंखें भी चंचल हो उठीं ।

मिठाई खाने के बाद दीन ने समोसे को मुंह में डाला ही था कि इतने में बाहर कुछ ही दूर से किसी मोटर के जोर से ब्रेक मारने जैसी आवाज आयी । बचे समोसे को हाथ में लिये दीन ने उधर कान लगाया । एक बार उसने सोचा – 'जाने दो, जो होता है होता रहे ।' परंतु दूसरे ही क्षण उसे कुछ बेचैनी-सी महसूस हुई । और कुछ ही क्षण में वह बेचैनी दृढ़ कर्तव्य-बोध में बदल गयी । "तुम लोग खाओ । मैं आ रहा हूं अभी," कहता हुआ वह बाहर निकल गया ।

दीन के वहां पहुंचने के पहले ही पास के चौराहे पर एक ट्रक-ड्राइवर और एक जीप-ड्राइवर लगभग एक-दूसरे से सीना भिड़ाये बहस कर रहे थे कि मेन सड़क कौन-सी है । चौराहे पर ट्रक के सामने का बायां हिस्सा और जीप के सामने का दाहिना हिस्सा बिलकुल सटे हुए थे । जीप के ड्राइवर की आंखें लाल थीं, ट्रक के ड्राइवर की आंखों का रंग देखने के लिए उसने

आंखें ठीक से खोली ही न थीं। दूसरा दिन होता तो इन दोनों को थाने में खींच ले जाने के लिए किसी और सफाई की जरूरत ही न थी, मगर उस समय दीन झंझट में नहीं पड़ा। गाड़ियों के नंबर नोट कर रहा है, ऐसा दिखाकर, उसने दोनों गाड़ियों को दो ओर से निकाल दिया।

उधर वे दोनों चाय पीकर सिर झुकाये बैठी थीं। दीन भी आकर फिर पहले वाली कुर्सी पर बैठ गया। बाकी बची चाय-मिठाई खाने की उसकी तबीयत नहीं हुई। सरूमा ने पूछा – "वह सब नहीं खाओगे ?"

"नहीं।" दीन ने अपनी झुंझलाहट दबाकर कहा।

"चलो, तब यहां से निकलें।" कहती हुई सरूमा ने उठना चाहा।

"क्यों ? थोड़ी देर यहीं बैठते हैं। तुम लोगों को पैदल चलते-चलते बुरा नहीं लग रहा है ?"

"बुरा लगने पर भी यहां बैठना अच्छा नहीं लगता। चलो !" चकित होकर दीन धीरे-धीरे बाहर निकल आया। सड़क के किनारे खड़े होकर उसने सरूमा से पूछा – "क्यों ? आखिर हुआ क्या, बता न ?"

सरूमा कुछ शरमायी, फिर भी विक्षुब्ध स्वर में उसने कहा – "यहां के लोग बड़े गंदे हैं। गुंडों जैसे।" कहकर उसने लखिमी की ओर देखा। लखिमी ने शर्म और डर से भरे चेहरे को नीचे झुका लिया।

दीन के दिमाग में जैसे दप् से आग जल उठी। उसे लगा कि वह अभी-अभी होटल में घुस जाये और सारे लोगों को डंडे से पीट-पीटकर सड़क पर निकाल दे। परंतु उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि जल्दी-जल्दी लोगों की नजरों से ओझल होने के विचार से वह उन दोनों को साथ ले वहां से हट गया और अंदर ही अंदर एक यंत्रणा का अनुभव करता रहा।

यंत्रणा ने उसे बिलकुल गूंगा बना दिया था। उसे साथ लिये वे दोनों एक दुकान में चूड़ियां और बाल की क्लिपें खरीद रही थीं। तभी दीन ने देखा, साइकिल पर इधर-उधर नजर मारता तिवारी आ रहा है। सरूमा के हाथ में पांच रुपये का एक नोट थमाकर दीन तिवारी की ओर बढ़ गया। तिवारी ने पहले पूछा कि इधर कोई बड़ी गड़बड़ी तो नहीं हुई ? फिर समाचार दिया कि कई गांवों में और शहर में भी कई जगह मार-पीट हो चुकी है। कल जिस गांव में मार-पीट हुई थी, वहां से लोगों के एक झुंड को पकड़ थाने में लाकर रखा गया है। दो गाड़ियों की दुर्घटना हुई है। गांव में और छह सिपाहियों को भेज दिया गया है। इसलिए यहां का पहरा खत्म होने पर दीन को थाने के सामने एक ट्रक पर बैठकर 'रेडी-पार्टी' बना रहना पड़ेगा – 'इमरजेंसी ड्यूटी'।

दीन भौंचक्का-सा कुछ क्षण तिवारी की ओर देखता रहा। उसके हृदय से एक रुलाई गले तक आ गयी। ऐसा लग रहा था कि लखिमी, सरूमा और वह – तीनों तिवारी के पैरों पर पड़कर विनती करें। परंतु वह कोई बातकर नहीं सका। उससे बात करते समय तिवारी दूर दुकान के बरामदे में खड़ी लखिमी और सरूमा की ओर ही देख रहा था। परंतु उससे उन दोनों

की चर्चा करना दीन को अच्छा न लगा। लखिमी-सरूमा की तरफ देखता हुआ, साइकिल चलाता तिवारी निकल गया। दीन गूंगा-सा खड़ा रह गया।

सरूमा के पास आने पर दीन ने कहा – "अगर तुम लोग गांव लौटना चाहो तो किसी बस पर चढ़ा दूं।"

सरूमा की आंखें फैली रह गयीं। विस्मित होकर उसने पूछा – "क्यों, तुम क्या नहीं चलोगे ?"

दूसरी ओर देखते हुए दीन बोला – "शायद मेरी ड्यूटी अभी खत्म नहीं होगी।"

सरूमा बेचैन हो उठी। अंधेरा घिरता जा रहा था। आंखें फाड़-फाड़कर हर आदमी उन दोनों को ही देख रहा था। चाय की दुकान में बैठे वे बदमाश शायद अब भी आस-पास चक्कर लगा रहे हों। उनके गांव को जाने वाली सड़क की दोनों ओर के चाय-बागानों की पूजाओं में नवमी की रात मतवाले लोगों के किस्से-कहानियां हर साल सुनकर वे अपने घर में ही डर के मारे सिकुड़ी-सी रहती थीं। अब वे दोनों तो अकेली किसी भी तरह घर नहीं लौट सकतीं।

"तो फिर क्या करें ? मेरी ड्यूटी तो खत्म नहीं भी हो सकती है !" दीन ने असहाय स्वर में कहा।

सरूमा ने अबोध बच्ची जैसे लहजे में कहा – "हम तुम्हारे साथ-साथ रहेंगी। तुम्हारी ड्यूटी जब खत्म हो, हमें अपने साथ ले जाकर छोड़ आना।"

"अगर रात भर..."

दीन की बात पूरी होने के पहले ही सरूमा ने पूछ लिया – "रात को तुम कहां रहोगे ?"

"थाने में।"

"हमें भी थाने में बिठला रखना। हम रात भर थाने में बैठी रहेंगी, सिर्फ तुम हमारे साथ रहना।" एक अनजान आतंक से सरूमा सिकुड़ गयी थी। लखिमी की आंखें भर आयीं। दो मोटे-ताजे नौजवान सरूमा के बिलकुल पास से निकल गये। वह लखिमी के और नजदीक सट आयी।

दीन को भी डर-सा लगने लगा। नवमी पूजा की शाम ने निर्बाध आनंद और उत्तेजना से पागलपन का रूप धारण कर लिया था। चेराप भाटी के पास मतवाले लोगों की भीड़ थी। धक्कम-धक्का हो रही थी। मांस की दुकान में बकरों की खाल के अलावा और कुछ रह नहीं गया था। देवी के सामने दोपहर को जिंदा बकरों की बलि दी गयी थी, उनका मांस भी यहां आ गया है या नहीं, कौन जाने ? लोगों की भीड़ में लखिमी और सरूमा को आगे बढ़ाकर ले जाने में दीन को बड़ी तकलीफ हो रही थी। लोग मानो सीधी सड़क पर ठीक से पैदल चलना भी भूल गये हों। दोनों ओर अपने दोनों हाथों को नाव के चप्पू की तरह न चलाये तो आदमी जैसे आगे बढ़ ही नहीं सकता। लखिमी बार-बार चीख उठती थी, सरूमा भी बार-बार उसके पास सट आती थी और लगातार एक तीव्र विक्षोभ की चेतना और वेदना दीन को डंसती रही थी।

छह बजे के आस-पास दीन और दोनों लड़कियां सड़क से हट आये। बस-स्टैंड पर कुछ इधर-उधर घूमकर दीन अपने गांव के किसी विश्वासी आदमी को ढूंढ़ता रहा। मगर उसे कोई नहीं मिला। बस पर सवार होकर लौटने वाला हर आदमी मानो चेराप भाटी में शहर के प्रवास-काल के आखिर कर्तव्य के रूप में एक-एक बार चक्कर लगा आ रहा था। अंत में बस के एक ड्राइवर से दीन ने अनुरोध किया कि वह जाकर उसके घर समाचार दे दे, पता नहीं, सरूमा आदि आज लौट पायेंगी या नहीं। अगर लौट न पायें तो वे बड़े दारोगा की श्रीमती के साथ रहेंगी।

बात झूठी थी। बड़े दारोगा की श्रीमती को दीन ने देखा भी न था।

अंधेरी-सी एक राह से वे आगे बढ़े। आत्मग्लानि की वेदना से कातर अपने चेहरे को अंधेरे में छिपा सकने के कारण दीन को अच्छा लगा। बीच में सरूमा ने एक बार कहा – "तुम जहां रहते हो, उस डेरे पर एक बार चलो तो सही। क्या हम रात को वहां रह नहीं सकेंगी ?"

"क्यों नहीं, अगर बंशीराम बूढ़े की ड्यूटी न हो तो।" उसके सिवा और सबकी रात की ड्यूटी रहती है। तब तो वे दोनों उसी कमरे में रात को पड़ी रह सकेंगी। बंशीराम प्रौढ़ आदमी है, बड़ा अच्छा है। सभी उसे 'बूढ़ा' कहते हैं, और वह लगभग सभी सिपाहियों से कहता है कि उससे अपनी लड़की की शादी करवायेगा और बीड़ी मांगता है।

दीन उसके घर की ओर उन दोनों को ले गया। मगर घर के पास पहुंचकर वह अचानक रुक गया। अंदर से कई लोगों की आवाजें आ रही थीं। सरूमा और लखिमी को बाहर खड़ी रखकर वह अंदर गया। उसकी मंडली के सबसे ज्यादा बदमाश चार पुलिस सिपाही दो चारपाइयों को साथ सटाकर वहां बैठे थे। चारों के बीच फैले अखबार पर भुने चने की ढेरी थी और कमरे की हवा में तेज बू।

दीन ने कुछ तेज आवाज में पूछा – "तुम सबकी ड्यूटी नहीं पड़ी ?"

"धुत्-धुत्! आज पूजा के आखिरी हंगामे में ड्यूटी कैसी रे ?"

जिसकी बुद्धि जितनी शैतान है, ड्यूटी से उसे उतनी ही रिहाई मिलती है। यह बात दीन को पहले से मालूम थी। पर आज उन चारों को वह सहन नहीं कर पाया। थोड़ी कड़ी आवाज में पूछा – "और इसी कारण शायद तुम लोग यह सब कर रहे हो ?"

प्यारेलाल नाम का सिपाही बोला – "अरे, हम तो कुछ भी नहीं कर रहे हैं, जरा बड़े दारोगा के यहां जाकर देख आ। मैं खुद दुकान से इतनी बड़ी-बड़ी दो विलायती लेकर वहां पहुंचा आया हूं।" उसने एक हाथ की उंगलियों को दूसरी हाथ की कलाई पर लगाकर बोतल की माप दिखायी।

दीन वहां से निकल आया। सरूमा और लखिमी को दोनों बांहों में भर लेने की उसकी इच्छा हुई। उसके दिमाग में मानो एक आग जल उठी। लाठी को मजबूती से पकड़े वह कदम बढ़ाने लगा। लखिमी और सरूमा को एक होटल में ले जाकर उसने खाना खिलाया, फिर उन्हें लेकर थाने के बरामदे में आ गया।

शराब पीकर गोलमाल करने वाले पांच मर्दों और तीन औरतों को गांव से पकड़कर थाने के अंदर के बरामदे में बिठला रखा गया था। वे सभी चाय-बागान के मजदूर थे। उनके पास से दीन जब गुजरा, तब वे सभी उसकी ओर कातर दृष्टि से देखने लगे।

दीन सीधे थाने के सबसे ऊपर वाले अधिकारी के पास पहुंचा। निर्भय स्वर में उसने कहा, "सर, मेरी दो बहनें गांव से पूजा देखने के लिए आयी थीं। सुना है, मुझे रात को ड्यूटी करनी है। इसी कारण मैं आज उन दोनों को अपने साथ यहीं रखूंगा।"

अधिकारी कुछ कह पाये, इसके पहले ही सलाम ठोंककर दीन निकल आया। पिछवाड़े के बरामदे की एक बेंच पर उसने लखिमी और सरूमा से बैठने को कहा और खुद आस-पास टहलता रहा।

थाने की बिजली के प्रकाश में लखिमी और सरूमा के चेहरे जगमगा उठे।

थाने का हर आदमी एक, दो, तीन बार, कोई-कोई तो अनेक बार उन दोनों को देख गया। दीन का दिमाग जैसे पगला गया हो। हर आदमी की नजर वीभत्स थी। पुलिस का असली रूप दीन के दिमाग में आ गया। हर आदमी बदमाश है, हर आदमी गुंडा है। किसी का भी विश्वास नहीं। सारी दुनिया मतवाली है।

और वह पुलिस का एक सिपाही है।

मगर... मगर...! दीन बायें हाथ से अपना माथा मलने लगा। वह कितना बेबस है, कितना लाचार है! वह कितना असहाय पुलिस सिपाही है।

एक बार वह जाकर कुछ क्षण लखिमी के पास बैठा। इच्छा हुई, उससे माफी मांग ले, मगर उसकी जबान नहीं खुली।

कुछ दूर बैठे हुए चाय-बागान के मजदूरों में से कोई-कोई ऊंघने लगा था। उनका शराब का नशा कब का काफूर हो चुका था।

साथ ही पूजा का रंग भी उनके मन से उड़ चुका था। वे औरतें बड़े आग्रह से, विस्मयाभिभूत दृष्टि से एकटक लखिमी और सरूमा की ओर देख रही थीं।

उनमें से एक ने एक बार कातर स्वर से दीन से पूछा – "पुलिस बाबू! क्या हमें जाने नहीं देंगे?"

"नहीं।" दीन ने निर्विकार भाव से कहा।

"हमें रात को कहां रखेंगे?"

"लाक-अप में।" दीन ने बरामदे के एक ओर विशेष ढंग से बनाये कमरों की ओर इशारा किया।

अनुतप्त, निस्तेज वे सारे लोग और ज्यादा मुरझा गये।

कुछ ही देर बाद बरामदे के दूसरे सिरे पर थाने का अधिकारी दिख पड़ा। दीन उठा खड़ा हुआ। ऊपरवाले ने एक नजर लखिमी और सरूमा की ओर डाली।

लाठी पर दीन की मुट्ठी ज्यादा कस गयी। हर आदमी बदमाश है, हर आदमी गुंडा है।

किसी पर यकीन नहीं किया जा सकता। किसी का भरोसा नहीं।

अधिकारी आगे बढ़ आया। पास पहुंचकर उसने दीन से पूछा – "लड़कियां ठहरीं, कितनी ही सुविधा-असुविधा की बातें होती हैं। उन्हें तो तुम ऐसे बरामदे में बिठाये रख नहीं सकते। कहां रखोगे, कुछ सोचा है तुमने ?"

"सोचा है, सर !" दीन ने धीमे से कहा।

"क्या सोचा है ? कहां रखोगे ?" ऊपरवाले ने आग्रह से पूछा।

"लाक-अप में, सर !"

और यह बात कहकर दीन ने अंधेरे की ओर मुंह घुमा लिया।

वीणा कुटीर

सौरभ कुमार चलिहा

कांक्रीट के ऊंचे-ऊंचे भवनों के बीच 'आसाम-टाइप' का भद्दा-सा इकमंजिला वह मकान सारे दरवाजे-खिड़कियां बंद किये खड़ा है, बेढब-सा – अन्य भवनों के इधर-उधर निकली, उभरी लोहे की छड़ों ने दृश्य-पट को यों भी रोक रखा है। उनकी सीढ़ियों, सेनिटरी-पाइप-कार्निशों को परे धकेलकर अपनी जान छुड़ा बाहर निकल आने की बुद्धि उसे नहीं आयी है। अबोध जैसे सामने के पुराने गेट के अंदर (आजकल गेट की जरूरत भी क्या है ?) घास का एक लान भी छोड़ रखा गया है। हालांकि उससे गेट की लकड़ी टूट गयी है। उसमें घुन लग गये हैं। गेट के लोहे के कपाट जंग लगने के कारण ऐसे हो-गये हैं, मानो धक्का लगाते ही ढेर हो जायेंगे। लान पर भी फटे कागज के टुकड़े बिखरे हुए थे, टूटा हुआ एक कूड़ेदान, एक टूटी-फूटी साइकिल, पुरानी काठ की पेटी के बचे हिस्से आदि पड़े थे। लान की घास लाल-सी हो गयी थी। घर के खिड़की-दरवाजों की लकड़ी में घुन लग गये थे। उनमें जहां-तहां छोटे-बड़े छेद थे और जगह-जगह से शीशे टूट-फूट गये थे। दीवारों की मिट्टी जगह-जगह झड़ गयी थी और सरकंडे उग आये थे। एक टट्टी तो बिलकुल ढह गयी थी। सामने का बरामदा धूल से ढंका हुआ था। उसकी रेलिंग में मकड़ी के जाले तैर रहे थे। छत की कार्निश पर कबूतर बैठे थे और कबूतरों ने टीन की रेलिंग का एक समय का लाल रंग बिलकुल सफेद कर डाला था। पुरानी जीर्ण, रंगउड़ी टीन पर पुराने जमाने का सीधा खड़ा बिजली-संपर्क (चारों ओर के भवनों की भांति बगल की ओर तिरछा नहीं), वीणा फूल की एक लता, जो आजकल कम दिखायी देती है, बरामदे की बांस की जाली पर से ऊपर चढ़ी हुई है। उसकी पत्तियां इतनी दूर से भी नजर आ रही हैं। उन पत्तियों को कीड़ों ने खा डाला है। कहीं एक भी फूल नहीं, पत्तियों पर धूल की तह जमी हुई है।...

कोई नामपट्ट तो दिखायी नहीं देता। मगर 'वीणा कुटीर' के अलावा उसका नाम और हो ही क्या सकता है ?

साइकिल से उतरकर खड़े-खड़े कुछ देर तक उस घर का निरीक्षण करता रहा वह। लगभग दो कट्ठा जमीन पर अंग्रेजी 'एल' आकार का मकान : बच्चों सहित चार-पांच से ज्यादा लोग यहां हाथ-पैर फैलाकर शायद रह नहीं पायेंगे। कितने कमरे होंगे ? तीन बड़े कमरे, दो छोटे-छोटे। रसोईघर अलग या वैसा ही कुछ। शायद पीछे की ओर भी कुछ खुली जगह हो (पुराने दिनों का मकान ठहरा)। परंतु अब चारों ओर के इन ऊंचे-ऊंचे भवनों के बीच क्या इस

मकान को धूप-हवा मिलती होगी ? 'वीणा कुटीर' क्या आजकल सांस ले पाता है ?

न जाने कितने दिनों से उस पर चारों ओर से दबाव पड़ रहा है। उससे कुछ ही हटकर 'हरलाल का ट्रंक ऐंड बकेट वर्क्स' और 'सिंह कंपनी प्राइवेट लि.' के गोदाम सहित निवास-भवन हैं। दूसरी ओर अधबनी बांस की मचान के उस पार दुकान-घर आदि के मिले-जुले रूप वाला एक और भवन है, जिसकी पूरी निचली मंजिल में 'स्पीडवेल रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन' के बोरों और पैकिंग-पेटियों के ढेर और वजन करने वाली तुला-मशीन का प्लेटफार्म है। सामने की ओर डीजल ट्रकों, रिक्शों और ठेलागाड़ियों का शोर-गुल, बीच-बीच में ऊपर की मंजिलों पर पानी चढ़ाने वाले पंपों की घर-घर आवाजें – 'वीणा कुटीर' भला अब यों चुपचाप मौन भाव से क्या कुछ चिंता कर सकता है ?

फिर भी रहने की दृष्टि से तो वह बुरा नहीं है। मां, कालेज में पढ़ने वाला भाई और घरेलू काम करने वाला लड़का, बस – बाद में बहन को भी होस्टल से लाकर यहीं रख लूंगा। जगह काफी है। लान को साफ कर लेने पर रात को (वस्तुतः दिन को भी) बरामदे में बैठना अच्छा लगेगा। हो सकता है कि वीणा फूल की लता में फिर से फूल लगें, उसकी पत्तियां धूल हटा लेने पर फिर से सजीव और हरी हो जायें या फिर उसे काटकर साफ कर दिया जा सकेगा। मेरे दफ्तर से ज्यादा दूर नहीं होगा, साइकिल से आसानी से आ-जा सकूंगा। एकरस, व्यक्तित्वहीन, आत्मीयताविहीन, आर.सी.सी. की बिल्डिंग के एक दड़बे की अपेक्षा 'वीणा कुटीर' कई गुना अच्छा है। किराया चाहे पचास रुपया ज्यादा ही क्यों न लग जाये। चाहे सौ रुपया ही ज्यादा लगे...

जाड़ा खत्म होकर हल्की गरमी पड़ने लगी थी। प्यास लग आयी थी। 'वीणा कुटीर' की दाहिनी ओर के भवनों की दुकानों के नामपट्टों पर अलस भाव से एक बार नजर डाल ली, 'पी.के. राय डाइसमेकर्स', 'अन्नपूर्णा ब्रेड', 'खूबचंदानी रेडियो डिस्ट्रीब्यूटर्स' आदि। दुमंजिले पर की खिड़कियों के एक भाग पर टंगे आधे परदे, बरामदे की दीवार पर सूखने को फैलाई गयी साड़ी, उसके ऊपर की मंजिल पर बरामदे की डोरी पर झूलता एक अंगोछा। शायद मकान-मालिक स्थानीय आदमी है। नजर को फिर से नीचे मोड़ लाया। शाम हो आयी थी, बत्तियां जल उठी थीं। हां, यह रहा। सड़क के बिलकुल किनारे बिल्डिंग में जहां गैरेज होनी चाहिए थी, वैसे ही एक दड़बेनुमा कमरे के सामने एक गोल साइनबोर्ड टंगा हुआ है – 'कोका-कोला पीजिये, परचून की दुकान'।

साइकिल को बाहर खड़ी कर अंदर गया। काउंटर के पीछे की ओर ताकों में सजे विविध सामानों के बीच लगभग सत्ताईस-अट्ठाईस साल का एक नौजवान, चेक की आधी बांह की कमीज पहने, चेहरे पर जहां-तहां दाढ़ी, ट्यूब लाइट के नीचे सिर झुकाये कोई किताब पढ़ रहा था (दुकान में सन्नाटा था)। मेरी ओर देखकर उसने किताब बंदकर दी (देखा, वह इकोनामिक्स का नोट था)।

लाल बर्फ की पेटी में से कोका-कोला की एक बोतल निकालकर, उसका ढक्कन खोल, एक नली डाल उसने मेरी ओर बढ़ा दी। मैंने एक चुस्की ली और यों ही बात चलाने के लिए

(उसकी भाव-भंगी मुझे अच्छी लगने लगी थी) पूछा कि वे लोग फ्रिज क्यों नहीं रख लेते ?

"फ्रिज ?"

"हां, आप लोगों की इस दुकान का लोकेशन अच्छा है। गरमी पड़ने लगी है, बहुत ज्यादा कोका-कोला की जरूरत होगी, एक बड़ी-सी फ्रिज रहे तो" – आदि आदि।

लड़के ने कहा – "मगर दुकान तो उसकी नहीं है, वह तो सेल्समैन भर है। यह काफी बिजी एरिया है, यह बात ठीक है। दो-एक सप्ताह में ही कोका-कोला की डिमांड काफी बढ़ जायेगी। यहां तक कि हम डिमांड पूरी नहीं कर पायेंगे। मगर कोई बड़ी फ्रिज लेने के बारे में मालिक ने अब तक विचार नहीं किया है। इस छोटे-से कमरे का किराया ही दो सौ रुपये है। यह छोटी-सी दुकान, रनिंग एक्सपेंस ही पूरी नहीं कर पाती। ऐसे में...।"

"हूं" – मैंने कहा और चुपचाप लगभग दो-इंच कोका-कोला पीने के बाद बोला – "मैं यहां नया-नया आया हूं, फिलहाल एक दोस्त के यहां रह रहा हूं। मुझे किराये का एक मकान चाहिए। क्या आपको इस अंचल में किराये के किसी मकान का पता है ?"

"किराये का मकान ?" उसने कहा – "किराये का मकान तो इस अंचल में उस तरह 'रेजिडेंशियल पर्पज' के लिए तो मिलना मुश्किल है। अच्छा, आपके 'फैमिली मेंबर' कितने हैं ? 'आई मीन' (वह कहता गया) मेरे एक परिचित की बिल्डिंग बन रही है। मगर यहां नहीं. बिलकुल फटासिल के आगे।"

"नहीं, नहीं"... मैंने कहा – "इतनी दूर नहीं। अच्छा, यह यहां जो वीणा कुटीर है..."

"वीणा कुटीर, वीणा कुटीर ?"

मैंने मुस्कुराकर कहा – "वह जो वीणा फूल की लता है सामने, आसामी टाइप का मकान।"

"ओ, वह !"

मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"पता नहीं, उस मकान को किराये पर देने का तो कोई संकेत दिखायी नहीं देता। काफी दिनों से यों ही पड़ा हुआ है। हमारी इस दुकान को शुरू किये लगभग नौ महीने हो गये, उसी एक ही हालात में देखते आये हैं हमेशा। कभी कोई आदमी...।"

"क्यों ? किराये पर क्यों नहीं देते ? मकान है किसका ?"

"पता नहीं", कुछ शर्मीली हंसी हंसकर उसने कहा – "असल में इसका पता लगाया ही नहीं आज तक। किसी से अच्छी तरह से पूछा ही नहीं, मुझे खुद भी पचासों धंधों में रहना पड़ता है।"

बातों-बातों में पता चला कि वह इस बार प्राइवेट तौर पर बी.ए. की परीक्षा देना चाहता है। पिछली बार भी 'एपियर' नहीं हो पाया। अपना घर भी उसे ही चलाना पड़ता है। बहुत-सी झंझटें हैं, दुकान है। समय मिलने पर बस यहीं नोट आदि कुछ उलटता-पुलटता रहता है।

"ओह !" मैंने कहा – और नली में छु-क् की आवाज के साथ कोका-कोला की आखिरी

बूंद पीकर खाली बोतल आगे बढ़ा दी और कहा – "एक और देना।"

उसने एक और बोतल निकाली और कहा, "अच्छी तरह से तो पता नहीं। इस एरिया के बारे में मुझे कोई खास जानकारी नहीं है। मैं रहता हूं कुमारपाड़ा में। बहुत दिन पहले एक बार हमारे स्कूल को मिलिट्री ने ले लिया था, तब इधर विष्णुराम हाईस्कूल में कुछ महीने सुबह-सुबह हमारी क्लासें होती थीं। उन दिनों कभी-कभी पैदल इधर आता था – बचपन की बात है, अच्छी तरह से याद नहीं, उन दिनों यह बिल्डिंग नहीं थी। हमारी इस बिल्डिंग में उन दिनों बिलकुल उसी मकान की भांति एक छोटा-सा आसाम-टाइप का घर था – पी.डब्लू.डी. के एक ओवरसियर का – नाम है ब्रजेन कलिता। उन्होंने ही यह बिल्डिंग बनायी है। इतने बड़े-बड़े भवन बनाने के पैसे लोगों को न मालूम कहां से मिल जाते हैं। सामने की लान भी नहीं रहने दी – 'नैचुरली' क्योंकि आजकल यह पूरा कामर्शियल एरिया बन गया है। हर स्कायर-फुट जमीन जितना 'यूटीलाइज' कर सकें उतना ही फायदा है। कोई भी अब शौक से लान के लिए जमीन खाली नहीं रखता।"

"ओह," मैंने कहा और बोतल में नली को ठीक से सहेजते हुए बड़े धीरे-से फिर पूछा – "यह मकान है किसका ?"

"ओह !" जरा चौंकते हुए उसने कहा – "आप जिसे 'वीणा कुटीर' कह रहे हैं," वह एक बार मेरी ओर देखकर धीमे से हंस पड़ा – "निश्चित रूप से तो कुछ बता नहीं पा रहा हूं। हम अपनी बातों में ही मस्त रहा करते थे। स्कूल पहुंचने में देर हो जायेगी या घर पहुंचने में, इसी डर से कुछ मकानों को हम पीछे छोड़कर तेजी से निकल जाते थे। उन दिनों लगभग सभी 'रेजिडेंशियल' मकान थे। कौन घर किसका है, उस उम्र में भला कौन पता लगाता है ?...'एनी वे,' सुना था कि विष्णुराम हाईस्कूल के किसी मास्टर का मकान है। आगे चलकर वे हेडमास्टर भी बने थे।" लड़के ने एक बार माथे को सिकोड़कर याद करने की कोशिश की – "भूधर गोस्वामी – भूधर शर्मा – भूधर ऐसा ही कुछ नाम था। संस्कृत के मास्टर थे, सुना है बड़े स्कॉलर थे। काशी से कोई उपाधि भी मिली थी। गेट पर एक साइनबोर्ड था, जिस पर लिखा था 'संजीवन समाज'। सुना था, इसकी शुरुआत उन्होंने ही की थी। शायद उसके अध्यक्ष भी थे। बीच-बीच में उस बरामदे में शहर के कुछ जाने-माने गंजी खोपड़ी वाले दढ़ियल लोग इकट्ठे होकर चर्चा करते थे।...सुना है, कभी-कभी पत्रों में आर्टिकल आदि भी लिखा करते थे। 'वैदिक युग में छात्रों का...' कुछ ऐसे ही विषयों पर...।"

"मगर आजकल वे हैं कहां ?"

"आजकल ? क्या पता ? मैट्रिक पास करने के बाद 'एक्चुअली' मैं इस शहर में ही नहीं था काफी दिन, समझे न !" लड़का कुछ अनमने भाव से बोला — (इसलिए मैंने भी कुछ नहीं पूछा) "इसी बीच बहुत कुछ चेंज हो गया। यहां आकर देखा कि पहले के वे सारे लोग जाने कहां चले गये। अब सारे पंजाबी, मारवाड़ी बिजनेसमैनों की फैमिली हैं — ओह ! भूधर गोस्वामी ! वे...वे शायद अब तक परलोक सिधार गये होंगे।"

"ओह ! तो फिर आजकल यह सब कौन...?"

"दो लड़के थे उनके। हमसे बड़े...उन्हीं दिनों हमसे काफी बड़े थे। एक तो शायद बाप की ही भांति था, यानी लिखना-पढ़ना करता रहता था, कहीं प्रोफेसर है। धोती-चादर वाला प्रोफेसर, कभी-कभी न जाने क्या-क्या सोचता हुआ लान में टहला करता। और दूसरा छोटा लड़का डिब्रूगढ़ में डाक्टरी पढ़ता था या वैसे ही कुछ। हमारी क्लास का ही एक लड़का बीच-बीच में यह सब समाचार दिया करता। वह उन दिनों सड़क के मोड़ पर ही रहता था। हालांकि आजकल वहां नहीं है। छोटे को तो हमने देखा ही नहीं था। घर से झगड़ा करके निकल गया था या ऐसी ही कोई बात थी। 'एनी वे', कहां का आदमी कहां गया, कौन उसका...?"

मैंने कोका-कोला की बोतल से एक चुस्की ली और निर्लिप्त भाव से पूछा, "लड़की ?"

"नहीं, सिर्फ एक-दो दिन ही एक लड़की देखी थी, कोई प्रौढ़ महिला तो किसी दिन दिखायी नहीं पड़ी। सिनेमा के पोस्टर लगाकर बैंड पार्टी बजाते हुए एक घोड़ा-गाड़ी गयी थी (आजकल तो रिक्शा के आने के बाद से घोड़ागाड़ियां गायब हो गयी हैं, बैंड-पार्टी भी नहीं लाते, सिर्फ माइक लगा देते हैं), और उसी को देखने के लिए एक लड़की बरामदे में आयी थी – छरहरी-सी, देखने में कोई बुरी न थी – हम सबकी नजरें उधर खिंची देखकर वह अंदर चली गयी थी। बीच-बीच में लान में सफेद रंग की एक गाड़ी रुकती थी, जिसे एक तगड़ा-सा आदमी चलाया करता था। सुनते थे, लड़की से उसे प्यार है। बाद में शादी भी हुई। याने वह घरजमाई बना। विष्णुराम में हमारी क्लासें सिर्फ छह-सात महीने ही हुई थीं, फिर तो इधर आना बंद हो गया...नहीं, नहीं, अगर दूसरी और कोई लड़की होती तो..." उसने कुछ परेशानी से हंसकर कहा – "नेचुरली हमारी आंखों में आयी होती।" फिर उसने बात की दिशा बदलकर कहा – "ऐसी 'वेल्युएबुल प्रापर्टी' है इस एरिया में ! न जाने क्यों इस तरह से नष्ट होने दे रहे हैं। शायद उस फोर्ड गाड़ी वाले को ही मिली है यह दौलत.– 'आई मीन'...उसका अपना घर तो है नहीं। घर के आदमी के हाथ में होता तो इस तरह से बरबाद होने देता क्या कोई ? कुछ 'इम्प्रूव' कर लेने से ही तो इस एरिया में कम से कम एक 'हंड्रेड'..."

"हां।"

दुकान में लोग आने लगे थे। कोका-कोला के लिए दो पंजाबी, टूथ-पेस्ट के लिए एक लड़का और ग्लैक्सो का इस महीने का स्टॉक आया या नहीं, यह जानने के लिए एक दंपति आये। मैं चुपचाप एक ओर खड़ा हो कोका-कोला पीने लगा। मेरी नाक में कोका-कोला के अनिर्णीत स्वाद की झांस थी।...उस नन्हीं-सी दुकान के सामग्री-संसार के बीच खड़ा मैं चमकीली ट्यूब-लाइट के प्रकाश में मानो धीरे-धीरे एक तरह की अंतरंगता का अनुभव करने लगा, एक जाने-पहचाने कैफे की एक अभ्यस्त कोने की गरमाहट भरी मस्ती...बोतल में बचे पेय की ओर नजर डाली – लाल तरल में मानो प्रतिबिंबित होने लगा एक छोटा-सा असमी मकान। वीणा कुटीर। अनगिनत वीणा के फूल बरामदे के नीचे की घास पर झर पड़ते हैं। सिर झुकाये एक लड़की कमर में चादर खोंसे बरामदे को बुहार रही है।...तभी जैसे एक भोंपू की आवाज सुनाई पड़ी, एक सफेद-सी फोर्ड अंदर आ रही है। जल्दी से उस लड़की ने झाड़ू

नीचे रखकर चादर को ठीक से सहेज लिया, और बालों पर हाथ फेरा। चकित दृष्टि से एक बार गाड़ी की ओर देखा। गाड़ी के पीछे की ओर के शीशे के अंदर से दिखायी दिये – दो बलिष्ठ हाथ स्टीयरिंग के पहिये पर, फैले हुए कंधे। लड़की का चेहरा अस्पष्ट है, मगर अनुभव किया जा सकता है कि तरुणी है, तन्वी। अकस्मात, न जाने किसकी प्रत्याशा में वह चकित-सी हो उठी है।...दृश्य बदल गया। बरामदे का दरवाजा खुला है। लड़की मुंह फेरे एक बड़ी-सी गोल मेज की किताब-कापियों पर से धूल झाड़ रही है। मेज पर गेंदा के फूलों की माला पहनायी हुई एक बड़ी-सी फोटो – सफेद मूंछें, गंजे सिर के चारों ओर सफेद बाल, गोल-फ्रेम वाला बाइ-फोकल चश्मा, जरा-सी क्रुद्ध-दृष्टि। भूधर गोस्वामी (या शर्मा...और कौन हो सकता है ?) उसके ऊपर किसी का दिया एक फ्रेम में मढ़ा हुआ मानपत्र। पुरानी लकड़ी की कुर्सी पर धोती-चादर पहने एक आदमी बैठा कुछ बोल रहा है। धीरे-धीरे उसकी आंखों पर भी चश्मा (मगर चौकोर), एक पैर पंप शू के अंदर है और दूसरा पैर पंप शू से निकालकर वह आदमी हौले-हौले उंगलियां हिला रहा है - उस व्यक्ति में चंचलता की सिर्फ यही निशानी है। बाकी सब कुछ – उसका चेहरा, उसकी भंगिमा, उसकी बातें (साफ, मगर धीमी) सब कुछ प्रशांत और गंभीर है। निस्संदेह यह वही प्रोफेसर-पुत्र है। उसका नाम – भूधर गोस्वामी के बेटे का नाम भला क्या हो सकता है ? प्रेमधर ? परमेश ? मान लो परमेश है, परमेश गोस्वामी कोई बुरा नाम तो नहीं है। वह क्या कह रहा है ? उसके श्रोता हैं खद्दर का कुर्ता-पाजामा पहने एक प्रौढ़ सज्जन – कौन है वह ? प्रोफेसर कह रहा है (सचमुच मुझे कहीं से कोई आवाज सुनायी देने लगी)...."इसलिए गणेश दा, आप बुरा न मानें, इस घर के साथ एक 'स्कॉलरली एटमॉस्फियर' जुड़ा हुआ है। मैं अगर लोहा-लक्कड़, सीमेंट-बालू, रुपये-पैसे आदि का हिसाब-किताब करने को इसे छोड़ दूं तो पिताजी की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी, पिताजी मुझे कभी माफ नहीं करेंगे...आप तो हमें बचपन से ही देखते आये हैं, अब यह बाप-दादा का मकान मेरे हिस्से में आया है। आप इसके लिए मुझे किराया देना चाहते हैं, आपका ठेकेदारी का काम दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। आपको अगर यह मकान मैं दे सकता तो क्या मुझे खुशी न होती ? बताइए ? परंतु अब पिताजी के 'लाइफलांग' कार्यों की स्मृति-रक्षा करना मेरा भी कर्तव्य है, एक 'फिलियल ड्यूटी' है। भले ही मैं यहां न रहूं, इस घर का परिवेश तो मुझे बनाये रखना ही होगा। जहां तक हो सके, पिताजी के नाम पर इस मकान में कोई लाइब्रेरी-वाइब्रेरी बना देनी होगी। आप भी तो पिताजी की सदा श्रद्धा-भक्ति करते आये हैं, आपने भी तो देखा ही है कि इसी मेज (उसने मेज की तरफ हाथ बढ़ा दिया, सिनेमा के क्लोज-अप शॉट की भांति समूची मेज सामने आ जाती है जिससे वह तरल-परदा भर-सा जाता है : अनगिनत कागज-पत्र, किताबें, समाचारपत्र, पत्रिकाएं, भोजपत्र पर लिखी पुरानी पांडुलिपियां, एक लाल फीते से बंधी फाइल के ऊपर लाल स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है 'वैदिक युग में (अस्पष्ट) संपर्क के आध्यात्मिक पहलू', कलम-दावात और गोंद की शीशी, ब्लाटर, तामोल का बटा, चश्मे का खोल आदि..) पर पिताजी दिन-रात वृद्धावस्था में भी सिर झुकाये लिखते-पढ़ते रहे, खाने-पीने तक की बात भूल जाया करते। आप आकर पास खड़े रहते, मगर आपके खांसने के पहले

उन्हें पता ही नहीं चलता – यह तो साधना है, किसी आर्थिक फायदे की बात बिना सोचे, किसी मान-यश की कामना किये बगैर – यह जो ज्ञान का अनुसंधान है, 'डिसइंटरेस्टेड क्वेस्ट फॉर नालेज' : यह जो सारे घर में देख रहे हैं, पिताजी के अनगिनत अधूरे काम, अधलिखे लेख-निबंध आदि – जिन्हें अब हो सके तो मुझे प्रकाशित कराना चाहिए। क्या इस परिवेश को 'कामर्शियलिज्म' के चंगुल में पड़कर खत्म हो जाने देना उचित होगा ? आप ही बताइए – गणेश दा... यह मकान मुझे रहने के लिए नहीं चाहिए, यह सच है कि यह अब मेरी मिल्कियत है, यह भी सच है कि मैं अब इससे कुछ पैसे कमा सकता हूं, परंतु क्या उसी कारण मैं पिताजी के इतने दिनों के अध्यवसाय की सारी निशानियां..."

ठक्।

उसकी बातें खत्म हुई और मैं समझ गया कि पंजाबी सज्जन ने कोका-कोला की दोनों बोतलों को ठक् से नीचे रख दिया है। बोतल के ऊपर से उभरी तस्वीरें विलीन हो गयीं, मैंने भी 'चुं-क्' की आवाज के साथ कोका-कोला की आखिरी बूंद को पीकर बोतल काउंटर पर रख दी। एक नोट आगे बढ़ाकर मैंने लड़के से यों ही पूछ लिया कि दुकान रात को कितने बजे तक खुली रहती है ? इस मकान को किराये पर देंगे या नहीं, क्या एक बार वह पता करके बता सकेगा ? मैं फिर एक बार कल या परसों तक आऊंगा। कल तो वह नहीं रहेगा ? ठीक है, परसों तक ? चलेगा। अच्छा...

मैंने बाहर आकर साइकिल का ताला खोला। तेज प्रकाश वाले बल्ब जलाकर 'स्पीडवेल ट्रांसपोर्ट' के सामने डीजल ट्रकों से सामान उतारा-चढ़ाया जा रहा था... कई लोग जोर-जोर से निर्देशन कर रहे थे और सारी आवाजों को दबाकर एक ट्रक काफी काला धुंआ उगल प्रचंड गर्जन के साथ स्टार्ट लेने का प्रयास कर रहा था।... साइकिल को धकेलता मैं आगे बढ़ गया। वीणा कुटीर में अंधेरा था। सिर्फ उसकी बायीं ओर की दीवार पर पास के भवन की खिड़कियों का प्रकाश पड़कर अंधेरे-उजाले का एक नक्शा बना रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। भवन की उजली खिड़कियों के पीछे से रेडियो बजने की आवाजें आ रही थीं, किसी दफ्तर से एक टाइपराइटर की खट्-खट् की आवाज, हर कमरे में बातें चल रही हैं, चर्चाएं हो रही हैं। खान-पान चल रहा है। व्यापार-वाणिज्य और गृह-संसार, तृप्ति-आनंद, क्षोभ, वेदना-कामना, लालसा-प्रेम-विवाह, विभिन्न खंडित नाटकों के संवाद चल रहे थे, जिन नाटिकाओं पर आज के इस अंधेरे, मौन वीणा कुटीर के मंच पर कभी का यवनिकापात हो चुका है, जिसके शब्द और प्राण-भंगिमाएं कभी की खत्म हो चुकी हैं...।

क्या सचमुच सब कुछ खत्म हो गया है ?... रात को वीणा कुटीर के बारे में सोचता हुआ मैं सो गया और सुबह जागकर आंखें मलते हुए विस्मित होकर सोचता रहा – रात को सपने में तो वीणा कुटीर को एक बार भी नहीं देखा – (वास्तव में कोई सपना ही नहीं देखा, शायद काफी थक गया था।)

दिन में कभी-कभी वीणा कुटीर की बात हल्की-सी मन में आयी, फिर भूल गया। शाम को फिर साइकिल लेकर किराये का मकान ढूंढ़ने निकला, पर काम नहीं बना। साइकिल पर

सवार होकर कोई बात याद करने की कोशिश करता, अनमने ढंग से पैडिल मारता जा रहा था कि अकस्मात् देखा कि वीणा कुटीर के आगे से निकला जा रहा हूं। पहले जैसा ही जीर्ण-परित्यक्त रूप, शाम की धुंधली रोशनी में उसकी शीर्ण वीणा-लता धीमे-धीमे हिल रही है, शायद किसी ओर से हवा आ रही है।

साइकिल से उतरकर खड़ा हो गया। कान लगाकर सुनने की कोशिश की। तरह-तरह की खरीद-फरोख्त की मिली-जुली, समझ में आने वाली आवाजें, और कहीं कोई टेलीफोन क्रिं-क्रिं कर रहा है। वीणा कुटीर की पुरानी छत की कोई लकड़ी निकल जाने के कारण टिन का एक हिस्सा रह-रहकर धीमी खट्-खट् आवाज कर रहा है, किसी कोने में कबूतर की गुटर-गूं ...गुटर-गूं की आवाज...

कोका-कोला की दुकान पर वह लड़का नहीं था, उसकी जगह हवाई-शर्ट पहने, भरे हुए चेहरे का एक प्रौढ़ बैठा था। साइकिल को बाहर खड़ाकर अंदर गया और काउंटर के पास खड़ा होकर एक कोका कोला मांगा।

दुकान में उस दिन खासी भीड़ थी, जोरदार बिक्री चल रही थी। उस नये आदमी के चेहरे की भंगिमा कुछ अच्छी नहीं लगी, इसलिए मैंने उससे बातें करने की कोशिश नहीं की। एक ओर खड़े होकर नली से एक चुस्की ली। आः! नाक में वही जानी-पहचानी झांस आयी। काउंटर पर बोतल को तिरछा रखकर नली पर दाहिने हाथ की तर्जनी दबाकर लाल पानी की तरफ नजर डाली।...पानी कांप-सा रहा था।...उस पर एक और तस्वीर उभर रही थी...हवा चल रही है...वीणा की लता की पत्तियां कांप रही हैं, रात हो चली है, वीणा कुटीर का बरामदा धुंधला-सा...मोटर की हैडलाइट के उजाले में वीणा-लता और बांस का टट्टर जगमगा उठा। दो बार लंबी रेस देकर फोर्ड का इंजन रुक गया, लाइट बुझ गयी, गाड़ी के दरवाजे खोलने की आवाज, स्टीयरिंग छोड़कर बाहर आया उस दिन का वही चौड़ी छाती वाला नौजवान, अब भी पीछे की तरफ से अपने चौड़े कंधों और सुगठित सिर (मुंछे भी जरूर हैं) के कारण पहचाना जा रहा था। घर का नया जमाई भवेश ? भवानंद ? ठीक है — भवानंद ही सही ! भवानंद ने गाड़ी को बायीं ओर का दरवाजा खोलकर हाथ आगे बढ़ा दिया। उसका हाथ पकड़कर वही बरामदा बुहारने वाली लड़की उतर आयी। वीणा ? (और कौन-सा नाम हो सकता है ?) धुंधले प्रकाश में भी यह समझ में आ रहा था कि उसका चेहरा जगमगा रहा है। आंखों में न जाने कैसा एक नशीला आवेश है, मांग में नये सिंदूर की लाली, उसकी देह-भंगिमा के साथ-साथ मूंगा की नयी चादर की खस-खस आवाज और अंधेरे में भी सारे शरीर में गहनों की जगमगाहट – भवानंद का हाथ छुड़ाकर वह झट सीढ़ी पर से छलांग मारकर बरामदे में चली आयी। साथ ही भवानंद ने दोनों हाथों में पीछे की ओर से उसकी पतली कमर जकड़ ली।

"इस्स ! यह क्या कर रहे हैं ? पिताजी अगर आ निकले तो क्या सोचेंगे भला ?"

"उंह ! पिताजी आधी रात तक हमें देखने के लिए थोड़े ही जाग रहे हैं ?" एक दबी हंसी हंसकर भवानंद वीणा को पकड़े हुए बरामदे में आ गया।

"गाड़ी की जैसी जोर की आवाज करते हुए घर में आये हैं – धुत् ! यहां नहीं – देखूं, छोड़िए न ! इस् ! बड़े भैया अब भी पढ़ रहे हैं। अगर इधर आ निकलें तो न जाने क्या..."

अस्फुट स्वर में भवानंद बोला – "बड़े भैया इतने अरसिक थोड़े ही हैं कि नये वर-वधू घूम-फिरकर रात को घर आयें तो वे अभद्र की तरह...देखूं जरा..."

बरामदे की दीवार की हिलती हुई छाया-प्रकाश की झिलमिलाहट में भवानंद और वीणा की छायाएं मिल गयी थीं। कितनी देर तक दोनों वैसे ही बांहों में बंधे रहे, पता नहीं। उनके बालों में कहीं की मतवाली हवाओं की गंध हवाओं में किन्हीं अनजाने फूलों की सुगंध, आसमान में तारों के झुंड, शायद फागुन का महीना है...

काफी देर के मौन के बाद भवानंद बोला – "वीणा, पहले जब शाम को तुम्हारे साथ बरामदे में खड़ा रहता था, तो कितने ही दिन इच्छा होती थी, इस वीणा-लता के नीचे, टट्टर के इस ओर तुम्हें बांहों में भर लेने की। तुम्हें प्यार करने की इतनी इच्छा होती थी, इतना मन चाहता था, क्या तुम कभी समझ पाती थीं ?"

वीणा ने कोई जवाब नहीं दिया, अंधेरे में भवानंद की छाती में अपना सिर और जोरों से घुसा दिया।

"और आज – जबकि बड़े भैया कालेज जाते समय बाहर बरामदे में निकल आये थे, मैं पिताजी के साथ बातें कर रहा था, तब पहले की भांति तुम्हें यहीं खड़े होकर देखते रहने की इतनी इच्छा हो रही थी, क्या तुमने समझा था ?"

वीणा ने इस बार भी कोई जवाब नहीं दिया।

"वीणा ?"

अंधेरे में वीणा भवानंद की छाती में ही निशब्द हंसी हंसती रही : "आप भी भला कैसे हैं कि इतना भी नहीं समझ पाते...! और आज बरामदे में आपका वह भोला-सा चेहरा देखकर मुझे मन ही मन इतनी हंसी आने लगी थी – चार साल लाज-शर्म छोड़कर यहां खड़े होते निकल गये। आज नाक इतनी ऊंची हो गयी ! उंह ! पिताजी से जैसे बात ही खत्म नहीं हो रही थी।"

भवानंद शरमाता-सा हंस पड़ा – "ओह — चलो, अंदर चलोगी न अब ?"

"ओह !" वीणा बोली, और सहसा चंचल-सी हो उठी।

"इस्, अंदर जाने की तो बिलकुल तबीयत ही नहीं होती, इतना बढ़िया लग रहा है यहां, कितने दिनों बाद अपने इस कोने में इस भांति खड़ी हो पायी हूं – अब न जाने कब आपको यहां पा सकूंगी ?" वीणा का स्वर विषण्ण हो गया – "और दो ही दिन बाद तो हमें चले जाना होगा...आप भी भला यह कैसी झमेले वाली नौकरी में फंस गये, न जाने किस-किसकी लंका में हमेशा चक्कर लगाते रहना पड़ेगा ! आज पासीघाट, तो कल आइजल...पिताजी आज जिस तरह की बातें आपसे कह रहे थे, उन्हें सुनकर तो आंखों में आंसू ही निकले आ रहे थे : 'मेरे और कितने दिन हैं, मेरे जाने के बाद तो इस मकान की देखभाल तुम्हें ही करनी होगी।

तुम्ही लोगों के नाम यह मकान लिख दूंगा...' भला पिताजी ने ऐसा क्यों कहा था ?"

कुछ क्षण मौन रहकर भवानंद ने कहा – "बड़े भैया का तो यहां से चले जाना एक तरह से निश्चित ही हो गया है, जमीन-जायदाद की देख-रेख करने का उनका स्वभाव भी नहीं है। और छोटे भैया तो घर से निकल ही चुके हैं, शायद इसीलिए पिताजी सोच रहे हैं..."

"इतना बुरा लग रहा है पिताजी का यह कहना कि तुम लोग खुद रहो, या किराये पर दे दो, जो चाहो करो...इतना बुरा लग रहा है – हम न जाने कहां दूर-दूर रहेंगे, हम में से कोई अगर यहां न रहें तो इस घर की हालत कैसी हो जायेगी ? यहां कौन आकर रहेगा, सब कुछ हमसे अलग हो जायेगा ? यह वीणा-लता भी कितने दिन ऐसी बनी रहेगी ?"

भवानंद ने वीणा को बांहों में भरकर दबोच-सा लिया और वीणा के गाल पर गाल रख धीमी आवाज में कहा – "वीणा, पहले दिन जब मैंने तुम्हें यहां देखा था, तब तुम यहीं खड़ी थीं। सड़क पर बैंड बजाते हुए, सिनेमा का पोस्टर लगाये एक घोड़ा-गाड़ी इधर से निकल रही थी। मैं अचरज में पड़ गया था। अब भी सोचने पर अचरज-अचरज-सा ही लगता है – यह बरामदा, यह वीणा-लता, जैसे मेरी जिंदगी के हिस्से बन गये हैं, वैसे ही इस मकान की मेज-कुर्सियां, हर फोटो, हर कप-प्लेट, सब अपने-अपने-से लगते हैं, सब पर तुम्हारे हाथों का स्पर्श है...ठीक है, भविष्य में मुझे ही अगर इस मकान की देखभाल करनी पड़े तो करूंगा। यहां की किसी चीज को बरबाद नहीं होने दूंगा। किसी अजनबी को कभी इस बरामदे को बदलने न दूंगा। हम जब कभी यहां आयेंगे, सब कुछ हमें ऐसा ही मिला करेगा - जहां तक मुझसे हो सकेगा।" यह उजाला अंधेरा, कबूतरों के हिंडोले का यह सर सर, मदिर हवाओं में उड़ते आ रहे पराग-कण, आसमान के ये तारों के समूह...मैंने मन ही मन कहा। और दुकान का शोर अचानक घट गया। मैंने अचरज से देखा, दुकान खाली हो गयी है। दुकानदार मेरे चेहरे की ओर देख रहा है। कोका-कोला की बोतल पर कोई तस्वीर नहीं। तुरंत नली से खींचकर मैंने बाकी पानी खत्म कर बोतल ठक् से नीचे रख दी और अपने आपसे कहा – "अब भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो एक मकान से सिर्फ किराया वसूल करने की बात नहीं सोचते, भवानंद और वीणा जैसे लोग।"

"क्या कह रहे हैं ?" कुछ विस्मित-सा होकर दुकानदार ने कहा – "फिफ्टी-फाइव पैसे।"

साइकिल से प्रसन्नचित्त घर लौटा। रात को बड़ी अच्छी नींद आयी : कैसी शांति है... व्यापार और अर्थोपार्जन की चिंता में जबकि हर वर्गफुट जमीन पर भवन खड़े हो रहे हैं, हर घनफुट हवा भवनों में बंधती जा रही है, डीजल के धुएं, मशीनों की घड़घड़ाहट, लाभ-हानि के चक्रव्यूह और कम-खर्च फ्लोरेसेंट के उजाले में नीचे पड़ी हुई अपार धूलि और वीभत्सता तथा दुर्गंध और कूड़े-करकट से समूचा वायुमंडल परिव्याप्त है, ऐसी स्थिति में आज भी कम से कम एक परमेश, भवानंद-वीणा दंपति मौजूद हैं, जिन्हें रीइनफ्रोर्स्ड कांक्रीट के रुचि-विवर्जित गगनचुंबी औद्धत्य प्रभावित नहीं करते, जिन्हें किरायेदारों की जरूरत नहीं, महीने में तीन सौ की अतिरिक्त आमदनी की जरूरत नहीं – या शायद जरूरत है (भला रुपये की जरूरत किसे नहीं है ?) परंतु जो आज भी अनुभव करते हैं कि एक श्रद्धेय स्मृति को जिंदा रखना उससे भी

अधिक सुंदर है, आत्मा के सांस लेने के लिए एक टुकड़ा खुला आकाश का होना, प्राण-स्पंदन के लिए खुली हवा का झोंका, आंखें जुड़ाने के लिए घास-भरी एक लान, एक ऐसी वीणा-लता जिसमें सन्नाटा-भरी रात में और आलस्य-भरी दोपहरी में मन की कलियां खिला करें, एक बरामदा, एक पुरानी गुंजन-ध्वनि, एक विलीन होता हुआ प्रिय परिवेश – रुपये की अपेक्षा कहीं ज्यादा बड़ी बात है।

दूसरे दिन दफ्तर के टिफिन में जब एक ने प्रस्ताव रखा कि आज चाय के बदले कोका-कोला पीया जाये, तो मैंने मुस्कुराते हुए उससे अपनी असहमति सूचित कर दी। कोका-कोला का असली जायका तो मुझे मिलेगा शाम को, अपने उसी मनोहारी दुकान में। उस दिन किराये का मकान ढूंढ़ने कहीं नहीं गया (हालांकि आफिस सुपरिंटेंडेंट ने एक सूचना दी थी), शाम के धुंधलके में वीणा कुटीर के सामने साइकिल से उतरा तो देखा, बरामदे के खंभे में एक पत्र-पेटी लगी है (पहले न जाने क्यों उस पर नजर नहीं पड़ी), और बरामदे में जाने कैसी मैले कपड़ों की गठरी पड़ी थी। अंदाजा लगाया, कल रात को बारिश हुई थी, भिखारी-विखारी जैसे किसी आदमी ने यहां शरण ली होगी, और लावारिस मकान पाकर अब रात को वहीं सोना भी शुरू कर देगा... साइकिल धकेलते हुए ले जाकर मैंने दुकान के पास खड़ी कर दी।

आह ! वह लड़का आया है (आज दाढ़ी बना आया है, मगर कमीज वही पुरानी है), मगर आज वह व्यस्त है। इस गरमी में भी सूट-टाई पहने, सजे-धजे, पैंतीस-चालीस साल के एक सज्जन काउंटर पर पेंसिल से कुछ लिखते जा रहे थे। समझ गया, किसी कंपनी का प्रतिनिधि है। लड़का मेरी तरफ सिर उठाकर एक बार मुस्कुराया और उस सज्जन से "एक मिनट" कह कर मेरी तरफ आगे बढ़ आया और सिर हिलाकर बोला – "नहीं जी, काम नहीं बनेगा।"

हालांकि वह तो मैं भी जानता हूं ! मैं भी संतुष्टचित्त मुस्कुरा पड़ा। वह मकान किराये पर मिलने वाला नहीं, यही आशा तो मैंने भी की थी।

"कोका-कोला दूं ?"

"हां !"

पैकेट से एक नली निकालकर बोतल में डाल मुझे थमाते हुए लड़के ने कहा – "मैंने अपने मालिक से पूछा था। वे लोकल आदमी हैं, इसी अंचल के। वे इस घर की पूरी हिस्ट्री जानते हैं। मैंने भी आपसे उस दिन ठीक ही बताया था, बड़ा लड़का प्रोफेसर है, बड़ा कैपेबल आदमी है। छोटा लड़का डाक्टर है, पत्नी उसकी पंजाबी है या कुछ और – मगर घर के साथ उसका संबंध...सो-टु-से बाप ने, उसे घर से बिलकुल निकाल दिया था..." कहते-कहते कंपनी के प्रतिनिधि की तरफ उसकी नजर गयी – "ठीक है, आप तब तक इसे पी लें। मैंने इन्हें वेट कराये रखा है।"

लड़का उस सज्जन के पास चला गया। नली से एक चुस्की लेकर मैं बोतल को काउंटर पर तिरछी खड़ीकर पानी की ओर नजर गड़ाये रहा... एक तस्वीर उभरी – वीणा कुटीर के पिछवाड़े के आंगन में शाम की धूप पड़ रही थी – एक पुरानी बेंच, लकड़ी रखने की खाली मचान, तुलसी-तले बुझा हुआ एक दीया, एक पुराना पपीते का पेड़...तीस-बत्तीस साल की

उम्र का एक लंबा-सा आदमी वहां बेचैनी से टहल रहा था। बीच-बीच में उसका सिर कपड़े टांगने की रस्सी से टकरा रहा था। वह खीझ से रस्सी की ओर देखता और आंखें टेढ़ी कर क्रुद्ध भाव से सिगरेट पीता जा रहा था, उसके ट्वीड-कोट की जेब से स्टेथोस्कोप का एक हिस्सा निकला हुआ था। बेंच पर बैठी बड़े जूड़ेवाली, शलवार-कमीज पहने, एक लड़की उद्विग्नता से डाक्टर के चेहरे की ओर देखती जा रही थी। उसका चेहरा अस्पष्ट, पर लालिमा-भरा था। झीने-से दुपट्टे के नीचे से दिख पड़ा, उसकी बांहें सुंदर, गोल और गुलाबी हैं।... अचानक टहलना रोककर क्रुद्ध भाव से एक जोर का कश खींचकर सिगरेट फेंक, डाक्टर बेंच के पास आ गया और तेज नजरों से लड़की की आंखों में देखने लगा। उसके होंठ हिलने लगे। फिर सिनेमा के क्लोज-अप दृश्य की भांति तस्वीर आगे आ गयी और बोतल का पूरा हिस्सा भर गया। डाक्टर के सुदृढ़ होठों और चौकोर बेपरवाह ठुड्डी के नीचे लड़की की छलकती जवानी और गोल चेहरे का उत्कंठित लावण्य, फैली हुई दो आयताकार आंखें (बिलकुल उसी तरह जैसा कि कुछ ही दिन पहले एक हिंदी सिनेमा के क्लोज-अप शाट में देखा था)। डाक्टर कह रहा था (उसकी आवाज कंपनी के इसी प्रतिनिधि जैसी थी) – "इसका मतलब है कि मैं पिता का त्याज्य पुत्र हूं। रेहाना, मैं त्याज्य पुत्र ही बना रहूंगा। मैं तो भैया जैसा नहीं हूं। मैंने अपनी सारी बातें हमेशा खुद डिसाइड की हैं। किसी की परवाह नहीं की। पिताजी के कहने पर भी वह काम नहीं किया, जो मुझे पसंद नहीं। पिताजी की राय न होने पर भी मैं मेडिकल पढ़ने गया – सिर्फ वीणा ने मेरा साथ दिया था। पिताजी पैसा-कौड़ी देना नहीं चाहते थे, फिर भी 'देखा जायेगा' कहकर मैं घर से निकल गया और डाक्टरी में ऐडमीशन ले लिया। मुझे ऐडमेंट देखकर ही पिताजी अल्टिमेटली मेरा डिसीजन मान लेने को लाचार हुए थे। उसके बाद मेरी लाइफ में तुम आ गयीं। तुम्हारे साथ मैं दिन पर दिन इनवाल्व होता गया – कितनी ही बातें सुनीं, वह सब कुछ मैंने उड़ा दिया। तुम्हारा बैक-ग्राउंड, तुम्हारा जाति-धर्म, तुम्हारी पहले की हिस्ट्री, सब कुछ मैंने इग्नोर किया, तुमसे मैं शादी करूंगा, यह बात मैंने डिक्लेयर कर दी। सबको कितनी आपत्ति थी, कितना विरोध हुआ, कितनी नाराजगी हुई – तुम्हें तो वह सब कुछ पता है। पिताजी ने कह दिया था, देख, हमने इस लड़की के बारे में सब कुछ सुना है, तूने भी तो सुना है। सब कुछ जान-सुनकर भी तू इस लड़की से... मेरे घर में चाहे जो भी हो जाये, पिताजी ने कह दिया, मेरी राय के बगैर अगर तू यह शादी करेगा, तो मैं तुझे एक कौड़ी की भी मदद नहीं करूंगा। मैंने भी कह दिया – ठीक है, मैं भी आपसे एक कौड़ी नहीं लूंगा – इसके बाद कितनी मुसीबतें झेलीं, कितनी तकलीफें उठाकर, कर्ज-उधार लेकर, छात्रवृति आदि के सहारे मेडिकल की पढ़ाई पूरी की, तुम सब जानती हो। तुम तो मेरे साथ रही हो, नाते-रिश्तेदारों, मित्रों सबने मुझसे नाता तोड़ लिया है। (सिर्फ वीणा इस क्षेत्र में भी, दूर से ही सही मुझे सपोर्ट देती रही है) – और अब सारे संपर्क टूट जाने के बाद, पिताजी मरते समय मुझे यह किस समस्या में डाल गये? किस लिए ऐसी वसीयत कर गये? क्या सोचकर उन्होंने मरने के पहले इस घर का दायित्व मुझ पर डाल दिया? मैं भला यह प्रापर्टी लेकर क्या करूंगा? इस घर से तो मैं कब का निकल गया हूं।" (डाक्टर ने लड़की के कंधे पर एक हाथ रखा, उसकी भंगिमा

से तस्वीर में लड़की के चेहरे का आधा हिस्सा कट-सा गया।) – "रेहाना, रेहाना, तुम्हारे ही कारण अल्टीमेटली मैं इस घर से निकाला गया। आंगन के ये सामान आज पहचाने नहीं जा रहे। कम से कम तुम मुझे आकर इस घर में रहने को न कहना। इस घर को किराये पर देकर उसका किराया लेने को न कहना। समझ रहा हूं, समझकर मेरी आंखों से आंसू निकला चाहते हैं। पर मैं आप से कभी एक कौड़ी भी नहीं लूंगा। ठीक है, घर को मैं मेन्टेन करता रहूंगा। जहां जो जरूरत होगी, करूंगा। टैक्स देता रहूंगा। अपनी जेब से रकम जाये तो जाये।"

उस लड़की ने कहा – "कालकेई आमि आमादेर केलकेटा आफिसे मिस्टार मेहता के ट्रांक-कल करछि, सोमबार नागाद आपनि पूरो कनसाइनमेंट-टा पेये जाबेन। आमि खबर देवाब। रेस्ट एश्योर्ड। अच्छा, आसि ताहले, नमस्कार" – (यानी, कल ही मैं अपने कलकत्ता कार्यालय में मि. मेहता को ट्रंक-काल किये दे रही हूं, सोमवार तक आपको पूरी बिल्टी मिल जायेगी। मैं खबर भिजवाऊंगी। पूरा विश्वास रखें, अच्छा अब चलें, नमस्कार।)

ये बातें कंपनी के प्रतिनिधि की थीं। बोतल के लाल पेय पर ट्यूब-लाइट का उजाला दमक रहा था। तस्वीर गुम हो गयी थी।

प्रतिनिधि सज्जन चले गये थे।

आह ! मैंने अपने आप कहा, संपत्ति की अपेक्षा अपनी प्रतिज्ञा को ज्यादा कीमत देता हो, ऐसा आदमी आज भी इस दुनिया में मौजूद है। रुपया ही क्या सब कुछ है ?

लड़का आगे बढ़ आया।

"पर काम नहीं होगा। काफी दिनों तक इस मकान के किराये पर उठने की कोई होप नहीं। दोनों भाइयों में घर को लेकर केस चल रहा है। इस कारण घर यों ही पड़ा हुआ है। यह मकान किसे मिलेगा, यह तो केस खत्म होने के बाद ही पता चलेगा। उसमें बहुत दिन लगेंगे, आप इस मकान की आशा छोड़ दीजिए। बड़ा लड़का प्रोफेसर है – आजकल लगातार टेक्स्ट बुक और नोट्स लिख रहा है। काफी रकम कमा चुका है। वह इस मकान में अपना प्रेस खोलना चाहता है। खुद पब्लिश कर सके तो मुनाफा बहुत मोटा होता है। छोटा लड़का यानी डाक्टर चाहता है कि एक आर.सी.सी. का भवन खड़ा कर किराये-विराये पर दे दिया जाये। ग्राउंड फ्लोर पर अपना चैंबर भी बनाना चाहता है। एनी वे, आपको मकान इमिडियेटली चाहिए तो लाचित नगर में मैंने एक मकान का पता लगाया है..."

छक् से बाकी बचा पेय खींच लिया मैंने और बोतल को ठक् से काउंटर पर रख दिया और बोतल के गले के अंदर शून्य गर्भ में काफी देर तक निरुत्तर होकर देखता रहा।

"लाल लाल फूल और सफेद सफेद बगुले"

मेदिनी चौधुरी

आज जान-बूझकर ही उसने काफी देर कर दी। कृष्ण की द्वादशी के चांद की चमक मुरझा-सी गयी थी। पौ फटती रात का आर्द्र अवसाद भी पूरब के आसमान के मटमैले रंग के साथ-साथ मिटता जा रहा था।

उसे लग रहा था कि राह पर चलते बैलों की जोड़ी उसे परेशान करने के लिए ही धीरे-धीरे चल रही है। बीच-बीच में पीटने के कारण बैलों की पीठ पर दाग उभर आये थे।

दूसरी ओर बंदर छाप बीड़ी जलाकर हल की मूठ पर हाथ रखते ही उसके मन में एक अजीब-सी उमंग जाग उठती है। उसकी जमीन पर पहाड़ की ओट नहीं है। सूरज उगते ही धूप उसकी जमीन को छूने लगती है। उसके बैल भी गांव के दूसरे बैलों की अपेक्षा मजबूत हैं – उसकी फसलें देखकर गांव के दो-चार लोग कहा करते हैं कि उसके धान में माणिक यानी ठोसपन सबसे ज्यादा होता है।

तो भी आज उसे बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था, कुछ भी करने की तबीयत नहीं होती थी। बेकार किसके लिए वह इतनी तकलीफ उठाये ? घर में तो सिर्फ मां है और वह है। मां बूढ़ी हो चली है, दो कोड़ी यानी चालीस से ज्यादा साल की हो गयी जब, और कितने दिन रहेगी ? उसके बाद तो वह अकेला रह जायेगा। और कोई झंझट तो है भी नहीं, बल्कि वही-दूसरों को दो-चार मुट्ठी दे सकता है।

मां के मर जाने पर तो वह काम ही नहीं करेगा। उसकी दो पूरा[1] जमीन है। घर-द्वार की थोड़ा ठीक से देखभाल करेगा। फिर सारी जमीन अधिया पर दे देगा। अकेले आदमी के लिए उतना ही काफी होगा।

इसके अलावा उसे एक और सुविधा है। वह तो दूसरों की तरह शराब नहीं पीता। देशी शराब को मुंह तक नहीं लगाता। छाती को फूंक डालने वाली उस शराब को पीकर लोगों को कौन-सा मजा आता है, वह सोच ही नहीं पाता।

सुनते हैं, उसका बाप भी बड़ा पियक्कड़ था। कहते हैं कि एक बार पपीते की डाली से बनायी शराब पीकर उसने तीन दिन खून की कै की थी। फिर भी, वह शराब पीकर ही मरा।

बाप के दिनों की सरकंडों की नलियां[2] आज भी हैं। दिनों की कालिख लग-लगकर

---

1. असम में पांच बीघे का एक पूरा होता है।
2. बांस या सरकंडे की नलियां जनजाति लोग शराब पीने, तेल आदि रखने के काम में लाते हैं।

कुछ-कुछ लाल हो गयी हैं। उसने रख दिया है। नहीं, फेंका नहीं है। उसे पिता की धुंधली-सी याद आती है। इसी कारण सरकंडे की नलियों को फेंक देना उसे अच्छा नहीं लगता। बचपन में पिता ने उसके लिए नली का जो हुक्का बना दिया था, वह आज भी उससे तंबाकू पीया करता है।

आज अगर बाप जिंदा होता तो काम करने में उसे कितना मजा आता। यह सही है कि बाप बूढ़ा हो गया होता, मगर बीच-बीच में वह खेत में उसके लिए जलपान तो ले आता। शराब पीकर मतवाला हो छाती पीट-पीटकर गांव के दूसरे लोगों को उसी की बातें सुनाया करता।

यह सब कल्पना करना उसे बहुत अच्छा लगता। काम करने से अचानक नफरत-सी हो आयी। किसके लिए करे वह इतना सब ? सब कुछ निरर्थक है।

तब तक धूप तेज हो आयी थी, सोच में डूबे होने के कारण उसे पता नहीं चला।

पीछे की ओर एक खिलखिलाहट से वह चौंक-सा पड़ा।

उसने मुड़कर देखा। विरक्ति से मुंह घुमाकर उसने तेजी से बैलों को हांक दिया।

धुत् ! पगली कहीं की ! इतनी बड़ी हो गयी।

आज भी उसके शरीर में होशो-हवाश नहीं है। बालिग हुए भी तो तीन या चार बरसातें निकल गयीं।

"इत्ता जतन भला किसके लिए करता है ?" कहकर वह फिर खिलखिलाकर हंस पड़ती है।

"तेरे लिए ही करता हूं। जा:, बेशर्म कहीं की !" गुस्से के मारे वह डांट देता है। भले ही वह तकलीफ झेलता हुआ मिट्टी में मिल जाये, मगर उसे पूछने का क्या अधिकार है ? जवान लड़के के साथ हंसी-मजाक करने के लिए ही इतनी बड़ी हो गयी ? जरा-सी भी अकल नहीं है इसे।

"मैया रे, तुझे बुरा लग गया क्या ?" कहकर चोट खायी हुई-सी वह चुपचाप वहां से चली गयी।

अब उसने मुड़कर अच्छी तरह से उसे देखा। नमल के लिए वह जलपान लिये जा रही है। काली मेखला का रंग मटमैला-सा धूमिल हो आया है, पैर की पिंडलियों के ऊपर तक कीचड़ के छींटे पड़े हैं। बड़ा-सा जूड़ा गोरी पीठ पर झूल आया है।

देखते-देखते वह काफी बड़ी हो गयी। मां-बाप न हों तो लड़की की ऐसी ही हालत हुआ करती है। वह नमल के यहां नौकरानी है। अपनी बुआ भी होती तो कोई बात न थी। बुआ के मरने के बाद ही नमल दूसरी औरत ले आया। हालांकि वह दूसरी अकेली नहीं आयी थी, पहले मर्द के दो बच्चों को भी साथ लेती आयी थी। बच्चों की मां होने पर भी बिलकुल भोली-सी थी, इसलिए घर के सात नरक उकेरकर रहणी को ही काम करना पड़ता था।

फिर भी उसे देखते ही पूरन को गुस्सा चढ़ आता। भले ही मां-बाप न रहें, क्या लड़की

का शऊर भी खत्म हो जाना चाहिए ?

रहणी जलपान देकर लौटी। अचानक पूरन की आंखें उससे चार हो गयीं। इस बार रहणी गंभीर होकर सिर झुकाये निकल गयी। उसकी तरफ देखते-देखते रहणी के गांव की ओर उसकी नजर पड़ी। बिल[1] के उस पार नाटे-से मटिया पहाड़ से सटे हुए ढलान पर का गांव। नीचे लाल लाल फूल और ऊपर सफेद सफेद बगुलों के झुंड।

गांव के प्रति उसे अदभुत मोह हो आता है। उसकी मिट्टी मानो सोने की डली है। बिल का भीगा हुआ प्यार पाकर उसकी मिट्टी अद्‌भुत कोमल हो गयी है। हल के आगे चिपक जाने वाली लसदार मिट्टी को वह अभ्यास-जनित तेजी से छुड़ा देता था। हल की नोक से छोटे-बड़े सैंकड़ों-हजारों केंचुए आदि उसके पैरों पर लिजबिजाते रेंगते रहते हैं।

लाल लाल फूलों और सफेद सफेद बगुलों की भांति ही पुराने हैं उनके खेत – गांव और बिल, और उनके सरल विश्वास।

उस बिल में राजहंसों के झुंड अब पहले जैसे नहीं उतरते। परंतु खेती का सोना उनके लिए आज भी उसी प्रकार है।

उसने जल्दी ही हल चलाना बंद कर दिया। मां बीमार है, जलपान का इंतजाम उसे खुद ही करना पड़ेगा। तिस पर कल फिर खेराइ पूजा[2] है। चिफुं[3] न जाने कितने दिन से उसने नहीं बजाया है। निंमा[4] की धुनें तो शायद वह भूल ही चुका है। वह मन ही मन दुहराने की कोशिश करता रहा, याद करने की कोशिश करता रहा --

थाइ गीर मिखिया खंबा,
शिजुवाबो थानाइ बा।
चिफुं न गरां बा,
बड़ो बाराइनि आचार पंबा॥

(यानी, कपित्थ (कैथ) के खोल पांच होते हैं। बड़ो[5] बूढ़ों के आचार भी पांच हैं, इसलिए चिफुं के छेद भी पांच हैं, और खेराइ पूजा के शिजु[6] पेड़ की डालियां भी पांच हैं।) जंगल में आग लगने के उदास सुर के मीठे रहस्यमय इंद्रजाल से देवता को स्वर्ग से उतार लाने हेतु खेराइ पूजा के ये गीत बहुत दिनों बाद जैसे उसके मन में फिर सजीव हो उठे। अनेक सालों से भूले हुए अनगिनत स्मृति-विजड़ित खेराइ पूजा के वे दिन। सरल विश्वास से रंजित उनकी अनंत मंगलकामनाएं।

बैलों को चरने के लिए मवेशियों के झुंड में डालकर वह जल्दी से घर चला आया। मां

---

1. फैला हुआ छिछला जलाशय, जिसमें मछलियां काफी होती हैं, चारों ओर खेती भी की जा सकती है।
2. बड़ो लोगों की एक मुख्य पूजा और त्यौहार।
3. एक प्रकार का तुरही जैसा बाजा।
4. एक जनजाति लोक गीत।
5. एक जनजाति जिसे कछारी भी कहते हैं।
6. एक कंटीला पौधा।

घर के चबूतरे पर एक चटाई पर बिलकुल सिकुड़ी हुई सोई थी। बुखार का जाड़ा मिटाने के लिए वह धूप सेंक रही थी। मां को देखकर विरक्ति से उसके मन की उमंगें दब-सी गयीं। मर जाने पर सारी झंझटें खत्म। पर मरती भी तो नहीं। उसे जला मारने के लिए ही भगवान ने उसके गले में इस काल-सांपिन को लपेट दिया है।

"घर के अंदर जाकर मरती रह। बुखार ज्यादा चढ़ा लेगी तभी मेरा सिर खा सकेगी।"

बुखार ज्यादा होने पर उसको ही मुसीबत होगी। आफत है। घर के अंदर सोयी रहे तब भी एक बात है। यहां आकर धूप में मर रही है। इधर उसके हिस्से में चार 'आरिया' देना पड़ेगा। खेराइ पूजा के मंडप के पहले ही देना होगा। केले का पौधा काटकर नीचे के मूढ़े में गड्ढा बना, उसे उलटकर गाड़ना होगा। मूढ़े के उस गड्ढे में सरसा और सरसों का तेल भरकर उसमें कपास या कपड़े की एक बत्ती डालनी होगी, तब कहीं एक आरिया बनता है। यह कोई आसान काम नहीं है। तिस पर वह अकेला आदमी ठहरा। शाम को फिर लोगों के साथ मिलकर मंडप के काम में जुटना पड़ेगा।

उसकी मां उसकी डांट की परवाह किये बगैर मुर्दे की भांति पड़ी रही। डांट के नतीजे की प्रतीक्षा करने का उसे भी समय न था। वह तुरंत 'दाव'[1] हाथ में लेकर कुछ खाये-पीये बगैर निकल गया। इतने केले के पौधे कौन काटकर हलकान हो? उसने मन ही मन सोच लिया, दो 'आरिया' वह कुम्हड़े का ही देगा।

बाहर निकलते ही वह अचानक रुक गया। रहणी एक कुम्हड़ा लिये उसी ओर से आ रही थी। उसे देखते ही उसका मन वितृष्णा से भर उठता है। जिस लड़की को कोई शऊर नहीं, उसकी बात भला कौन सुने? उसके बाहरी दरवाजे को जब तक रहणी पार न कर जाये, तब तक वह अंदर ही खड़ा रहेगा।

"तू बहुत गुस्सा है न?"

उसे यह आशा न थी कि खेत में इतनी गालियां सुनने के बाद भी रहणी उसके यहां आयेगी। वह सचमुच कुछ विस्मित भी हुआ। रहणी के भावों में वही पहले जैसी जंगली उद्दामता थी। वैसी ही बेपरवाह खिलखिलाती हंसी। मानो कुछ भी न हुआ हो। चबूतरे पर सोई हुई मां उसकी इस हंसी से उठ बैठी। एक जहरीली नजर उस पर डाल, बड़बड़ाती हुई उठकर अंदर चली गयी। शायद इसी कारण पूरन उसकी हंसी से उतना नाखुश नहीं हुआ।

"मुझे भी एक 'आरिया' बना देना न, पूरन का[2]।" उसने कुम्हड़े को जमीन पर रखकर, पूरन के चेहरे की ओर देखते हुए अनुरोध के स्वर में कहा।

"जा-जा-जा...(अश्लील गाली)। मुझे मरने की भी फुरसत नहीं आज। मुझे भी एक 'आरिया' बना देना? हुंह! मुझे भोथरी शूली से बेंधकर स्वर्ग में चढ़ाने आयी है। जा, वह तेरा नमल बाप या फूफा क्या मर गया है।"

गुस्से के मारे उसने कई अश्लील बातें कह डालीं, थप्पड़ मारकर उसके गाल लाल कर देने की इच्छा हो आयी उसे : बेशर्म लड़की! फिर दुलार दिखाने आ गयी!

---

1. लोहे की गंड़ासी।
2. बड़े भैया जैसा आदर और स्नेहसूचक संबोधन।

"अगर देना नहीं चाहता तो जा, न दे । पूजा न करूं तो क्या मर जाऊंगी मैं ? फूफा से कहा तो वह भी नहीं देता, तुझसे कहने पर तो गाली ही मिली, न देने पर भला क्या होगा ?"

हां, न देने पर होगा ही क्या ? फूफा तो देता ही नहीं, पूरन से कहने पर उससे गाली ही मिली । ठीक है, नहीं करेगी वह पूजा । पूजा न करे तो क्या मर थोड़े ही जायेगी ? सिर, जान की कसम देकर किसी को पिघलाने की उसकी कोई इच्छा नहीं । कुम्हड़ा वहीं रखकर वह हनहनाती हुई वहां से चली गयी ।

व्यंग्य से मुंह बनाने के कारण उसका चेहरा कुछ भद्दा-सा हो आया । चली गयी तो जाये । उसका क्या बिगाड़ लेगी ? उसे जरा भी अफसोस नहीं है अपने व्यवहार पर । वह केले के दो पौधे उखाड़ लाया । मूढ़ों को चिकनाते समय ही उसे एक पुराने गीत की याद हो आयी –

नाओ दान नाइच' बद्दारीफोर
नुंबो यंफोर खो लां पागुण ना ऐ
हे धरत, हे धरम साजि गैया गैया
चरम गैया...

उन दिनों बड़ो नौजवान् केले के पौधों से पनसी नाव बनाते थे । ऐसे ही केले के पौधे उन्हें काटते देख नदी के उस पार की बड़ों लड़कियां कातर स्वरों में पुकारा करती थीं – "अरे छोकरो, तुम सब हमें भी साथ ले जाओगे ?" – रहणी जैसी ही बेशर्म लड़कियां ।

उसने साथ ही कुम्हड़े के तीन खोल बनाये । उस पगली को भी एक देना होगा । नहीं तो उसका जैसा स्वभाव है, उसे भला देगा ही कौन ? हजार हो, साल भर की है यह खेराइ पूजा ।

खांसती हुई उसके लिए एक कटोरी बासी भात निकालकर मां ने चबूतरे पर रख दिया । काम करने में गंदे हुए हाथों को उसने छोटी गमछी से पोंछ लिया और जमीन पर पालथी मार कर बैठ गया । केले के पौधे लाने के समय बाग से तोड़ी पकी हुई भोट-मिर्च[1] जिसे उसने कान में खोंस रखा था, उसी कटोरी में मसल ली । अपने चारों ओर दौड़ते परेशान करने वाले मुर्गी के चूजों के झुंड को भगाने के लिए उसने लकड़ी की एक चेली पहले से ही रख ली थी ।

उसका खाना खत्म होने के पहले ही बुखार होते हुए भी मां जकाइ[2] लेकर निकल गयी । सोये-बैठे रहने पर बुखार ज्यादा तकलीफ देता है । दुख का बुखार दुख से ही उतारना होगा । मां को रोकने की कोई जरूरत उसने नहीं समझी । मां से उसकी भयानक वितृष्णा है । उस पर उतना जुल्म करके उसे बेकार में जिंदा रहने की जरूरत ही क्या है ?

जहां खाना खाया था, वहीं जूठी कटोरी छोड़कर मुंह में एक बीड़ी लगा, वह गोसांई थान[3] की ओर निकल गया । पूजा की बत्तियों को देउरी[4] ने ठीक किया या नहीं, ओटेडा[5] के खोलों

1. एक तरह की मोटी मिर्च, जो बहुत ज्यादा तीखी होती है ।
2. मछली मारने की बांस की एक तिकोनी टोकरी ।
3. मंदिर ।
4. जनजातीय पुजारी ।
5. कपित्थ या कैथे का खट्टा फल जिसमें कटोरी जैसी परत होती है ।

को धोये बगैर उनमें डाला तेल ठीक से नहीं जलता। धोकर ठीक से सुखाया न जाये तो भी तेल पड़पड़ाता है। मिट्टी के दीयों की अपेक्षा ओटेडा के खोल से बने दीयों की खुशबू उसे ज्यादा मीठी लगती है।

जाते समय वह रहणी के लिए बनाया कुम्हड़े का खोल भी सरसों और तेल से भरकर लेता गया था। उसे वह नमल की छोटी बेटी के हाथ दे आया। रहणी से मुलाकात न होने पर उसने चैन की सांस ली।

खेराइ की रात को ही उसे मन ही मन बड़ी बेचैनी हुई। गांव के सारे लोग पूजा में उमड़ पड़े थे। यहां तक कि उसकी बुढ़िया मां भी गयी थी। मगर रहणी नहीं आयी। इसका कारण जानने के लिए उसने बड़ी कोशिश की, मगर जबान खोलकर किसी से पूछने में भी न जाने उसे क्यों संकोच हो रहा था। नचनियों ने भी उसकी कोई चर्चा नहीं की।

मगर उसका आरिया जल रहा था। उसने पहले सोचा था, ऐसी पगली का क्या भरोसा ? रात को शायद सो जाने के कारण ही नहीं आयी। हो सकता है कि सुबह दाहि कतरा चिड़िया की भांति नाचती हुई आ निकले। मगर चांद मटमैला हो आया, बिल के लाल फूल उजाले में साफ दिखने लगे। थान के पुराने बूढ़े शौरा पेड़ के ऊपर बगुलों की कतारें उड़ती निकल गयीं। फिर भी वह नहीं आयी।

सुबह पूरन को रहणी पर बड़ा गुस्सा आने लगा। गुरु-गोसांई किसी की परवाह न करने वाली उस पिशाचिनी को पा जाता तो वहीं बूढ़े बाथौ देवता के सामने बलि दे देता। बाथौ देवता मुर्गे का खून पीने की बजाय उसी का खून पी लेता। बेकार में आरिया बनवाने की तकलीफ देने का बदला वह उससे ले लेता।

उसका गुस्सा चरम सीमा पर उस समय पहुंच गया जबकि नमल ने उसे चिढ़ाया। शराब के नशे में वह धुत् था। रहणी से जोड़कर उसने पूरन को चिढ़ाया। वह नमल की ओर दौड़ा, मगर उसे पकड़ न पाकर गुस्से में आग बबूला होकर उसने अपनी चिफुं को पटककर टुकड़े-टुकड़े कर डाला और उसके घर की ओर तेजी से चला गया। शराब के नशे में पड़े हुए पांच-छह लोगों को कूदकर वह लांघ गया।

रहणी की आंखों में तब भी नींद की खुमारी समायी हुई थी। सूअरों को खाना देकर वह आंखें मलती हुई खड़ी थी।

"मारूं क्या एक थप्पड़ !" गुस्से में आग बबूला होने पर भी किसी दूसरे की युवा लड़की पर हाथ उठाने की स्पर्धा उसकी जाति-परंपरा में नहीं है।

रहणी जरा भी विस्मित नहीं हुई। बिलकुल सहज भाव से ही कहा – "मार ! बार लग जाये तो अच्छा ही होगा। हमें भी सूअर खाने को मिलेगा।"

उसकी सहज बातें सुनकर वह रुक गया।

दूसरे की लड़की को मारने पर तो समाज यों ही छोड़ने वाला नहीं है। प्रायश्चित के लिए

एक सूअर देना तो निश्चित ही है। बार लगने पर रहणी का कोई नुकसान तो नहीं होगा।

"वह भूरा सूअर देख रहा है न ? तू भी बिलकुल उसी जैसा है, पूरन का !"

हां, पूरन तो उसी नर-सूअर जैसा ही निरा जानवर है।

"अरी, सुबह-सुबह ऐसे चिढ़ाने का मजा मैं निकाल दूंगा, जानती है !"

पूरन ने गुस्से के मारे डांट दिया। सचमुच, वह मजा चखा देगा उसे। वह किसी से नहीं डरता।

"मार न ! ऐसा मार जिससे बिलकुल मर जाऊं ! तेरे हाथों से मर सकूं तो...

रहणी की बातें खत्म होने के पहले ही उसके कानों में मानो भोरताल बज उठा। वह स्तब्ध-सा हो गया। बिलकुल लाज भी नहीं, पर वैसी ही एक विशृंखल चिंता से उसका मन आच्छन्न-सा हो गया। वह वहां से तुरंत चला गया। रहणी के वाचाल चेहरे की ओर फिर से मुड़कर देखने में भी उसे डर-सा लगने लगा। उसने चारों ओर नजर डाली। किसी दूसरे ने तो सुनी नहीं न इस बेहया लड़की की यह बेशर्म बात ? किसी युवा लड़की की जबान से ऐसी बातें सुनकर भला दूसरे क्या सोचेंगे ?

चलते हुए वह रहणी की उन अद्‌भुत बेशर्म बातों के बारे में सोचता जा रहा था। वह पूरन के हाथ से ही मरने की कामना करती है। मगर इन बातों का संकेत कितना शालीनतारहित है ? विवाहित पत्नी ही पति के सामने ऐसी कामनाएं किया करती है। एक अविवाहित लड़की की जबान से निकली ये बातें कितनी शर्मनाक लगती हैं ! सोचते-सोचते उसे बड़ी शर्म लगने लगी।

जो भी हो, इस बार खेराइ पूजा बिलकुल ठंडी-ठंडी-सी रही, असली रंगीली लड़की ही उसमें नहीं आयी। सजी हुई वह गिद्ध की लास्यमयी भंगिमा में जो नाच नाचा करती है, दूसरी लड़कियां क्या उसकी बराबरी कर सकती हैं ? हालांकि उसकी जबान अच्छी नहीं। बड़ी ऊटपटांग, उलजलूल और उतावली होकर बोलती है।

पर वह तो उससे असली बात ही पूछना भूल गया। वह खेराइ में गयी क्यों नहीं ?

उसने मन ही मन तय कर लिया, खेत में उससे पूछ लेगा। उसकी जमीन पर आज तक किसी ने हल नहीं चलाया है। जलपान के लिए उसे पूरन की जमीन पर से होकर ही जाना है। तब वह अकेले में रहणी को पा सकेगा। उससे पूछ भी सकेगा। लोगों के सामने उससे कोई बात पूछते डर लगता है।

परंतु 'पूछे-पूछे' करने पर भी उसे पूछने में अजीब-सा संकोच हुआ। कुछ कुंठित भी हुआ वह।

"सुबह तो तू बिलकुल दनदनाता चला आया था। अब क्या बुरा लग गया तुझे ?"

वह जलपान लिये जा रही थी। यह बात कहने के लिए वह रुकी नहीं। जाते-जाते ही कह गयी।

"ठीक है। बुरा लगता रहे। मुझे तो सभी बुरा समझते हैं। मैं पगली हूं। सबकी आंखों की किरकिरी हूं, दातों का कांटा हूं। भला, तू ही बुरा क्यों नहीं मानेगा?"

"खेराइ में तू क्यों नहीं गयी?"

माना उसे उत्तर पाने का हक हो। डांटकर गंभीर भाव से, जैसे पहले की बातें सुनी ही नहीं, ऐसा मुंह बनाकर उसने पूछा।

"यों ही। जाने की इच्छा नहीं हुई — बस, नहीं गयी।" कहकर वह झट से वहां से चली गयी।

यों ही नहीं गयी। जाने की इच्छा नहीं हुई, नहीं गयी। इससे किसका क्या आता-जाता है? उसके जैसी एक साधारण-सी लड़की के न जाने से खेराइ पूजा में जरा भी त्रुटि नहीं हुई।

मगर पूरन इस बात को यों ही छोड़ नहीं पा रहा था। साल भर की खेराइ है। भयंकर संकट-अमंगल, दुख-कष्टों के बीच भी लोग उसमें गये बगैर नहीं रहते। क्योंकि खेराइ सर्व-मांगलिक अनुष्ठान है उनका। संकट-अमंगल आदि का नाश कर कल्याण-कामना हेतु ही तो लोग खेराइ पूजा करते हैं।

खेराइ पूजा पलायन करने वाली देवी की पूजा है। लेकिन इस बार तो खेराइ की देवी ही पलायन कर गयी। खेराइ पूजा में वास्तव में रहणी देवी जैसी ही लगती है। हालांकि पगली है। सभी ने उसका अभाव अनुभव किया था, यद्यपि मुंह खोलकर कारण जानने की इच्छा प्रकट करने का नियम उनके स्वभाव में नहीं है।

खेत में मिट्टी के उभरे ढेलों पर कदम रखती हुई गिरती-पड़ती वैसे ही चली जा रही थी जैसे वह जहां हल जोत रहा होता है, उसके चारों ओर शिकार पकड़ने के लोभ से सफेद बगुले चक्कर लगाया करते हैं। उसके प्रति अचानक पूरन के मन में अद्‌भुत ममत्व जाग उठा। किसी के प्रति घोर घृणा उसके अंतर में उमड़ पड़ी। खासकर उसके प्रति जिन्होंने उसकी जिंदगी को इस तरह से विडंबना से भर दिया था।

नमल और कुछ दूसरे लोग। उनमें से बहुतों के नाम उसे नहीं मालूम। उन्हें वह पहचान भी नहीं पाता। हो सकता है कि वे अब तक जिंदा भी न हों। मगर उनके कुकर्मों की मार ढोती हुई रहणी जीते जी अपार कष्ट भुगत रही है। रहणी जैसी बिना मां-बाप की टुअर लड़की को यह सब भुगतना पड़ रहा है। रहणी के प्रति कल्याण-कामना से उसका मन व्यथित हो उठा।

अब तक उसे यह पता ही न चला था कि उसके लिए जलपान रखकर बाट जोह रही है। अचानक उसकी नजर पड़ी। फटी मेखला की बड़ी चुन्नट को फैलाकर वह अपने बिखरे-उलझे बालों में से जुएं टटोल-टटोलकर नाखून पर ले-लेकर मार रही थी। वह खेत की जिस पगडंडी पर बैठी हुई थी, उसके पास ही बासी भात का कटोरा केले के पते से ढंका हुआ था। मां के मन में अफसोस है कि बेटा गांव के दूसरे लोगों की तरह शराब नहीं पीता। हालांकि कभी-कभी यह बात सोचकर मां को अच्छा भी लगता है। युवा लड़के-लड़कियों की कुमंत्रणा का उपकरण

है शराब। युवा काल में ही बरबाद हो चुके गेराकानिया[1] ने पूरन के बाप पर भी टेकेलीबान[2] मारा था। लघनु ओझा ने बान काटकर किसी तरह से उसे बचाया था। असुर से क्या कोई कम भयंकर था वह ! फिर भी पूरन के जन्म के कुछ ही पहले उनका घर लगभग बरबाद हो गया था। मगर उसने शराब में सिर्फ एक खुराक दवा मिला दी थी। बस, मुर्गे जैसे सीधे घर आ गया और उस दिन से मरते दम तक उसी की बात पर उठता-बैठता रहा।

पुरानी बातों को याद करके पूरन से स्नेह जताने की इच्छा हुई मां की।

"आ, खा ले न !"

बहुत अधिक स्नेह-सनी ऐसी आवाज में मां ने यह बात कही कि वह खुद ही चौंक-सी पड़ी। उसके विचार से इतने बड़े बेटे को मां का ऐसा दुलारना बड़ा अशालीन है।

"वहीं रखकर जा नहीं सकती क्या ?" पूरन ने झल्लाते हुए, मां की तरफ देखे बिना, कहा। शायद शर्म महसूस न कर पाने वाली मां को उसने यह याद दिला दी कि युवा बेटे और मां के बीच शर्म नाम की कोई चीज है आखिर !

मां चुपचाप वहां से खिसक गयी। गुस्से के मारे पूरन ने बैलों को बेवजह पीटा। उसने अपने में एक ऐसा अभाव अनुभव किया जिसे वह समझा नहीं सकता। सोचने पर भी कोई वजह उसे नहीं मिल पायी। हालांकि उसकी दुनिया में भी तो कोई कम झंझट नहीं है। उसकी मां, खलिहान, जमीन सब कुछ झंझटों से भरे पड़े हैं। फिर भी उसे आज अचानक ऐसा सूना-सूना क्यों लग रहा है ?

उसे लग रहा था कि जीवन भर उसे अपने मन-लायक कुछ भी नहीं मिल पाया है। और ये सारे जंजाल उसकी दुनिया को घेरे हुए हैं, जिन्हें वह बिलकुल पसंद नहीं करता। अचानक वितृष्णा से उसका मन आच्छन्न हो गया। उसकी जिंदगी को भार बना डालने के लिए ही मानो चारों ओर दिन-रात षड्यंत्र चल रहा है।

रहणी वापस आ रही थी। उसने गुस्से में सुध-बुध खोकर उसे एक थप्पड़ जड़ दिया। वह स्तब्ध-सी उसकी ओर देखती रह गयी, विस्मय-भरी आंखों से। कुछ क्षण में उसकी आंखें गीली हो आयीं। आंसू पोंछती वह बोली – "भला, मुझ पर तेरा इतना गुस्सा किसलिए ? जानता ही तो है, मैं पगली हूं। मेरी बातों को सच क्यों मान लेता है ?"

वह पगली मानकर उसे गालियां तो दिया ही करता है। फिर उसकी बातों को भी पागलपन क्यों नहीं मान लेता ?

"अगर लड़की होता तब समझता !"

हां, लड़की होता तब समझ पाता कि उसकी जिंदगी का नंगा सत्य रुलाई से भरा है। उसे तो पागलपन अपनाकर ही हंसना है। नहीं तो फिर हंसने की, हंस-बोलकर दुनिया के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की कोई राह नहीं है।

भला वह पूरन को कैसे बताये – फूफा नमल उसे चुपचाप भगा ले जाने का इंतजाम

---

1. एक घोर अफीमची आदमी।
2. माटी की हंडिया में वशीकरण हेतु किया गया मंत्र या जादू।

करवा रहा है। काफी 'गा-धन'[1] लेकर उसका स्नेही फूफा शादी के नाम पर किसी अनजान युवक के हाथ उसे बेचने जा रहा है। युवक होता तो भी अच्छा ही था, जाने कहीं का बड़ी उम्र वाला निःसंतान कोई कुंवारा पुत्र-प्राप्ति की आशा से उसकी बाट जोह रहा है। वह पूरन को कैसे बताये कि कोई और उसे कहीं भगा न ले जाये, इस डर से नमल उसे रात को कहीं जाने नहीं देता। यहां तक कि बाजार जाने पर भी वह उस पर कड़ी निगरानी रखता है।

किसी तरह की बाधा न मानकर आंसुओं की धारा उसके दोनों गालों पर बहने लगी। पूरन मन ही मन कुछ विचलित-सा हो गया। रहणी के प्रति उसके मन में प्यार उमड़ आया। परंतु प्यार को प्रकट करना लज्जाभरी दुर्बलता है। इसी कारण उसने डांट लगायी –

"चली जा, यहां से कलमुंही!"

वह धीरे-धीरे चली गयी। जाने के पहले मुड़कर उसके मुंह की ओर एक बार देखा। लगा कि उसकी छाती पर से एक ठंडा सांप उतरा जा रहा है। गुस्से की गरमी में उसे थप्पड़ मारने की बात वह भूल ही गया था। जवान लड़की या दूसरों की औरत पर हाथ उठाना कितना बड़ा पाप है। उसका समाज वैसे अपराधी को कभी क्षमा नहीं करता। उसे यह सोचकर बहुत डर लगने लगा। क्या वह अपने फूफा नमल को जरूर बता देगी? नमल गांव-बूढ़े[2] के कान में डालेगा, शाम तक उस पर गोसांई-थान में पंचायत बैठेगी।

ऐसे अपराधियों को समाज कैसी बड़ी सजा देता है, उसे भली-भांति मालूम है। उसे नंगा किया जायेगा, फिर उसे नदी-किनारे की एक झोंपड़ी में बंदकर दिया जायेगा। बाहर पंचायत बैठी रहेगी। झोंपड़ी में आग जला दी जायेगी। पाप स्खलन कर जिंदा रहने की इच्छा हो तो झोंपड़ी से नंगी हालत में ही पंचायत के सामने से दौड़कर नदी में नहा आना पड़ेगा।

पूरन यह सब नहीं करेगा। ऐसे में तो मर ही जायेगा। फिर भी वह नंगा होकर दौड़ नहीं सकता। संभाव्य परिणति की यादकर डर के मारे उसका कलेजा दहल गया। उसे लगा कि पुल पर से किसी रेल के गुजरते समय जैसे और कोई आवाज सुनायी नहीं देती, उसी तरह किसी प्रचंड आवाज के बीच मानो कोई उसे जोर से खींचता हुआ कहीं ले जा रहा है।

वह घर कब पहुंचा, पता ही नहीं चला। घर पहुंचते ही कंबल ओढ़ बिस्तर पर लेट गया। अपनी नासमझी के लिए अपने को धिक्कारता रहा।

आज मां पर एक अभूतपूर्व निर्भरता, एक सहारा उसे महसूस हुआ।

"क्या कोई मेरी खोज में आया था?" उसने पूछा।

क्या कोई आया था उसकी खोज में? लगा, खेत में हुई वह दुर्घटना बहुत पहले हुई हो। गांव के लोग, शायद उसे ढूंढ़ने के लिए तूफान मचाये हुए हैं। वह क्या बतायेगा? लोगों के सामने मुंह कैसे दिखायेगा? मां के सिवा उसका तो अपना कोई है नहीं। वे लोग तो यह समझने की कोशिश भी नहीं करेंगे कि किस हालत में रहणी को उसने मारा था। वे लोग तो

1. वह रकम या सामान जिसे लड़की को पाने के लिए लड़के द्वारा लड़की के पिता या परिवार वालों को देना पड़ता है। जनजातीय समाज में लड़के को ही रकम देनी पड़ती है।
2. गांव का मुखिया, समाज का प्रमुख।

यह भी समझने की कोशिश नहीं करेंगे कि गुस्से के मारे उसका भले-बुरे का ज्ञान नष्ट हो गया था – आज कई दिनों से उसका मन बिलकुल अशांत रहा है ।

रहणी का स्वभाव तो ऐसा है कि पूरन से बदला लेने की इच्छा में ही वह बेशर्मी से गांव में इस बात को कहती फिरती होगी । कुछ नमक-मिर्च लगाकर ही कहती होगी । और लोग जवान लड़की की बात पर अविश्वास कर पूरन की बात पर थोड़े ही विश्वास करेंगे ? अब वस्तुतः उसकी मौत होने वाली है । मगर वह इतनी आसानी से मर नहीं सकता । पंचायत जुड़ने की खबर मिलते ही वह रात को निकल भागेगा । मां को अकेली छोड़ जाने की कोई दुश्चिंता उसे नहीं है । मां भी आराम से मर सकेगी ।

सोचते-सोचते ऐसा लगा कि उसकी दुनिया और समय बहुत तेजी से उसके करीब आते जा रहे हैं । दुनिया और समय उसके लिए मानो बहुत ही छोटे हो गये हैं । लगा, उसके इतने दिनों की जिंदगी एक बड़ी बरबादी के सिवा और कुछ नहीं है । फिर भी कहीं कोई त्रुटि रह गयी है, जिसके कारण वह शायद मरना पसंद नहीं कर रहा है ।

अपना वह खूबसूरत गांव, बिल, लाल-लाल जलकुंभी के फूल, और सफेद बगुलों के झुंड, सुंदर खेत, और जाने-पहचाने लोगों को छोड़कर अचानक मर जाने की कल्पना भी वह नहीं कर सकता । वह गांव अगर उसे न चाहे, तो वह दूसरे किसी गांव में प्यार की खोज में निकल जायेगा । इसी वजह से इतनी सुंदर दुनिया को वह छोड़कर नहीं जा सकता ।

उसे याद आया, कुछ साल पहले उसने फंदा लगाकर एक आरा नाम की चिड़िया पकड़ी थी । फंदे में फंसने पर भी वह जिंदा थी । उसने चिड़िया को पकड़ा तो उसने चोंच से मार-मार कर उसके हाथ को लहू-लुहान कर डाला । न मरने के लिए उसने आखिरी दम तक लड़ाई की थी । उस समय इसी रहणी ने कहीं से कास के फूलों से अपने सिर को सफेद किये उसके पास आकर कहा था – "यही आरा चिड़िया तुझे उस जन्म में फंदा डालकर पकड़ेगी ।"

उस दिन उस बात को पल भर के लिए भी याद रखने की कोई जरूरत उसने नहीं महसूस की थी । आज ही समझ में आयी वह बात । रहणी ही एक दिन उस आरा चिड़िया का अभिशाप लेकर आयेगी । और वह भी इतनी जल्दी, इस बात की धारणा भी वह नहीं कर पाया था ।

बाहर अचानक रहणी की आवाज सुनकर उसने कान लगाया । मानो एक स्टीम-रोलर उसके पैर की ओर से उस पर चढ़ता जा रहा है और जैसे उसके उठ पाने की सारी ताकत खत्म हो गयी है ।

"चाची, मछली पकड़ने चलेगी ?"

"कहां, बिल में या नदी में ?" पूरन की मां ने पूछा ।

"जहां भी जाना हो, चल । पूरन का हैं या नहीं ?"

मछली ही मारने की बात है । बिल में या नदी में कहीं भी मारने से चलेगा । पूरन हैं या नहीं ? या हल जोतकर वह अब तक लौटा ही नहीं ?

"है, सोया है । तेरे गाल पर क्या हो गया है ?"

"चेर्पा[1] ने काट खाया है।"

"पगली, देह का कोई होश-हवास ही नहीं है।"

पगली को कोई होश-हवास ही नहीं है। चेरेपा ने काटा है तो क्या गाल पर इतने जोड़ से थप्पड़ मार लेना चाहिए? गाल पर उंगलियों के निशान उभर आये हैं। मां के सामने रहणी ने उंगलियों के निशान के बारे में जो सफाई दी, उसे सुनकर पूरन बिस्तर पर पड़ा नहीं रह सका। झटपट उठ गया और दरवाजे पर खड़ा होकर उसने रहणी के चेहरे की ओर गौर से देखा। रहणी भी उसी की तरफ देख रही थी, मां की भांति स्नेह-सजल दृष्टि से।

अचानक रहणी अपनी नजर नीची कर पूरन के पैरों की तरफ देखने लगी। उसका एक पैर चौखट पर था। घुटने मुड़े उस पैर की पिंडलियां की तरफ कुछ देर तक वह देखती रही। अंगोछे को संभालकर ठीक कर लिया, ऐसा भान किया पूरन ने। रहणी उसे आज अद्‌भुत रूप से अच्छी लगने लगी। असीम कृतज्ञता से उसका दिल भर आया।

लचकदार कमर पर जकाइ लिये रहणी मां से आगे-आगे निकल गयी। उसके घोड़े की दुम जैसे बंधे बाल और पतली कमर की छंदमयी भंगिमा काफी देर तक पूरन की आंखों में तिरती रही।

महीने भर के अंदर ही नमल ने 'बारह कोड़ी' यानी दो सौ चालीस रुपये लेकर रहणी की शादी कर दी, कुछ दूर के गांव के एक व्यक्ति के साथ। रहणी के मन में ऐसा कोई खेद या मनोमालिन्य न था। उसके जैसे लोग भवितव्यता के नाम पर सब कुछ मान लेते हैं।

हल जोतते समय उसे उस दिन रहणी की ही याद आ रही थी। बिल के लाल लाल फूलों और सफेद सफेद बगुलों को काल छू नहीं पायेगा। पर काल रहणी को बूढ़ी बना देगा, उसकी मुरझायी-सी हंसी एक दिन बिलकुल विलीन हो जायेगी।

छाती में मातृत्व की कमनीयता लिये रहणी उसके यहां आयी थी। परंतु उसे देखकर उसे न गुस्सा आया, और न ही अच्छा लगा।

---

1. चेरेपा, एक तरह का कीड़ा।

मन ही मन

स्नेह देवी

उस मुर्गी पर उस दिन भी सुबह-सुबह नजर पड़ गयी। सुबह रसोईघर के चूल्हे में आग सुलगाने का इंतजाम करते ही आंगन में कोई आवाज सुनकर वह बाहर निकल आयी। देखा, वह सफेद-मूंगा रंगों वाली चितकबरी मुर्गी आंगन में घूम रही है।

यमुना वापस आकर आग सुलगाने में जुट गयी। साथ ही सोचने लगी, भला, यह मुर्गी है किसकी ? आज चार-पांच दिनों से बराबर आ रही है। भगा देने पर भी फिर आ जाती है, जरा हिम्मत बढ़ जाये तो शायद अंदर ही आ जायेगी, उसे पकड़ा भी जा सकेगा।

कमल ने भी बिस्तर से उठकर देखा। "यह मुर्गी किसकी है ?" उसने यमुना से पूछा।

"पता नहीं, कहां से आ गयी है।" यमुना ने विरक्ति से जवाब दिया।

कई दिनों से वह मुर्गी आकर उसके आंगन में, बाड़ी में, चक्कर लगाती रही है। गोभी के पौधों को कहीं नोच-खसोट न डाले, इसलिए कमल ने "हे:, हे:" करके हाथ उठा मुर्गी को डराने की कोसिश की। पिछले चार-पांच दिनों से उसे देखते ही यमुना भी उसे भगाती रही है। मगर बेकार, वह फिर आ जाती है। हालांकि गोभी के पौधों या सब्जी-बाड़ी के दूसरे पौधों को कोई नुकसान नहीं करती। पौधों में डालने के लिए इकट्ठा किये गये गोबर की ढेरी के आसपास ही वह जमीन खुरचती रही है।

कभी-कभी कड़ाही जलाने के लिए केले की सूखी पत्तियां, सुपारी के पत्ते और सड़ी हुई फूस की एक बची ढेरी तब भी एक किनारे पड़ी हुई थी, मुर्गी कभी-कभी वहां जाकर कुछ खोजा करती। केले की सूखी पत्तियां खड़खड़ा उठतीं।

कमल मुंह धोकर आया और बरामदे में खड़ा हो गया। यमुना ने एक कप चाय और कप के किनारे प्लेट पर कुछ छोटे-छोटे लिली बिस्कुट उसे लाकर थमा दिये।

मुर्गी फिर आगे बढ़ी आ रही थी। कमल ने एक बिस्कुट उसकी तरफ फेंक दिया। यमुना ने अंदर से देखकर कहा – "उसकी हिम्मत और बढ़ा रहे हैं।" कमल मुस्कुराया, कुछ बोला नहीं। मुर्गी पहले डरकर दूर हट गयी थी, बाद में एक-दो कदम आगे बढ़कर बिस्कुट को चोंच मारने और कुटकुटाने लगी।

ढाई साल का लड़का पोहर इस बीच जागकर बिस्तर पर से ही रुआंसी आवाज में 'मां मां' पुकारने लगा। यमुना सोने के कमरे में चली गयी। पोहर को एक और कमीज पहनाकर गोद में लिये बाहर आयी और बिस्कुट कुतरती मुर्गी को दिखलाकर उसे बहलाने की कोशिश

करने लगी। पोहर मां की गोद से उतर दोनों हाथ फैलाये दौड़कर मुर्गी की ओर जाना चाहता था। मगर ठंडी जमीन पर उतरने न देकर उसे कमल की गोद में ही बिठा यमुना रसोईघर में चली गयी।

शाम को मुर्गी फिर दिखायी पड़ी। कमल बोला – "शायद अंडे देने वाली है।"

यमुना ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। कमला कहता गया – "हां, बहुत-सी मुर्गियां अंडे देने के समय ऐसी ही जगह ढूंढती फिरती हैं। जहां-तहां अंडे देती भी हैं।"

"सचमुच ?"

"हां।"

शाम को यमुना ने यों ही बाड़ी में एक चक्कर लगाया। केले की पत्तियों पर यों ही नजर डाली। कहीं 'खिड़िक्'-सी आवाज होने पर भी कान खड़े कर लिये। पोहर के लिए लार्जेंस जिस सफेद कागज में लपेट लायी थी, सुबह फेंके गये कागज के उस टुकड़े को भी – 'कौन-सी चीज पड़ी है' – सोचती हुई पास जाकर देख आयी।

शाम के बाद चूल्हे के पास बैठे कमल ने पूछा – "मुर्गी को फिर कहीं देखा था क्या ?"

यमुना ने संक्षेप में कहा – "नहीं।"

रात को अचानक जागकर पोहर कभी-कभी परेशान करता था। यमुना को उसे बहला कर फिर से सुलाना पड़ा। काफी रात तक यमुना को नींद नहीं आयी। घर के कोने में शायद कोई चूहा या छछूंदर कूद-फांद कर रहा था।

यमुना के मन में कितनी ही बिखरी-उलझी बातें आती-जाती रहीं। पोहर की तबीयत अच्छी नहीं थी, इसी कारण रात को परेशान कर रहा है। महीने भर पहले यमुना अपनी बड़ी बहन के यहां गयी थी। बहन के तीन बच्चे हैं। परिवार में कोई अभाव नहीं। एक बार पोहर की तबीयत के बारे में चर्चा चलने पर बहन ने बताया था – "इसे हमेशा मुर्गी का एक अध-उबला अंडा खिलाना शुरू कर दे न। मैं तो इन्हें हमेशा खिलाती हूं। डाक्टर ने बताया था।" यमुना ने निस्पृह भाव से 'हूं' कह दिया था। उस बात की भी याद आ गयी। रोज एक अंडा – मतलब कि रोज चार आने। यानी महीने में लगभग आठ रुपये। मुर्गी का अंडा क्या कोई मुफ्त में मिलने वाली चीज है ? हां, कोई चीज मुफ्त में मिले तो बड़ा अच्छा है। उसे भूला नहीं जा सकता। बहुत दिन पहले स्कूल में पढ़ते समय यमुना को एक दिन राह में पड़ी एक दुअन्नी मिल गयी थी। उस चौकोर दुअन्नी की याद आते ही आज भी शरीर झनझना उठता है। उस दिन भुने हुए चने खरीदकर अपनी सहेलियों के साथ उसने जी भरके खाया था।

सुबह दूसरे दिनों की भांति उठकर यमुना चूल्हा जलाने के पहले ही बड़ी सावधानी से बाड़े के पिछवाड़े नजर डाल आयी। चाय बनाने के लिए कप-प्लेट धो-धोकर पानी फेंकते समय नजर पड़ी, मुर्गी आंगन में कूदकर जा रही है। यमुना भी निकल आयी। यों ही जमीन पर से एक ढेला उठाने का बहाना करते हुए, उसने मुर्गी को भगाया। असल में वह यह देखना

चाहती थी कि मुर्गी जाती किधर है। भला, यह मुर्गी किसकी हो सकती है ? पास के धन बहादुर की, या कुछ दूर दक्षिण की ओर रहने वाली सरला की पाली हुई मुर्गी है ? या हाट-बाजार जाते हुए किसी व्यापारी के पिंजड़े से किसी तरह निकलकर दौड़-भागकर रही है ?

इसी बीच मुर्गी किसी झाड़ी में जाकर छिप गयी।

कमल के आने की आहट पाकर यमुना हाथ की धूल झाड़कर रसोईघर में घुस गयी। कमल ने पूछा – "क्या बात है ?"

"मुर्गी को खदेड़ रही थी।"

"ओह !" कुछ रुककर कमल बोला – "रहने दो, कोई नुकसान तो नहीं कर रही है न ?"

"न जाने किसकी है ? बार-बार घुस आती है।"

"चाहे जिसकी भी हो। चली जायेगी।"

उस दिन रविवार था। चाय पीने के बाद कमल घर के सामने के बरामदे में बैठा हुआ था। सामने की सड़क से लोग हाट में बेचने के लिए सामान ले जा रहे थे। कमल उठकर बाहरी दरवाजे के पास आ गया। यों ही सामानों का मोल-तोल करने लगा।

"गोभी, कितने की दी है ?"

"फुटकर नहीं बेचना है।"

"ठीक है। कीमत तो बताओ।"

"एक रुपया चार आने किलो।"

"हें ! और बैंगन ?"

"दस आना किलो।" कहता हुआ व्यापारी आगे बढ़ गया।

एक के बाद दूसरा, तरह-तरह के लोग आ-जा रहे थे। चावल, केले, गुड़, टोकरी-सूप। अलग-अलग सामान लिये चले जा रहे थे अनेक लोग।

"अरे ! अंडा है क्या ?"

"हां।"

"क्या भाव है ?"

"रुपये के चार।"

"इतनी कीमत ?"

"दो रुपये में नौ दे सकते हैं। लेंगे तो बोलिए ?"

"नहीं, नहीं चाहिए, बाजार में सस्ता मिलेगा।"

"बाजार में भी तो हमीं बेचते हैं, बाबू !" कहकर वह आदमी चला गया।

धूप निकल आयी थी। बंडी उतारकर कमल घरेलू कामों में जुट गया। आंगन में निकल आयी घास को छीलकर साफ किया। पोहर जहां-तहां धूप में अकेले खेला करता है, उस जगह को भी उसने साफ किया। आंगन में मुर्गी ने जहां-तहां गंदा किया था, उसे भी उसने फावड़े से साफ किया। केले के सूखे पत्तों को भी एक जगह जमाकर दिया। चबूतरे के कोने में पड़ी

टोकरी में जमीन पर बिखरे फूस को भरकर एक कोने में रख दिया। तभी रसोईघर से पानी फेंकने के लिए यमुना वहां आयी। पानी फेंककर पूछा, "क्या कर रहे हैं ?"

कमल इस बीच फावड़ा हाथ में लेकर घास छील रहा था।

"फूस जमीन पर पड़ी रहे तो दीमकें खा डालेंगी। इसलिए टोकरी में भरकर रख दिया है।"

"मगर वह तो सड़ी हुई है।"

"फिर भी कभी काम आ सकती है।"

यमुना एक बार टूटी टोकरी की ओर देखकर अंदर चली गयी, भागती हुई। उसे शर्म आयी। किस कारण, वह खुद समझ नहीं सकी। अपने पर ही मानो उसे शर्म आयी। अंदर कुछ देर ठहरी, फिर पोहर को ऊंची आवाज में पुकारकर ऊपर ले जाकर नहलाने के लिए उसकी कमीज खोलने लगी। अकारण पोहर से बातें करती रही – "गर्म पानी से नहला दूंगी। परेशान न करना, भला ? रोने पर बुरा बच्चा कहूंगी लेकिन पोहर तो मेरा अच्छा बच्चा है, सुंदर बच्चा है।"

दो-तीन दिन निकल गये। मुर्गी आती रही। मगर उस हालत में अगर दोनों साथ होते तो तुरंत किसी भूले काम के बहाने यमुना वहां से हट जाती। कमल भी ऐसा ही करता। जैसे उसे देखा ही न हो। सोने के कमरे की खिड़की से कभी-कभी कमल छिपकर झांकता। रसोईघर के दरवाजे से, कुछ और देखने के बहाने, यमुना भी कभी-कभी झांक लेती। दोनों को कुछ संकोच-सा होता था, मगर संकोच का कारण पता नहीं था। बाड़ी के पिछवाड़े किसी काम से जाने पर दूर से ही टूटी टोकरी पर यमुना एक नजर डाल लेती। पास पहुंचने पर उधर देखती ही न थी। जैसे उसे दिखायी ही न देता था कि एक टोकरी में कुछ फूस रखी हुई है। कमल सुबह दांत मांजते हुए एक बार बाड़ी का चक्कर लगा आता। नाराजगी-भरी आवाज में यमुना को सुना-सुनाकर कहता – "इस मुर्गी से तो भगवान ही बचायें। उस दिन यह सब कूड़ा-कचरा साफ करके एक किनारे किया था, फिर से छींट-बिखेरकर बरबाद कर दिया।"

यमुना ऐसा भाव बनाकर पोहर को ले व्यस्त हो जाती, जैसे कुछ सुन ही नहीं रही हो। उस दिन शाम को सरला की दस साल की बहन आयी। उसके पीछे-पीछे उससे कुछ बड़ा एक लड़का था। उसके पहनावे को देखकर ही यमुना समझ गयी, घरेलू नौकर होगा। यमुना ने पूछा – "क्या बात है, मुन्नी ?"

"कुछ नहीं, यह...इनकी एक मुर्गी खो गयी है। आप लोगों की तरफ आयी थी क्या ? यही देखने के लिए आया है। एइ ! जा, जाकर देख ले।" लड़की ने साथ के लड़के से कहा।

लड़के ने इधर-उधर नजर डाली। यमुना ने पूछा, "मुर्गी खो गयी है, किसकी ?"

"इसी की।"

"इसका घर कौन-सा है ?"

"हमारे घर की उस तरफ। वह जो नये लोग आये हैं।"

"ओ ! यह बात है । मुर्गी देखने में कैसी है ?"

लड़का बोला – "सफेद, चितकबरी । दूसरी मुर्गियां नहीं आती । सिर्फ वही रोज सुबह होते ही इधर चली आती है । फिर शाम को लौट जाती है । बस, आज ही दिखायी नहीं पड़ रही है ।"

मुन्नी ने भी लड़के के साथ ही जोड़ा – "हूं ! हम भी तो देखते थे न । हमारी सरला बहन ने नये घर की बहन जी से कह दिया है कि आप लोगों के इधर तो कोई डर नहीं है, उधर उस मुहल्ले में जाने पर तो वापस नहीं आने की । वे लोग बड़े बुरे हैं । आज शायद उसी ओर चली गयी है ।"

मुन्नी और भी न जाने क्या-क्या कहती गयी । पर वह सब यमुना के कानों में नहीं गया । उसने अंदर नजर डाली । कमल एक कुर्सी पर बैठा इनकी बातें सुन रहा था । हालांकि हाथ में एक किताब भी खोल रखी थी ।

यमुना ने मुन्नी की ओर देखकर धीमे से कहा – "वैसी एक मुर्गी तो बीच-बीच में हम भी देखते हैं ।"

"आज देखी थी क्या ?" लड़के ने पूछा ।

यमुना बोली – "नहीं, आज तो दिखायी नहीं पड़ी ।"

बात सच्ची थी । उस दिन सुबह से ही मुर्गी को बिना देखे कैसा सूना-सूना-सा लग रहा था ।

"चलो, अब चलें ।" लड़का बोला

मुन्नी भी बोली – "अब जाती हूं, दीदी !"

"अच्छा ।" यमुना उनको जाते देखती रही । तभी सट् से एक आवाज हुई । यमुना चौंक-सी पड़ी । मुर्गी तो नहीं आ गयी ? पर रसोईघर में जाते ही यमुना की रो पड़ने की इच्छा हुई । कहीं से आकर बिल्ली दूध की कड़ाही उलट गयी थी । "सर्वनाश !" कहकर यमुना चीख पड़ी ।

कमल ने पूछा – "क्या हुआ ?"

"देखते नहीं । न जाने किसकी बिल्ली है... इतनी लालची ।"

"लालची भला कौन नहीं है ? दूध गिर गया तो गिर जाने दो । छोड़ो भी..."

"छोड़ो भी ? रुपये लीटर का दूध है । पोहर को भला अब क्या पिलाऊंगी ?" यमुना बड़बड़ा उठी ।

कमल बाहर जाने के लिए कपड़े पहन रहा था । कमीज को अपने गले में डालते हुए मानो अपने आप से बोल उठा – "लोभ में पाप है और पाप होने पर..."

यमुना कमल की ओर देखती हुई रुक गयी, चौंक-सी पड़ी । कमल तब तक सोने के कमरे में चला गया था ।

यमुना मानो अपने को ही सुनाती हुई मुंह में बड़बड़ाने लगी – "लोभ में पाप है । लोभ किसने किया था, जैसे मैं कुछ जानती ही नहीं ।"

प्रत्यय

चंद्र प्रसाद शइकिया

इस पूरी घटना का मतलब क्या है ? बायें हाथ की एक चूड़ी वह दाहिने हाथ से निकालना चाहती थी, मगर निकाल नहीं सकी। अपनी छाती उसने दोनों हाथों से दबा रखी थी। उसे लगा कि हृदय में जिस तूफान की सृष्टि हुई है उसे दोनों हाथों से दबाये रखा नहीं जा सकता।

उसके वैवाहिक जीवन पर यह आघात सबसे ज्यादा कठोर था। जिसे पति मानकर, जीवन का सबसे बड़ा आराध्य पुरुष मानकर इतने दिन विश्वास करती आ रही थी, वह दफ्तर में एक साधारण-सी पदोन्नति की आशा से अपनी पत्नी की मर्यादा को इस तरह से विसर्जित करने को तैयार हो गया ! पति-पत्नी का संबंध क्या इतना सामान्य, इतना मूल्यहीन है ?

तभी तेज कदमों से प्रतुल अंदर आया। बत्ती जला दी और देखा कि मिनती बिस्तर से उठकर बिलकुल उसके सामने आ खड़ी हुई है। बिवाह के दिन से अब तक वह कभी पति के सामने ऐसे खड़ी नहीं हुई थी, ऐसी क्रुद्ध दृष्टि से उसकी ओर देखा नहीं था। मगर आज ऐसे खड़े हुए बगैर नहीं चलेगा, ऐसी दृष्टि से देखे बिना न चलेगा। जो भी उसके नारीत्व की अवमानना करेगा, वह उसे कभी माफ नहीं करेगी। वह भले ही उसका पति ही क्यों न हो।

"आपको बाहर क्या काम था ?" प्रतुल की आंखों में स्थिर भाव से देखते हुए मिनती ने दृढ़ता से पूछा।

"काम न होता तो मैं जाता ही क्यों ?"

यह कहकर प्रतुल ने एक ओर ले जाने की कोशिश की। उसने सोचा, मिनती के इस तरह के सवाल का यही एकमात्र और सही उत्तर है। परंतु मिनती ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों हाथ जोर से पकड़ लिये। प्रतुल ने उसे परम विस्मय से देखा, मिनती के कपाल की वह रेखा फूल उठी है। न जाने कैसी असहाय, अवर्णनीय यंत्रणा से उसके हाथ कांप रहे हैं ! वैवाहिक जीवन के पिछले साढ़े-तीन सालों में उसने मिनती को इस तरह से उद्वेलित कभी देखा न था। इसका क्या कारण हो सकता है ? जैसे ही वह सोचने लगा, मिनती फिर बोल उठी – "अपनी पत्नी की सम्मान-रक्षा करना क्या आपका कर्तव्य नहीं है ?"

"है क्यों नहीं ?"

"तो फिर आपको मुझे बताना ही होगा कि बाहर आपको क्या काम था ?"

"मेरे बाहर जाने के साथ तुम्हारे सम्मान का क्या संबंध है ?"

"संबंध है, इसीलिए तो पूछ रही हूं। बताइए, बाहर क्या काम था ?"

अपनी पत्नी से झूठी बात कहने की हिम्मत अब प्रतुल में नहीं रह गयी थी। उसे लगा अगर वह सच्ची बात नहीं बतायेगा तो मिनती कुछ भयंकर कांड कर बैठेगी।

"तुम सारी बातों को इतनी गंभीरता से क्यों ले रही हो ? असल में बाहर मुझे कोई खास काम नहीं था।"

"तो फिर क्यों गये थे ?"

"तुम दोनों ठीक से बातें कर सको, इसलिए...।"

"सिर्फ एक दिन के परिचित आदमी के साथ मुझे इस तरह से बातें करने की सुविधा देने के पीछे आपका उद्देश्य क्या था ?"

"धरणी चौधुरी औरतों से बात करना पसंद करता है, यह मैं जानता हूं।"

मिनती की आवाज ऊंची हो गयी – "अगर धरणी चौधुरी उस हालत में मेरा अपमान कर बैठता तो क्या आपको कोई...?"

मिनती के हाथ की मुट्ठी सहसा ढीली हो आयी और पास के बिस्तर पर वह मुंह के बल जा गिरी। बिलकुल भौंचक खड़े प्रतुल के कानों में रह-रहकर उसकी सिसकियों की आवाज आती रही।

प्रतुल को लगा, मिनती बेकार ही तिल का ताड़ बना रही है। आज के इस जटिलता-भरे संसार में पुरुष के कदम से कदम मिलाकर चलना चाहने वाली नारी के भला इतना कमजोर होने से कैसे चलेगा ?

प्रतुल आकर बिस्तर पर मिनती के पास ही बैठ गया, परंतु मिनती ने पति के उस सान्निध्य के प्रति कोई उत्सुकता दिखाने की जरूरत महसूस नहीं की। प्रतुल समझ गया कि मिनती अभी उसकी बात सुनने को जरा भी तैयार नहीं। फिर भी जो बात बताये बगैर नहीं चलने वाला था, वह बात उसने मिनती की ओर देखते हुए कह दी – "धरणी चौधुरी एक सज्जन आदमी है। उसके साथ बैठकर दो-चार बातें कर पाना हमारे जैसे घर की स्त्री के लिए सौभाग्य की ही बात है। तुमने तो कालेज की पढ़ाई की है। एक पुरुष के साथ अकेले बैठकर बात करने की हिम्मत तुममें नहीं है, भला इस बात पर कौन यकीन करेगा ? मेरी पदोन्नति के विषय को तुम जितना आसान समझती हो, उतना आसान है नहीं। सालों बाद तो कहीं पदोन्नति का मौका आता है। उसके लिए दफ्तर के हेड से तुम मेरी पत्नी होकर क्यों कुछ नहीं कह सकतीं ? क्यों उसके साथ कुछ देर बैठी नहीं रह सकतीं ? एक रुपये की वृद्धि के लिए हमें कितना कुछ करना पड़ता है, तुम घर-बैठी भला क्या समझोगी ?"

सिसकना बंदकर मिनती उसकी हर बात सुनती रही और उसका प्रत्येक शब्द मानो उसके हृदय में भयंकर आघात कर रहा था। अगर बात कहकर ही प्रतुल वहां से उठ न गया होता, तो मिनती फिर उसके हाथ पकड़ लेती और हर प्रश्न का जवाब दिल खोलकर चीखती हुई सुना देती।

गेट बंद करने की जोर की आवाज हुई। मिनती ने अनुमान लगाया, कितनी तेजी से

प्रतुल घर से निकल गया होगा।

वह खड़ी हो गयी। अब रुलाई और सिसकी की जगह दृढ़ता और आत्मविश्वास ने ले ली। प्रतुल की हर बात उसके हृदय में बार-बार ध्वनित-प्रतिध्वनित होती रही। क्षण-क्षण में उसका हृदय क्रोध और स्वाभिमान से भरता गया, पति के रूप में प्रतुल का परिचय एक शाम के चंद घंटों के अंदर ही उसकी नजरों में साफ हो गया। उसने कभी सोचा तक न था कि प्रतुल इतनी कमजोर धातु का बना है। उसने यह भी नहीं सोचा था कि सिर्फ एक पदोन्नति के लिए वह अपनी पत्नी के व्यक्तित्व और उससे भी बड़ी बात, नारीत्व को विसर्जित करने के लिए तैयार हो जायेगा। जो बात कभी सोची तक न थी, आज वही सच बनकर सामने आ गयी। जैसे-जैसे दिन बीतेंगे, उसे उस घर में और कैसी-कैसी करुणतर स्थितियों का सामना करना पड़ेगा, इसका कोई भरोसा नहीं है।

मिनती सोचने लगी – तुम्हारे मेहमान को अपना भी मेहमान मानने से मैं जरा भी इनकार नहीं करती। तुम्हारे और मेरे बीच कोई अंतर नहीं, आज साढ़े तीन सालों से यही सोचती आयी हूं और सिर्फ सोचती ही नहीं रही बल्कि तुम्हारे और अपने संबंधों को मधुर बनाये रखने का मन-प्राण से दिन-रात, क्षण-क्षण प्रयास करती आयी हूं। मुझे तुम जो दे नहीं सकते, मैंने उसे कभी चाहा भी नहीं। जिस साज से तुम मुझे सजा नहीं सकते, उसके लिए मैंने कभी तुमसे नहीं कहा। तुम क्या किसी ऐसे दिन की याद दिला सकते हो, जिस दिन मैंने किसी भी तरह से तुम्हारे मन को किसी प्रकार की चोट पहुंचाने की कोशिश की हो? यहां तक कि कभी कोई कठोर शब्द भी मैंने तुमसे नहीं कहा। सहज-सरल भाव से तुम्हारे साथ जिंदगी गुजारने चली थी। क्या इसी कारण तुमने मुझे आज ग्लानि के इस चरम क्षण में पहुंचा दिया? अपनी प्रिय पत्नी को किसी और के आनंद का उपकरण बनाकर परोस दिया।

मिनती पास के छोटे-से कमरे में घुस गयी और जोर से दरवाजा बंद करते समय उसे लगा कि एक ही घर में पति-पत्नी की तरह रहने वाले दो व्यक्तियों के हृदय के मिलन का दरवाजा भी इसी तरह आज बंद हो गया।

रात को उसने कई बार प्रतुल की आवाज सुनी थी। दरवाजे पर कई बार प्रतुल ने दस्तकें भी दी थीं, परंतु पति के स्पर्श से पुलकित होने वाले हृदय की मृत्यु हो चुकी थी। आज शाम को मन के मिलन का जो दरवाजा एक परम आश्चर्यजनक परिस्थिति में बंद हो गया है, उसे खोलने की हिम्मत क्या मिनती में रह गयी है?

प्राणस्पर्शी वेदना से श्रांत-क्लांत, सारी रात निद्राविहीन भाव से गुजारकर मिनती सुबह होने से पहले ही बाहर निकल आयी। पछवा हवा धीरे-धीरे चलने लगी थी। उस हवा ने मानो उसके शरीर में एक नवीन शक्ति का संचार किया। उसने ऊपर नजर डाली। निर्मल आकाश में महिमा-मंडित अनगिनत तारे जगमगा रहे थे। कितने ही तारे मानो उड़-उड़कर इधर से उधर जा रहे थे। धरती पर होने वाली अनगिनत क्रूरताओं, विश्वासघातों, हृदयहीनताओं के जगमग गवाह हैं ये तारे। दुर्बल मनुष्य की क्या शक्ति है कि वह अपने को उस सनातन सृष्टि से अलग रख सके!

मिनती ने कई बार लंबी सांसें लीं। उन सांसों के साथ ही जैसे हृदय में विश्वास और सचाई का स्वर सबल हो उठा, वह अंदर चली गयी और बिस्तर पर पड़ने के साथ ही नींद से उसकी आंखें मुंद गयीं।

सुबह दूसरे दिनों की तरह ही उसने प्रतुल को चाय-नाश्ता अपने हाथों से बनाकर दिया। प्रतुल ने उसकी ओर देखा, पर बात करने का कारण और प्रेरणा वह न पा सका।

दफ्तर जाने के पहले खाने की मेज पर प्रतुल ने पूछा – "तुम्हारे विचार से मुझसे ऐसा कौन-सा बड़ा अपराध हो गया?"

चेहरे के भाव में कोई परिवर्तन किये बगैर मिनती ने जवाब दिया – "मैं कभी जबान खोलकर किसी भी बात का विरोध नहीं करती थी, औरों की तरह चीखती-चिल्लाती नहीं थी, तो क्या उसी से आपने यह समझ लिया था कि मेरा कोई आत्मसम्मान या व्यक्तित्व ही नहीं है? कोई स्त्री अगर सरल हो तो उसके पास आत्मसम्मान भी नहीं है, ऐसा सोच लेना क्या पति का अपराध नहीं है?"

"मैं मर तो नहीं गया न?"

"मैं भी नहीं मरी, मगर प्यार की मर्यादा की मौत नहीं हुई, क्या आप ऐसा कह सकते हैं?"

प्रतुल ने देखा, ये आंखें उसी मिनती की हैं, जिसने पिछली रात को अपनी वज्र जैसी मुट्ठी में उसके दोनों हाथ पकड़े थे। उसके बाद और कुछ कहने की उसकी हिम्मत नहीं रही।

दोपहर को मिनती ने एक बार सोचा, एक निष्ठुर पति की पत्नी के रूप में इस घर में बने रहने का फायदा ही क्या है? हृदय में दुर्भाग्य और टूटन की धधकती आग जलाये बाहर सती का अभिनय करके क्या होगा? पत्नीत्व की उचित मर्यादा ही भला तुम्हें कौन देने वाला है? दफ्तर की पदोन्नति की अपेक्षा नारी के प्रेम और मर्यादा का महत्व अधिक है, यह अनुभव करने वाला भला कौन है इस घर में?

वह जानती है कि यहां वह अनिमंत्रित है। साढ़े तीन साल पुरानी यह गृहस्थी असल में उसका घर नहीं, सिर्फ एक सराय है। तुम्हारे यहां न रहने पर भी किसी का कुछ बिगड़ने वाला नहीं। दफ्तर में किसी को पदोन्नति मिले बगैर नहीं रहेगी।

इस निर्णय पर पहुंचते ही उसने पहले का निर्णय बदल दिया। प्रतुल के घर से निकल जाने के लिए दरवाजे तक कदम बढ़ाने के बाद पता नहीं किस आकर्षण से खिंची वह फिर लौट आयी।

सप्ताह बीतते-न बीतते प्रतुल ने उसे समाचार दिया कि उसकी पदोन्नति नहीं हुई। समाचार देते समय उसके चेहरे पर विषाद की जो छाया घनीभूत हो उठी थी, उसकी तरफ मिनती बहुत देर तक अवाक् होकर देखती रही। देखते-देखते उसे लगने लगा कि उसके माथे की नसें फूल उठी हैं। उस दिन धरणी चौधुरी के पास मिनती को बिठाकर किसी काल्पनिक काम के बहाने बाहर जाते समय उसे जो अफसोस नहीं हुआ था, उसका अनुभव पदोन्नति न मिलने के समाचार से प्रतुल को हो रहा है। मिनती सोचने लगी, इसका मतलब तो यही है कि

दूसरे पुरुष के हाथ पत्नी का अपमान कोई बात ही नहीं है, असली बात है पदोन्नति।

थोड़ी ही दूर कुर्सी पर बैठे प्रतुल की ओर उसने नजर डाली। वह क्या सोच रहा है, यह मिनती के मन के किसी गोपन कोने में साकार हो उठी। वह सोच रहा था, उस दिन शाम को अगर मिनती के बर्ताव से धरणी चौधुरी संतुष्ट होता तो ऐसा निर्मम काम वह कभी नहीं करता।

मिनती के मन में प्रतुल की एक ही बात बार-बार गूंजने लगी। 'एक रुपया वृद्धि के लिए मुझे कितना कुछ करना पड़ता है, घर में बैठी हुई भला तुम कैसे समझोगी?' वह सोचने लगी- क्या एक रुपया बढ़ाना इतना ही तकलीफदेह है? एक रुपया कमाने के लिए अपनी योग्यता के अलावा क्या और भी बहुत कुछ करना जरूरी होता है? अपनी पत्नी के प्रेम की बलि दिये बगैर रुपया कमाना और दफ्तर में पदोन्नति प्राप्त करना क्या संभव नहीं?

मिनती का मन और ज्यादा दृढ़ हो गया। किसी के सम्मुख आत्मसमर्पण किये बगैर अपनी योग्यता से रुपया कमा पाना सचमुच असंभव है?

उसे किसी निर्णय पर आने में सिर्फ पंद्रह दिन की जरूरत हुई थी। सुबह चाय की मेज पर मिनती ने प्रतुल को सिर्फ सूचना भर देने के उद्देश्य से कहा था – "घर में अकेले बैठे बहुत परेशानी होती है। नौकरी करने की सोच रही हूं।"

बात का मतलब आसान था, मगर प्रतुल उसकी ओर विस्मित-सा देखता रह गया।

मिनती ने ही फिर कहा – "एक रुपया कमाने में आपको बड़ी तकलीफ होती है न। सोच रही हूं, क्यों न मैं भी वह तकलीफ उठाऊं?"

"मेरा सम्मान?"

"सम्मान का मतलब?"

"मेरी पत्नी दफ्तर में दूसरों के साथ बैठकर अगर नौकरी करे तो क्या उससे मेरे सम्मान पर आंच नहीं आयेगी?"

मिनती एक विकट हंसी हंसना चाहती थी। अगर वह हंसी प्रकट हो गयी होती तो उसकी कटुता से वह खुद स्तब्ध हो गयी होती। उसने बलात् हंसी रोक ली। प्रथम श्रेणी में आई.ए. पास करना उसकी जिंदगी में कभी इतना कीमती होगा, इतने सालों तक वह इसका अनुभव भी नहीं कर सकी थी। उसकी दादी ने उसे समझाया था – "नारी के लिए पति से बढ़कर बड़ा गुरु नहीं है, पति से बड़ी कोई किस्मत नहीं है।"

दादी कभी की उस दुनिया की पुकार सुनकर चली गयी है। जिंदा रहते समय दादी ने शायद सपने में भी नहीं सोचा होगा कि उसकी हमेशा की दुलारी नातिन को अपने पति के प्रेम और आदर से वंचित होकर इंटरमीडियट प्रमाणपत्र के एक सामान्य कागज को अपनी छाती से लगाये रखना पड़ेगा। 'दादी, मुझे माफ कर देना, तुम्हारी दुलारी मिनू तुम्हारी कल्पना के अनुसार अपने जीवन को नहीं सजा सकी।'

दूसरे ही दिन मिनती रोजगार दफ्तर जा पहुंची। अपने हाथों ही उसने आवेदन किया। पंद्रह दिन बाद परीक्षा के लिए तैयार हुई। बारह साल की लड़की की तरह रात को जागकर

किताबें पढ़ती रही। सामान्य ज्ञान के नोट कंठस्थ किये। एक दिन परीक्षा का नतीजा भी निकला। फिर एक दिन पति को खिला-पिलाकर खुद भी खाना खा,निकल गयी।

मिनती के नौकरी करने के समाचार से उसके मां-बाप, भाई-बहन विस्मित हुए बिना न रहे। मां और बहन उसे देखने भी आयी थीं। एक मुरझायी हुई हंसी हंसकर उसने कहा, "घर में अकेले बड़ी परेशानी होती थी – ऐसे तो वह जल्दी ही बूढ़ी हो जाती।"

मां ने अनुभव किया,संतानहीन कन्या के मन में अशांति है। परंतु मिनती की मुरझायी हंसी के अंतराल में,कौन-सा अध्याय निर्लिप्त भाव से सोया हुआ है,मातृ-हृदय कभी उसका अनुभव नहीं कर सका।

मिनती गहरी एकाग्रता और उत्साह के साथ दफ्तर में काम करने लगी। उसके लिए मानो काम ही धन था और काम ही स्वर्ग था। उसे खुद अनुभव होने लगा,जिस अनुप्रेरणा से वह आज दफ्तर में काम करती है,वह अद्भुत है। फाइलों का काम भी किसी को मस्त कर सकता है,इसके पहले उसके अनभिज्ञ मन को यह अनुमान तक नहीं हो पाया था।

सिर्फ एक साल ! मिनती के लिए तो जैसे सिर्फ एक महीना बीता था।

मिनती रसोईघर में थी। मेज पर पड़ी मिनती की खुली चिट्ठी को प्रतुल ने पढ़ लिया। उसमें लिखा था – मिनती के दफ्तरी कामों से अति संतुष्ट होकर उसे पदोन्नति दी गयी है – साथ ही तीन वार्षिक वेतनवृद्धि भी।

एक धीमी ईर्ष्या की हंसी हंसकर प्रतुल पत्र को उसी जगह रखकर वहां से हट गया। पत्र में लिखी बातों का उससे कोई सरोकार नहीं,यह बात अपने मन को वह समझाना चाहता था, पर समझा नहीं पाया।

रात को खाना खाकर प्रतुल सोच रहा था,बिस्तर पर लेटते ही उसे नींद आ जायेगी,मगर नींद नहीं आयी। थूक निगलना चाहता था,पर निगल नहीं पाया। लगा,उसके गले में अटकी कोई चीज उसका दम घोंट-सी रही है। माथा छूकर देखा,पसीने की बूंदे चुहचुहा आयी थीं। मिनती के हाथ मानो प्रचंड-शक्ति से उसे दबा रहे हों।

और उसी समय बगल के कमरे में मिनती परम शांति और निर्भय मन से गहरी नींद सो रही थी।

क्षणिका

निरुपमा बरगोहांइ

एक बार जम्हाई लेकर वंदना ने शरीर को मरोड़ा और बोली – "अब तो असह्य-सा लग रहा है। न जाने गाड़ी कब गैरेज से निकलेगी ? ये दस दिन मेरे लिए दस युग जैसे लगे हैं। न जाने कब इस मरघट से निकलकर एक बार फिर इंसानों की दुनिया में घूम-फिर सकूंगी ?"

वंदना का वह विरक्ति-सूचक मंतव्य सुनकर पति तारक दत्त ने सिगरेट के कई कश खींचे, उसकी ओर एक बार देखा, फिर कहा – "घर में घुसी रहकर इतनी विरक्ति का अनुभव करने की अपेक्षा कैंपस में ही किसी के यहां घूम-फिर क्यों नहीं आती ?"

वंदना का चेहरा विकृत-सा हो उठा – "दस दिनों से उस काम से मुंह मोड़े थोड़ा ही बैठी हूं। तुम्हारे कितने प्रोफेसरों ने शादी की है कि हर घर में घूम-फिरकर इन दसों दिनों की शामें बिताती ? पूरे कैंपस में कुल चार ही परिवारों में तो जाया जा सकता है। उन्हीं घरों में बार-बार कैसे जाऊं ?"

पत्नी की बात के जवाब में तारक दत्त ने और कुछ नहीं कहा। वंदना ठीक ही कह रही है। कैंपस में सिर्फ चंद लोग सपरिवार रहते हैं। इस इंजीनियरिंग कालेज को स्थापित हुए सिर्फ छह साल ही हुए हैं। यहां काम करने वाले इंजीनियरों में ज्यादातर कम उम्र के नौजवान हैं। उनमें तारक दत्त समेत सिर्फ चार प्रोफसरों की शादी हुई है। इसलिए कैंपस वैसा आबाद नहीं हो पाया है। औरतों की बातचीत, बाल-बच्चों के शोर-शराबे से बड़े-बड़े क्वार्टरों के भर उठने में अभी कई साल और लगेंगे।

तारक दत्त की शादी हुए सिर्फ साल भर हुआ है। पत्नी वंदना गुवाहाटी की लड़की है। बचपन से ही शहर के शोर-शराबे में पली-बढ़ी है। इसलिए शादी के बाद जब उसे पति के साथ यहां रहना पड़ा, तो उसे यह जगह मरघट जैसी लगने लगी। मरघट की भांति ही यहां अखंड नीरवता विराज रही है। ऐसी जगहों पर घूमने-फिरने के लिए आकर कुछ दिन ठहरा जा सकता है, पर हमेशा रहना असह्य-सा लगता है। खासकर के उसके जैसे लोगों के लिए, जो कोलाहल-भरे शहर से आये हों। शहर से यह जगह चार मील की दूरी पर है। कालेज की अपनी जमीन काफी है। यहां से थोड़ी दूर पर एक पहाड़ है, दूसरी ओर शहर जाने वाली पक्की सड़क, तीसरी ओर एक फैला हुआ विशाल मैदान और चौथी ओर झुरमुटों से घिरा एक गांव का सीवान।

लेकिन घूमने-फिरने के लिए आनेवाले नये लोग उस जगह की प्रशंसा किया करते हैं।

एकदम एकांत, निराली जगह उन्हें बहुत अच्छी लगती है। पर वंदना को कभी-कभी असह्य लगती है। कैदखाने में रहने जैसी अनुभूति होती है उसे।

समाज जैसी कोई चीज ही जहां नहीं है, ऐसी जगह में भी क्या कोई हमेशा रह सकता है ? हालांकि सुंदर प्राकृतिक परिवेश उसे मुग्ध करता है। परंतु उसका थोड़े समय के लिए ही उपभोग किया जा सकता है – पूरी जिंदगी तो उसमें डूबकर बितायी नहीं जा सकती। कम से कम वंदना जैसी लड़की के लिए ऐसे निस्तब्ध परिवेश में दिन बिताना काफी कष्टदायक हो जाता है।

हालांकि एक तरह से यह अच्छी बात है। उसे हमेशा घर में नहीं रहना पड़ता। तारक के पास गाड़ी है और पति के रूप में वह काफी स्नेही और सहानुभूतिशील है। वंदना की तकलीफ को हमेशा समझने की कोशिश करता है और हमेशा घर में घुसे रहने की परेशानी से बचने के लिए प्रायः गाड़ी से वंदना को शहर घुमाने ले जाता है। पर कुछ दिनों से गाड़ी के खराब होने के कारण वंदना की अशांति की सीमा नहीं है। घर में बैठे-बैठे वह ऊब गयी है।

कुछ क्षण पति-पत्नी मौन रहे। तारक दत्त सिगरेट जलाकर पीने लगा और वंदना शरीर को मोड़ती-तोड़ती बेंत की कुर्सी पर बैठी सामने की जन-विरल सड़क की तरफ देखती रही।

अचानक जैसे कोई अच्छी-सी बात याद आ गयी हो, तारक दत्त ने उस निस्तब्धता को भंग करते हुए उत्साहित स्वर में कहा – "चलो वंदना, आज उस गांव का ही एक चक्कर लगा आयें। चलना है, चलना है करते दिन बीत रहे हैं। मगर हम एक दिन भी उधर नहीं गये।"

"हां, चल सकते हैं।" ज्यादा उत्साहित न होने पर भी वंदना ने इंकार नहीं किया। दूर बांस के झुरमुटों से घिरे उस गांव में टहलने जाने का सुझाव बीच-बीच में वंदना देती ही रहती थी और तारक भी सहमति देते हुए कहा करता था – "हां, गांव में घूमने जाना जरूर अच्छा लगेगा। कभी हम दोनों चलेंगे।" मगर जाने की बात सिर्फ चर्चा तक ही सीमित रह गयी थी, अब तक उसे कार्यान्वित नहीं किया जा सका था। हालांकि जाने के लिए दोनों में आग्रह का कोई अभाव नहीं था। पर न जाने क्या हो जाता था, हमेशा शाम होते ही ज्यादातर तारक उसे गाड़ी में बिठाकर शहर की ओर निकल जाता। इतने दिनों पर आज सचमुच जाना संभव होने वाला है।

"ठंडी हवा चल रही है, थोड़ा जाड़ा भी पड़ने लगा है। ठहरो, एक शाल डाल लेती हूं।"

और किसी तरह के प्रसाधन या पहनावे की जरूरत नहीं थी, क्योंकि समय पर्याप्त रहने के कारण वंदना उसका कुछ हिस्सा अपने को सजा-धजाकर खूबसूरत बनाये रखने में ही खर्च करती थी।

शरीर पर शाल डाले दो मिनट में ही वह आ पहुंची थी।

उस समय चारों ओर गुलाबी धूप की मानो बाढ़ उमड़ पड़ी थी। फागुन महीने की दिन-ढले की मीठी गुलाबी धूप। बीच-बीच में ठंडी हवा का एक झोंका आकर शरीर में सिहरन पैदा कर जाता।

"वाह, आज की शाम कितनी खूबसूरत लग रही है !" पगडंडी पर कदम रखते ही वंदना से विचार प्रकट किया।

"हूं, सचमुच बड़ी खूबसूरत है, वैसे बसंत की शामें खूबसूरत होती ही हैं। मगर हम जैसे गाड़ी में सैर करने वाले ऐसे समय का उपभोग नहीं कर पाते।" मानो कुछ अफसोस के लहजे में तारक ने कहा।

हालांकि कुछ ही देर पहले गाड़ी से शहर की ओर न जा पाने के कारण वंदना हाय-तौबा मचा रही थी, मगर अब पति की बात का समर्थन करती हुई बोल पड़ी – "मगर बात सही है। गाड़ी में सैर करने में हमने बहुत सारे प्राकृतिक दृश्यों को मिस किया है। अभी की ही बात लो – शाम की गुलाबी धूप पड़ने के कारण राह की घास का रंग कितना अद्भुत सुंदर हो गया है। उसी घास पर से हम पैदल चलकर आ रहे हैं। सिर के ऊपर आकाश में बादलों के टुकड़ों पर लाल धूप पड़कर अपूर्व दृश्य उत्पन्न कर रही है। उसी आकाश के नीचे बगुलों के झुंड उड़ते हुए क्षितिज से मिले जा रहे हैं, क्या गाड़ी पर चढ़कर सैर करने से हम ऐसे अदभुत सुंदर दृश्यों का आनंद ले पाते ?"

तारक दत्त लगभग जोर से हंस पड़ा, फिर बोला – "इंजीनियर होते हुए भी मैं प्रकृति के सौंदर्य में अपनी सुध-बुध खो देता हूं, यह बात अभी तक कुछ विसंगतिपूर्ण-सी लग रही थी। मगर इसी जंगली जगह में रहकर तंग आ चुकने के बाद तुम प्रकृति का जैसा वर्णन कर रही हो, वह मुझे और भी ज्यादा विसंगतिपूर्ण लग रहा है, समझी वंदना ?"

वंदना ने कुछ मुंह फुलाकर जवाब दिया – "तुम्हारी अपेक्षा मैं प्रकृति को किसी भी तरह नापसंद नहीं करती, पर हमेशा, हर दम समाज से अलग होकर जंगली जगह पर रहने से आदमी पागल हो जाता है, समझे ? ओह, देखो तो, हम तो गांव में आ ही गये, क्या यह इतना नजदीक है ? मगर देखो तो सही, इतने नजदीक, इतने सुंदर प्राकृतिक परिवेश के बीच ऐसी सुंदर जगह हम लोग अब तक नहीं आ सके।" वंदना के स्वर में अफसोस था।

तारक ने हंसकर कहा – "रवींद्रनाथ ने यह बात यों ही थोड़े कही थी कि – हम लोग बहुत खर्चकर बहुत दूर सुंदर दृश्य देखने के लिए दौड़ा करते हैं, पर घर के ही पास घास पर चमकते हुए ओस-कणों का अति सुंदर श्रृंगार आंखें खोलकर नहीं देखते।"

वे दोनों ही उस समय गांव में प्रवेश करने की पगडंडी पर कदम बढ़ा चुके थे। अब तक वे जिस राह से आ रहे थे, वह बड़ी खुली थी। वही कालेज जाने का आम रास्ता था, मगर अब गांव में घुसने की पगडंडी पर कदम रखते ही ऐसा लगा जैसे अचानक किसी दैत्य की भांति लंबे डग भरती हुई शाम उतर आयी। उसका कारण यह था कि उस ग्रामीण पगडंडी को दोनों ओर से बांस के झुरमुटों ने इस तरह से घेर रखा था कि उस पर सूरज का प्रकाश कम ही पड़ पाता था। मगर वह अंधेरा बिलकुल काला अंधेरा न था – वंदना ने मन ही मन सोचा। शायद बांसों की अनगिनत पत्तियों के कारण ही वह अंधेरा उसे कोमल, मायावी और हरा-हरा-सा लग रहा है। उसे कालेज में पढ़े हुए अंग्रेजी के कवि कीट्स की 'नाइटिंगेल' चिड़िया के राज्य की ग्रीन डार्कनेस यानी हरे अंधेरे की याद आ गयी। आम तौर पर मन में जो भी बात आती

वंदना उसे तारक के सामने प्रकट कर देती, मगर उस पगडंडी पर कदम रखने के बाद उसका सन्नाटा उसे इतना अच्छा लगा कि बातें करके उसे भंग करने की इच्छा नहीं हुई। उसका मन जैसे अचानक मोहाविष्ट हो उठा।

वे दोनों गांव के अंदर घुस गये।

अब तक का सन्नाटा तोड़कर तारक दत्त ने वंदना के चेहरे की ओर नजर डालकर मुस्कुराते हुए पूछा – "क्यों वंदना, कैसा लग रहा है ?"

हंसकर वंदना बोली – "बहुत अच्छा लग रहा है। इतना पानी देने के बावजूद हमारे सीजनल फूल और घास की लान कैसे सूखकर मुरझा गये हैं – फागुन महीने का रूखापन हमारे हर पेड़-पौधे पर प्रगट हो गया है, मगर यहां के इन अयत्नपालित पेड़-पौधे और घास पर जरा नजर डालकर तो देखो, चारों ओर ऐसा हरा-समारोह फैला है, जिससे आंखें ठंडी हो रही हैं। अच्छा, यह किस फूल की सुगंध आ रही है ? मन को ऐसा मतवाला करने वाली खुशबू मुझे पहले मिली ही न थी।"

वंदना का कहना सही था। खुद तारक को भी गांव में कदम रखते ही वह अद्भुत खुशबू मिली थी। पर वंदना की भांति उसके लिए वह खुशबू अनजान नहीं थी, नाक में आने के साथ ही उसने समझ लिया था, वह रबाब टेउण[1] के फूलों की खुशबू है ! वंदना को वह नाम बताते ही वह बोल पड़ी – "कैसी अजीब बात है, इतनी साधारण मीठी-मीठी खुशबू। गांवों की शायद यह विशेषता है, देखो तो सही, हर छोटी और साधारण-सी चीज भी कैसी सुंदर लग रही है। वह जो फूस के छप्पर पर कबूतरों की जोड़ी बैठी है, लौकी की लतर फैली हुई है, साफ-सुथरे आंगन में बछड़े के साथ वह नन्हा-सा बालक खेल रहा है, वह बूढ़ा आंगन के एक सिरे पर बैठा हुआ तंबाकू पी रहा है, ये सारे छोटे-छोटे दृश्य कितने अद्भुत लग रहे हैं, तुमसे क्या बताऊं ?"

बातें करते हुए दोनों गांव के बीचों-बीच आगे बढ़े जा रहे थे। उसके बाद कुछ ही दूर जाने पर वे एक ऐसी जगह पहुंचे जहां से पगडंडियां दो तरफ गयी थीं। एक पगडंडी गांव की घनी आबादी वाले इलाके की ओर गयी थी और दूसरी कुछ दूर आगे जाकर एक छोटे-से जंगल जैसी जगह में घुस गयी थी।

"अब किधर चलना है, वंदना ?" तारक रुक गया।

"जिधर लोग रहते हैं, उधर जाना अच्छा नहीं लग रहा है। इसी पतली-सी पगडंडी से होकर कुछ दूर चलें, देखें, कहां पहुंचते हैं।"

"तो चलो फिर।" तारक ने फिर कदम बढ़ा दिये।

फिर हरे-अंधेरे का समारोह आरंभ हो गया। अब पगडंडी के दोनों ओर सिर्फ बांसों के झुरमुटों ने ही नहीं घेर रखा था, उनके साथ-साथ अनगिनत जंगली पौधों की झाड़ियां थीं, जिन्होंने उस पगडंडी को इस तरह से घेर रखा था कि पगडंडी और ज्यादा संकरी हो गयी थी।

---

1. एक तरह का बड़े नीबू जैसा फल, जिसमें संतरे जैसी फांकें होती हैं।

दोनों के कपड़ों में पौधों की रगड़ लग रही थी। उन पौधों में से कुछ में अनगिनत खुशबूदार फूल खिले हुए थे, जिनसे वह जगह मह-महकर रही थी। सूरज का प्रकाश उस समय मलिन-सा हो चला था। बांसों के झुरमुटों से घिरे होने के कारण वह झील-सा प्रकाश और ज्यादा मटमैला हो गया था। फिर भी झुरमुट की पत्तियों के बीच से उजाले की दो-चार रेखाएं जंगली पौधों की पत्तियों पर यहां-वहां बिखरी हुई थीं। ठंडी हवा के झोंके रह-रहकर आ रहे थे और लगता था कि हिलती हुई पत्तियों पर चढ़ी हुई सुनहली झीनी धूप की रेखाएं भी हवा के ताल पर नाच रही हैं।

उधर देखते-देखते वंदना का मन भी अचानक आवेग से नाच उठा। वह गुनगुनाने लगी, "एइतो भालो लेगेछिलो, आलोर नाचन पाताय पाताय" यानी, पत्ती-पत्ती पर प्रकाश का नर्तन, यही तो अच्छा लगा था। रवींद्र-संगीत की सिर्फ एक कड़ी, मगर तारक को लगा कि उस एक कड़ी में मानो सन्नाटा भरा वह संपूर्ण वन-प्रांतर संगीत की मूर्च्छना से मुखर हो उठा है। अब तक वह निस्तब्ध घास की भूमि सिर्फ दो-एक नामहीन पक्षियों की चहचहाहट से गूंज रही थी। अब वंदना के गीत की झंकार के साथ पक्षियों का गीत मिलकर वहां एक अद्भुत मायाजाल की संरचना हो रही थी। उधर हवा की लहरें जंगली फूलों की खुशबू चारों ओर बिखेरकर दिशाओं को महका तो रही ही थीं।

तारक मानो मुग्ध विस्मय से अवाक् हो गया। घर से सिर्फ फर्लांग भर दूर का यह गांव अपने भीतर कैसा अद्भुत सौंदर्य छिपाये हुए था, जिसने पहले कभी उनके चित को ऐसा विह्वल नहीं किया था।

वंदना ने तारक की ओर सिर उठाकर देखा और मुग्ध हंसी हंसकर बोली – "बिलकुल नंदन-कानन जैसा लग रहा है न ?"

जवाब में तारक ने उमर खैयाम की कविता की एक पंक्ति दुहरा दी।

वंदना कुछ बोली नहीं, सम्मोहित की भांति तारक के संग-संग आगे बढ़ती रही।

अचानक दोनों ओर के जंगल लगभग एक साथ खत्म हो आये। दोनों ने विमुग्ध-विस्मय से देखा, सामने एक नन्हीं-सी सुनहली धारा बहती जा रही है। लगभग डूबते-से सूरज की लाल रेखाएं नदी की लहरों पर झिलमिला रही हैं। शांत और स्वच्छ जल से भरी एक नन्हीं-सी धारा। इधर के जंगल के बदले दूसरी ओर एक बड़ा-सा मैदान था। शुरू में एक बड़ा बालू-चर और उसकी दूसरी ओर खेत का मैदान। बालू-चर पर जहां-तहां झौवे के पौधों की झाड़ियां थीं, जिनकी पत्तियों पर हवा के ताल से धूप नाच रही थी। शायद उस पार के गांव की दो युवा लड़कियां नदी से पानी लेने आयी थीं। अब पानी लेकर वापस जा रही थीं। दूर से वे दोनों छायाचित्रों जैसी लग रही थीं। बीच-बीच में चहचहाकर अनाम पक्षी उस नदी के संध्याकालीन निर्जन परिवेश में व्याप्त प्राकृतिक निस्तब्धता को भंग करने की बजाय उसे और गहरी ही बना रहे थे। वंदना नदी के आमने-सामने होकर अचानक चीख पड़ी – "ओह ! कितनी खूबसूरत नदी है। मेरी मर जाने की इच्छा हो रही है।" कोई चीज बहुत ज्यादा अच्छी लगे तो वंदना

इसी तरह कहा करती है।

तारक ने वंदना के चेहरे पर नजर डाली और वह चौंक-सा उठा। वंदना वास्तव में एक सुंदर चेहरे की अधिकारिणी है, परंतु उस क्षण उसके चेहरे पर तारक ने एक ऐसे अलौकिक सौंदर्य की अपूर्व आभा देखी, जिससे उसका अंतर एक अद्‌भुत आवेग से भर उठा। यह वंदना तो उसकी नित्य की जानी-पहचानी वह वंदना नहीं है, यह तो किसी अनजान लोक की अपरिचित कोई मोहमयी नारी है। तारक विस्मित हो उठा। फिर वंदना के इस अचिंतनीय सौंदर्य ने उसके मन में एक विचित्र आलोड़न की सृष्टि कर डाली, आनंद और पुलक से उसका मन जगमगा उठा। पर कुछ क्षण बाद ही तारक को लगा कि वंदना के चेहरे की ओर देखते-देखते उसका मन धीरे-धीरे विषादाच्छन्न होता जा रहा है। तारक फिर विस्मित-सा हो गया – उसका मन भला इस तरह से मुरझाया क्यों जा रहा है ?

तारक ने एक लंबी आह भरी। उसके अंदर से मानो कोई कह उठा – वंदना के चेहरे को भावना ने आवेग-मंडित और भाव-समृद्ध किया है, उसकी आयु सिर्फ कुछ ही क्षणों की है। उसके बाद ही शाम का अंधेरा उतर आयेगा। वह अंधेरा धीरे-धीरे वंदना के चेहरे के इस अलौकिक सौंदर्य को निगल जायेगा। तब वे घर वापस लौटेंगे और घर पहुंचकर जो वंदना मिलेगी उसके चेहरे पर इस समय की इस डूबती संध्या-छाया के अपूर्व मायामय सौंदर्य की कोई निशानी तक नहीं रह जायेगी। संसार की दैनंदिन तुच्छता हिंसक दस्यु की भांति उस सौंदर्य का अपहरण कर ले जायेगी। हालांकि वे दोनों, हो सकता है, किसी एक शाम को, किसी एक शाम को क्यों, अगर वंदना का यह उत्साह बना रहे तो हो सकता है कि कल ही इस शाम की अपूर्व सुंदर नदी के किनारे घूमने आ सकते हैं। उसके अगले दिन भी आ सकते हैं। परंतु उस समय भी क्या आज की ही भांति प्रकृति का यह विपुल अनिर्वचनीय सौंदर्य उथल-पुथल मचा देने वाले आवेग से मंडित हो वंदना की जबान पर, उसके चेहरे पर प्रतिबिंबित हो सकेगा ? उहुं ! इसकी कोई आशा नहीं है। तारक ने मन ही मन सिर हिलाया। धीरे-धीरे दिन पर दिन निकलते जायेंगे। बीच-बीच में नदी-किनारे टहलने आना उनकी आदत बन जायेगी। और फिर ? किसी दिन उन्हें लगेगा कि नदी-किनारे घूमने आना काफी अच्छा लगने पर भी अपना नयापन, पता नहीं कब, कैसे खो चुका है। तब शायद दैनंदिन जीवन की औपचारिकता की भांति ही बसंत की शाम की रक्तिम जलवाली यह नदी भी अपनी अनिर्वचनीयता काफी हद तक खो बैठेगी। वंदना भी कभी और इसके अनुपम रूप के आविष्कार से उच्छ्‌वसित और आवेग-विह्वल नहीं हो सकेगी। फलस्वरूप आज उसके चेहरे पर प्रकृति का जो अद्‌भुत, मायावी और मोहक रूप प्रतिबिंबित हो रहा है, उसका पुनरावर्तन जीवन में फिर कभी नहीं हो पायेगा।

"इतना तन्मय होकर क्या सोच रहे हो जी ? देखती हूं, क्षण भर में इंजीनियर की जगह कवि-दार्शनिक की तरह अपने में खो-से गये हो ? इधर अंधेरा हो आया, देख नहीं रहे हो ? जंगली राह है, मेरा शरीर तो अब कुछ सिहरने-सा लगा है। चलो, जल्दी चलें।"

वंदना की आवाज थी। कुछ चौकन्ना-सा होकर ही तारक ने पत्नी की ओर मुड़कर देखा। बिलकुल सहज साधारण वंदना की आवाज। कुछ क्षण पहले के आवेग का कोई लक्षण उसमें नहीं था। तारक ने लंबी सांस ली, फिर सामान्य लहजे में कहा – "ठीक है, चलो।"

लेकिन मन के अंदर वह आर्तनाद-सा कर उठा – कुछ क्षण पहले जिस वंदना को उसने देखा था, इतनी जल्दी वह भला कहां खो गयी?

हरि की मां

अतुलानंद गोस्वामी

बीच के बरामदे में सजाये कई मूढ़े, पास में सुपारी के छिलकों समेत तामोल का बटा और उसके समीप ही उस दिन के अखबार पर नजर गड़ाये मां को देखकर ही वह समझ गया था, अभी-अभी कोई मेहमान यहां से उठकर गया है। मां से पूछा – "कौन आया था ?" अखबार से सिर उठाये बगैर मां ने कहा – "हरि की मां। अभी-अभी उठकर गयी है।"

ट्रंक रोड के पास ही कुछ बिहारी लोगों के घर हैं – शहर के बीचों-बीच ही मान सकते हैं। उनका व्यापार है – पुराने बोरे खरीदकर उनमें पैबंद लगाकर बेचना। उन्हीं बोरों की अंदर-बाहर टाल लगी है। गाय-बछड़े आदि बोरों की टाल होने पर प्राय: वहीं जमे रहते हैं, जिससे वह जगह ज्यादा दुर्गम हो उठती है। इन सबके बीच वे लोग रहते कैसे हैं, वे ही जानें। उनके घरों के पास से होकर पिछवाड़े की ओर एक पतली-सी पगडंडी गयी है। उस पर बोरा-व्यापारियों के हमेशा धोये जाने वाले बर्तनों की राख और कालिख से काले पानी की एक धारा लगातार बहती रहती है। उस धारा को पारकर आगे बढ़ने पर एक और झोंपड़ी मिलती है। नन्हीं-सी। इसी कारण सामने के घरों से ज्यादा साफ है। वातावरण भी कुछ खुला-सा है। बाहरी दरवाजे के सामने पात-बहार[1] के दो पेड़ हैं। बढ़कर वे घर के बराबर ऊंचे हो गये हैं। उस झोंपड़ी में निताई ड्राइवर रहता है। बहुत दिनों से रह रहा है। ऐसा आदमी शहर में लगभग नहीं ही है जो निताई ड्राइवर को न पहचानता हो, क्योंकि पिछले बीस-पचीस सालों से शहर के हर परिवार में एक न एक बार शादी-विवाह या वैसा ही काम-काज जरूर हुआ है। अपने यहां न होने पर भी पास-पड़ोस में तो हुआ ही है। उस समय नगरपालिका की उस बड़ी-सी मोटर-टंकी का पानी निताई ड्राइवर ही लाता है। अब तक जिन अंचलों में नगरपालिका ने पानी की पाइप नहीं बिछायी है, वहां रोज पानी पहुंचाना तो निताई ड्राइवर की ड्यूटी है ही।

बिलकुल सीधा-साधा आदमी ठहरा वह। जरूरत न होने पर किसी से बातचीत नहीं करता। किसी ओर जाता भी नहीं। किसी काम-काज के परिवार में पानी पहुंचाने के बाद मोटर-टंकी से दूसरी जगह जब तक पानी भरा जाता, तभी तक बैठता। इसी बीच अगर कोई याद करके मिट्टी के गिलास में चाय, पूड़ी-तरकारी आदि जो कुछ भी ला देता, उसे निताई जरा भी असंतोष प्रकट किये बगैर चुपचाप खा लेता।

---

1. रंगीन पत्तियों वाला एक पेड़।

ऐसे काम-काज वाले परिवारों में निताई की पत्नी भी खाया करती। मगर मंडप में बैठने में उसे संकोच होता। हालांकि पीछे की ओर जलपान के लिए कतारों में बैठे लोगों की ओर भी वह जा नहीं सकती थी। बीच में भोजन-मंडप में या किसी और खाली जगह पर लोग उसे बुलाकर खाने को दे देते। और कहते – "जल्दी करना, दीदी !" निताई ड्राइवर की पत्नी बड़ी करुण हंसी हंसकर सहमति देती और दो-एक पूड़ी खाकर बाकी की गठरी बांधकर जल्दी निकल जाती।

स्कूल से ही हरि मेरा सहपाठी रहा है, मृणाल भी। मगर उसी कारण वे दोनों मेरे जिगरी दोस्त हों, ऐसी बात भी नहीं। फिर भी दोनों के साथ दोनों ओर से सहपाठी के रूप में जितना सौहार्द रहना चाहिए, उतना था। जबकि हरि और मृणाल में वैसी दोस्ती कभी पनप नहीं पायी। आज समझ रहा हूं, ऐसा होने का कारण था, हम दोनों के बीच का सामाजिक व्यवधान। मैं मृणाल की अपेक्षा काफी नीचे के स्तर का हूं और हरि की अपेक्षा कुछ ऊंचे स्तर का। हमारे स्तर के लोगों से ही साधारणतया समाज बनते हैं। इसी कारण बहुसंख्यक होने के नाते हो या और किसी कारण, मृणाल जैसे लोगों को हमारे साथ मिलना-जुलना पड़ता है। मगर हरि जैसे लोगों के लिए इसमें असुविधा है, कठिनाई है। जिन दिनों हम स्कूल-कालेज में पढ़ते थे, उन्हीं दिनों की बात कर रहा हूं।

कालेज में एक-दो साल पढ़ने के बाद ही मृणाल ने पढ़ाई छोड़ दी। आदमी बनने के लिए उसके स्तर के लोगों को डिग्रियों की जरूरत नहीं होती। पढ़ाई छोड़ देने पर भी आगे चलकर हम दोनों के बीच मेल-मिलाप कुछ ज्यादा ही बढ़ गया था। हम दोनों सामूहिक अनुष्ठानों, खासकर सांस्कृतिक अनुष्ठानों के आयोजनों में हाथ बंटाया करते थे। हरि इन सबसे अलग रहता था। नजदीक आने का मौका भी उसे नहीं मिल पाता था।

निताई ड्राइवर ने अनेक कष्टों और धीरज से हरि को कालेज तक पहुंचा दिया था। उसके बाद हरि ने खुद प्रयास करके पढ़ाई जारी रखी। निताई ड्राइवर का लड़का है, इसलिए उसके अपने मन का संकोच भी कभी नहीं मिटा और उसी कारण वह कभी किसी के यहां जाता भी नहीं था, हमारे घर के अलावा। इसके सिवा वह वीणापाणि मेस में भी जाया करता था। वहां रहने वाले दूर से आये लड़के हरि के अंगों में ऐसी कोई अमिट निशानी देख नहीं पाते थे, इसी कारण उसे अलग दृष्टि से नहीं देखते थे।

हमारे यहां वह इसलिए आता था, कि मां उससे कुछ स्नेह रखती थी। मां के उस स्नेह में कुछ हीन भावना वाली सहानुभूति थी या नहीं, हम में से किसी ने इस पर गहराई से विचार नहीं किया था। दूसरे बंधु-बांधव जैसे आया करते हैं, हरि भी ठीक उसी तरह से आता था। मगर उसको लेकर हमारा स्नेह कुछ ज्यादा ही था। हम दोनों जब बी.ए. की परीक्षा देने चले, तभी हरि पर कुछ लोगों की नजर पड़ी थी। कारण कि निताई ड्राइवर का लड़का भी बी.ए. की परीक्षा देने लायक हो गया है।

हम दोनों ने परीक्षा पास कर ली। बी.ए. पास करने के बाद हरि के चेहरे पर एक नया प्रकाश आ गया। निताई ड्राइवर के बेटे ने बी.ए. पास कर लिया। यह भी शहर में एक समाचार

बन गया। किसी के पूछने पर निताई ड्राइवर हंसकर संतोष प्रकट करता। बहुत-से लोगों ने बिन-मांगा सुझाव दिया – "हो सके तो लड़के को और पढ़ाओ।" निताई ड्राइवर बिना कुछ कहे सिर्फ हंस देता। निताई को शायद हरि के डिग्री पाने की बात पर कुछ संदेह-सा होता, सपना-सा लगता। एक दिन मृणाल के बाप ने निताई को कुछ देर रोके रखा। उसे वैसे रोकने की जरूरत नहीं होती थी। वैसे लोगों को देखकर वह खुद ट्रैक्टर की गति कुछ कम कर देता था। सिर झुका लेता था। उस दिन भी क्षण भर रुककर मृणाल के बाप को उसने नमस्कार किया था। मृणाल के बाप ने पूछा – "क्यों रे, सुना है तेरे लड़के ने बी.ए. पास कर लिया?" जवाब में निताई ने अपनी वही हंसी हंस दी। "ठीक है, अच्छा है।" मृणाल के बाप ने कहा। निताई बिलकुल पिघल-सा गया। "अब उसे कहीं मास्टरी-वास्टरी खोजने के लिए कह दे।" मृणाल के बाप ने समझाया। मानो मास्टरी ड्राइवरी या बेलदारी जैसी ही कोई चीज हो। निताई ड्राइवर जवाब में कुछ कहे बगैर 'ठीक है' जैसे कहने की भंगिमा से सिर को हिलाकर हंसकर आगे बढ़ गया।

मैं मास्टरी करने लगा था। अपने भाइयों का उत्तरदायित्व लेना पड़ा था, इसीलिए नौकरी ढूंढ़नी पड़ी। मगर हरि एक दिन हिम्मत जुटाकर गुवाहाटी चला गया। वहां उसने एम.ए. में दाखिला ले लिया।

परीक्षा का नतीजा निकलने के बाद एक दिन मां ने हरि को अपने यहां अपनी मां को साथ लेकर चाय पर आने को कहा। इसी कारण निताई ड्राइवर की पत्नी भी आयी थीं। पड़ोस के लोगों के आने पर मां के साथ बीच के बरामदे में तामोल का बटा लिये जैसे बैठते हैं, वैसे ही हरि की मां भी बैठी थी मूढ़े पर। और शहरी समाज में शायद वह सम्मान निताई ड्राइवर की पत्नी के लिए पहला और नया अनुभव था। हालांकि मां उसके बराबर में बैठकर तामोल काटकर खा रही थी जरूर, मगर पारंपरिक संस्कारों के कारण ही शायद निताई ड्राइवर की पत्नी को 'आप' नहीं कह पा रही थी। मां के स्तर के किसी ने उसे कभी 'आप' नहीं कहा था।

हमारे ही जरिये संभवतः निताई ड्राइवर की पत्नी को नयी स्वीकृति मिली। और उसके भी मूल में था हरि के बी.ए. पास होने का समाचार। इतना ही नहीं, वह इससे भी आगे एम.ए. पढ़ने गया है – यह भी एक बड़ी खबर थी।

एक दिन एक और बात का पता पाकर अच्छा लगा। मां भी सुनकर हंस पड़ी। निताई ड्राइवर की पत्नी अब हरि की मां हो गयी थी। यह बात सबसे पहले वकील-पत्नी दादी के मुंह से सुनी गयी थी। निताई ड्राइवर की पत्नी उस दिन हमारे यहां आयी थी। उसके लौटते समय शायद दादी की नजर उस पर पड़ी थी। शाम को जब मैं टहलने निकला, तो राह में रोककर दादी ने पूछा – "कुछ देर पहले वह कौन गयी है तुम लोगों के यहां से? हरि की मां थी क्या?"

हरि ने रात की ड्यूटी वाली एक नौकरी गुवाहाटी में ही ढूंढ ली थी। मुझे पत्र द्वारा सूचित किया था। अगर सावधानी से चले तो उसी से दो साल गुजारा हो जायेगा। जैसा हो सका, मैं भी उसे प्रेरणा देता रहा। पत्र में मेरी मां के बारे में दो-चार शब्द लिख देने पर उसे बड़ा अच्छा

लगता। मां पर उसकी कुछ अलग ही श्रद्धा थी। उसकी उस श्रद्धा का सम्मान करते हुए मैं भी उसकी मां की खोज-खबर लेता रहता था। इसी से हमारे बीच एक नजदीकी संपर्क बना था। हरि की मां कभी-कभी शहर में रहने वाले नाते-रिश्तेदारों की खबर भी लेती रहती थी। और उन्हें भी पता चल गया था कि हरि की मां को अब ज्यादा दिन निताई ड्राइवर की पत्नी बने रहना नहीं पड़ेगा।

मेरे भाइयों की परीक्षाओं के विश्वविद्यालय से संबंधित कागज-पत्र का हरि ने पता लगा दिया था। परीक्षाफल निकलने पर तार भी कर दिया था। मैं जब बी.टी. करने जा रहा था, तब उसने प्रयास करके काफी जानकारियां भेजी थीं। बीच में आकर अपनी बहन को भी एम.ई. स्कूल से हाई स्कूल में ट्रांसफर करवा गया था। उसकी बहन भी हमारे यहां बीच-बीच में आया करती थी।

निताई ड्राइवर अपनी नौकरी पहले जैसा ही करता आ रहा था। मुंह पर वही पहले जैसी मौन हंसी थी। मृणाल के बाप ने एक दिन उसका मजाक उड़ाते हुए कहा था – "तू अब पानी का टैंकर चलाना छोड़ दे, निताई ! बेटा प्रोफेसर बनकर आयेगा, तू क्या अब भी ड्राइवर ही बना रहेगा ?" निताई ड्राइवर ने कोई जवाब न देकर हंस भर दिया था।

गरमी की छुट्टियों में कुछ दिनों के लिए घर आने पर हरि रोज एक बार हमारे यहां जरूर आता। मां का सुझाव लेकर उसने घर में एक कमरा बढ़ाया, सामने का हिस्सा साफ-सुथरा किया और नगरपालिका के चेयरमैन के नाम इस आशय का एक आवेदन भेजा कि उसके पिता को ड्राइवर की नौकरी से पदोन्नति देकर टैक्स-दारोगा बना दिया जाये।

हमारे यहां बीच-बीच में हरि के बारे में चर्चा हुआ करती। बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर न कहने पर भी यह समझ में आ जाता कि सब लोग उसे पसंद करते हैं। मैं सोचता था कि एम.ए. पास करने के बाद हरि अगर यहां के कालेज में नियुक्त हो सके, तो बड़ा अच्छा रहेगा। हरि एक ही बार में अच्छे नंबरों से पास हो जायेगा, इस विषय में किसी को कोई संदेह न था।

कोई सामान्य-सा लड़का जिंदगी की किस राह में आगे बढ़कर किसी विशिष्ट स्थान पर जा चढ़ता है, इस विषय में कोई व्यक्ति सोच नहीं सकता। उसका अथक प्रयास किसी की आंखों में नहीं आता। निताई ड्राइवर जैसे नगण्य आदमी का कोई लड़का कहीं पढ़ रहा है या नहीं, इसकी कोई खबर रखने की आवश्यकता कोई नहीं समझता था, पर बी.ए. का परीक्षाफल निकलते ही देखा गया कि अनेक लोगों की आंखें फटी की फटी रह गयी हैं। इस खबर से किसी को बुरा नहीं लगा था, यह भी सच है। परंतु सभी को लगा जैसे कोई अनहोनी हो गयी हो। बहुत-से लोग चर्चा करने लगे, और सभी ने यह कामना की कि हरि अच्छा बनकर निकले। इसके फलस्वरूप निताई ड्राइवर की पत्नी हरि की मां के रूप में स्वीकृति पा गयी।

हरि अगर एम.ए. पास कर आये और यहीं के किसी कालेज में काम पा जाये, तब तो लगता है, उनकी जिंदगी ही बदल जायेगी। ड्राइवर की क्या बात, निताई को टैक्स-दारोगा बने रहने की भी जरूरत नहीं होगी। और शादी-ब्याह, काज-कर्म आदि के अवसरों पर कोई उसे टैंकर पर ही चाय देने नहीं जायेगा। उसकी पत्नी को अकेले छिपे-छिपे अंदर जाकर

जल्दी-जल्दी खाकर निकल जाना नहीं पड़ेगा। दूसरी औरतों के साथ मंडप में बैठने पर उसे 'हरि की मां' या 'हरि प्रोफेसर की मां' कहकर पुकारने और समाज की एक प्रतिष्ठित महिला मानने के अलावा किसी के पास कोई चारा न रहेगा। इस बात की चर्चा चलने पर हमारे घर के सभी लोगों को बड़ी खुशी होती थी।

हमने देखा कि हरि की मां के चेहरे को भी एक नयी आशा दिनों-दिन आलोकित करती जा रही है। पहले का संकोच बिलकुल न मिटने पर भी हमारे यहां आने पर काफी घटा हुआ-सा लगता है। वकील-पत्नी दादी ने भी एक दिन हमारे यहां उससे मिलने पर काफी अच्छे ढंग से बातचीत की। फिर भी हरि के घर जाने का मेरा सुझाव मां ने नहीं माना। पुराना संस्कार अब तक हममें से कोई भी मिटा नहीं सका है।

हरि के गुवाहाटी प्रवास के दो सालों में इस शहर में अनेक परिवर्तन हुए। बहुत-से लोग बढ़े, नये-नये दफ्तर खुले, नयी-नयी नौकरियां निकलीं, नये-नये व्यापार बढ़े, जिनके कारण शहर में अनेक नये-नये लोग आये। तीन साल पहले जिसका निर्माण-कार्य शुरू किया गया था, वह पुस्तकालय भवन पूरा हो गया। कालेज का प्रेक्षागृह बन गया। हमारे स्कूल का विज्ञान भवन बन गया। गुवाहाटी में हरि का कोर्स पूरा हो गया। परीक्षा के सिर्फ दो या तीन महीने ही बाकी थे।

मैं हरि को पत्र देता रहता। पर उसकी ओर से पहले की तरह जवाब नहीं मिलता था। इसके लिए मुझे कोई खास अफसोस भी नहीं था। पढ़ाई के दबाव की बात सोचकर मैं चुप रह जाता। कभी-कभी वह पत्र देता भी तो सिर्फ दो ही पंक्तियों में समाप्त कर देता। इससे भी मुझे कोई अचरज नहीं हुआ, हालांकि उसकी भाषा में एक परिवर्तन ध्यान में आया था। उसकी भी उपेक्षा कर मैंने अच्छी तरह से परीक्षा देने का सुझाव दिया था और रुपये-पैसे की जरूरत होने पर मंगवा लेने के लिए भी लिख भेजा था। मुझे लगा था कि रुपये-पैसे के अभाव में ही उसके पत्रों की भाषा कुछ अलग-सी हो गयी है।

मगर मैं गलती पर था, क्योंकि इसे प्रमाणित करता हुआ हरि एक दिन अचानक हमारे यहां आ धमका। हमें अचरज हुआ। परीक्षा के लिए सिर्फ दस ही दिन हैं, यह जानकर और ज्यादा अचरज हुआ। वैसे उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर मुझे जरा भी अचरज नहीं हुआ था। बहुत-से लड़के परीक्षा के समय प्रायः दाढ़ी रख लेते हैं। क्या बात है, पूछने के पहले ही हरि के खुद बताया – "नहीं हुआ, समझे न बाबुल! परीक्षा नहीं दे सका।" मेरी बोलती बंद हो गयी। पूछना चाहता था, आखिर क्यों? फिर सोचा, शायद पढ़ाई अच्छी नहीं हो पायी होगी। शायद अगले साल बैठने वाला है। पर पूछने पर उसने अपने बाप वाली वही हंस हंसकर कहा – "यों ही नहीं दी परीक्षा।"

हम सभी विस्मित हो गये। उसके पत्रों की भाषा का परिवर्तन मैंने उस दिन और तीव्रता से अनुभव किया। जब हमने देखा कि हरि कोई बात न कर, एकटक आंगन के नार्जी फूलों की तरफ देख रहा है तो हमने, यानी मां ने और मैंने, एक-दूसरे की ओर देखा।

पहले दिन तो वैसा कुछ समझ में नहीं आया। जिस दिन समझ में आया, हमारे घर के सभी लोगों के चेहरे गंभीर हो गये। उस दिन लोगों की आशा को चूर-चूर करना पसंद करने वाले क्रूर विधाता के साथ आमना-सामना करने की मेरी इच्छा हुई थी। निताई ड्राइवर की कभी न मुरझाने वाली करुण हंसी की याद आयी थी। आशा से उजले हरि की मां के चेहरे की याद आयी थी। हरि की बहन की नयी पोशाक याद आयी, और याद आ गयी हरि की मां को जो सामाजिक स्वीकृति मिली थी, उसकी।

हरि का दिमाग फिर गया था।

ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ, किसी को पता नहीं। कोई बता नहीं सकता। और बताने पर भी उसकी खोज-खबर लेने वाला कोई नहीं था। कुछ दिन बाद मैंने एक बार कोशिश की थी कि हो सके तो उसके इलाज का कोई इंतजाम करवाया जाये। मगर कुछ नहीं कर सका। निताई ड्राइवर ने दो-एक बार ओझा से झाड़-फूंक करवायी, पर कोई नतीजा नहीं निकला। उसे बिलकुल पागल भी नहीं कहा जा सकता। खाने को भी उसका मन नहीं करता। कुछ भी करना नहीं चाहता और शाम होते ही सड़क पर इधर-उधर घूमने लगता।

दो-एक दिन कहीं-कहीं उसके बारे में चर्चा सुनी। उस लड़के की हालत देखकर सभी अफसोस करने लगे थे। उस हताश परिवार के प्रति संवेदना प्रकट करने लगे थे। उनमें आंतरिकता भी थी, परंतु उसके इलाज के बारे में किसी को कोई कोशिश करते नहीं देखा।

उसके बाद हरि की मां दो बार हमारे यहां आयी थी। वह फूट-फूटकर रो रही थी। पता नहीं कौन चुड़ैल लड़के का दिमाग खा गयी, कहकर अफसोस कर रही थी। उसके बाद फिर नहीं आयी। आना बिलकुल छोड़ ही दिया था। हरि की बहन ने भी स्कूल जाना छोड़ दिया। सिर्फ निताई ड्राइवर ने अपनी वह नौकरी नहीं छोड़ी थी और उसके होंठों की वह हंसी भी वैसी ही थी।

सब लोग हरि को भूल-से गये। सदा दिखाई पड़ने वाले उसके चेहरे की ओर अब कोई भी कौतूहल से नहीं देखता था। शाम को उसका सड़क पर चक्कर लगाना शहर के लिए एक आम बात हो गयी थी। कभी-कभी बाहर से आये किसी आदमी से कोई स्थानीय आदमी उसकी ओर उंगली दिखाकर सिर्फ इतना कहता था – "इस लड़के को देखकर बड़ा अफसोस होता है, समझे न! जानते हैं, वह ग्रेजुएट है!"

"ग्रेजुएट? भला क्या हो गया है उसे?"

"ओह, कुछ पूछिए मत..." और उसके बाद वह हरि का इतिहास दुहरा देता।

इसके लगभग दो साल बाद हमारे मामा की लड़की की शादी थी। मामा शहर के घर में बाल-बच्चों को छोड़कर चाय-बागान में नौकरी करते थे। इसलिए शादी का इंतजाम मुझे ही करना पड़ा था। कई दिनों तक मैं काफी व्यस्त रहा। मंडप सजाने से लेकर लड़की के लिए कांटा-क्लिप लाने तक सभी ओर नजर डालनी पड़ रही थी।

रसोईघर के बरामदे से होकर महिलाओं को बिठाने के लिए बनाये गये मंडप के किनारे

से मंडप के उस हिस्से में जाने की राह थी, जहां भोजन-सामग्री बनायी जा रही थी। ज्यादातर महिलाएं उसी ओर से आ-जा रही थीं, इसलिए वह राह संकरी-सी लग रही थी। उसे मृगेन आदि की मंडली और ज्यादा संकरी बना रही थी, जो विशेष बातचीत करने के लिए रास्ते पर ही खड़े थे। तामोल पान देने वाली लड़कियों से बीच-बीच में तामोल पान मांग-मांग कर खाते हुए, कौन कब आया, कब जायेगा, आदि जरूरी बातें पूछ-पूछकर, महिलाओं के लिए बने मंडप के नीचे कहां कौन-सी चीज रहने पर अच्छा होता आदि आदि के बारे में गंभीर चर्चा करते हुए वे लोग वहां काफी समय खड़े रहे, जिससे सबको असुविधा हो रही थी। शाम होने के साथ-साथ बहुत-से लोगों ने ऐसा अनुभव किया। परंतु कोई जबान खोलकर उन लड़कों से कुछ कह नहीं पाया। मामी ने इस पर गौर करके एक बार उन लड़कों से कहा भी, और एक बार उसे मुझको बताने का मौका मिल गया। न जाने कहां की एक औरत बरामदे में दीवार की ओर मुंह किये खा रही थी। मामी ने मुझसे कहा – "देख तो बाबुल जरा, रास्ते पर बड़ी भीड़ हो रही है। दूल्हे के आने का समय भी अब होने ही वाला है। वे जो खड़े हैं, उन्हें भी जाने को कह दे। इस दीदी को भी अगर जरूरत हो तो थोड़ा और जलपान देकर जल्दी विदा करके जरा राह खुलवा दे। इस मेज को उठाकर बिलकुल पाखाने के पास ही रख दे।" मामी की बातें मृगेन आदि ने भी सुनी थीं, इसलिए मैं पहले बरामदे में बैठी औरत के पास गया और पूछा – "दीदी, खाना हो गया ? जरा जल्दी करो न।" जरा तिरछे मुड़कर देखती हुई उस औरत ने कहा – "ओ बाबुल...!" मैं बिलकुल सन्न रह गया। उसकी आवाज सुनकर मेरा शरीर सिहर उठा। शर्म के मारे अपने मुंह पर थप्पड़ मारने की इच्छा हो गयी। वह हरि की मां थी।

मैं कुछ बोल नहीं पाया। हरि की मां ने ही कहा – "तुम्हारे मामा का घर है, इसलिए आयी थी। मामी तुम्हारी पहचान नहीं पायीं, इसलिए यहीं खाने को बिठा दिया। यह थोड़ा-सा घर के लिए ले लिया है। तुम्हारी मां को तो देखा ही नहीं। शायद कहीं काम में लगी हैं। मुझे क्या बाहर छोड़ आ सकोगे, बाबुल ? अकेली मंडप के नीचे से जाने में बुरा लग रहा है। इसीलिए रुकी हुई हूं।"

मुझे रुलाई आ रही थी। कहूं या न कहूं, ऐसे भाव से कहा – "इस पोटली को मैं ले लेता हूं।" हरि की मां देना नहीं चाहती थी। मैंने लगभग जबर्दस्ती ही ले लिया। एक बार सोचा, भंडारघर से थोड़ा ज्यादा खाना लाकर दे दूं। मगर हिम्मत नहीं हुई। "आइए," कहकर आगे बढ़ गया। महिलाओं के मंडप के बीच से होकर ही गया। हरि की मां घूंघट डाले मेरे पीछे-पीछे निकल गयी।

गेट पारकर लगभग फर्लांग भर आगे छोड़कर लौट आया। फिर उसी ओर से अंदर आ रहा था, तभी पुतुल की मां ने व्यंग करते हुए पूछा – "देखती हूं बाबुल, ड्राइवर की औरत को बड़ी जल्दी से छोड़ आये, क्या बात थी ?"

प्यार

इमरान शाह

जान-बूझकर ही घर खबर नहीं दी थी।

झट से अचानक पहुंच जाऊं तो घर वाले कैसे अचरज में पड़ जायेंगे। "शुक्र अलहमदुलिल्लाह" कहकर मुझे भले-चंगे घर पहुंचा देने के लिए खुदा की इबादत करना भी शायद लम्हे भर के लिए अम्मा भूल जायेंगी। कोई समाचार दिये बगैर आने के कारण नाजिया पहले कौन-सा रूप दिखायेगी, इसकी कल्पना करना भी मेरे लिए कठिन था। वहां रहते समय व्यस्तता के बीच खत लिखने में जरा-सी देर होते ही यहां से खत पर खत लिखकर मुझे परेशान कर डालती थी। इस बार तो शायद बात ही नहीं करेगी। खत में इतनी सारी बातें लिखने वाली नाजिया जबान से इतनी कम बात करती है, यह सोचकर मुझे अचरज होता है। और अंजुमन? वह तो मुझे पहचान ही नहीं पायेगा। मैंने तो अभी तक उसे देखा भी नहीं है। नाजिया अगर 'अब्बाजान' कहकर मेरी उससे पहचान करा भी दे तो क्या वह सीधे मेरी गोद में आयेगा? वह कैसा होगा? इसी माह तो उसका तीसरा साल पूरा होगा। नाजिया की राय में वह बिलकुल मेरे जैसा हुआ है। नाजिया को शायद भ्रम हुआ है?

नाजिया को गर्भवती हालत में छोड़कर सुदूर रूस जाने में मुझे कोई कम तकलीफ नहीं हुई थी। मगर नाजिया को शाबाशी दिये बगैर रहा नहीं जा सकता। उसी ने मुझे हिम्मत बंधायी थी। मेरी छह महीने की ब्याहता औरत नाजिया ने कहा था – "अरे, इसी वजह से भला तुम क्यों नहीं जाओगे? इंसान को तो लड़ाई में जाना पड़ता है। तुम्हें तो खैर लड़ाई में जाना नहीं पड़ रहा है। खुदा तुम्हें हिफाजत के साथ वापस ले आयेगा। खुदा ने ही तुम्हें यह मौका नसीब कराया है। इसे छोड़ना अच्छा नहीं होगा। जाओ, हमारे लिए एकदम फिक्र न करना। तुम जहां भी रहोगे, तुम्हारी दुआ हमारे साथ रहेगी। अम्मा के पाक-कदम के साये में हमारे लिए डर की कोई बात नहीं है।"

उस दिन नाजिया के अंदर ही अंदर रोते दिल और बाहर होंठों पर खिली बेनाम मुस्कान की तुलना करके वह चौंक-सा पड़ा था। यही तो नारी की महानता है।

भारत-रूस सांस्कृतिक संबंध परिषद् की छात्रवृत्ति पाकर 'बिसमिल्लाह' कहकर मुझे साढ़े-तीन साल के लिए घर छोड़ जाना पड़ा था। खुदा के फजल से अपना कर्तव्य भली-भांति पूराकर वापस आ रहा हूं। लौटते ही गुवाहाटी स्थित अपने कालेज में ज्वाइनिंग रिपोर्ट देने के बाद सिर्फ दो दिन के लिए घर जा रहा हूं। महीने भर बाद कालेजों में गरमी की छुट्टियां हो

जायेंगी, इसलिए कोई बिस्तर आदि साथ नहीं लिया था। सिर्फ एक सूटकेस था। अम्मा को तसलीम कर, अंजुमन को एक बार देखकर और रूठी नाजिया के मीठे-से अत्याचार का लुत्फ उठाकर फिर वापस आना है। छुट्टियां यहां आकर बिताऊंगा। हो सका तो अम्मा आदि को भी साथ ले आऊंगा। दो ठिकाने होने पर मेरे जैसे कालेज-अध्यापक का गुजारा चलना मुश्किल हो जाता है।

चार ही बजे रेल के पहुंच जाने की बात थी। मगर राह में ऐसी मुसीबत होगी, यह भला कहां जानता था? लमडिंग स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो ऐसी रुकी कि जैसे अचल हो गयी। उतरकर पूछताछ करने पर पता चला कि ट्रेन को वहां कब तक रुकना पड़ेगा उसका कोई ठिकाना नहीं है। विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि मणिपुर रोड के निचले हिस्से में नागाविद्रोही आ घुसे हैं, और वे परेशान कर सकते हैं। इसलिए सुरक्षा-सेना के वहां पहुंचने तक हमें लमडिंग में ही कैद रहना पड़ेगा।

इसी वजह से जब शिवसागर स्टेशन पर उतरा तो आधी रात बीत चुकी थी। हमारे उस छोटे-से स्टेशन पर शायद अकेला मैं ही उतरा था। और कोई अगर उतरा भी था तो दिखा नहीं। रेल को लाइन-क्लीयर देने आये रेल के एक कर्मचारी को भी बस एक बार देखा था। फिर वह दिखायी ही नहीं पड़ा। न जाने कहां हवा हो गया!

स्टेशन से हमारा घर तीन मील से कुछ ज्यादा ही दूर होगा। मरनै[1] के तट पर। इसलिए इतनी रात में वहां कैसे पहुंचूं, सोचकर काफी परेशानी हुई। रिक्शा पाने की भी कोई आशा नहीं। आस-पास कोई आदमी न आदमजात। एक बार सोचा, रात का बाकी समय प्लेटफार्म पर ही बिताकर सुबह होने पर जाना शायद अच्छा रहेगा। मगर मन नहीं माना। तीन मील पैदल चलने में ज्यादा से ज्यादा घंटा लगेगा। इतने के लिए सुबह तक इंतजार? कतई नहीं। आगे जो होता हो, होता रहे, सोचकर मैंने सूटकेस उठा लिया।

गेट पारकर मुख्य सड़क पर कदम रखते ही देखा एक आदमी हाथ में लालटेन लिये गेट के पास ही खड़ा है। लंबी कमीज और नीली लुंगी पहने हुए है, जो घुटने से लगभग दो इंच नीचे झूल रही है। लालटेन धुएं से इतनी काली पड़ गयी है कि चिमनी के नीचे के हिस्से में ही जरा-सा उजाला है। आदमी का चेहरा दीख नहीं रहा था। फिर भी मुझे उस आदमी की आकृति पहचानी-सी लगी।

"कौन? हमारा छोटा मुन्ना है न?"

छोटा मुन्ना कहकर मुझे सिर्फ कुछ ही लोग पुकारते थे। आवाज से ही तुरंत पहचान गया कि वह हमारा रमजान है। पर कैसी अचरज की बात है। यह बूढ़ा आदमी घर से तीन मील दूर स्टेशन पर तीन पहर रात बीते कैसे, कहां से आ सकता है?

"पर रमजान, तुम यहां कैसे?"

"खुदा की मरजी, मैं यहां कैसे आया बाद में बताऊंगा। पहले मुझे अपना सूटकेस दे दो। इतना बड़ा सूटकेस तुम भला कैसे ले जाओगे, मुन्ने?"

---

1. एक नदी का नाम ।

मैंने हल्की-सी आपत्ति की थी, फिर भी रमजान ने मेरे हाथ से सूटकेस ले लिया था। आगे-आगे रमजान था। पीछे-पीछे मैं। रमजान के एक हाथ में सूटकेस था, दूसरे में लालटेन। मैंने देखा, रमजान बिलकुल बूढ़ा हो गया है, मेरे रूस जाने से पहले तो बिलकुल हट्टा-कट्टा था। हंसते हुए मुझे स्टेशन पर चढ़ा गया था। लेकिन अब तो वह बिलकुल कमजोर हो गया है। पैर सूखकर कांटा हो गये हैं। कदम लड़खड़ाते-से। मानो वह हवा में चल रहा हो। हालांकि पहले जैसे ही तेज थे उसके कदम। मानो होश में न हो। लालटेन का उजाला मैला था, इसलिए उसका निचला हिस्सा दीख नहीं पड़ रहा था। नीचे के हिस्से में पैर जैसे थे ही नहीं। उसने शायद जूते भी नहीं पहने थे। नहीं तो जरूर आवाज होती।

चारों ओर इतना अंधेरा। शिवसागर में बिजली की व्यवस्था लगभग चार साल पहले शुरू हुई थी। मगर आज भी व्यवस्था उन्नत नहीं हुई है। प्रायः मशीन में खराबी आ जाती है। शायद आज भी कोई खराबी आ गयी है। कहीं एक भी बत्ती नहीं जल रही थी।

"तुम लोग मजे में हो न? कहां आये थे, अब तक बताया नहीं।"

"हमारा अच्छा क्या और बुरा क्या, मुन्ने! कब्र में ही रहने वाले हैं हम। आया था स्टेशन तक, एक आदमी को ले जाना था।"

"कौन आदमी था?"

कुछ क्षण कुछ भी कहे बगैर रमजान चुपचाप चलता रहा। मानो कुछ सोच रहा हो।

"मेरा लड़का। परसों ही हाट-बाजार के लिए नागिनीपारा गया था। आज भी नहीं आया। कल ही आना था उसे। बहुत बुरा लग रहा है।"

ये बातें कहते हुए रमजान कुछ नर्वस-सा लग रहा था। शायद बेटे के लिए बूढ़ा कुछ उद्विग्न-सा हो रहा था।

हम फिर कुछ मिनट चुपचाप आगे बढ़ते रहे।

"मगर मुन्ने, तुम्हारा हालचाल अच्छा है न? काम तो खत्म हो गया न? खुदा से दुआ है तुम्हें और भी बड़ा बनायें। हमारा ही नाम होगा।"

अच्छा है – "कुत्ता मोटा, गृहस्थ का नाम!" मगर "गृहस्थ मोटा, कुत्ते का नाम" यह बात तो सोची ही न थी। अचानक हंसी आने वाली थी, पर दूसरे ही क्षण में अपनी निगाह में ही दोष दिखाई पड़ा। पहले शर्म-सी आयी और उसके तुरंत बाद छाती में कहीं टीस-सी उठती महसूस हुई। अपने को सुसभ्य इंसान समझकर हम डींग मारते हैं। परंतु किसलिए? जिस देश में रमजान जैसे लोगों का वर्ग है, वह देश आजाद ही नहीं है, सभ्य होने की तो बात ही और है। सभ्यता की निशानी सिर्फ पहनावे और बातचीत में ही नहीं है।

नौकर शब्द का इस्तेमाल करना अच्छा न लगने पर भी सचाई की खातिर कहना ही होगा, रमजान हमारे यहां नौकर था। रमजान असल में कहां का है, किस जाति का है, हमें पता नहीं। अब्बाजान जिन दिनों चाय-बागान में नौकरी करते थे, उन्हीं दिनों उन्हें वह कहीं मिला था। वे उसे घर ले आये। उसका नाम भी पहले कुछ और ही था। रमजान नाम रखकर उसे अपने

यहां रख लिया गया। धीरे-धीरे वह पुरानी सारी खसलतें छोड़कर हमारे जैसा ही बन गया। लुंगी पहनने लगा। नमाज न पढ़ने पर भी बातचीत में बिलकुल खास असमिया मुसलमान बन गया। हमारे अब्बाजान और अम्मा बातचीत में बहुत ज्यादा अरबी-फारसी शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। रमजान भी वह सब सीख गया था। बाद में अब्बाजान ने एक अनाथ लड़की से रमजान की शादी भी करवा दी थी। दिखौ नदी के किनारे हमारी परती जमीन थी। वहीं पर उसके लिए घर भी बनवा दिया था। उन दिनों रमजान की उम्र दो कोड़ी यानी चालीस साल से ज्यादा थी। मगर उससे क्या ? रमजान बहुत ताकतवर और हृष्ट-पुष्ट था। दोनों पूरा दिन हमारे ही यहां रहा करते थे। सारे काम-धाम किया करते थे। उसका खाना-पीना भी यहीं होता था। शादी के पांच साल बाद इकलौते बेटे रोशन को छोड़कर रमजान की बीवी चल बसी। तभी से रमजान अपने बेटे को पाल-पोस रहा है। रोशन मुझसे आठ-दस साल छोटा होगा।

"मुन्ने, पहले की बातें तुम्हें याद हैं न, जब मेरी पीठ पर चढ़कर घूमा-फिरा करते थे ?"

"जरूर, याद हैं। याद न रहेंगी, क्यों ?" उत्साह दिखाते हुए मैंने कहा। और कुछ ज्यादा सोच-विचार किये बगैर कह डाला – "तुम्हें हम सब 'जोंक कौसिला'[1] कहकर चिढ़ाया करते थे, यह भी याद है।"

क्षण भर रमजान चुप रहा। उसके कदम कुछ अनमने-से पड़ने लगे।

मुझे बुरा लगा। यह बात उससे न कहना ही शायद अच्छा होता। बचपन में आदमी के भोलेपन को लेकर व्यंग्य करना एक बात है और बड़े होकर उस बात को दुहराना बिलकुल अलग। इंसान के भोलेपन को लेकर व्यंग्य न करके लोग श्रद्धा करना सीखते तो शायद हमारी दुनिया बहुत ज्यादा मीठी हो उठती। व्यंग्य की चोटों से आम लोगों की पवित्र सरलता मुरझा जाती है।

मगर दूसरे ही क्षण रमजान हो-हो करके हंसने लगा। उन दिनों हम बिलकुल नन्हें बच्चे थे। उससे भी कई साल बाद अब्बाजान का इंतकाल हुआ। अब्बाजान बड़े हंसमुख और मजाकिया इंसान थे। आजकल तो हम हंसना ही भूल चुके हैं। परंतु उस उम्र में भी अब्बाजान नन्हें बच्चे की भांति एक न एक बहाना ढूंढ़कर हंसने की प्रेरणा कहां से पाते थे, सोचकर विस्मय होता है। और वह हंसी भी कैसी थी ? डेढ़ फर्लांग दूर से ही सुनायी पड़ जाती थी। हम लोग घर में मुर्गी पालते हैं। वे घर-आंगन को काफी गंदा करती हैं। एक दिन एक मुर्गी बिलकुल दरवाजे के सामने जोंक जैसी जरा-सी बींट कर गयी। अब्बाजान ने रमजान को बुलाकर कहा, "रमजान, यह जोंक उठाकर फेंक दे तो।" रमजान की बोली कभी सीधी नहीं हुई। असमिया समझता था, कहने के लिए, बोलता भी था, पर कोई न कोई टेढ़ापन रह जाता था। जोंक से रमजान डरता न था। वह हाथ ही से उठाकर फेंकने गया। मगर वह जोंक तो हाथ में लगी रह गयी। हाथ को अपने आप नाक के पास ले जाकर वह कह उठा – "उहं ! जोंक कौसिला"।

1. असमिया 'कैछिला' यानी, 'कहा था' का बिगड़ा रूप।

तभी से हम उसे 'जोंक कौसिला' कहकर चिढ़ाया करते थे। वह खदेड़ता। उसके बाद तो उसकी जुबान काफी लोगों से ज्यादा सही हो गयी थी।

परंतु हमें कोई चिढ़ाता या कहीं झगड़ाकर हम मार खा आते तब रमजान हमारे लिए लड़ाकू बनकर निकलता। उन दिनों वह था भी पहलवान। उसमें कोई बुरी लत न थी। खैनी-तंबाकू आदि भी नहीं खाता था। शरीर में बल तो रहेगा ही। एक बार की बात मुझे याद है। बचपन में मैं बड़ा नटखट था। मार भी खाता, मारता भी। रात को सोने के बाद मेरे शरीर में कितने निशान उभरे हैं, अब्बाजान गिनकर देखते। सुना था, एक बार सत्ताईस निशान मिले थे। एक दिन स्कूल से आते समय मैंने रहीम नामक एक लड़के को पीटा था। एक मास्टर साहब के चिढ़ाने का नाम मैंने बोर्ड पर लिख दिया था। "किसने लिखा है ?" मास्टर साहब के पूछने पर रहीम ने बता दिया। सर ने मुझे बेंत से पीटा। राह में मैं रहीम को पटककर मारने लगा। तभी न जाने कहां से रहीम का बाप आ निकला और बेटे को पिटते देख, मेरे कान अच्छी तरह उमेठे। ये बातें घर में और किसी से तो कही नहीं जा सकती थीं सिवाय रमजान के। मैंने उससे कह दिया। उन दिनों हमारे अब्बाजान गृहप्रवेश के बाद किनारे का हिस्सा बनवा रहे थे, हम पास ही की उलूतली के दादा के यहां रहते थे। चाय-बागान से लाये हुए बड़े-बड़े खंभे भी दादा के यहां पड़े थे। एक-एक का वजन कोई ढाई-तीन मन तो होगा ही। जहां नया घर बन रहा था, वहां उन्हें या तो बैलगाड़ी पर लादकर या दो-दो आदमी दोनों सिरों को उठाकर ले जाते थे। रहीम के बाप ने मेरे कान उमेठे हैं, यह सुनकर रमजान आग-बबूला हो गया और एक ही बार में एक खंभे को कंधे पर उठाकर रहीम के घर की ओर चल पड़ा। उनके बाहरी दरवाजे के पास पहुंचकर उसने धम्म से खंभे को जमीन पर पटक दिया। जमीन दहल उठी। लोगों को सुना-सुनाकर वह जोर-जोर से कहने लगा – "हुंह ! मुझे पहचाना नहीं ? दस-दस को मसल सकता हूं। हुंह। मुझे ताकत दिखा रहा है।..." तब से मुझे भी डर लगने लगा था। सोचा था, रमजान को न बताना ही शायद अच्छा होता।...

हम दरबार रोड जा पहुंचे। रमजान इतना तेज चल रहा था कि काफी तेज कदम बढ़ाने पर भी मैं उसका साथ नहीं पकड़ पा रहा था, बीच-बीच में उसके कदम कुछ अजीब-से लग रहे थे। इस उम्र में भी वह इतनी तेजी से चल सकता है ? हालांकि वह जरा भी दौड़ नहीं रहा था। लाचार होकर आखिर उससे कहा – "रमजान, तुम तो बड़ी तेजी से चल रहे हो। थोड़ा आहिस्ते-आहिस्ते चलो न।"

रमजान ने हंसकर अपनी चाल धीमी कर दी।

उसकी हंसी का मतलब मैं अच्छी तरह से समझ गया था।

बचपन में मुझे सबसे ज्यादा परेशानी होती थी, उसके साथ बाजार जाने में। बड़ा ऊंचा हट्टा-कट्टा आदमी था रमजान। मेरी उम्र उन दिनों छह-सात साल की थी। तिस पर मेरे पैर छोटे-छोटे थे। सामान का हिसाब एक कागज पर लिख लाने के लिए ही मुझे उसके साथ बाजार जाना पड़ता था। रमजान का हिसाब गलत होता। मगर रमजान के आहिस्ता-आहिस्ता

चलने पर भी उसके साथ प्रायः मुझे दौड़कर जाना पड़ता। रमजान पहले हमेशा भूल जाता। बाद में जब समझ जाता, तब रुककर मुझे अपने कंधे पर चढ़ा लेता। एक बार कंधे पर चढ़ा लेने पर भरे बाजार में फिर उतारता न था। तब मेरी हालात कैसी होती, यह कहकर समझाया नहीं जा सकता। मैं किसी के चेहरे की ओर नजर नहीं डाल पाता था। हालांकि बाद में कंधे से उतरने का एक कायदा मैंने निकाल लिया था। मगर शर्म के कारण यह बात मैंने कभी किसी को नहीं बतायी थी। रमजान भी नहीं जानता था...रमजान आहिस्ता चल ही नहीं सकता था।

रमजान और मैं।

रमजान को छोड़कर अपने बचपन की तो बात ही क्या, तरुणाई के दिनों की भी कोई बात मैं सोच नहीं सकता। वह विपत्ति में मेरा दोस्त था, मेरा सहारा था, मेरा सारथी था। मेरा ऐसा अभिभावक था, जिसे बाहर से कोई स्वीकृति न थी। बरसात के दिनों में फुटबाल खेलकर भीग-भीगकर घर नहीं जा सकता था। परीक्षा सामने थी। अब्बाजान डांटते। उधर खेल का मैदान दूर था। आंखों से दिखाई न देने तक बाहर रुके रहना भी संभव न था। अब्बाजान की उत्सुकता बढ़ जाती। इसलिए बचाने वाला होता था रमजान। सूखे कपड़े लिये रमजान झाड़ियों में छिपा रहता। वहीं भीगे कपड़े बदलकर मैं बिलकुल अच्छे लड़के की भांति अब्बाजान के सामने से होकर ही अंदर घुस जाता। पर उसके बाद भी पढ़ने बैठने में देर करने पर या बैठकर ऊंघने पर रमजान दूसरा ही रूप धारण कर लेता। अब्बाजान कुछ कह ही नहीं पाते। अरवा चावल से भुजिया चावल की खदबदाहट ज्यादा होती है। कैसी थी उसकी डांट! एक साधारण-से नौकर की हेकड़ी से मैं अंदर ही अंदर भुन जाता। पर कोई चारा भी तो नहीं था। अब्बाजान मुस्कुराते हुए उसी का समर्थन करते। अब सोचता हूं, रमजान का वह ऋण जिंदगी में कभी चुका सकूंगा क्या!

आते-आते हम दरबार फील्ड के ईदगाह मैदान के परले सिरे पर की कब्रगाह के पास पहुंच गये। कब्रगाह में जाते हुए बचपन में मुझे बड़ा डर लगता था। अब भी अकेले आता तो डर लगता या नहीं, पता नहीं। पर साथ में रमजान है। डर की कोई बात नहीं है। यह कब्रगाह पहले बेर और बेल के पेड़ों से भरी हुई थी। रमजान यहां से बोरे में भर-भरकर वे फल ले जाया करता था। पास के कई गांवों के लोग साल भर उन्हें सुखाकर, अचार बनाकर खाया करते। आजकल सारे पेड़ सूखकर खत्म हो गये हैं। दो-एक जो बचे हैं, उनमें भी वैसे फल नहीं लगते। आजकल के लोग कब्रों में काम में आने वाले पेड़ों की तो बात ही क्या, पत्ताबहार के पौधे तक नहीं रोपते। सिर्फ दो-एक आदमी रुपये खर्चकर कब्र को पक्का करा देते हैं। रमजान के साथ बेर ले जाने के लिए बचपन में मैं भी कई बार यहां आया था। उन दिनों मेरी समस्या होती पैर रखने की जगह ढूंढ़ना। चारों ओर कब्रें ही कब्रें होतीं। और कब्र पर पैर रखना अनुचित है। कभी-कभी बचते-बचते कब्र के बिलकुल बीचों-बीच जाकर खड़ा हो गया।

"अस्सलामू अलैकुम इया अहलाल कबूर।" कब्रगाह पहुंचने पर मैंने कहा। रमजान

चुपचाप आगे बढ़ गया।

अचानक मुझे एक कहानी याद आ गयी। रमजान ने ही सुनायी थी वह कहानी। झूठ-सच वही जानता होगा। अब्बाजान से पूछा था। अब्बाजान चुप रहे। कुछ भी नहीं कहा। अब्बाजान की कब्र भी यहीं है। कल जियारत करने एक बार यहां आना पड़ेगा, मैंने सोचा।

रमजान ने कहा था – मेरे एक चचाजान थे। दस-बारह साल की उम्र में वे चल बसे। उन्हें एक जनाब घर पर ही अरबी पढ़ाते थे। साथ ही हमेशा खुदा की चर्चा, दोजख-बहिश्त की बात, फरिश्तों, जिन्नों आदि की बातें हुआ करती थीं। जनाब का कहना था कि उन्होंने जिन्न देखे हैं। चचाजान हठ करने लगे, उन्हें भी जिन्न दिखाना होगा। जनाब नहीं मानते थे। मगर चचाजान भी जिद्दी थे। आखिर एक दिन जनाब तैयार हो गये, जिन्न दिखाने के लिए।

निश्चित दिन जनाब और चचाजान कब्रगाह के किनारे खड़े हो गये। जनाब के निर्देश के अनुसार चचाजान एक निश्चित जगह की ओर देख रहे थे। जनाब मुंह से कुछ पढ़ रहे थे। अचानक दिख पड़ा कि वहां एक काली मूर्ति का आविर्भाव हुआ है। बादलों से ढंके चांद की झीनी चांदनी का धीमा प्रकाश था। सिर्फ आकृति भर दिखायी दे रही थी। जनाब ने धीमी आवाज में कहा – "देखा ? कलमा पढ़ता रह।"

चचाजान की 'हां-ना' करने लायक मनस्थिति नहीं थी।

तभी एक अप्रत्याशित घटना हो गयी। पहली छाया-मूर्ति के बिलकुल पास, एक दूसरी कब्र से सटकर एक और मूर्ति का आविर्भाव हुआ। तुरंत जनाब चचाजान का हाथ पकड़ तेजी से भाग खड़े हुए, और दोनों के पीछे-पीछे जिन्न भी आने लगे। डर के मारे बाद में चचाजान को तेज बुखार आ गया। जनाब की हालत भी कुछ वैसी ही थी। रहस्य बाद में खुला था। रमजान ने ही बताया था। जनाब चचाजान को जिन्न दिखलाने वाले हैं, यह बात बाहर से रमजान सुन रहा था। इसीलिए उस दिन वह पहले से जाकर वहां छिपा रहा। वक्त आने पर उसने देखा कि जनाब एक दूसरे आदमी को वहां बिठाकर चचा जान को ले गये। चचाजान ने जिन्न ठीक ही देखा था। परंतु उसी समय जब रमजान भी खड़ा हो गया तब जनाब का हिसाब-किताब गड़बड़ा गया और वे होश-हवास खोकर भागे। साथ ही मामला न समझ पाने के कारण दोनों जिन्न भी पीछे-पीछे...।

"रमजान, चचाजान के जिन्न देखने की बात तुम्हें याद है न ?" मैंने पूछा। सोचा था, सुनकर रमजान हंसेगा। और हंसा भी। परंतु वह हंसी भयानक उदासी-भरी थी। बोला – "मुन्ने, नादान इंसान भला जिन्न-फरिश्तों को क्या समझेंगे ? खुदा मेहरबान ! सबकी भलाई करेगा।"

राह में ही रुक जाने की इच्छा हो रही थी। यह रमजान वही रमजान है। वही 'जोंक कौंसिला' रमजान। अपने आप पर मुझे शर्म-सी आने लगी। मेरी उम्र बढ़ गयी है। अंजुमन की उम्र बढ़ रही है। पर मन तो वही पुराना अनजान बना है। मगर वह रमजान तो जैसे इसी बीच कोई गंभीर दार्शनिक बन चुका है।

अचानक एक दूसरी ही बात याद आ गयी, जिसका शायद किसी से कोई संपर्क नहीं था। वह है एक कहावत – "सुबह का भूला अगर शाम को घर लौट आये, तो उसे भूला नहीं कहते।..."

दुनिया में आते वक्त हम क्या बनकर आये थे, यहां क्या-क्या करते रहे, यह तो कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात तो यह है कि हम क्या बनकर वापस जा रहे है।...

राह का आखिरी हिस्सा चुपचाप चलते हुए निकल गया। हम अपने घर के बाहरी दरवाजे तक पहुंच गये।

"मुन्ने ! सूटकेस ले लो, मैं चल रहा हूं।"

"क्यों ? क्या अंदर नहीं चलोगे ?"

"नहीं, अब चलूं ! काफी देर हो गयी।"

रमजान चला गया। मैं क्षण भर उसकी ओर देखता रहा, फिर अंदर दाखिल हुआ। रमजान चला गया था। पैर इतने सूखे, लालटेन का उजाला इतना मैला ! दोनों पैर पूरे दिखाई भी नहीं दे रहे थे। मानो जमीन पर पड़ते ही नहीं थे। जैसे हवा में ही...घर में मुझे देखकर सब दंग रह गये। लेटने पर भी अम्मा को नींद नहीं आयी थी। पहली ही आवाज में "छोटा मुन्ना" कहती हुई उठ आयीं। नाजिया को जगाया। फटी-फटी आंखों से नाजिया भी दौड़ी आयी।

"इतनी रात को तू अकेले...?" अम्मा बोली।

"अकेले कहां, अम्मा ?" मैं कह उठा – "रमजान से हमारी मुलाकात हो गयी। अपने बेटे को स्टेशन से लाने गया था, कहता था – वह नागिनीपारा गया है। मगर पता नहीं क्यों वह अंदर नहीं आया ?"

"रमजान ? बेटे को ?"

अम्मा या नाजिया में से किसने यह कहा, मेरी समझ में नहीं आया। नाजिया धप्प् से एक कुर्सी पर बैठ गयी।

"आखिर हुआ क्या ?"

"अरे, तू जिस साल गया था, रोशन तो उसी साल हैजे से चल बसा था।" अम्मा बोली, "उसी दुख के मारे बावले जैसा होकर रमजान ने भी खाना-पीना छोड़-सा दिया था और पिछले साल इन्हीं दिनों उसकी भी मौत हो गयी। उसका क्रिया-कर्म हमने ही किया। विदेश में तुझे दुख होगा, इसीलिए वह बात तुझे लिखी नहीं गयी। उनके घर को भी इस बार नदी ले गयी।"

मैं तुरंत बाहर निकल आया। रमजान हालांकि बड़ी तेजी से चलता है, फिर भी इतने समय में एक फर्लांग से ज्यादा नहीं गया होगा। दूर जरूर लालटेन दिख पड़ेगी। और वह होती तो जरूर दिख पड़ती। क्योंकि वहां से नदी के किनारे पर रमजान के घर तक का हिस्सा बिलकुल खुला था। मगर वहां अंधेरा ही अंधेरा दिख पड़ा। भालू के बालों जैसा बिलकुल गाढ़ा-सा काला अंधेरा।

मैं फिर अंदर आ गया। एक कुर्सी पर मुझे बिठलाकर दरूद पढ़ती हुई अम्मा मेरे सिर

से लेकर समूचे शरीर को सहलाने लगी। किसी हाजी साहब का लाया हुआ मक्का के आबे-जमजम का जरा-सा पानी लाकर पिलाने के लिए नाजिया से कहा। मैंने नाजिया के चेहरे की ओर देखा। बेचारी का चेहरा कागज जैसा सफेद हो गया था। मगर न जाने क्यों, मुझे जरा भी डर नहीं लग रहा था। मैंने हंसकर नाजिया से कहा – "डरो मत, नाजी! रमजान नेक-दिल इंसान था। मुझे अपने बेटे जैसा ही प्यार करता था।...चलो, अंजुमन को देखें..."

फुलझड़ी

पद्म बरकटकी

उस आदमी की बातों में आंतरिकता थी। चिंताग्रस्त चेहरे पर प्रताड़ित होने की वेदना झलक रही थी। इस बड़े व्यापारिक संस्थान को राज्य सरकार ने लगभग एक करोड़ रुपया ऋण दिया है। तय था कि व्यापारिक संस्थान स्थानीय लोगों को नौकरियां देगा, परंतु अब सभी आकर कहते हैं कि एक भी असमिया आदमी को नौकरी नहीं दी गयी है। पहले का कोई मंत्री रुपये खाकर शायद उस समझौते को ही रद्दकर गया? कोई अचरज की बात तो नहीं है। ऐसा होने पर भी जनता की जानकारी के लिए जांचकर सचाई को सामने लाना होगा। नहीं तो वर्तमान मंत्री की बेकार में बदनामी होगी। वर्तमान मंत्री सज्जन है। वह इन बातों को सहन नहीं कर सकता। जनता का प्रतिनिधि होकर वह जनता से धोखेबाजी करने जैसा बुरा काम नहीं कर सकता।

सिर झुकाये सोच में डूबे मंत्री ने सिर उठाकर सामने बैठे हुए युवकों से कहा – "ठीक है, तुम लोगों की बात पर मुझे विश्वास हो रहा है। इस विषय की जांच व्यक्तिगत रूप से मैं करूंगा और अगर उस संस्थान ने सचमुच असमिया लोगों को नियुक्तियां नहीं दी हैं, तो उसकी व्यवस्था मैं करूंगा।"

यों कहकर मंत्री ने पास खड़े प्राइवेट सेक्रेटरी से कहा – "राधा इंडस्ट्रीज को खबर देनी है, उनके संस्थान को मैं अगली दो तारीख, सोमवार को देखने जाऊंगा। सोमवार को जा पाऊंगा या नहीं, जरा प्रोग्राम देखिये तो।"

प्राइवेट सेक्रेटरी ने एंगेजमेंट की सूची देखकर कहा कि जहां वह इंडस्ट्री है, उसी शहर में सवेरे नौ बजे तक कांग्रेस-कर्मियों से चर्चा है और शाम को साढ़े पांच बजे मंत्री महोदय को वहां के नये कांग्रेस-भवन का उद्घाटन करना है।

"ठीक है! तो हम उस इंडस्ट्री में दस बजे जायेंगे और वहां पांच बजे तक रहेंगे। सारी बातों की पूरी जांच करनी होगी। आप आज ही उन्हें सूचित कर दें।"

मंत्री के सामने बैठे हुए अभियोग लगाने वाले तरुण आश्वस्त हुए। इस नये मंत्री पर जनता का विश्वास इसी कारण बाढ़ के पानी की भांति बढ़ता जा रहा है। तरुण आनंदित होकर विदा हुए।

समय पर उद्योग के कार्यकर्ताओं का उत्तर आया। उसके मालिक और मजदूर दोनों ही पक्षों ने खुशी प्रकट करते हुए मंत्री को आमंत्रित किया था। सूचना दी थी कि दो तारीख

सोमवार को मंत्री का पदार्पण उस उद्योग को नयी शक्ति प्रदान करेगा। इतनी व्यस्तता के बावजूद वे एक नये उद्योग को अपनी उपस्थिति से प्रेरणा देना नहीं भूले, यह उन जैसे देशप्रेमी, जनता के सच्चे प्रतिनिधि और अथक कर्मी मंत्री के लिए ही संभव हो सकता है।

निश्चित तारीख को शहर से तीन मील दूर स्थित उस उद्योग से दो कीमती कारों में कुछ महिलाएं मंत्री के निवास-स्थान पर आयीं। उन महिलाओं के साथ उद्योग के मुख्य अधिकारी की पत्नी और पुत्री भी थीं। निवास से मंत्री के निकलते ही सभी ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। मुख्य अधिकारी की पत्नी ने मंत्री को अपनी गाड़ी में बिठाया। वे और उनकी पुत्री मंत्री के दोनों ओर बैठ गयीं। सुगंधित मसालेदार तामोल की शराई[1] गाड़ी के अंदर ही मंत्री के सामने प्रस्तुत की। मंत्री के गाल पर लगे सूत का एक छोटा-सा टुकड़ा मुख्य अधिकारी की पुत्री ने अपनी कोमल उंगलियों से हटा दिया। उद्योग की ओर से भेजी गयी एक गाड़ी आगे-आगे चली, उसके पीछे मंत्री को ले जाने वाली गाड़ी और उसके पीछे मंत्री की निजी गाड़ी, खाली ही चली। आगे-आगे जाने वाली गाड़ी की औरतें उद्योग से मील भर पहले ही पक्की सड़क पर फूल और लावा बिखेरती चलीं। उस फूल और लावा पर से मंत्री की गाड़ी चली। उद्योग की सीमा के अंदर घुसने के साथ-साथ गाड़ी की गति धीमी हो गयी। 'स्वागतम्' लिखे चार तोरण-द्वारों के नीचे से होकर मंत्री की गाड़ी धीमी गति से आगे बढ़ी। हर तोरण-द्वार के दोनों ओर खड़ी सुंदर तरुणियों ने मंत्री की गाड़ी पर फूल बिखेरे। सड़क के दोनों ओर स्थित कारखानों के आवासों की खिड़कियों के सामने खड़े लोगों ने मंत्री के स्वागत में नारे लगाये। उस दिन सोमवार था। उद्योग के काम-काज चालू थे। इसलिए काम छोड़कर न आ पाने के कारण पुरुष कर्मचारियों ने कारखाने के अंदर से ही आवाज लगायी। निश्चित जगह पर आकर मंत्री की गाड़ी रुकी। मंत्री के पास बैठा उद्योग का मालिक जल्दी से गाड़ी से उतर पड़ा। उस जगह बड़ा लाल गलीचा बिछा हुआ था। मंत्री की गाड़ी उसी के समीप रुकी थी। गलीचे के चारों ओर लगभग पांच सौ औरतें मंत्री का स्वागत करने के लिए खड़ी थीं। गलीचे के पास ही धूप, अगरू और माइक रखे हुए थे। मुख्य अधिकारी की पत्नी ने गाड़ी से उतरते ही अपनी ओढ़ी हुई कीमती काश्मीरी शाल लाल गलीचे पर गाड़ी के पास ही बिछा दी। उसके बाद मंत्री को हाथ पकड़कर उतारा और शाल पर खड़ा कर दिया। साथ ही मंत्री की दूसरी ओर बैठी तरुणी पुत्री मंत्री के पीछे-पीछे उतरी और उतरते ही अपने आंचल से मंत्री के चमचमाते जूतों को झाड़ दिया। इसी बीच चारों ओर खड़ी महिलाएं आगे बढ़ गयीं। एक ने, आगे आकर मंत्री के माथे पर तिलक लगाया। दूसरी ने कमल के फूलों की माला पहनायी। उसके बाद इतनी मालाएं मंत्री को पहनायी गयीं कि मंत्री का सिर झुकाना कठिन हो गया। एक सुंदर तरुणी ने कीमती इत्र लाकर मंत्री के शरीर पर छिड़क दिया। मंत्री ने हंसते हुए गले की एक माला निकालकर तरुणी के गले में पहना दी। उसके बाद उद्योग के मुख्य अधिकारी की पत्नी ने माइक पर खड़े होकर चुनिंदा शब्दों में मंत्री का स्वागत करते हुए भाषण दिया। मंत्री ने इसके जवाब में उद्योग के मालिक और श्रमिक उभय पक्ष की, और खासकर भारत की

1. विशेष ढंग से बनाया हुआ एक बर्तन।

नारी-शक्ति की प्रशंसा करते हुए भाषण दिया। कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता का उद्धरण देते हुए उन्होंने बताया कि भारत की उन्नति नारी-शक्ति के जागरण पर ही निर्भर है।

ग्यारह बज गये थे। इस स्वागत के बाद मंत्री का उद्योग-निरीक्षण का कार्यक्रम था। स्वागत-स्थल से उद्योग के प्रमुख कार्यस्थल तक आठ नल[1] लंबे रास्ते के दोनों ओर केले के पौधे लगाये गये थे। मुख्य अधिकारी की पत्नी ने माइक से घोषणा की – "अब महामहिम मंत्री महोदय को उद्योग निरीक्षण हेतु ले जाया जायेगा।" तुरंत तीन सुंदर तरुणियां मंत्री के सामने आ खड़ी हुईं। एक के हाथ में मुट्ठी भर पान था। दूसरी के हाथ में एक कैंची थी और तीसरी खाली हाथ थी। मंत्री के सामने खड़ी होकर कैंची वाली तरुणी ने पान वाली से पान का एक पत्ता लेकर उसका डंठल और अगला हिस्सा कैंची से काटकर खाली हाथ वाली तरुणी को दे दिया, जिसने पत्ते को गलीचे पर बिछाया और उस पर पैर रखने के लिए मंत्री से अनुरोध किया। मंत्री के गले में इतनी मालाएं पड़ी थीं कि वह नीचे देख नहीं पाता था। किसी तरह उसने पत्ते पर एक कदम रखा। फिर एक और पान काटकर बिछाया गया, उस पर मंत्री ने दूसरा कदम रखा। इसी तरह एक-एक पत्ता बिछाया जाता रहा और मंत्री एक-एक कदम बढ़ाता रहा। दोनों ओर लगाये दो-दो केले के पौधों के बीच-बीच एक-एक महिला, कबूतरों की एक-एक जोड़ी हाथ में लिये खड़ी थी। मंत्री के हर कदम के साथ-साथ पास के केले के पौधों के बीच खड़ी तरुणियां कबूतरों की एक जोड़ी छोड़ देतीं और कबूतर उड़ जाते। इसी तरीके से लगभग आठ नल रास्ता आगे बढ़ने में आधा घंटा लग गया। इस बीच मंत्री थक गया था। मुख्य कार्यालय में घुसने के साथ ही उद्योगों के पदाधिकारी आदि अभिवादन कर मंत्री को तुरंत उद्योग-निरीक्षण हेतु ले गये। पदाधिकारियों ने हर यंत्र के कामकाज के बारे में बड़ी आंतरिकता से उसे समझाया। बड़ी-बड़ी मशीनों के बीच मंत्री को खड़ाकर फोटो लिये गये। दिन के एक बजे उद्योग-निरीक्षण पूराकर उद्योगों के मुख्य कार्यालय को सामने पाकर मंत्री ने उसे भी देखा। फिर बाहर आये। जीप पर मंत्री को चढ़ा लिया गया। दोनों ओर उद्योगों के मुख्य अधिकारी की श्रीमती और पुत्री खड़ी हुईं। दूसरी गड़ियों पर दूसरी महिलाएं सवार हुईं। इसके बाद मंडली-समेत मंत्री ने उद्योग के चारों ओर निरीक्षण किया। एकाध मजदूर-निवास में घुसकर देखा कि मजदूर वहां कितने आराम से रहते हैं। उसके बाद डेढ़ बजे दिन का भोजन हुआ। खाना महिलाएं ही परोस रही थीं। उस भोज में उद्योग के प्रमुख अधिकारी भी उपस्थित थे। उन्होंने बताया कि उद्योग के सभी लोग मंत्री को देखने के लिए पागल हो उठे हैं। मगर सोमवार होने के कारण सबको काम-काज में जुटे रहना पड़ रहा है। सबने तय किया है कि मंत्री से एक बार फिर यहां आने के लिए निवेदन किया जाये। किसी छुट्टी के दिन बुलवाकर उत्सव मनाना है। मजदूरों में, मंत्री कितने लोकप्रिय हैं, यह बताना भी वे नहीं भूले। भोजन के बाद सभी पुरुष अपने-अपने काम में लग गये। महिलाएं मंत्री को एक सुंदर ढंग से सजाये सोने के कमरे में ले गयीं। गिलास में पानी, सुंदर-सा बिस्तर, कुछ फल-फूल आदि के साथ उस कमरे में मंत्री को दोपहर को आराम करना था। मंत्री के बुलाते ही उपस्थित हों, इस उद्देश्य से कुछ महिलाएं

1. सात या आठ हाथ लंबा बांस का एक माप जिससे जमीन आदि मापी जाती है।

बाहर बैठी रहीं। मंत्री से कहा गया कि चार बजे सभा होने वाली है। सभा वैसे हर रविवार को हुआ करती है और उसमें दुनिया के श्रेष्ठ साहित्यकारों के बारे में चर्चा हुआ करती है तथा उनकी कृतियों का पाठ किया जाता है। इस बार मंत्री के सम्मानार्थ वह सभा रविवार के बदले सोमवार को ही बुलायी गयी है। इस सप्ताह के श्रेष्ठ साहित्यकार हैं – रवींद्रनाथ ठाकुर। मंत्री को विश्राम के लिए छोड़कर महिलाओं के चले जाने के बाद मंत्री ने देखा कि बिस्तर के पास ही किताब की एक रैक में सिर्फ रवींद्रनाथ की ही पुस्तकें भरी हुई हैं।

विश्राम के बाद का चाय का दौर समाप्त कर कुछ महिलाएं मंत्री को सभा में ले गयीं। सभा की अध्यक्षता मंत्री को रवींद्रनाथ के एक बड़े तैल चित्र के पास बैठकर करनी पड़ी। सभा में रवींद्रनाथ की कविताएं पढ़ी गयीं,उनकी कविताओं पर चर्चा हुई, और उनके बारे में अच्छी जानकारी रखने वाले मंत्री को सभापति के रूप में पाकर हर्ष प्रकट किया गया। मंत्री ने अध्यक्षीय भाषण में रवींद्रनाथ की कविताओं की बड़ी प्रशंसा की,महात्मा गांधी को रवींद्रनाथ ने कितनी प्रेरणा दी थी, यह बताया और इस उद्योग की उद्योगी महिलाएं रवींद्रनाथ का मूल्य समझ रही हैं,इस कारण आनंद प्रकट किया। यह उल्लेखनीय है कि सभा में मंत्री और उद्योग के मुख्य अधिकारी, ये दो ही पुरुष उपस्थित थे। शेष सभी अपने-अपने काम-धाम में थे।

पांच बजे विदा लेने का समय था। उसी समय उद्योग के कारखाने में छुट्टी की घंटी बजी। हजारों लोगों ने आकर मंत्री की गाड़ी को घेर लिया, लोग ऐसे धक्का-मुक्की कर रहे थे कि पास खड़ी महिलाओं को बचाने के लिए मंत्री को खुद कोशिश करनी पड़ी। चारों ओर से सिर्फ एक ही पुकार थी – "हमें मंत्री को देखने दो।" लाचार होकर दो महिलाएं एक कुर्सी उठा लायीं। मोटे-से मंत्री को महिलाओं ने पकड़कर कुर्सी पर चढ़ा दिया। कहीं गिर न पड़ें, इसलिए चारों ओर से महिलाएं 'उन्हें' पकड़े रहीं। कुर्सी पर चढ़े मंत्री को देखकर चारों ओर खड़े लोग खुशी के मारे चीखने लगे। हंस-हंसकर हाथ जोड़ सबको अभिवादन करते हुए एक महिला के कंधे का सहारा लेकर मंत्री कुर्सी से उतर पड़ा। लोगों की भीड़ और शोरगुल के बीच मंत्री की गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ी। गाड़ी पर बैठे मंत्री ने हाथ जोड़कर सबका अभिवादन करते हुए हंस-हंसकर विदा ली। अभी शाम हो ही रही थी। उसी हल्के अंधेरे में मंत्री की गाड़ी के पास अनगिनत फूलझड़ियां जगमगा उठीं।

स्थानीय लोगों की नियुक्ति देने के जिस विषय की जांच करने के लिए मंत्री का राधा इंडस्ट्रीज में पदार्पण हुआ था,उसकी तो जांच हुई ही नहीं, यह बात मंत्री को तब याद आयी, जब बहुत दिन बाद शिकायत करने वाले तरुण फिर से मंत्री से मुलाकात करने आये। इस बार मंत्री ने "आज मैं बड़ा व्यस्त हूं" कहकर उन तरुणों से मुलाकात ही नहीं की।

ललिता बनाम कांता

निरोद चौधुरी

तुम हमेशा कहती रहती हो कि मैं एक कहानी लिखूं और यह भी कहती हो कि अच्छी कहानी लिखूं। कहानी तो शायद लिख सकता था, परंतु अच्छी कहानी लिख सकूंगा यह निश्चित रूप से कैसे बताऊं ? तुम्हारी और अपनी प्यार की बातों को अगर कुछ रंग-रोगन लगाकर लिखूं, तो तुम तुरंत रोक दोगी। कहोगी कि मैं तो सिर्फ तुम्हारी बातों को ही लिखा करता हूं। और अगर गुवाहाटी के जुबिली रोड की मिताली दत्त की उस कलंकित कहानी के बारे में लिखूं, तो तुम कहोगी कि वह तो मामूली-सी प्रेम-कहानी है। तो फिर किसकी कहानी लिखूं ? अगर मिताली दत्त की कहानी कहूं तो डिब्रूगढ़ प्लेटफार्म पर मिली उस असमिया लड़की के दुस्साहसिक अभियान की कहानी रह जायेगी। फिर जोरहाट की वायोलीना बरुवा के हत्याकांड से जुड़ी उस दस साल की लड़की के बारे में भी बिना कहे कैसे रहूं ? और भी कितनी ही हैं – सुमिता चौधुरी, श्रुवावती हाजोरिका, शर्मिष्ठा दत्त, और ढेर - सारी दूसरी लड़कियां। ब-हु-त-सी। बहुतों की बातें हैं कहने के लिए, बहुत-सी बाते हैं लिखने की, बहुत सारी घटनाएं हैं सूचित करने की।

मिताली दत्त, सुमिता चौधुरी या श्रुवावती हाजोरिका की कहानी मैं बाद में सुनाऊंगा। आज एक दूसरी कहानी सुना रहा हूं। इस कहानी के नायक-नायिका अभी जिंदा हैं। हो सकता है कि तुम्हारे साथ-साथ किसी चाय-बागान के सिरे पर बने किसी बंगले के बरामदे में बैठे, एक हाथ से बड़े-से अलसेशियन कुत्ते को सहलाते हुए, इस कहानी का नायक भी इस कहानी को पढ़ रहा हो और इसकी नायिका शायद उसी बंगले के एक कमरे के दो बिस्तरों में से एक पर लेटी हुई एक आठ महीने के बच्चे को छाती से लगाये दूध पिला रही हो। यह कहानी नायिका के सामने रख देने पर भी वह समझ नहीं पायेगी कि मैंने इसमें उसी के बारे में लिखा है। वह समझ नहीं सकेगी कि इन नन्हें-नन्हें काले-काले अक्षरों में सिर्फ उसी की बातें समायी हुई हैं और समायी हुई है, एक नारी-मन की अनगिनत वेदना की आकुलता।

यह कहानी खुद नायिका की जबान से मैंने सुनी थी। वह एक वर्षा-भीगे दिन की बात है। कहानी की नायिका है चाय-बागान के एक मजदूर की लड़की। नायक है चाय-बागान का एक मैनेजर। तुम सोच रही हो, यह भी भला कौन-सी नयी कहानी हुई ? अब बागान के मैनेजर के बंगले में वह मजदूर लड़की किसी काम से पहुंचेगी। पहले दिन उसे देखकर मैनेजर पूछेगा, "तेरा नाम क्या मिनी है ?" उसके दूसरे ही दिन बागान की महिला क्लर्क को बुलाकर निर्देश

देगा कि उस लड़की को उसके बंगले में काम करने के लिए भेज दिया जाये। लड़की बंगले में आकर काम करेगी। एक-दो दिन बाद लड़की मैनेजर के करीब आ जायेगी और एक दिन मौका पाकर उस लड़की को मैनेजर...।

ठहरो, तुम ठीक ही सोच रही हो, इसी तरह एक दिन उस मजदूर लड़की के शरीर का रंग तितली के पंखों के रंगों की भांति ही मैनेजर के हाथ के स्पर्श से उड़ जायेगा। और तब शायद दो राहें सामने होंगी। एक, उस लड़की से मैनेजर को शादी कर लेनी होगी और दूसरी, रकम देकर उसका मुंह बंद करके किसी और से शादी करा देनी होगी। ऐसी कहानियां तुमने काफी पढ़ी हैं। चाय-बागान की मजदूर लड़की के साथ मैनेजर के अवैध प्रणय या संसर्ग या शादी की कहानियां तुमने काफी पढ़ी होंगी। परंतु जो कहानी मैं तुम्हें सुनाना चाहता हूं, वह प्रेम-कहानी नहीं है। सिर्फ शरीर के आकर्षण की झलक इसमें नहीं है। यह तो नारी-हृदय की अकथनीय मूक वेदना की एक जीवंत गाथा है। मैं चुपचाप वह कहानी सुनता गया था। सोचा भी न था कि उसे लेकर कभी कहानी लिखूंगा। मेरे सामने दो बिस्तरों में से एक पर एक छोटा बच्चा सोया था। दूसरे बिस्तर के एक सिरे पर इस कहानी की नायिका बैठी हुई थी। रंगीन साड़ी पहने। नाक की एक ओर एक छोटा-सा सोने का नकफूल, कपाल पर बड़ी-सी सिंदूर की बिंदी, देखने में अपरूपा न होने पर भी एक बार देखने पर फिर से देखने की इच्छा जगाने वाले चेहरे की वह लड़की मेरे सामने बैठी हुई थी। और धीमी आवाज में आधी असमिया और आधी मजदूरों में प्रचलित भाषा में वह अपनी कहानी सुना रही थी। उससे करीब दो हाथ दूर बैठा मैं सुनता गया था, बिना कोई सवाल किये। सिर्फ बिलकुल आखिर में, उठकर आते समय, मैंने पूछा था...क्या पूछा था, वह अभी रहने दो, बाद में बताऊंगा। पहले उस लड़की से भेंट कैसे हुई यह बताता हूं, सुनो –

डुमडुमा[1] से कुछ मील दूर का एक चाय-बागान। मेरा जाना-पहचाना चाय-बागान है वह। छुट्टियों में घर जाते समय यों ही घूमने वहां जाऊंगा – यह बात मैंने मां को बता दी थी। व्यक्तिगत रूप से उस चाय-बागान के प्रति मेरे अंदर एक दुर्बलता भी थी। मेरे बचपन के हजारों सपनों को उस बागान के छोटे-से परिवेश में पंख लगे थे। मान लिया जाये, उसका नाम है – नाहरणि। एक छोटा-सा चाय-बागान। सिर्फ डेढ़ सौ मजदूरों की आबादी वाला वह चाय-बागान शहर से दूर था। रेलवे स्टेशन से भी काफी हट कर था। एक हेड क्लर्क, एक सेकेंड क्लर्क, दो मुहर्रिर, और कुछ मजदूर सरदारों को मिलाकर उसका कार्यालय था। बागान के एक सिरे पर एक छोटा-सा स्कूल और उसके पास ही फुटकर सामानों की एक दुकान थी। 'कल-घर' यानी चाय के कारखाने के किनारे कतारों में 'बाबू लाइन' यानी बाबुओं के निवास बने हुए थे। उनमें हेड क्लर्क और डाक्टर के दो मकान कुछ विशेष ढंग के थे। बागान की उत्तरी ओर विशाल परिसर वाला सुंदर फूल की छत वाला एक 'चा बंगला'[2] दिख पड़ता था, जिसके सामने नारियल के दो पेड़ थे। वह इस बागान के मैनेजर का बंगला है। उसके सामने

1. ऊपरी असम का एक कस्बा।
2. छोटे- से मचान पर बंगला।

एक बड़ी-सी फुलवारी थी, जिसमें रंग-बिरंगे अनेक मौसमी फूल खिले हुए थे। मैनेजर के बंगले के पिछवाड़े कुछ दूर जाकर नाहरणि चाय-बागान का कल-घर था। कल-घर से कुछ हटकर मजदूर-बस्ती थी। कार्यालय के किनारे की खुली जगह में हर शनिवार को एक छोटा-सा बाज़ार लगता था। वेतन के दिन नाहरणि बागान के मजदूरों के दिल में मादल बजने लगते। जब उस दिन हर्षातिरेक में हंडिया-पानी[1] पीकर मजदूरों के घर-घर में शाम को झूमर का ज्वार उमड़ता, अश्लील बातचीत सुनायी पड़ती, तरुण-तरुणियों को एक-दूसरे की छाती की गरमी की मौज़ लेते देखा जाता, तब मेरे हृदय में कंपन-सा होने लगता।

इसी नाहरणि बागान में मैं अपने एक रिश्तेदार के घर गया था। मेरी दो छोटी बहनें साथ थीं। दिन के दस बजे हम रेलवे स्टेशन से नाहरणि बागान की कोयले और कंकड़वाली टेढ़ी-मेढ़ी कच्ची सड़क से पैदल चल पड़े थे। आते समय मां ने बताया था कि नाहरणि बागान की हालत पहले से काफी बदल गयी है, पहले जैसी अच्छी नहीं। उसकी समृद्धि में उतार आ गया है। और बागान के मैनेजर के बारे में यह बता दिया था – सुना गया है कि उसने एक मजदूर लड़की को रख लिया है। मुझे जरा भी अचरज नहीं हुआ था। अचरज होने लायक कोई बात भी न थी। मगर मां ने जब एक दूसरी ही कहानी सुनायी तो अचरज हुए बगैर नहीं रहा। डुमडुमा में हर रविवार को एक बड़ा बाजार लगता था, जहां आसपास के चाय-बागानों के मजदूर प्रायः खरीद-फरोख्त करने आते थे। नाहरणि के मजदूर भी आते। एक रविवार को हमारे यहां एक लड़की आयी – मजदूर लड़की। मां ने देखते ही पहचान लिया था, वह थी नाहरणि बागान के बुधन सरदार की बेटी। चाय-बागान में जब पिताजी की दुकान थी, तभी से बुधन सरदार के साथ हमारा परिचय था। उसी नाते अब भी कभी-कभी बुधन सरदार या बुधन की पत्नी डुमडुमा आते तो हमारे यहां भी आते। अपनी बाड़ी की साग-सब्जी, जो होता, ले आते। दो बातें करके, कुछ देर बैठकर चले जाते। उस दिन भी मां ने बुधन सरदार की बेटी को बैठने के लिए एक मूढ़ा दिया। लड़की अपने सिर पर जो गठरी ले आयी थी, उसे आगे बढ़ा दिया। गठरी को अंदर ले जाकर मुन्नी वगैरह ने खोलकर देखा, उसमें कुछ खेखसे, दो औटेउन[2], कुछ हरी मिर्च और लगभग आधा सेर कच्ची इमली थी। मां ने उससे 'कौन-सी चीजें बाजार से खरीदी हैं,' 'साथ और कौन आया है' आदि बातें पूछ-ताछकर उसे चाय दी। वह चाय पी ही रही थी, तभी पिताजी आ गये। आते ही मां पर वे बड़े नाराज हुए। बात समझकर मां को भी बड़ी शर्म आयी। पिताजी ने बताया था, कि वह मैनेजर की पत्नी है। उसे उस तरह वे बाहर बिठाकर मजदूर आदि बाहरी लोगों की तरह अलग रखे अलमुनियम के गिलास में चाय देना कोई अच्छी बात नहीं है। मां ने लड़की के पास जाकर कहा था – "मिनी, तेरे बारे में पता नहीं था। बुरा न मानना।" हंसती हुई बुधन सरदार की बेटी ने कहा था कि वह बुरा नहीं मानती, बिलकुल बुरा नहीं मानती। उसने यह भी कहा था – "मैं भले ही साहब की पत्नी हूं, पर तुम लोग हमेशा मेरे सामने वही पहले जैसे ही रहोगे।"

---

1. एक तरह की घरेलू शराब।
2. कैथ या कपित्थ का फल, जो खट्टा होता है।

कुछ समय रुककर बुधन सरदार की बेटी ने मां से अपनी शादी के बारे में बताया था, अपने गले की सोने की जंजीर, कान की इयरिंग, हाथ की चूड़ियां आदि दिखलायी थीं और बताया था कि पिछले महीने साहब ने ही सब बनवाया है। आजकल साहब उसका ज्यादा घूमना-फिरना पसंद नहीं करते, आज दो दिन हुए साहब डिब्रूगढ़ गये हैं, इसी लिए साथ की कुछ लड़कियों के साथ वह भी बाजार में घूमने आयी है। उसके बाद चाय का गिलास खुद धोकर, छतरी को कंधे पर डाल देवी की भांति तेज कदमों से बुधन सरदार की बेटी... नहीं, नहीं, नाहरणि बागान की मेम साहब निकल गयी थी।

नाहरणि बागान की इस नयी मेम साहब की सामान्य-सी घटना सुनकर पता नहीं क्यों, मन के किसी कोने में सन्-सन् करने लगा था। उस सामान्य अनपढ़, बेकार बैठी तरुणी की इस अद्‌भुत मनोवृत्ति ने मुझे मुग्ध कर लिया था। इसलिए मैं मन ही मन सोच रहा था, चाहे जैसे भी हो, जिस उपाय से क्यों न हो, नाहरणि बागान की मेम साहब को मैं जरूर देख आऊंगा। आते समय मां ने कहा था – "अगर वक्त निकल सके, तो मैनेजर के यहां एक बार हो आना।" और मैं सोच रहा था, वक्त रहे या न रहे मैं जरूर जाऊंगा।

मैं गया था, मुलाकात भी हुई थी, बातें भी की थीं। नाहरणि बागान की मेम साहब के साथ मैंने काफी समय बिताया था। बहनों को बाहर के एक कमरे में बिठाकर एक कोने में रखा रेडियोग्राम उसने बजा दिया था। इसके बाद उसने मुझसे बातें की थीं। मैं स्तब्ध-सा सुनता रहा। बाहर बारिश हो रही थी – पहले धीमी-धीमी थी, पर बाद में जोर की होने लगी। न जाने क्यों वह कोई छिपाव-दुराव रखे बगैर बातें कहती जा रही थी, मानो एक बिलकुल निजी जान-पहचान के आदमी से कोई अपने मन का गहन निबिड़ समाचार दे रहा हो।

हम जब नाहरणि बागान के मैनेजर के बंगले के बाहर दरवाजे पर पहुंचे, तो देखा कि उस विशाल हरे रंग के गेट पर ताला पड़ा हुआ है। गला ऊंचाकर कई बार अंदर की ओर देखा, पर कोई दिखायी नहीं पड़ा। लगता था कि मैनेजर का वह विशाल बंगला एक कायाहीन छाया की भांति खड़ा है। सामने की राह को छोड़कर हम पिछवाड़े से चक्कर लगाकर जाना चाहते थे, तभी किसी की आवाज सुनकर रुक गये। बंगले के पीछे की एक झोंपड़ी के बरामदे में खड़ा एक लड़का पूछ रहा था, हम किसे ढूंढ़ रहे हैं ? मैं आगे बढ़ गया। कहा – "मैनेजर से मिलना चाहते हैं।" लड़का बोला, "मैनेजर साहब नहीं है, सुबह ही डिगबोई चले गये हैं। शाम को ही लौटेंगे। अगर आप मिलना चाहें तो कल आना होगा।"

उसी क्षण झोंपड़ी के पास से "कोन लागे रे" यानी कौन आया है रे ? कहती हुई एक औरत निकल आयी। बहन ने मेरे शरीर में चिकोटी काटकर कहा – "वही मैनेजर की पत्नी है !" हमारे कुछ कह पाने के पहले ही बुधन सरदार की बेटी हमें पहचानकर आगे बढ़ आयी। मेरी बहनें भी आगे बढ़ गयीं। मैं पीछे रह गया। मेरी ओर देखते हुए उसने सुंदर असमिया में पूछा, "भैया हैं न ?" मैंने उसे नमस्कार किया। उसने भी नमस्कार में हाथ जोड़े। फिर हमें अंदर ले गयी।

एक बड़ा-सा फैला हुआ कमरा। चारों ओर दरवाजे-खिड़कियां बंद। सिर्फ पिछवाड़े का दरवाजा,जिससे होकर हम अंदर गये थे,खुला था। कमरे में दो बिस्तर लगे थे। पास-पास। एक कोने में एक छोटी-सी आलमारी,एक अलगनी। दूसरे कोने में एक स्टोव। कुछ रसोई बनाने के बर्तन आदि। एक मिट्टी का घड़ा। मैं विस्मय से कमरे के चारों ओर देख रहा था और सोच रहा था – क्या यही नाहरणि बागान की मेम साहब का कमरा है ? एक बिस्तर पर सात-आठ महीने का एक बच्चा लस्त-पस्त पड़ा था। दूसरे बिस्तर पर करीब दो साल का एक बच्चा एक प्लास्टिक के पुतले से खेल रहा था। कमरे के अंदर से हल्की-सी बदबू आ रही थी, पर वह कहां से आ रही है,मुझे पता नहीं चला। दरवाजे-खिड़कियों पर पर्दे थे,पर शायद कभी उन्हें हाथ से छुआ नहीं गया था। धूल-धक्कड़ से वे सब मैले हो गये थे। मुझे उसने एक कुर्सी पर बिठलाया,उसके बाद अपनी बात कहने लगी।

उसने जो कहा था,वही तुमसे कहना चाहता हूं। सच कहा जाये,तो मुझे कुछ चोट लगी थी। नाहरणि बागान की मेम साहब को कम से कम बिलकुल ऐसे अजीब-से वातावरण में पाने की आशा मुझे नहीं थी। या उस तरह के एक अजीब-से परिवेश में मैं उसे पाना नहीं चाहता था। मन ही मन मैं कुछ क्षुब्ध भी हो उठा था। सोच रहा था,आखिर इन सबके बीच घुसने की मुझे जरूरत ही क्या थी ? जल्दी ही वहां से उठ आना चाहता था,मगर मेम साहब ने रोक लिया। "कुछ खाये बगैर आप नहीं जा सकते।" हमारे सामने ही स्टोव जलाकर चाय और कुछ जलपान बनाकर उसमें हमें दिया। और उसी मौके पर मुझसे बहुत सारी बातें कह डालीं...बहुत-सी बातें। आज तुम्हारे लिए वही सब बातें लिखने बैठा हूं तो मेरी सारी भावनाएं उलझ-पुलझकर गड्ड-मड्ड हो रही हैं।...कहां से,कैसे शुरू करूं,समझ में नहीं आ रहा है।.. उस दिन नाहरणि चाय-बागान की मेम साहब की कही हुई बातें आज मैं अपने शब्दों में बयान कर रहा हूं। सुनो –

मान लो,नाहरणि बागान की मेम साहब,बुधन सरदार की बेटी का नाम है सोनिया। उन दिनों सोनिया की उम्र तितली की तरह उड़ने की उम्र थी। पतंग के पंखों जैसी चंचल उम्र। नाहरणि चाय-बागान में कितनी ही मजदूर-लड़कियां थीं,पर उन सबमें सबसे खूबसूरत थी सोनिया। यह बात सोनिया की हम-उम्र लड़कियां ही कहती थीं,ऐसी बात नहीं। चाय-बागान के बाबू-मुहर्रिर से लेकर सभी कहते थे। बेटी की इस प्रशंसा से बुधन सरदार की छाती फूल उठती थी। मन ही मन सोनिया के बारे में बुधन सरदार बहुत कुछ सोचा करता था। पर सोनिया के रूप की प्रसिद्धि से सबसे ज्यादा गर्वित थी सोनिया की मां,लक्ष्मी। हालांकि उसकी कोई वजह नहीं थी,यह बात भी नहीं है। लक्ष्मी खुद भी सुंदर थी। वैसा रूप कम ही दिखायी देता है। बहुतों का कहना था कि लक्ष्मी सोनिया से भी ज्यादा रूपसी है। जो भी हो,लक्ष्मी अपनी बेटी सोनिया के रूप की लोगों के सामने बड़ाई करती थी और दूसरी मजदूर-लड़कियों की भांति सोनिया को चाय-बागान में काम नहीं करने देती थी। सोनिया घर में यों ही पड़ी रहती। अजीब लगने पर भी यह बात सच है कि जब सुबह-सुबह,उसकी या दूसरी मजदूर-बस्तियों की लड़कियां कतारों में 'कामजारी' में निकल जातीं,उस समय सोनिया बेर के पेड़ से टंगे

पिंजड़े के तोते को मिर्च खिलाकर बातें करती रहती। सोनिया के इस रूप की ईर्ष्या मे अनेक लोगों की छाती जलती थी। मगर उनकी जलन से बुधन सरदार डरता नहीं था, परवाह नहीं करती थी लक्ष्मी।

वैसे सोनिया खुद इस बात को ज्यादा पसंद नहीं करती थी। काम-काज के बगैर यों ही दिन भर बैठे रहना सोनिया को बड़ा कष्टदायक लगता, मगर विरोध करने की हिम्मत न थी। किसी तरीके से बाप से यह बात बताये भी तो मां से बताने में उसे डर लगता था। इसलिए वह चुप रहती थी। हालांकि मां से उसे डर लगता हो, वास्तव में ऐसी बात नहीं थी। वह मां को नापसंद करती थी। उसकी नापसंदगी की वजह थी शादी की चर्चा। सोनिया की शादी। लक्ष्मी की बड़ी इच्छा थी कि अगली होली से पहले-पहले सोनिया की शादी हो जाये। उसके लिए लक्ष्मी बिसाकुपि चाय-बागान में एक लड़का भी पसंद कर आयी थी। लक्ष्मी की उतावली होने के बावजूद इतनी जल्द सोनिया को निकाल देने की बुधन सरदार की इच्छा नहीं थी। कभी लक्ष्मी अगर वह बात चलाती भी तो बुधन सरदार कहता कि सोनिया के चले जाने पर वे बिलकुल अकेले पड़ जायेंगे। इस बात पर लक्ष्मी बड़ी नाराज हो जाती। मगर सोनिया को अच्छा लगता। इतनी जल्दी किसी एक का होकर बंध जाने की उसकी इच्छा न थी। शादी होने के दूसरे साल एक बच्चा होगा। उसके बाद फिर एक, उसके बाद... सोनिया यह बंधन नहीं चाहती थी। जरा-सी खुली हवा, कुछ चंचल समय का स्पंदन, किसी की जरा-सी हंसी– बस इतना ही उसके लिए काफी था। और जब कभी न कभी शादी करनी ही होगी, तो अभी इतनी जल्दबाजी की भला क्या जरूरत है ?

लेकिन जरूरत है, यह बात सोनिया को कुछ दिन बाद ही समझ में आ गयी। और यह जरूरत किसकी वजह से आयी है, यह भी समझ में आ गया। घटना कुछ इस तरह थी – सोनिया के कानों में यह बात आयी थी कि बागान का मैनेजर उसकी मां को, समय-असमय का ध्यान रखे बगैर, जब-तब दफ्तर या बंगले में बुला भेजता है। काम का बहाना बनाकर मां भी जाया करती। इस बात पर पहले किसी ने ध्यान नहीं दिया था, मगर उस दिन शनिवार को हाट-बाजार के बाद सोनिया की बस्ती की कुछ औरतों और पुरुषों ने देखा था कि सात नंबर बस्ती के पक्के नलकूप के पास शाम को मैनेजर लक्ष्मी से बात कर रहा है। हालांकि लोगों को देखते ही वे दोनों हट गये थे।

यह बात सोनिया ने हमजोली लड़कियों की जबान से सुनी थी। सोनिया समझ गयी थी कि कुछ होने ही वाला है। बागान के मैनेजर को वह कभी श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखती थी। न जाने क्यों, चाय-बागान के मैनेजर को देखते ही सोनिया समझ गयी थी, यह आदमी अच्छा नहीं है। सोनिया की नजर में यह बात भी आयी थी कि उसकी मां लक्ष्मी का आजकल बनाव-सिंगार बढ़ गया है। अपने को वह ज्यादा साफ-सुथरी और चमकीली बनाये रखना चाहती थी। खरीदी हुई बोडिस से छातियां कसकर और डोरी से साड़ी को कमर में बांधकर वह 'कामजारी' में जाया करती। इसलिए उस घटना की बात सुनकर सोनिया को यद्यपि अचरज नहीं हुआ था, तो भी उसे असीम दुख पहुंचा था। अपने भोले-भाले बाप को याद कर सोनिया

कभी-कभी सोच में पड़ जाती थी। मगर वह लाचार थी। मां के सामने बात करने की हिम्मत उसमें नहीं थीं।

मगर असल घटना घटी थी कुछ दिन बाद। उस दिन रविवार था। शाम को डुमडुमा की हाट से मां और बाप लौट आये थे। घर आकर बाप अपने एक साथी के साथ फिर हंडिया पीने के लिए चार नंबर बस्ती में चला गया था। इधर सोनिया और लक्ष्मी खाना खाकर सोने की तैयारी करने लगी थीं। तभी लक्ष्मी ने अचानक सोनिया से कहा कि उसका बाप आकर रात को बाहर ही पड़ा रह सकता है, इसलिए सामने की ओर के कमरे में वह खुद सोयेगी, सोनिया अंदर ही सोये। सोनिया मान गयी थी। क्योंकि वह जानती थी, शराब पीकर बाप रात को घर लौट भी आये, तो भी अगर कोई उसे पकड़कर अंदर न सुला दे तो वह बाहर बरामदे में ही पड़ा रहेगा। फिर भी किसी को परेशान करने के लिए पुकारेगा नहीं।

कितनी रात हुई थी, सोनिया को याद नहीं। किसी आवाज से उसकी नींद खुल गयी। कुछ क्षण बिस्तर पर ही चुपचाप पड़ी रहकर टट्टर के छेदों में से झांककर उसने बाहर देखा। बरामदे में खड़ा वह आदमी और कोई नहीं, बागान का मैनेजर ही था। धीमी आवाज में वह लक्ष्मी का नाम पुकार रहा था। कुछ देर तक कटे पेड़ की भांति सोनिया वहीं पड़ी रही। छेद से आंखों को हटाना चाहते हुए भी हटा नहीं पायी। बाहर की झीनी चांदनी में सोनिया ने देखा, मैनेजर एक खंभे से टिका हुआ है। कुछ क्षण बाद उसने फिर लक्ष्मी को पुकारा। सोनिया समझ गयी, यह मां की पहले से रची योजना थी। क्योंकि बाप के निकल जाने के बाद थोड़ी देर बाद लक्ष्मी भी बाहर गयी थी। शायद तभी...पर मां उठकर दरवाजा नहीं खोल रही है, यह देखकर सोनिया चकित हुई। अंदर के दरवाजे को जरा-सा ठेलकर उसने देखा, मां सो रही है। उसे कब नींद आ गयी, खुद उसे ही पता नहीं। दिन भर की थकान, उस पर शराब।... सोनिया की नजर पड़ी, मां वही रंगीन साड़ी पहने सो रही है। नाक से धीमी-धीमी-सी आवाज निकल रही थी, शायद हाथ छाती पर पड़े हैं।

सोनिया को लगा, वह कितनी असहाय है! उस हालत में उसे जोर से चीखकर मां को जगा देना चाहिए था, पर उसने वैसा नहीं किया। पड़ोसियों को पुकारकर वह वहां हलचल मचा दे सकती थी। यह भी उसने नहीं किया। मां के सामने मैनेजर से सवाल कर उसे परेशान कर सकती थी। पर यह भी नहीं किया। अच्छी तरह से कपड़े पहनकर सिर पर एक चादर डालकर वह ऐसे बाहर निकल आयी कि मां की नींद न टूटे। बाहर से दरवाजा बंदकर सोनिया जैसे ही मुड़ना चाहती थी, मैनेजर ने पीछे की ओर से उसे बांहों में भर लिया और सोनिया के रोकने से पहले ही उसे चूम लिया। उसके बाद वह और कुछ करना चाहता था, पर सोनिया ने कुछ करने का मौका ही नहीं दिया। मैनेजर का हाथ पकड़कर वह बाहर निकल आयी। बाहर आकर कहा कि वह साहब के बंगले पर जाना चाहती है।

उस रात नाहरणि चाय-बागान के मैनेजर के बंगले की ओर जाने वाली सड़क पर अगर तुमने या मैंने नजर डाली होती तो दिखायी देता कि चाय के पौधों के बीच से होकर जाने वाली उस सड़क पर आगे-आगे चाय-बागान का मैनेजर और उससे कुछ दूर हटकर एक औरत चली

जा रही है । बंगले पर पहुंचकर साहब अपने कमरे में उस औरत को बुला ले गया । दरवाजा बंदकर बत्ती जलाना ही चाहता था, तभी उस औरत ने रोक दिया । उसके बाद नाहरणि चाय-बागान के उस 'चा बंगले' के अंधेरे कमरे की छाती पर एक चिरंतन इतिहास की रचना हो गयी । सोनिया ने जो कुछ कहा वह इस प्रकार था :

"मैनेजर मुझे लक्ष्मी समझकर बहुत कुछ कहता गया था । अंधेरे में ही मुझे प्यार जता कर दो-तीन बार उठकर शराब पी आया, फिर मेरे समीप आ गया । मैनेजर की बातों से मुझे पता लग गया कि वह रात मां की सर्वनाश की रात थी । साहब ने मुझसे कहा – "लक्ष्मी, मैं तुझसे शादी नहीं करूंगा, मगर मेरे पास तुझे हमेशा आना पड़ेगा । बोल, आयेगी न ?" मैंने सिर हिलाकर जताया — आऊंगी । उसके बाद मैं अपना अस्तित्व भूल गयी थी, एक सर्वग्रासी राक्षस की भांति एक दृढ़ बंधन ने मुझे बिलकुल निःशेष कर दिया था ।"

इतना कहकर मेम साहब कुछ ठहर गयी । मैं समझ रहा था, यह साहब से सोनिया का निर्मम बदला है । आभिजात्य के गर्व से फूले हुए जिस सुविधावादी ने एक विवाहित नारी की जिंदगी बरबाद करने को सोचा था, उस आदमी से अठारह साल की एक मजदूर लड़की ने बदला लिया था । मगर कैसे ? बताता हूं सुनो –

दूसरे दिन सुबह ही नाहरणि बागान के मैनेजर को पता चला कि उसने गलती की है । लक्ष्मी समझकर जिसके साथ उसने रात बितायी, वह लक्ष्मी नहीं, लक्ष्मी की बेटी सोनिया है । होशियार मैनेजर ने तरह-तरह का लालच दिखाकर सोनिया को समझाने की कोशिश की थी, मगर सोनिया ने कोई बात नहीं सुनी । उसने न केवल मैनेजर की कोई बात अनसुनी की, बल्कि सुबह होते ही बंगले में काम करने वाले सभी लोगों से उसने कह दिया कि मैनेजर ने उसकी इज्जत लूटी है । कुछ ही घंटे में नाहरणि बागान में मैनेजर के बंगले के सामने अनेक लोग इकट्ठे हो गये । सबने मांग की कि सोनिया से साहब को शादी करनी ही पड़ेगी, नहीं तो...

आखिर मैनेजर सोनिया से शादी करने के लिए बाध्य हो गया । सब लोग अपने घर चले गये । सबने सिर्फ एक ही बात कही थी – "बुधन सरदार की औरत का कोई दोष नहीं – उसकी बेटी के कारण ही यह सब हुआ था । लक्ष्मी का नसीब अच्छा है । लक्ष्मी की बेटी का नसीब अच्छा है ।" मगर किसी ने यह नहीं समझा कि अपनी मां की सम्मान-रक्षा के लिए सोनिया ने यह नफरत भरी जिंदगी अपना ली है, अपना भविष्य विधाता के हाथ विसर्जित कर दिया है ।

अपनी कहानी खत्मकर सोनिया ने लंबी सांसें ली थीं । उसे रोना चाहिए था, मगर रोयी नहीं । कुछ हंसकर बिस्तर पर सोये नन्हें बच्चे की ओर इशारा करके कहा था — "अ एकदम बापेर मतन लागे ।" यानी, वह बिलकुल अपने बाप जैसा है । लस्त-पस्त सोये हुए बच्चे की ओर मैंने देखा – एक शिशु का निष्पाप चेहरा । सोनिया ने बताया, यह सही है, कि साहब उसे प्यार नहीं करता, मगर उससे नफरत भी नहीं करता । साहब उसका बनाया कुछ नहीं खाता । उसके लिए यह अलग कमरा दे दिया है । पर दिन में कभी वह इधर नहीं आता । छह साल और तीन साल के जो दो बच्चे हैं, वे हमेशा साहब के साथ रहते हैं । सोनिया के पास वह उन्हें

ज्यादा आने नहीं देता। आज करीब पांच साल से वह इस बंगले से बाहर नहीं गयी है। यहां तक कि पिछले साल दुर्गापूजा के अवसर पर खून की उल्टी करके उसकी मां की मौत होने पर भी उसे जाने नहीं दिया गया। बाप तो यह बागान छोड़कर काफी दिन पहले कहीं चला गया है। कहां गया है, यह मेम साहब को पता नहीं।

बाहर बारिश रुक गयी थी। मैं चलने के लिए खड़ा हो गया। मेरी ओर देखते हुए सोनिया ने कहा था – "यह सब सुनकर क्या होगा ? आप सब कुछ भूल जायेंगे।" मैंने कोई जवाब नहीं दिया। बहनों को साथ लेकर बाहर आते वक्त मैंने सोनिया से पूछा था – "बच्चे आपसे प्यार करते हैं न ?" सोनिया ने हंसकर कहा था – "हां, करते हैं।" मैंने समझा था, वह हंसी मातृत्व के गौरव की हंसी है। सामने के गेट से हमारे निकलने के लिए उस गेट को खोल देने हेतु उसने एक आदमी को बुलाया और खुद भी हमारे साथ आगे बढ़ आयी। बाहर फुलवारी में दो बड़े प्यारे बच्चे तितली पकड़ने का नेट लिये इधर-उधर दौड़ रहे थे। अपरिचित लोगों को देख बड़ा बच्चा अचानक रुक गया। मैंने उसे हाथ के इशारे से बुलाया। पूछा – "क्या नाम है तुम्हारा ?" उसने बढ़िया अंग्रेजी में नाम बताया। "कहां पढ़ते हो ?" पूछने पर उसने बताया – "पिताजी घर पर ही पढ़ाते हैं। स्कूल नहीं जाता।" मैंने बच्चे को प्यार करके दूर खड़ी नाहरणि बागान की मेम साहब को दिखलाकर आहिस्ता से पूछा – "हू इज शी, माई बॉय ?"

सामान्य भाव से हंसकर बच्चा सोनिया के पास दौड़ गया और उसकी गोद में चढ़कर चीख पड़ा, "आया, प्लीज़ हेल्प मी। ...वह तितली मुझे पकड़ दो न।"

गेट बंदकर हम वहां से चले आये।

रोग

अपूर्व शर्मा

उस दिन शाम को अपनी पुरानी, टूटी साइकिल को बाहर से लाकर बड़े कमरे में दीवार से टिका, कमजोर, अनिश्चित कदमों से रोषेश्वर पंडित हाथ-टूटी काठ की कुर्सी पर जा बैठे; जेब से एक बीड़ी निकाली और बत्ती से उसे जला लिया। दो-तीन कश लेने के बाद अत्यंत सहज भाव से, उन्हें कटोरी भर चाय याद आयी। रोषेश्वर पंडित का बुढ़ापा आ चुका था और उनका स्वास्थ्य बुढ़ापे की धूप में जलकर मुरझा चुका था। अब वे निरीह धूप के धुएं जैसे शांत थे। परंतु उनका ऊंचा कद, चौड़ा माथा, सफेद चमकते दांत, और बड़ी-बड़ी सुंदर मूंछों के पीछे छिपे जवानी के दिनों में किसी दुर्धर्ष अभियान के सत्यकथा शैली के नायक के रूप में उनकी कल्पना करना मुश्किल नहीं है। कभी-कभी दुनिया से परे आकाश में डूबे-खोये हुए-से वे ऐसे दिखायी पड़ते, जैसे वे शून्य में कुछ विच्छिन्न घटनाओं की खोज में व्यस्त हैं और उन घटनाओं को किसी ब्लैकबोर्ड पर अर्थपूर्ण तरीके से – क्रासवर्ड पजिल या वर्ग पहेली की तरह मिलान के प्रयोग में जुटे हुए हैं। उसके बाद आकाश से उतरकर वे बीड़ी जलाते, क्योंकि शायद अपने उस प्रयास में वे हताश और क्लांत हो चुके हैं। घटनाएं अस्पष्ट, उलझी हुई और बेमेल हैं। उनके अनेक खोये हुए टुकड़े मिलते नहीं। संप्रति उनकी दृष्टि में एक शून्य है (यानी कहीं टिकी नहीं है) और वे खुद भी शून्य में खोये हुए हैं। फलस्वरूप लगता है कि वे चिंतन से थक चुके हैं और धूम्रपान में भी उनका मन बिलकुल नहीं लग रहा है।

शाम उतरती चली आ रही थी। कमरे के अंदर एक धीमी, मटमैली बत्ती जल रही थी, जिससे रह-रह कर फट्-फट् आवाज निकलती थी। उसकी रोशनी परोक्ष रूप से कमरे के अंधेरे को ही ज्यादा उजागर कर रही थी। कमरे के वातावरण में निर्ममता की सांस और बोझिल हवाएं भरी हुई थीं, क्योंकि बाहर के सारे परि-पार्श्व की हवाएं बोझिल थीं। चारों ओर एक सन्नाटा छाया हुआ था। मेघविहीन आकाश भारी-भारी-सा लग रहा था। कहीं से एक सड़ांध, जैसी कि मृतक को धोते वक्त निकलती है, किसी मरे हुए जानवर की बदबू में मिलकर तिरती आ रही थी। ऐसे में रोषेश्वर पंडित को कटोरी भर चाय की याद आयी। इस याद में, याद में नहीं, बल्कि आग्रह में उनकी थकान, लंबे अरसे की आदत और वक्त की मांग छिपी हुई थी। परंतु जवानी के किसी प्रिय मनोरंजन (जो अब अतीत हो चुका है और जिसका सिर्फ जायका भर स्मृति में शेष है) जैसे जुआ या संगीत-चर्चा या शिकार की तरह वह याद भी अब दुख देने आ पहुंची है। क्योंकि आज चार-पांच दिनों से उनके यहां, सिर्फ उनके यहां ही क्यों, समूचे

गांव में, चाय जैसी चीज भी अदृश्य हो गयी है। पिछले दो सप्ताह की प्रचंड वर्षा से रडन नै[1] की बाढ़ ने आज प्राय: एक सप्ताह से गांव भर के लोगों के घरों को – किसी का आंगन, तो किसी का बरामदा, तो किसी के कमरों तक को – पानी से डुबो रखा है। यद्यपि उनका गांव काफी ऊंचाई पर है, और पास के आरिभडन, लेतेकुबारी, गेलेकी आदि हर साल बाढ़-पीड़ित होते रहे हैं, पर अपने गांव में कभी बाढ़ का पानी घुसा हो ऐसा उन्हें याद नहीं आता। परसों से पानी सूख रहा है। फिर भी रास्तों पर से बिलकुल उतरा नहीं है। लेतेकुबारी में पानी घटा है, गेलेकी अब भी डूबा हुआ है। ऐसी अभूतपूर्व स्थिति में उनके गांव के एकमात्र व्यापारी भोगेश्वर की दुकान की लगभग सारी सामग्री खत्म हो गयी है। (घटनाक्रम से यह उल्लेखनीय है कि इस छोटे-से गांव का एकमात्र दुकानदार या महाजन भोगेश्वर रोषेश्वर पंडित का ही अनुज है। विवाह के बाद दोनों परिवारों के अलग हो जाने पर भी उन लोगों का संपर्क स्वाभाविक और स्वच्छंद है।) और दूर की बड़ी दुकान से सामान की आपूर्ति करने में या तो भोगेश्वर का ख्याल करके उन्हें असुविधा हो रही है, या इसका कारण अर्थाभाव है या इस संबंध में वे उत्साही नहीं है। कारण यह है कि गांव के अन्य लोगों को भी अर्थाभाव है, और इसका नतीजा उनके लिए बहुत बुरा होगा। रोषेश्वर पंडित्त के धूप से जले, मुरझाये, बढ़ी दाढ़ी वाले चेहरे पर एक गहरी काली छाया पड़ गयी। यह छाया यौवन के अकृतार्थ होने की वेदना के कारण तीस साल से ऊपर की किसी भी असुंदरी कुमारी के चेहरे पर दिखाई देगी। लगता था, रोषेश्वर पंडित अपने पौरुष को ही धिक्कार देने के लिए उद्यत होकर पुन दुविधाग्रस्त हो गये हैं। कोई राह न सूझने पर उन्होंने बीड़ी का कश लेकर नाक-मुंह से ढेर-सारा धुआं छोड़ा। उनके मन का चाय का कटोरा शून्य में धुएं जैसा ही विलीन हो गया। इस समय बाहर के वातावरण में व्याप्त आदिम, निष्ठुर और क्षमाहीन प्रकृति के कटु-निश्वास, युद्ध काल में रात को विदेशी सैनिकों के बूटों की आवाजों जैसे भयावह और अविश्वसनीय लग रहे थे, जिसके फलस्वरूप रोषेश्वर पंडित अपने हृदय में एक विचित्र निष्पेषण और प्रकृति के सामने अपनी असमर्थता का अनुभव कर रहे थे। तीखी, उमस भरी गरमी पड़ रही थी। कल की तरह आज भी धूप तेज थी। गरमी में एक अनिश्चय भरा हुआ था। संकट की बू थी। शाम से ही बादल छाये हुए थे, पर बारिश नहीं हुई थी।

बाहर से किसी के खांसने की आवाज आयी। पंडित ने दरवाजे की ओर देखा। महीराम फर्श पर भीगे पैरों की छाप डालता अंदर आ गया। नाटे कद का, पुष्ट शरीर, अधेड़ उम्र का, सख्त चेहरे पर बढ़ी दाढ़ी, बाल झड़कर विरल, शरीर पर गंजी, और घुटने के ऊपर तक धोती। महीराम की आंखों में विमूढ़ता का भाव था, मगर लगता था कि वह सामयिक है, क्योंकि उसे अपनी भुजाओं पर विश्वास है। वह नामी किसान है। उसकी विमूढ़ता स्वाभाविक है, क्योंकि उसकी खेती अब सहज शांत भाव से पानी के तले पड़ी हुई है। उसे पता नहीं, क्रमशः निश्चित मृत्यु सामने है। मूर्खों जैसी अधपकी फसल मछलियों से खेल रही है।

"ओ...मही...बैठ।" पंडित ने कहा। बेंच को हाथ से पोंछकर महीराम बैठ गया।

1. ब्रह्मपुत्र की एक सहायक नदी।

"कहीं गया था ?"

"नहीं...घर से...पानी..." और कुछ कहने की जरूरत भी नहीं थी। महीराम के छोटे-से, रूखे-से जवाब में उसकी विरक्ति और क्रोध एक ही साथ झलक रहे थे। वस्तुतः कहने को कुछ था भी नहीं। अपना दुख, अपना क्षोभ, और अपनी लाचारी हर आदमी के सामने बिलकुल साफ थी। दूसरी ओर नुकसान का हिसाब लगाने का वक्त अभी तक नहीं आया था।

"हुं...!" रोषेश्वर ने कहा। उनके लहजे में कोई आवेग, कोई गिला-शिकवा, या कोई विद्रोह नहीं था। बल्कि उनके शब्दों में जो निर्जीवता, रूखापन ध्वनित हो रहे थे, उसमें कमरे की अंधकार-प्राय नग्नता अभिव्यक्त हो रही थी। बाहर सन्नाटा था। रात की साम्राज्ञी के अनुचर-अनुचरियां बाड़ी के कोने में बांसों की झुरमुट के नीचे आ-जा रहे थे। रास्ते के पानी में से होकर आदमियों तथा मवेशियों के आने-जाने की आवाजें आ रही थीं। रसोईघर से भी अस्फुट आवाजें आ रही थीं। सन्नाटे के बोझ तले दबने से बचने के लिए रोषेश्वर ने जेब में हाथ डालकर एक बीड़ी निकाली और महीराम की ओर बढ़ा दी। फिर जमीन से बत्ती उठाकर उसे थमा दिया। महीराम ने दांतों से बीड़ी के पिछले हिस्से को कुतरकर बत्ती के सहारे उसे जलाया। ऐसा करते समय बत्ती की लाल रोशनी उसके समीप आ गयी और लाल आभा से मंडित उसका चेहरा, सिकुड़ी आंखें और रूखा मुंह दीख पड़े। उस क्षण, महीराम का मुखमंडल किसी भागे हुए प्रवीण क्रांतिकारी की भांति दिखायी दे रहा था। रोषेश्वर एकटक उसकी ओर देखते रहे। यह दृश्य निरंतर उपेक्षित रहता है, परंतु आज रोषेश्वर अनजान में इसे देखकर विस्मित-से हुए। शायद इस दृश्य ने उसके मन में 'स्वदेशी' आंदोलन की याद जगा दी थी।...पानी के बीच से होकर किसी के आने की आवाज हुई।

"भैया जी, हैं क्या ?"

"हां, आ जा..." पंडित के कहने के साथ-साथ गांव का एक सुंदर, स्वस्थ युवक पद्म वहां आ पहुंचा और "ओ...भैया, तुम भी हो...?" कहता हुआ महीराम से कुछ हटकर बेंच पर ही बैठ गया।

"किधर गया था ?" बहुत ही धीमी आवाज में सन्नाटे को बिना कोई चोट पहुंचाये महीराम ने पूछा, मानो वह सन्नाटा, जो परिवेश को किसी सख्त बीमार की उपस्थिति का संत्रास या क्रांति की गोपनीयता प्रदान कर रहा था, उनके लिए बहुत आवश्यक था।

"यहीं आया हूं...आखिर जायें भी तो कहां ?...भैया की दुकान भी तो बंद है..." पद्म बोला। भोगेश्वर की दुकान में शाम को चलने वाली ग्रामीण बहसों और चर्चाओं, उनकी सरस मुखरता, निश्चित आनंद का मोह और दुकान बंद रहने से होने वाली असुविधा, निर्जीव-सी शाम, पानी, गरमी, संकट और हताशा की स्मृति और चिंता आदि पद्म के जवाब से उनके मानस में उभर आये। और तो और, ऐसी चिंताओं के बीच रोषेश्वर पंडित के मन में सेरेपा[1] के दंश जैसी, चाय की स्मृति भी चुभने लगी थी।

"सुनते हैं, गेलेकी में सात मरे हैं।" पद्म ने खबर सुनायी।

1.एक जहरीला कीड़ा।

"कहां ?" रोषेश्वर का सवाल चीख जैसा सुनायी पड़ा। आधे अविश्वास से विस्मित होकर महीराम ने पद्म की तरफ देखा और उसके बाद हल्के विरोध के स्वर में बोला – "क्यों लेतेकुबारी में ही...गये हैं, ऐसा सुना है।"

"लेतेकुबारी में तो परसों ही शुरू हुई है। अब तक शायद बीस से ज्यादा हो गये।" पद्म का उदासीन स्वर सुनायी पड़ा। उस जवाब के साथ उसकी सत्ता संपृक्त नहीं थी। तभी भोगेश्वर कमरे में आया। उसने पद्म से पूछा – "सुना है, आज पी.डबलू.डी वाले आये थे ?"

"आरिभडन का तटबंध देखने के लिए... अब क्या फायदा ?" विक्षुब्ध कंठ से पद्म ने जवाब दिया।

"सब-डिपटी को हमें एक आवेदन अभी से दे देना चाहिए," भोगेश्वर ने प्रस्ताव रखा। परंतु व्यापारिक बुद्धि, अनुभवी और दूर-दृष्टि वाले भोगेश्वर के प्रस्ताव की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, क्योंकि तटबंध, बाढ़, सब-डिपटी, क्षतिपूर्ति आदि शब्द अक्षम, अचल, रद्द सिक्कों की भांति अर्थहीन और अनाकर्षक हो गये थे। शिखा की तरफ जलने के लिए लपकते पतंगों की तरह, दोपहर में हवा से कांपते नारियल के पत्तों की तरह उनके अंतर की आशंका सनसनाती, कंपाती चली गयी। दोपहर की धूप में उस आंशका की बू तिर रही थी।

"क्या शहर से कुछ आया नहीं ?" रोषेश्वर ने पूछा।

"आज दोपहर तक कोई खबर नहीं। हमारा डाक्टर भी तो भाग गया।" पद्म ने कहा।

इस अंचल का एकमात्र सरकारी अस्पताल लेतेकुबारी में है। डाक्टर रेवती शर्मा बाढ़ का पानी चढ़ते ही छुट्टी लेकर घर चला गया। अब तक न तो वह लौटा है, न उसकी जगह कोई और डाक्टर ही आया है। पद्म की उक्ति से उनके मन में वही पुरानी हालत, जो सदा न्यायोचित विक्षोभ, निरुपाय हताशा और समर्पण की भावना से परिपूर्ण रहती है, लौट आयी। वहां अब भी विद्रोह की ध्वनि नहीं गूंजी थी, वह नपुंसक, प्रलुप्त और पथभ्रष्ट हो चुकी है।

"अगर हल्की-सी बारिश हो जाती तो..." शून्य मंदिर में अपना सब कुछ खोने वाले व्यक्ति की करुण प्रार्थना जैसी रोषेश्वर पंडित की आवाज आयी। और तभी इन सबके विपरीत हाथ में तामोल का बटा लिये रोषेश्वर पंडित की पंद्रह साल की बेटी कुसुम कमरे में आयी। कुसुम के शरीर में एक कोमल पूर्णता और गति में एक छंद था। उसके अवयवों में एक प्रच्छन्न आग्रह और प्रतीक्षा थी। पश्चिमी आकाश का लाल गोल सूरज और खेत में जोकों के काटने से शरीर में बहने वाली रक्तधारा उसके हृदय में अनजान सिहरन जगा देती है। दोपहर के आकाश के नीले सागर में निस्पंद खोयी हुई यह लंबी सांसें छोड़ती है और रात की शांत नीरवता में बिस्तर पर पड़ी हुई भरी हुई, उमड़ी रडन नदी के उत्ताल, तरंगमय प्रवाह की ध्वनि सुना करती है। बीच-बीच में एक अर्ध-स्फुट अनजान स्वर मानो तरंगों के ऊपर से कांपता-सा नीचे उतर आता है। वह स्वर ऊंचे पर बसे ग्राम तक चढ़ जाता है, उसे आच्छन्न कर लेता है। वह अधीर हो उठती है। एक चरम बिंदु पर जाकर वह स्वर रुक जाता है। फिर नीचे उतरता है और वह गहरी निद्रा में खो जाती है। अब उसकी आंखें पलकों से ढंकी हैं, चेहरा समय की पीड़ा और परिवेश की मलिनता के कारण कुछ मुरझाया हुआ है। उसने बटा पद्म की ओर

बढ़ा दिया। पद्म ने देखा, कमरे के हल्के उजाले में भी जंग लगे बटा पर कुसुम के हाथ -- गृहस्थी के अगणित कठोर धर्मों और समय की धुएं-भरी मलीनता की उपेक्षा करके कोमल, उज्ज्वल, आग्रही और उन्मुख बने हुए हैं। उसने बटा से एक तामोल उठा लिया और कुसुम की तरफ देखते हुए हंसकर पूछा – "रसोई में लगी हो ?"

शायद पद्म की उपस्थिति से कुसुम के शरीर में रक्त का प्रचुर और तेज प्रवाह शुरू हो गया था। उसके पूछने के साथ-साथ उसका चेहरा शर्म के मारे लाल हो उठा, जैसे वह कमरे की हवा में विलीन हो जाना चाहती हो। कमरे में इतने लोग न होते तो वह शायद अपने को इस लज्जा के हवाले कर देती। पर पिता की उपस्थिति से सजग थी, उसने मुस्कुराकर कहा, "नहीं, मां लगी हैं।"

इस वार्तालाप के बीच जिंदगी का धीमा-सा प्रवहमान स्वर तिर आया था। घर-संसार, पुत्र-परिवार, गोशाला में गाय-बैल, खेत-धान, बाड़ी में तामोल-पान इन सब की तिरती-सी तस्वीर उन सबके सामने उभर आयी थी और क्षण भर के लिए हर व्यक्ति को एक अस्वाभाविक बंधन से छुटकारा मिल गया था। प्रकृति के साथ उसका परिचय जीवन के परिचय की भांति ही गहरा था। फिर भी प्रकृति की उद्दंड ठिठोली से वे संत्रस्त हो उठते हैं, अस्वाभाविकता का आतंक उन्हें असहाय बना देता है, उनकी चेतना को सुन्न कर देता है, हालांकि अपनी देह की बू की भांति यह अनजाने सदा उपस्थित रहता है।

दूसरे दिन तेज धूप निकल आयी। भोजन के बाद रोषेश्वर पंडित बिस्तर पर लेटे थे। लेतेकुबारी स्थित अपने स्कूल की ओर एक बार हो आने को सोचा था, पर वहां से बुरी खबर आयी है। दो ही दिन के अंदर मरने वालों की संख्या पचीस से ऊपर हो गयी है। गेलेकी की हालत भी वैसी ही है। आज सुबह तक कोई मदद नहीं आ पायी है। प्रचंड गरमी पड़ रही है। वे पसीने-पसीने हो गये हैं। नींद नहीं आ रही है। पिछली रात के आखिरी हिस्से में उनकी नींद खुल गयी थी। अब वे सोने की कोशिश कर रहे हैं, पर नींद को प्रयास से भी ला पाना कठिन लग रहा है। पिछली रात की घटना उन्हें याद आ रही है। वे गरमी से पसीने-पसीने हो रहे थे। उनकी नींद खुल गयी। पीठ की ओर कुछ ठंड-सी लगी थी। उन्होंने फिर सोने की कोशिश की। अचानक लगा, कि पीठ की ओर ठंडक रेंग रही है। क्षण भर में उनके चिंतन-चक्र में एक तस्वीर की कुछ तेज गतिवाली लहरें उमड़ पड़ीं। लगभग उछलते हुए वे जमीन पर उतर आये। डरते हुए तकिये के नीचे से माचिस निकालकर सिरहाने की ढिबरी जलायी। ढिबरी के उजाले में देखा कि वह ठंडी चीज काली, लंबी, सुंदर और भयावह है। केले के पते पर जैसी गिलहरी चढ़ जाती है, वह अनायास, बेरोक-टोक दीवार पर चढ़कर बाहर निकली जा रही है। वे सिर से पैर तक सिहर उठे। फिर उन्हें नींद नहीं आयी। अजीब-अजीब-सी खबरें और तस्वीरें साफ, हू-ब-हू उनके मन में उभरने लगीं। गेलेकी की बाढ़ के पानी में लगभग डूबने-से मकान की छत पर तेरह सांप कुंडली मारे पड़े हुए थे। आखिर एक बच्चे के साथ लेटी वृद्धा के साथ तीन सांप एक ही बिस्तर पर सोये हुए थे। और एक बार, शायद अखबार में छपा था, बाढ़ के दिनों कहीं एक औरत को बेहोशी की स्थिति में पाया गया, जिससे छह

सांप लिपटे हुए थे। सांप मारने के कितने ही दृश्य, सांपों द्वारा डसे लोगों और उन्हें बचाने की अनेक रहस्यमयी घटनाएं, अनेक ओझाओं की कहानियां, शंख ओझा[1] आदि उन्हें याद आने लगे। इसी तरह रात बीत गयी। ...गरमी उन्हें असह्य लगती है। सिर भारी-भारी-सा है। आंखें जल रही हैं। शायद तीन बज गये हैं। रोषेश्वर की पत्नी सोमलता अंदर आयी। कमरे को एक बार ध्यान से देखकर शांत सरल भाव से उसने कहा – "अब तो जरा-सी चाय का डौल भी न रहा..."

रोषेश्वर करवट बदल, उठकर बिस्तर पर बैठ गये। सोमलता ने एक बार दरवाजे की ओर देखकर गोपनीय स्वर में धीरे से रोषेश्वर से कहा – "शायद भाई के यहां...चाय पत्ती हो..?"

"तो ?" रोषेश्वर के सवाल में अविश्वास का तनाव था। सोमलता पहले ठहर गयी, फिर कमजोर-सी आवाज में बोली – "हां, मैंने केले के पौधों के नीचे चाय की पत्तियां पड़ी देखी हैं।"

"उंह ! ठहरो...वह सब करना ठीक नहीं..." रोषेश्वर के कमजोर स्वर में तिरस्कार स्पष्ट था। बिस्तर से उतरकर वे बाहर के कुएं के पास गये। कुएं के पास ठहरकर कान लगा कुछ सुनने लगे। फिर कुछ समझ में न आने पर कुएं के नजदीक लौट आये। दूर से दो कंठों से लंबी रुलाई की आवाज आ रही थी। मुंह धोकर वे आगे बढ़ गये। भोगेश्वर कहीं से चला आ रहा था। उसके चेहरे पर स्वाभाविकता के पीछे उत्तेजना और एक अनजानी आशंका छिपी हुई थी। पानी में डूबे खेत की कीचड़ में पैदल चलने से जैसे उसके कदम भी लड़खड़ा रहे थे। लगता था, वह अचेत अवस्था में ही कदम बढ़ाता आ रहा हो। पूछने को उत्सुक रोषेश्वर की ओर देखते हुए, पेड़ की जड़ तक को कंपा डालने वाले स्वर में उसने कहा – "डाइनीचुक के उमाराम की बहू चल बसी...।"

"क्या हुआ था ?" रोषेश्वर चीखना चाहते थे, पर ऐसे धीमे, अद्भुत और अपरिचित स्वर में उनका प्रश्न निकला, मानो उनके ही कंठ में मौत आ बसी हो।

"कुछ भी नहीं। ...आज सबेरे से तीन या चार दस्त हुए...बस खत्म..."

इसी बीच आमने-सामने के घरों की औरतें, कुसुम, कुसुम की बहन सावित्री, हाथ में कटारी लिये भोगेश्वर का लड़का सोण, रोषेश्वर की धोती का सिरा पकड़े उनका बेटा मइना, सभी इकट्ठे हो गये थे।

"कौन ? कौन ?" व्यग्रता के साथ सोमलता ने पूछा। रोषेश्वर शिला जैसे स्थिर, निश्चल थे। भोगेश्वर ने सोमलता को संक्षेप में बताया।

उस समय समग्र परिवेश यहां तक कि समय भी जैसे स्थिर हो गया था। मुरझायी-सी बदरंग स्तब्धता सूनेपन पर छायी हुई थी, जिससे वहां उपस्थित सभी चेतनाहीन हो रहे थे। कुछ समय बाद, सोमलता ने अकस्मात उस जड़ता से छुटकारा पाकर अत्यंत दीन, असहाय कंठ से ईश्वर का नाम लिया और चुपचाप धीरे-धीरे अंदर चली गयी। रोषेश्वर को मानो अद्भुत, गति मिल गयी और आकाश की ओर देखते हुए वे भी धीरे-धीरे बाहरी दरवाजे की ओर आगे

1. असम का एक प्रसिद्ध ओझा।

बढ़े। रुलाई की आवाज स्पष्ट हो उठी। उन्होंने जैसे हरिनाम की ध्वनि सुनी हो, दूर आकाश में दो गिद्ध हवा में चक्कर काटते दिखायी पड़े। गांव में फिर एक बार मौत ने पंजा मारा था। उसकी ठंडक से रोषेश्वर पंडित का खून जमने-सा लगा।

रात ! रोषेश्वर पंडित बाहर निकल आये। नयी बहू की भांति सकुचाई-सी, प्रभात की ग्राम्य प्रकृति की भांति, शांत रात आज उनके मन में भयंकर अशांति जगाती जान पड़ी। तिस पर गांव के दो ओर दो कुत्तों के रोने की अशुभ आवाज के अलावा चारों ओर की दुनिया; शायद मृतकों के घर भी, सोयी पड़ी थी। सोने के लिए जाते वक्त उन्हें डाइनीचुक से फिर एक बार रोने-धोने और "हरि बोल"[1] की ध्वनि रात की नीरवता के बीच ज्यादा साफ सुनायी देने लगी थी। श्मशान से लोग लौट आये क्या ? चिता बुझ गयी क्या ? आज क्या उमाराम के यहां बहू की प्रेतात्मा चक्कर लगा रही है ? श्मशान में भूत-भूतनियां नृत्य कर रहे हैं क्या ? ऐसी अनेक उल्टी-सीधी, बेसिलसिला चिंताओं से छुटकारा पाने हेतु रोषेश्वर अपनी आदत के मुताबिक आकाश की ओर देख रहे थे। शाम से ही आकाश में हल्के बादल छाये हुए थे, मगर बारिश की कोई संभावना न थी। बादलों के बीच-बीच से एकाध प्यासे तारे यहां-वहां दिख रहे थे। उमस भरी वह गरमी अब भी खत्म न हुई थी। उसके साथ ही बदबू ! समय भयावह संभावनाओं से बोझिल हो उठा था और कुत्तों का लगातार रोना अमंगल की सूचना दे रहा था। रोषेश्वर का समूचा हृदय उजाड़ करके एक लंबी सांस बाहर निकल आयी। यह सांस मानो निर्मम शून्यता की भावना से बेचैन धरती की कातरता को प्रकट कर रही थी और एक घाटी से दूसरी घाटी तक, एक शिखर से दूसरे शिखर तक प्रवाहित-सी हो रही थी और नदियों, वृक्षों और भूतल को समान रूप से स्पर्श कर रही थी। वे जानते थे कि काल अनंत है, पृथ्वी भी विपुला है, और जीवन सिर्फ उसके छोटेपन और मृत्यु की निश्चयता के कारण ही विचित्र, रहस्यमय और उपभोग्य है। हालांकि यह अनुभूति दिन बीतने पर संध्या-समय कीर्तन करते समय जैसे अनुभूत हुआ करती है – वैसे ही दूर शून्य में, नक्षत्र समूह में या बरगीत[2] के शुद्ध पदों में मन लगाने के समय मन में जागती है। शाम की बिखरी, टुकड़ा-टुकड़ा, कुछ सच कुछ झूठी खबरें उनके मन में अस्पष्ट रूप से काम कर रही थीं। यह भी खबर थी, लेतेकुबारी की अपेक्षा गेलेकी में मौतों की तादाद ज्यादा है। मरने वालों की संख्या के बारे में अलग-अलग लोगों के अलग-अलग वक्तव्य हैं। कोई-कोई घर एकदम सूना हो गया है। गांव उजड़ गये हैं। जो समर्थ हैं, वे शहर चले गये हैं। लोगों का खून जम-सा गया है। उनके चेहरों पर, मन में, हवाओं में, समूचे वातावरण में गर्वीली निर्ममता के साथ मृत्यु विराज रही है। महामारी कालांतक रूप लिये गांव में उतरी है। एकमात्र उत्साहित करने वाली खबर पद्म ले आया है। खबर यह है कि लेतेकुबारी में सरकार ने पहली सहायता मंडली भेजी है, जिसमें चार कंपाउंडर भी हैं और आज शाम से ही वे लोग दवाएं आदि वितरित कर रहे हैं। डाक्टर रेवती शर्मा ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया है। नया डाक्टर दो-एक दिन में पहुंचने वाला है। इन सारी

1. मृतकों को श्मशान ले जाते समय 'हरि बोल' का उच्चारण किया जाता है।
2. महापुरुष शंकरदेव माधव देव रचित भक्तिमूलक पद।

खबरों से रोषेश्वर के मन में अस्पष्टता ,अनिश्चय और उसके आनुषंगिक चित्र ही उभरे थे । ये चित्र बहुत पहले के हैं,बचपन के दिनों के आतंक के रंग-हीन और धुएं-भरे चित्र,जिनमें कोर्ट मार्शल में बैठे निर्मम,गंभीर गिद्धों के एक झुंड के दृश्य भी हैं । बाहरी दरवाजे के पास अचानक एक कुत्ता रो उठा । उस रुलाई के विलंबित लय में अनेक करुण अभियोग थे । रोषेश्वर चौंक पड़े । अंदर जाकर बिस्तर पर लेट गये । सोमलता करवट बदलकर उनके नजदीक आ गयी और रोषेश्वर ने धीमे से करवट बदलकर आंखें मूंद लीं । पर बिल्ली जिस तरह आंखें मूंदे रहने पर भी शब्दों के संधान में बराबर कान हिलाती रहती है,उसी तरह आंखें मूंदे सोने की कोशिश करते रोषेश्वर के कान भी किसी शब्द की प्रतीक्षा में लगे रहे । रात के आखिरी पहर में उन्हें गहरी नींद आ गयी ।

दूसरे दिन भी धूप नहीं थी,आसमान हल्के बादलों से ढंका हुआ था । दो-एक बार बादल कुछ घने होकर नीचे झुक-से आये थे । लगता था बारिश होने वाली है, मगर उसके बाद धीरे-धीरे फिर बादल छंटकर ऊपर चले गये । संकटग्रस्त,अभिशप्त लोगों ने चुपचाप असहाय भाव से आसमान की ओर देख सिर झुका लिया । काम में उन लोगों का मन नहीं था । पानी सूखते ही जिन लोगों ने खेती में लग जाने का संकल्प किया था,उनका उत्साह भी मुरझा गया था । पिछली रात डाइनीचुक गांव में हुई तीन मौतों की खबर समूचे गांव में फैल गयी थी । गांव पर मौत की छाया फैल गयी थी । नये दुखद संवाद की,मृत्यु के नवीन समारोह की सभी डरते-डरते प्रतीक्षा में थे । फिर भी दिन भर कोई दुर्घटना नहीं हुई, हालांकि छिट-पुट समाचार आते रहे । जैसे – दो डाक्टर और दवा की नयी खेप आ पहुंची है । फिर भी मौत को रोका नहीं जा पा रहा था । वह निर्बाध रूप से बढ़ रही थी । गेलेकी के नौ सदस्यों का एक परिवार ऐसे खत्म हो गया था कि अब उन्हें कोई पानी देने वाला भी न बचा । कहीं सियारों ने गड्ढा खोदकर एक अपरिचित शव को खींच निकाला,ऐसा सुना गया । दिन रात चिताएं जल रही थीं । विधि-विधान का अब कोई विचार नहीं रहा । दो-दो,तीन-तीन शवों को एक ही चिता पर डालकर जलाया जा रहा था । दिन-रात लगातार 'हरि बोल' की ध्वनि सुनायी दे रही थी ।

अंधेरे के साये में थकी हुई रात आसमान में ही निद्रामग्न हो चुकी थी । समूचा परिवेश भयावह था । गांव के सिरे पर सियार हुआं-हुआं कर रहे थे । उसके जवाब में दो कुत्ते एक-साथ रो रहे थे । आकाश में हल्के बादल थे,हवाएं ठहरी हुई थीं । बेहद गरमी थी । बदबू कुछ घटी थी । भोगेश्वर की दुकान की धीमी रोशनी की लालटेन लेकर पद्म और उसके पीछे पीछे रोषेश्वर गांव के बीच से आगे बढ़ रहे थे । बाढ़ के बाद जानी-पहचानी गांव की राहें भी अनजानी लग रही थीं । गांव से निकलकर वे लोग तटबंध पर चलने लगे । पद्म ने दाहिनी ओर बहती रडन नदी की ओर देखा । पानी घट गया था । पानी रोकने के लिए जो कच्चे बांध बने थे,उन्हें तोड़कर नदी ने बहा दिया था । धारा के बहने की आवाज कम हो गयी थी । बायीं ओर दूर के श्मशान पर उसकी नजर पड़ी और उसका मन छोटा हो गया । उसे याद आया,आज दोपहर को ही रोषेश्वर की साइकिल लेकर वे भोगेश्वर को लेतेकुबारी गये थे । पहले रोषेश्वर ही जाना चाहते थे । उन्हें एक तरह की जिद-सी हो गयी थी । वे बाहर निकलना चाहते थे । उन्हें पता

था, लेतेकुबारी में मौत है। मौत के खिलाफ दुर्बल संग्राम चल रहा है। (मौत शब्द कितना चित्रमय हो उठा है !) फिर भी उन्होंने अपने को समझाया था, आतंक और हताशा के खिलाफ, अत्यधिक भयावहता के बीच, अत्यधिक हताशा के बीच भी वे मर्द की तरह आगे बढ़ जायेंगे। उनका अपना स्कूल है, छात्र-छात्राएं हैं, उन सबके प्रति उनका कर्तव्य है। वे कर्तव्य का पालन करेंगे। मगर उसी समय दुकान का सामान लाने के लिए भोगेश्वर ने आकर उनसे साइकिल मांगी। और वह भोगेश्वर अब भी, इतनी रात तक भी लौटकर नहीं आया है। अब वे तटबंध से उतरकर, किसी क्रांति के दो भागे हुए नायकों की भांति, सरकंडों की झाड़ियों से होकर गुजर रहे थे। यह राह छोटी है, मगर रात निर्जन और डरावनी है। दिन के समय के विनम्र वृक्ष सौहार्द्र की हरी झंडियां उतारकर दुश्मनों का काला मुखौटा पहने दूर-दूर पहरा दे रहे थे। बीच-बीच में अनमने-से दो-एक 'जारमती' या 'पिशाच'[1] पौधों की झाड़ियों पर भी उन्हें संदेह होता था। पक्षी सोये हुए, मौन हैं। सिर्फ एक यमडाकिनी[2] की अशुभ बोली नदी की दूसरी ओर से तिरती आ रही थी। कुछ हटकर एक सियार चीख रहा था। दो-एक जानवर भोजन की खोज में उनके पास आकर फिर भागे जा रहे थे। गांव की ओर से रह-रहकर कुत्तों के भूंकने की आवाजें आ रही थीं।

दूसरी तरफ से लालटेन लिये कोई चला आ रहा था। इन दोनों की चाल धीमी हुई, मन कुछ हल्का हो गया। दोनों ने उस आदमी की तरफ देखा। वह आदमी भी उनकी ओर देखते हुए निकल गया। उंहु, भोगेश्वर तो है नहीं। वे फिर आगे बढ़े। तभी अचानक आवाज आयी, "रोषे हो क्या?"

थोड़ी दूर जाकर वह आदमी मुड़कर पुकार रहा था। दोनों मुड़े।

"हां।" रोषेश्वर बोले। वह कौन हैं, वे पहचान नहीं पा रहे थे। मन में कई चेहरे उभरकर तेजी से मिट रहे थे। वह आदमी आगे बढ़ आया।

"मैं... अनिराम... हूं..." उस आदमी ने थोड़ा हकलाते हुए कहा और यों ही लालटेन को जरा-सा ऊपर उठा लिया। लुटा हुआ-सा चेहरा, जैसे लाचारी से ही जिंदा हो। दुबला-पतला-सा एक कंकाल खड़ा था।

"ओ... अनिराम...!" रोषेश्वर ने कहा। एक अनजान-सा आतंक उसके मन में घूमने लगा। अनिराम उसका दूर का रिश्तेदार था। इस रात को आंधी में जैसे पेड़ झुककर उखड़ने को होते हैं, फिर तनकर पहले जैसी हालत में आ जाते हैं, उनके मन की भी वैसी ही हालत हो गयी। "हम..." रोषेश्वर ने कहा।

"अच्छा ही हुआ..." धीमा-सा, पिंड छुड़ाने जैसा जवाब था। रोषेश्वर चौंक-से पड़े।

"भोगे...?" किसी तरह उनकी आवाज निकली और उन्होंने करुण प्रार्थना की भंगिमा से अनिराम के आशाहीन जर्जर चेहरे की ओर देखा। अनिराम ने सिर झुका लिया, क्योंकि उसकी दृष्टि से मानो प्रकृति की छाती फट-सी रही थी, सोये हुए पक्षी चौंक उठे थे और अनिराम

1. एक तरह का जंगली पौधा जो जहां-तहां बहुतायत से होता है।

2. एक पक्षी।

के नन्हे-से हृदय के लिए यह असहनीय था। वह रोषेश्वर के पास चला आया। शायद उसे डर-सा लगने लगा था कि रोषेश्वर अचानक गिर न पड़े। उसने रोषेश्वर की पीठ पर हाथ रखा।

"हां...बड़ी सख्त...।" अनिराम ने रुक-रुककर अस्पष्ट स्वर में कहा। रोषेश्वर के समूचे शरीर में एक सिहरन व्याप्त हो गयी। "सुना, दोपहर को हमारे यहां आकर बाहर घूमने गया। मैं घर पर नहीं था। फिर खुद ही डाक्टर के यहां गया। शायद दवा ली थी।...वापिस आकर चक्कर खाकर गिर पड़ा..." कहते-कहते अनिराम रुक गया। तभी अंधेरे की पृष्ठभूमि में से दो काली मूर्तियां दो लालटेनों सहित उभर-सी आयीं।

सभी अब अनिराम के घर के सामने पहुंचे। देखा, आंगन में ढिबरी जल रही है। दो-चार लोग खड़े हैं। रोषेश्वर दौड़ते हुए वहां पहुंचे। भोगेश्वर को आंगन में सुलाया गया था। रोषेश्वर ने जमीन पर बैठ भोगेश्वर का दाहिना हाथ पकड़ लिया और धीमे व्यग्र स्वर में कहा, "भोग.. भोग...मैं...मैं हूं...भैया...!"

कुछ ही क्षणों के लिए भोगेश्वर ने कमजोर, विवर्ण आंखें आहिस्ता से खोलीं, फिर मूंद लीं। उनमें जीवन का कोई लक्षण न था। फिर भी मौत कुछ देर कर रही थी। डाक्टर अभी-अभी गया है। एक कंपाउंडर पास खड़ा है। पद्म रोषेश्वर के पास गया। मृत्यु का ऐसा सहज और निश्चित रूप इतने समीप से देखकर वह विमूढ़ हो उठा था। अपने सारे जाने-पहचाने लोगों से अलग हो, इतने सहज भाव से एक आदमी का जीवन समाप्त हो जायेगा। किसी भी क्षण खुद वह इस आदमी की जगह हो सकता है। अचरज है, मानव शरीर में वह कौन-सी वस्तु है, जिसके गायब हो जाने से निश्चल काठ जैसा सूखा शरीर पड़ा रह जाता है, सड़-गल जाता है, मिट्टी में मिल जाता है? बायें हाथ से भोगेश्वर ने अपनी जेब की ओर इशारा किया। कंपाउंडर ने जेब से एक कागज और कुछ गोलियां निकालीं। भोगेश्वर की आंखों के कोनों में पानी की दो बूंदों पर रोषेश्वर की नजर पड़ी। शायद वे रोषेश्वर के पास भोगेश्वर का आखिरी समाचार ले आये थे। रोषेश्वर अंदर से सिहर उठे। भोगेश्वर के होंठ मानों दुर्बल भाव से हिले। किसी ने एक कटोरी में पानी और एक चम्मच लाकर रोषेश्वर के सामने रख दिये। फिर एक बार वे कांप उठे और उसके बाद चम्मच से भोगेश्वर के मुंह में पानी डाला। तीसरा चम्मच पानी भोगेश्वर ने ग्रहण नहीं किया। वह उसके होंठों के सिरे पर से बहकर गले तक आ गया। उसकी गरदन टेढ़ी हो गयी, जैसे पहली मुलाकात में ही ईश्वर पर असंतुष्ट हो भोगेश्वर ने ईश्वर से मुंह मोड़ लिया।

आधी रात को श्मशान से लौटकर रोषेश्वर ने देखा, सोमलता और कुसुम चबूतरे पर बैठी हैं। भोगेश्वर के घर से तब भी रह-रहकर धीमी रुलाई की आवाजें आ रही थीं। चूल्हा नहीं जलाया गया था। बच्चों को कुछ खिलाकर सुला दिया गया था। कुसुम को मां ने जबर्दस्ती कुछ खिलाया। भीगे कपड़े बदलकर रोषेश्वर बत्ती लेकर दूसरे कमरे में गये। एक मचान पर लड़का और छोटी लड़की निश्चित सोयी थी। उसके कमरे में टीन की एक पेटी पर जिसका रंग उड़ गया था, भोगेश्वर का सफेद कागज और कुछ टेबलेट पड़े हुए थे। रोषेश्वर ने कागज खोल कर देखा, दुकान के माल का हिसाब है। टेबलेटों को गिना, पूरे चौबीस थीं। बीमारी के शुरू

होते ही एक-एक बार में आठ-आठ गोलियां खानी थीं। सोमलता अंदर आ गयी थी, पूछा – "जरा-सा दूध लेंगे ?"

"नहीं..." रोषेश्वर ने कहा।

"गोलियां कैसी हैं...?" सोमलता ने पूछा।

रोषेश्वर कुछ कहना चाहते थे, अचानक पत्नी की ओर देखा, फिर सिर झुकाकर बोले – "वही लाया था। खायी भी थीं, मगर..." उन्होंने गोलियों को उठाकर पेटी में रख दिया। कुछ देर धरती पर नजर गड़ाये खड़े रहे और फिर धीरे शांत स्वर में बोले – "तुम उसी के यहां जाकर सोओ। वह अकेली है...ठीक नहीं है...।"

सोमलता तैयार ही थी। वह कमरे से निकल गयी।

बत्ती बुझाकर रोषेश्वर बिस्तर पर लेट गये। खूब अंधेरा था। लगा, अंधेरा मानो आज ज्यादा घना हो गया है। न जाने कौन सा अतल रहस्य अंधेरे में डूबा हुआ है! कुछ अदृश्य-सी वस्तुएं मानो चक्कर लगा रही हैं। निस्तब्धता के बीच उन्होंने घर-के टीन के दरवाजे को बंद करने की आवाज सुनी और वह दृश्य उनके अंतस् में उभर आया। अंधेरे में प्रकाश की धारणा शून्य हो जाती है। अंधविश्वास के पंख फैलाकर मन उड़ने लगता है। दुनिया विश्वसनीय नहीं रहती। बीच-बीच में दो कुत्ते भूंक रहे थे। लगता था, अंधेरा गतिशील हो गया है। भोगेश्वर के साथ बचपन से उनका आकाश-सा विशाल संपर्क विविधवर्णी मेघों की भांति उनके मन में जगमगा रहा था। बचपन की सभी शरारतों में भोगेश्वर बिलकुल चुस्त और सक्रिय हिस्सेदार था। उसकी शादी के बाद ही पिता चल बसे थे। शादी के बाद गृहस्थी की जटिलता ही नहीं, निर्ममता ने भी भोगेश्वर की हंसी छीन ली थी। कारण यह था कि लगभग छह साल तक वह संतान-लाभ से वंचित रहा। उसके बाद उसकी एकमात्र संतान सोण का जन्म हुआ था। फिर भोगेश्वर ने एक दुकान खोली। उसकी हालत सुधरी। परिवार में संतान-सुख हुआ। और आज अविश्वसनीय ढंग से सिर्फ एक ही दिन के अंदर वह भोग दुनिया से विदा हो गया, हालांकि वह निरोग और स्वस्थ था। बचपन में पिता जब जिंदा थे, एक बार टिफुक गांव के मनबर आता[1] से बवासीर की बीमारी की दवा लाकर पिताजी ने उसे खिलायी थी। उसके बाद भोगेश्वर के कभी दवा खाने की याद ही उन्हें नहीं आती। जंग लगी यादों की शिथिल जंजीरें आज अचानक झन्-झन् करके बजने लगी हैं। धेतोर[2] खाकर दांत काले कर, बड़ी-बड़ी मूंछें उगाकर महिषासुर की भंगिमा बनाने तक लंबी, अनेक तरह की भोगेश्वर की आत्माभिव्यक्ति की टुकड़ा-टुकड़ा बहुत-सी तस्वीरें उनके मन में उभरती रहीं और हर तस्वीर उनके मन को भारी बनाती रही। इन कई दिनों से आतंक, शंका, दुश्चिंता, कष्ट-भोग आदि का विद्युत-स्पर्शी परिवेश, जो दिन की हर घटना, उमस भरी गरमी और बदबू, कुत्तों की चीखों, मृत्यु के नवीनतम दुःसंवाद, रुदन की हर आवाज और 'हरि नाम' और शाम को हुई भोगेश्वर की मौत के साथ

---

1. वैष्णव संतों के अधिकारी, गुरु आदि।
2. एक प्रकार की घास के रुग्ण तने की गांठ।

जुड़ा हुआ था। उस घटना की वेदना चरम बिंदु पर पहुंचकर उनके हृदय को कठोरता से पीसने लगी और उनकी आंखों से अविराम, अनियंत्रित गति से उतरती जलधारा ने सारी दुनिया, यानी उस कमरे को, जहां उस समय दृश्यमान वस्तु सिर्फ ठोस अंधेरा था, उनकी नजरों से ओझल कर दिया।

सवेरे का समय। रोषेश्वर पंडित धीरे-धीरे जाग रहे थे। अचानक बिला-वजह वे चौंक पड़े। छाती धक्-धक् कर उठी। उन्होंने देखा, सुबह हो रही है। बाहर से आंगन बुहारने की आवाज आ रही है। कहीं कुछ भी तो अस्वाभाविक नहीं है। कुछ देर तक वे बिस्तर पर ही पड़े रहे। फिर जर्जर देह-मन को दुर्बल भाव से बिस्तर से नीचे खींचकर उतारा और दरवाजा खोलकर बाहर निकले। सोमलता ने हाथ का झाड़ू चलाना कुछ क्षण के लिए रोककर, मुड़ कर देखा। रोषेश्वर फिर अंदर चले गये। कुसुम बिस्तर पर नहीं थी। बच्चे सोये पड़े थे। चूल्हे से कोयला लेकर दांत मांजते हुए वे बाहरी दरवाजे के पास पहुंचे। भोगेश्वर के घर की भीतरी ओर के फर्श पर अवर्णनीय रूप से उसकी पत्नी चेनेही बैठी हुई उद्भ्रांत दृष्टि से किसी ओर देख रही थी। रोषेश्वर को देखकर उसने घूंघट खींच लिया। बाहरी दरवाजे के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। पास ही केले के पेड़ पर बैठा एक कौवा चीख रहा था। रोषेश्वर काफी देर तक दांत मांजते रहे। उनका मन कहीं दूर था। अनिश्चित रूप से कुछ भावनाएं उनके मन में आ-जा रही थीं। वे कुएं के पास गये। धीरे से, अनमने, यांत्रिक भाव से मुंह धोया और घर लौटकर देखा, दरवाजे के सामने सोमलता दुविधाग्रस्त, संकुचित भाव से खड़ी है।

"कुसुम... कहां गयी ?" सोमलता का यह धीमा आतंकित प्रश्न, अर्थहीन, हास्यजनक भी हो सकता था, पर बीज में जैसे जीवन या मृत्यु की छाया छिपी रहती है, वैसे ही सोमलता के इस साधारण-से प्रश्न से रोषेश्वर ने एक भयंकर संभावना की छाया का अनुभव किया।

"कहां गयी ?" सोमलता का प्रश्न ही रोषेश्वर के मुंह से प्रतिध्वनित हुआ।

"पता नहीं। शौच करने के लिए भी तो नहीं गयी।..." सोमलता की आवाज कुछ कांप रही थी। बेचैन कदमों से वह भोगेश्वर के घर की ओर गयी। रोषेश्वर हतवाक्, किंकर्तव्यविमूढ़-से अंदर गये। कुसुम का बिस्तर खाली है। बच्चे तब तक जागे नहीं थे। वे रसोईघर में गये। आग अच्छी तरह से सुलग गयी थी। फिर वे पिछवाड़े गये। बाड़ी प्रसुप्त, निर्जन, निःशब्द पड़ी थी। पाखाने का लोटा हमेशा की तरह अनादर से उलटा पड़ा था।

सोमलता कुएं के पास से बाड़ी की ओर गर्दन बढ़ाकर देख रही थी। अनिश्चय से भरे, रोषेश्वर, विमूढ़-से, आतंकित होकर बाड़ी की ओर बढ़ गये। और थोड़ी ही दूर आगे जाने पर उनका समूचा शरीर ठंडा होकर मानो बर्फ की तरह जम-सा गया। एक प्रचंड पातालस्पर्शी शब्द से, एक प्रचंडतर आघात से समूचा विश्व मानो चूर-चूर हो गया। रोषेश्वर पंडित का धुकधुकाता हतपिंड, रक्त-प्रवाह, धमनियां, मानो देह को विदीर्ण कर बाहर आने लगे। शरीर की बची-खुची पूरी शक्ति से वे एक बार चीखना चाहते थे। शायद तड़पता हृदय उस चीख से बाहर निकल आये, पर विफल होकर अचेत-से जमीन पर बैठ गये।

और उनके सामने सद्यःजाग्रता, निरपेक्ष, मौन, प्रकृति की पृष्ठभूमि में घास, विष्ठा और गंदगी की शय्या पर एक नंगी-सी तरुणी, जिसका नाम कुसुम था, मरी हुई या अचेत सिसियन की वीनस या सेबास्तियन की नंगी नारी-प्रतिमा-सी पड़ी हुई थी।...

एक नयी-सी लहर शुरू हो गयी थी। प्रचंड गरमी पड़ रही थी। रह-रहकर रुलाई की आवाजों, 'हरि' नाम के घोषों, बांस फटने की आवाजों, सिसकियों और आहों के हृदय-विदारक शब्द हवाओं में तिर रहे थे। दिन भर और रात को भी, रोषेश्वर पंडित बीच-बीच में कान लगाकर सुना करते, निश्चिंत हो जाते और लंबी सांस छोड़ते। समय-समय पर एक साथ डाइनांचुक से, महीराम आदि की तरफ से, रडन नदी की ओर से, विभिन्न दिशाओं से नये-नये विचित्र शब्द, नयी आवाजें आतीं। सुनकर वे ठिठक-से जाते। समझ में नहीं आता था, आवाज किस तरफ से आ रही है, कहां से आ रही है। अंदाजा लगाने की कोशिश करते, लोगों के चेहरे याद आते। सोमलता, मइना और सावित्री के चेहरे सामने तिरने लगते। अंतस् में सिहरन होती। फिर थके-से, अर्थहीन दृष्टि से अंधेरे की ओर देखते हुए पड़े रहते। निर्ममता के प्रहारों से रात गहरी हो आती। वेदना के उच्छवासों से अंधेरा घना हो उठता। अंधेरे के जल में मन एक विषण्ण, निस्संग बत्तख-सा निरुद्देश्य तैरता आगे बढ़ता। रात की छाती से वेदना के चूहे क्षणों को कुतर-कुतरकर ले जाते। गरमी से शरीर तड़पता, कुत्तों की रुलाई तिरती आती। शाम को बाहरी दरवाजे पर एक कुत्ता पड़ा हुआ था। मइना ने उस पर एक ढेला फेंक मारा। करुण भाव से चीखता हुआ कुत्ता तीन टांगों के सहारे सिकुड़कर भाग जाना चाहता था। यह दृश्य अब उन्हें याद आया। रोषेश्वर पंडित बिस्तर पर सिकुड़-से गये। एक बार बच्चों को खींचकर अपनी छाती से लगाकर जोर से पकड़े रखने की इच्छा हुई। उन्होंने टिन की पेटी की ओर देखा। आज दिन भर किसी निर्मम देवमूर्ति की भांति पड़ी उस पेटी की तरफ दूर से बीच-बीच में देखते रहे, पर उसके पास नहीं गये। अब उन्हें लगा, अंधेरा भूत बनकर उस पेटी पर बैठा उनकी ओर नजरें गड़ाये मुस्कुरा रहा है। रोषेश्वर पंडित ने आंखें मूंद लीं।

सुबह का उजाला उतर आया। रोषेश्वर पंडित को नींद नहीं आयी थी। उजाले के साथ-साथ वे एक नवीन निर्ममता की प्रतीक्षा में थे। उन्होंने दूसरे कमरों की ओर कान लगाया। नहीं, वैसी कोई खास खबर नहीं थी। सिर्फ कुछ ही देर बाद दूर से कोई समवेत घोष सुनाई पड़ा। विषाद की छाया के बदले यह घोष स्वाभाविक और परोक्ष विजय का आभास ला रहा था। दिन में कहीं बाहर न निकलने का उन्होंने निश्चय किया। शरीर बड़ा कमजोर हो गया था। बाहर किसी के प्रति, किसी समाचार में भी उनकी कोई उत्सुकता नहीं रह गयी थी। बिस्तर पर लेटे ही लेटे उन्होंने दोपहर की धूप की तीव्रता का अनुभव किया। अपनी सांस में ही हवा के स्वाभाविक घनत्व, धुएं और मुर्दा जलाने की बू का अनुभव उन्हें हुआ। रुलाई की आवाजें उनके लिए अर्थहीन हो गयी थीं। 'हरि नाम' के घोष में मृत्यु का विजयोल्लास वे निर्विकार भाव से सुनते रहे। उन्हें लगा, वे निश्चिंत और निर्भय हैं। असहनीय पीड़ा, गहरे दुख के बीच वे सोचने लगे, वे जीवन को संपूर्ण रूप से देख पाये हैं। यहां तक कि पिछले दिन धीरज बंधाने के लिए आये दो-एक लोगों से हल्की मुस्कान के साथ सहज भाव से उन्होंने बातें की थीं।

पुराने चित्र की स्थायी हंसी की भांति उसमें आत्मज्ञान का बोध था और बिखरे बाल, लाल आंखें, बढ़ी दाढ़ी वाले रोषेश्वर पंडित की वह मुस्कान घनघोर रात को बिजली की कौंध-सी उन लोगों को भयभीत कर गयी थी।

दिन ढले रविधर आया। हाल-चाल पूछने वाला गांव में और कोई न था। हर घर में मृत्यु का निर्बाध विजय-अभियान चल रहा था। आज सुबह ही पद्म की विधवा मां परलोक सिधार गयी। महीराम की छोटी बहन और भाभी एक के बाद दूसरी चल बसी थी। पद्म आदि कुछ लोग घर-घर चक्कर लगा, मृतकों को जलाने के लिए जा रहे थे। डाइनीचुक गांव लगभग खत्म-सा हो गया था। लेतेकुबारी, गेलेकी की हालत तो और भी बदतर थी। नयी दवा के साथ एक और मंडली उनके गांव और आरिभडन आ रही है।

शाम को जब रोषेश्वर महीराम के घर से वापस आ रहे थे, तब उन्हें लग रहा था, गांव अब नहीं रहा, बिलकुल खत्म हो गया है। महीराम के परिचित कठोर चेहरे पर उन्हें भय की छाया दिख पड़ी थी। राह सन्नाटे-भरी थी। सारे घर नीरव थे। कहीं बत्ती नहीं जल रही थी। अंधेरा अजीब रहस्यमय होता गया। व्यक्ति-संधानी कुत्ते आपस में, अपनी बोली में, कुछ कह-से रहे थे। दिन में अनगिनत गिद्ध और कौवे आकर शोर मचाते थे, जैसे लोगों पर वे क्रुद्ध हो उठे हों। पगला भगत मर गया, इस बात का किसी को पता न चला। उसके आंगन में गिद्धों को उतरते देखकर लोगों की नजर उधर गयी। शव को ले जाने के बाद भी हताश, विक्षुब्ध गिद्ध शाम तक पास के सेमल के पेड़ पर बैठे रहे। कौवे चतुर हैं, कुछ देर चीख-पुकार मचाकर चले गये थे। गांव अब श्मशान बन गया था। हवाओं में निश्चित श्मशान की बू थी। सिर्फ उसकी जलती हुई चिनगारियों की रक्त-स्रावी हंसी उसमें नहीं थी। कुछ दिन पहले भयावह बाढ़ आयी थी, यह बात अब आसानी से भुलायी जा सकती थी। बल्कि रोषेश्वर पंडित को लग रहा था कि गांव एक प्रबल धारा में बहता जा रहा है। उसका एक हिस्सा तेजी से ढहता जा रहा है और वे खुद उस क्षीयमान अस्थिरता के बीच अहरह विध्वंस के सम्मुख निःसंबल एक दर्शक बने हुए हैं। भोगेश्वर के घर में एक बत्ती जल रही थी। बच्चों की आवाजें सुनने के लिए उन्होंने कान लगाये। नहीं, शायद सभी सो गये हैं। चबूतरे पर वैराग्य-साधिका सोमलता बैठी थी और उसके पास ही मूक, रिक्त, लुंठित चेनेही खड़ी एक अभिनव ग्राम्य रचना कर रही थी। कुछ कहे बगैर रोषेश्वर अंदर चले गये। आज घर में झाड़ू नहीं लगाया गया है, किरकिर रेत-धूल पैरों में लगती है। अंधेरे में ही टटोलते हुए वे मचान पर जाकर लेट गये।

इस गांव के अनेक लोग एक साथ ही खत्म हो गये। अनेक जाने-पहचाने चेहरे अब नहीं दिखेंगे। बूढ़ा माघीराम दुनिया के पार चला गया। रमाकांत के परिवार में रमाकांत के सिवा बेटे-बहू-पत्नी सब परलोक सिधारे। दिन भर जलती चिताओं का ताप और धुआं गरमी से मिल गये थे। मृत्यु से, गंदगी से गांव भर गया था। उसकी बदबू से हवाएं भर गयी थीं। मृत्यु आसानी से आती है, अचानक आती है, अचानक बीमारी शुरू होती है। सिर्फ दो-एक घंटे की तकलीफ, पसीना आता है, हाथ-पैर सिकुड़ने लगते हैं। उल्टी, दस्त और फिर सब कुछ खत्म। मृत्यु आसान हो गयी है।

रात बढ़ने लगी। रोषेश्वर पंडित ने सोने की कोशिश की। नींद नहीं आयी। पेट में कुछ दर्द-सा अनुभव हुआ। दो-एक बार खट्टी डकार आयी। शरीर गर्म-सा लगा। उल्टी का भाव आया। मृत्यु आ गयी,रोषेश्वर ने सहज भाव से सोचा। उन्होंने लंबी सांस ली,मानो उस भावना के साथ ही बहुत कुछ चैन आया। उनके सारे भय-दुख-यंत्रणा मानो अंतर्हित हो गये। वे तैयार हैं। मर्द की तरह वे मृत्यु का सामना करेंगे – उन्होंने अपने आप से कहा। (यानी, वे भागना चाहते थे,उनके भय-दुख एक विस्फोटक बिंदु पर आ पहुंचे थे।) कल से वे कामना कर रहे थे कि मृत्यु आ जाये,क्योंकि अब उनका मौसम बीत चुका है,अब दिन ढल चुका है, उनकी विदा का क्षण आ पहुंचा है। उस समय उनके मन में एक छुटकारे की भावना जगी। बिना घबराये उन्होंने बच्चों के चेहरों की याद की। पहले सोचा कि सोमलता को पुकारें,फिर न बुलाने का ही तय किया। पीड़ा से बेचैन हो उन्होंने करवट बदली। आंखें मूंद लीं।

पहले उन्होंने देखा,उजाला है। क्या हो रहा है,सोचने की कोशिश की। एक दरवाजा है,दरवाजे से लगा एक कमरा है,उस ओर अंधेरा है। जमीन पर दीवार पर एक वृत्त है,जिसके चारों ओर लकड़ी का बूटेदार फ्रेम है। कोई बात साफ नहीं हुई। अचानक सुनायी पड़ी एक तेज आवाज,मानो किसी के गाल पर एक थप्पड़ पड़ा हो और कुछ क्षणों की नीरवता के बाद निर्बाध रुदन। अकस्मात रोषेश्वर पंडित जैसे बहुत ऊंचाई से नीचे गिरे। ग्रामोफोन के गीत के शब्दों से जैसे बचपन के मेले की स्मृति जाग उठी हो,उसी तरह इस रुदन ने एक ऐसी दुनिया की याद उन्हें दिला दी,जहां शिकायतें थीं,आक्षेप था,विरोध था,सांत्वना थी। रोषेश्वर ने एक स्मृतिवादी वेदना का अनुभव किया। क्योंकि आजकल लोगों की ज़ुबान पर सांत्वना के शब्द न थे,शोक के आर्तनाद में ईश्वर से कोई शिकायत नहीं थी। याद आया कि उन्होंने आखिरी नींद के लिए आंखें मूंदी थीं। एक निराशा,लंबी सांस बनकर बाहर निकल आयी,क्योंकि उन्होंने अपने अनजान में,गुप्त भाव से एक आखिरी आशा संजोये रखी थी। आंखें मूंदे रोषेश्वर चुपचाप पड़े रहे। तंद्रा-सी आयी थी,मगर किसी के हाथों के स्पर्श से वे जाग गये। चौंककर आंखें खोलीं।

"उठिए न,जरा जल्दी..." भयभीत,उदभ्रांत सोमलता को उन्होंने सामने देखा। रोषेश्वर का हृतपिंड क्षण भर के लिए स्तब्ध सा हो गया। दोनों आंखें बाहर को निकली-सी थीं। एक पल बाद वे प्रकृतिस्थ हुए। लंबी सांस ली और शरीर को ढीला छोड़ दिया। सोमलता छोटी-छोटी सांसें ले रही थी। रोषेश्वर को यह समझने में असुविधा हो रही थी कि उस काल्पनिक अरथी पर पहले बेटे को चढ़ाना है या बेटी को?

"किसकी...?" बिस्तर से उतरने की तैयारी करते हुए उन्होंने पूछा।

"दोनों की...बहू की भी...सोण की ज्यादा..."

रोषेश्वर क्षण भर के लिए भौंचक्क रह गये। वे तेजी से कमरे से निकल आये। दूसरे कमरे में मइना हाथ में स्लेट लिये बैठा था। उसके चेहरे पर थोड़ी ही देर पहले की रुलाई की छाप थी,जिसने क्षण भर के लिए उनकी दृष्टि आकर्षित कर ली थी।

एक अरथी पर सोण मृतवत् पड़ा था। पास ही डर के मारे विमूढ़-सी उसकी छोटी बेटी सावित्री खड़ी थी। दूसरी ओर काट-कूटकर धोयी-धायी मछली की भांति रक्तहीन, सफेद चेहरे, सूनी ज्योतिहीन आंखों वाली चेनेही बिस्तर पर बैठी हुई थी। रोषेश्वर के आते ही आदत के मुताबिक उसका हाथ सिर के घूंघट तक धीरे से, यंत्रवत् चला गया। सोण के पास बैठे रोषेश्वर ने उसके सिर को हाथ से सहलाया। सोमलता अंदर आ गयी। रात से ही सोण तड़पता रहा, परेशानी में था। लाचार, निस्सहाय मां पास बैठी रही। डर के मारे बेचैन होने पर भी किसी को पुकारने की हिम्मत न हुई। संकोच हो रहा था। सुबह जब सोण को तीन दस्त और दो उल्टियां हो गयीं तब हृदय पिघलाकर निःशेष करती हुई तन-मन से आखिरी बार ईश्वर की प्रार्थना में जुट गयी। उसी समय सोण के शरीर में मृत्यु का संक्रमण हुआ। फिर उल्टी हुई, दस्त हुआ, तो वह पगली-सी होकर सोमलता का दरवाजा पीटने लगी।

कमजोर आंखों को सोण किसी तरह खोले हुए था। पीड़ा के मारे उसका चेहरा विकृत हो गया था। मृत्यु का आतंक वह समझ गया था। और वह आतंक उसके चेहरे पर श्मशान के पीपल के पेड़ की छाया जैसा फैला हुआ था। वह समझ गया था कि उसका बाप नहीं है और कभी नहीं लौटेगा। इसलिए उसे कोई बचा नहीं सकता। रोषेश्वर उठ खड़े हुए। अस्थिर, अनिश्चित चित्त से अपने घर की ओर चल पड़े। उन्हें एक रंगहीन काली पेटी और उसके अंदर सफेद सुंदर कागज में बंधी कुछ छोटी-छोटी चीजों की याद आ रही थी। छोटे बच्चे जिसे अपने साथ जबर्दस्ती खेल में खींच ले गये हों, उस बूढ़े की भांति कुछ भी समझ न पाकर, कुछ करने की कोई राह न पाकर वह विमूढ़-से हो गये थे। कमरे में जाकर पेटी की ओर बढ़ते हुए उन्होंने देखा कि उसी पेटी पर एक किताब खोलकर मइना पढ़ने में जुटा है। उसके शरीर का निचला हिस्सा ढंका-सा था, पेटी के ऊपर से उसका सिर्फ चेहरा दिखायी पड़ रहा था। उसके मन से भूख की ताड़ना और मां की मार की ग्लानि मिट गयी थी। उसके करुण चेहरे पर कुछ देर पहले की सजा की निर्ममता और उसकी एकटक आंखों में मग्न भोलेपन के इस अंतर्विरोध ने रोषेश्वर पंडित के हृदय में विद्युत का संचार किया। पहले वेदना, उसके बाद एक गहरी आसक्ति ने उसके मन को आच्छन्न कर लिया। उन्हें बहुत कमजोरी महसूस हुई, आंखों के आगे अंधेरा छा गया। वे चुपचाप भारी कदमों से दरवाजे के पास से हट आये।

बाहर आकर रोषेश्वर बेचैनी से चहलकदमी करने लगे। उस समय उस रणक्षेत्र में सवेरा हो रहा था। आकाश में सूरज के सुनहले अनगिनत बरछे चमक रहे थे। मृत्यु के शिविर में प्रस्तुति की उल्लास ध्वनि गूंज रही थी। रोषेश्वर फिर रोगी के कमरे में जाकर बैठ गये। सोण को बाहर ले गये और फिर बाहर से अंदर ले आये। बहू की सेवा में जुटी सोमलता, सावित्री और मइना के चेहरों की ओर बार-बार नजर डाली। उनके मन में लगातार बहस चल रही थी। आतंक और दुस्साहस रक्त-प्रवाह की गति को भीतर ही भीतर बदल रहे थे। वे फिर उठ खड़े हुए। कमरे से निकलकर अपने घर चले गये। देखा, सोमलता उनके कमरे के दरवाजे के पास खड़ी अद्भुत दृष्टि से उनकी ओर देख रही है। रोषेश्वर रुक गये। उसके बाद सांस रोककर

उस पेटी की तरफ धीरे-धीरे आगे बढ़ गये। पेटी पर अपनी किताब-कापियां ढंग से सजाकर मइना अब स्लेट-पेंसिल लेकर बिस्तर पर जाकर लिखने में व्यस्त था। रोषेश्वर की दृष्टि पेटी के ऊपर की किताबों में खो गयी। उन्हें लगा, सोमलता की दृष्टि उनकी पीठ को भेदकर उनके हृदय को छू रही है। वे चौंक पड़े। पेटी के पास से गुजरकर बिस्तर के नीचे से बीड़ी का एक टुकड़ा निकाला, कुछ क्षण उस पर नजरें गड़ाये रहे, फिर बाहर निकल आये।

दोपहर को मृत्यु की ध्वनि के बीच, गांव के आकाश में गिद्धों, कौवों, कुत्तों और चिता के विजयोल्लास के बीच एक और मौत एक और सामान्य-सी घटना के रूप में जुड़ गयी। रोषेश्वर पंडित के हाथों में भोगेश्वर के बेटे सोण ने आखिरी सांस ली। उसके बाद राजहंस के गले के शुभ्र, निर्बाध भोलेपन जैसे उसके छोटे-छोटे नयन हमेशा के लिए मुंद गये।

दूसरी बार श्मशान से लौटते रोषेश्वर पंडित को शाम हो गयी। साथ था रविधर। उसके पैर मन-मन भर के हो रहे थे। शरीर में शक्ति नहीं रह गयी थी। रविधर को विदाकर वे घर में घुसे। भोगेश्वर की दुकान के बरामदे में सिर को पेट से सटाये एक कुत्ता सोया हुआ था। उनके कदमों की आहट से वह जाग गया और उन्हें देख दुम दबाकर, टेढ़ा हो भागने लगा। काफी दिनों से भोगेश्वर की दूकान बंद थी। रोषेश्वर ने देखा, अब उसके घर का दरवाजा उनके लिए बंद हो गया है। सोमलता ने इसी बीच उस घर में ताला लगा दिया है। रोषेश्वर अपने घर चले आये। अपने कमरे में जाना चाहते हुए भी वे रुक गये। एक अदभुत, आतंक ने उनके समग्र शरीर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने बेचैनी का अनुभव किया। रसोईघर में झांककर देखा, मइना और सावित्री पीढ़े पर बैठे थे। सोमलता किसी आयोजन में जुटी हुई थी। वे बाहर आ गये। शरीर का भीगा कपड़ा सूख चुका था। चबूतरे की जमीन पर ही वे बैठ गये।

अब शाम के मेघहीन आकाश में तारे उगने लगे थे। दिन की तेज धूप की गरमी घट चुकी थी। वातावरण में सन्नाटा छाता जा रहा था। अचानक रोषेश्वर पंडित को चौंकाकर, रमणी की दृष्टि से झरने वाले हृदय की गहराई की भांति, मां के स्निग्ध हाथों से सहलाने जैसा हवा का एक झोंका कहीं से बहता हुआ आया। उन्हें लगा, मेघविहीन, तारा-खचित आकाश में प्रभु की आरती का आयोजन चल रहा है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि हवाओं में कोई आदिभौतिक उपस्थिति बसी है। संध्या की प्रशांति में विस्मृत ईश-गीत का आभास है। समग्र विश्व प्रकृति में एक अतिप्राकृतिक निश्वास है। एक पापी की निःसंग असहाय चेतना ने उनके अंदर को जर्जर कर डाला। रुलाई के उच्छवास से उनके अंतस् में हाहाकार उठ खड़ा हुआ। मगर रुलाई से उन्हें डर लगने लगा, क्योंकि रोने के लिए कोई एकांत आश्रय, सांत्वना के लिए एकांत गोपनीय कोई संगी-साथी नहीं था। आदिम आतंक ने उन्हें कंपित कर दिया। धमनियों में, नस-नस में, मांस-मज्जा में से होकर वह आंतक समूचे शरीर में फैल गया। रोषेश्वर पंडित के कंपित दोनों हाथ अंधेरे में प्रार्थना की भंगिमा में जुड़ गये। और उसी समय सोमलता ने एक हाथ में ढिबरी लिये उनके पास आकर, उन्हें कुछ थमा दिया। रोषेश्वर ने यंत्रचालित की भांति हाथ बढ़ा दिया और ढिबरी की मद्धिम रोशनी में देखा कि सोमलता ने उन्हें कटोरी भर

चाय थमा दी है। कटोरी पकड़कर रोषेश्वर ने सोमलता के चेहरे की ओर देखा। उनकी दृष्टि में क्षण भर के लिए क्रमशः प्रश्न, उत्तर, विस्मय, वज्राघात एक के बाद एक, विद्युतरेखा की भांति स्पष्ट हो, अदृश्य होते जा रहे थे। पर उसी क्षण किसी परिपूर्ण इकाई का रूप धारण करने के पहले ही उनकी नजर धरती पर झुक गयी। कारण यह था कि रोषेश्वर पंडित उसी क्षण मेघमुक्त तारों-भरे आकाश से, प्रशांत संध्या से, ठंडी हवाओं से, प्रकृति की मौन प्रार्थना से, सोमलता के पास से भागकर अदृश्य हो शून्य के साथ एकाकार हो जाना चाहते थे।

बंद कमरे में तूफान

नगेन शइकिया

मेरा कमरा। मेरे एकांत कमरे में कुछ लोग कोरस गा रहे हैं। कोरस ? जिस माने में हम कोरस को 'कोरस' कहते हैं, ठीक वैसा नहीं। एक स्वर से दूसरे स्वर तक द्रुत, अनवरत गति से स्वरों की भीड़। मगर सिलसिलेवार भीड़ भी तो नहीं। पांचों स्वरों पर छलांग मारकर जाने वाला प्रक्षेप ही तो है। शायद स्वर का प्रक्षेप भी नहीं, रागों की तेजी से भाग-दौड़ और बीच-बीच में भैरवी, पूरबी, विहाग आदि का अद्‌भुत सम्मिश्रण। लगा, रागों का एक डिसकॉर्ड है। नहीं तो क्या सारे स्वर साथ-साथ जाग सकते हैं ? स्थायी और अंतरा का अंतर मिट-सा गया था, संचारी और आभोग का विभेद खत्म हो गया था। लग रहा था, उसके साथ ही विभिन्न वाद्ययंत्रों की संगत हो रही है और द्रुत लय में नूपुरों और तबले की होड़ चल रही है। जैसे द्रुत लय वाले 'कथक' में चलती है। स्वरों, रागों, वाद्ययंत्रों का ऐसा भयावह शोर शुरू हो गया, जिससे एक तूफान, भयंकर तूफान का आभास मुखर हो उठा है। आवाजें मेरे कानों के परदों को फाड़कर अंदर घुसने-सी लगीं। मेरी आंखों की पुतलियों को फाड़कर अंदर घुसने लगीं। मेरे शरीर के रोयें-रोयें के बीच से तीरों की भांति, तेज धार वाले तीरों जैसी घुसने लगीं और मैं क्षत-विक्षत हो, छटपटाता हुआ बिस्तर से उतरकर दरवाजा खोलने के लिए दौड़ पड़ा। दरवाजे की सांकल को पकड़कर शरीर की पूरी शक्ति से खींचने लगा, खोल न पाकर दरवाजा पीटने लगा, मुक्कों से, लातों से, घुटनों से, सिर से। फिर खिड़की के पास दौड़ गया, और खिड़की पीटने लगा। दीवारों पर चढ़कर वेंटीलेटर खोलने लगा। बड़ी अजीब बात थी, वेंटीलेटर मानो एक-एक चट्टान बन गये थे। अपने कमरे के अंदर मैं एक छोटा-सा छेद भी खोज नहीं पाया। फिर दरवाजा तोड़ डालने के लिए मैं हथौड़ी खोजने लगा।

एक कोने में इकट्ठे पुराने अखबारों की पेटी में मैंने हाथ डाला और वहां से पुराने समाचारों ने शरीर धारणकर, विक्षुब्ध-से, उठकर, भौंहे टेढ़ी कर मुझे फटकारना शुरू कर दिया—

"देखते नहीं, हम कब्र में सोये लोरी गा रहे थे ?"

"देखते नहीं, हम भूख मिटाने को गीत गा रहे थे ?"

"देखते नहीं, हम मारपीट और लड़ाई के गीत गा रहे हैं ?"

"देखते नहीं, हम दुर्घटना के गीत गा रहे हैं ?"

"देखते नहीं, हम षड्‌यंत्र के गीत गा रहे हैं ?"

"देखते नहीं, हम प्रेम के गीत गा रहे हैं ?"

"देखते नहीं, हम भाषण के गीत गा रहे हैं ?"

"देखते नहीं ? देखते नहीं ? देखते नहीं ?"

जैसे रस्सी समझकर सांप को पकड़ लेने पर आदमी आतंक से पीछे हटता है उसी तरह मैं भी पीछे हट गया और अपने किताब, कागज, चिट्ठी-पत्री से लेकर जूतों के ब्रश, सिगरेट, माचिस के खाली पैकेट से भरी रैक से जा टकराया। हां, यहां भी तो हो सकती है। कूड़े-करकट के इस ढेर में भी हथौड़ी छिपी हो सकती है। मैं चीजों को हटा-हटाकर देखने लगा। पत्रों के ढेरों को हाथ लगाते ही सुनायी पड़ी एक सिसकी, दबी हुई सिसकी, हृदय को मथकर निकलती हुई सिसकी।

"शर्म नहीं आती तुम्हें ? देखते नहीं, हम विषाद आलाप कर रहे हैं ?"

"विषाद आलाप ?"

"शर्म नहीं आती तुम्हें ? एक दिन वहीं तुमने मुझसे लूटपाट नहीं की थी ?"

"वंदिता, तुम ?" विस्मय से अचानक मेरे मुंह से निकला।

"तुमने मेरे शरीर से एक-एक कर सारे कपड़े उतार नहीं डाले थे ? छिः ! छिः ! क्या मैं पूरी तरह नंगी नहीं हो गयी थी ? लाज ढंकने के लिए मैं जिन हाथों का उपयोग कर रही थी, उन्हें मरोड़कर तुमने तोड़ नहीं डाला था ? मेरा सारा ऐश्वर्य, मेरी सारी संपदा..."

"और मुझे ?" आंख उठाकर देखा, जुरि है।

"और मुझे ? पति के पास से फुसला-बहकाकर, तुमने यहीं हत्या नहीं कर डाली थी मेरी ?" आंख उठाकर देखा, मांग में सिंदूर और आंखों में आंसू भरी मित्र-पत्नी श्रीमती...

"क्यों ? क्यों ? क्यों ?"

मेरा सिर चकराने लगा और उसका कातर क्रंदन मेरी छाती में लगातार बजने लगा।

जल्दी-जल्दी मैं किताबों के ढेर को हटाने लगा और उनके बीच से तिलचट्टों, चूहों और मकड़ियों का एक जुलूस निकलकर, मुझे फटकारते हुए, नारे लगाता आगे बढ़ गया। जाते-जाते वे सभी तेज रोषपूर्ण दृष्टि से मुड़-मुड़कर मुझे देखते रहे।

"किस कारण तुमने हमें कलंकित किया ?"

"किस कारण हमारा...?" किताब के पन्ने अपने-आप खुलकर निकल आये और हवा में मेरे दिमाग के चारों ओर चक्कर लगाने लगे। देखते-देखते वे एक-एक पक्षी बन गये और मुझ पर चोंच मारने लगे।...

और मैंने अलगनी पर बिखरे कपड़ों में अपना मुंह छिपा लिया। वहां भी मुझे एक तरह की बदबू परेशान करने लगी। सोचा, मेरे ही पसीने की बू है। पर वह ऐसी मिली-जुली थी कि मैं यह अनुमान नहीं कर पाया कि वह बू किसकी हो सकती है ?

"हम तुम्हारी नजरों की बू हैं ?"

"हां, उनमें वीभत्स कामनाओं की बू है, षड्यंत्र की बू है, ठगी की बू है, धूर्तता और चतुराई की बू है, पाखंड की बू है। तुम अपनी ही आंखों से क्या यह सब नहीं करते ? तुम जिन नारियों,

महिलाओं, तरुणियों, किशोरियों को देखते हो, क्या उन सभी को आंखों से चाटकर उनका जायका नहीं लेते ? आंखों में भीगापन प्रकटकर क्या उन्हें आकर्षित करना नहीं चाहते ? अनजान, अपरिचित लोगों के बीच क्या अपने को बड़ा भारी गुणी, ज्ञानी जताने का नाटक नहीं करते ? बंधु-बांधवों से ठगी नहीं करते ? तुम्हारी आंखों की ये सारी दृष्टियां बू बनकर तुम्हारे शरीर में फैल जाती हैं और उसी का एक प्रलेप हमारे शरीर में भी लग जाता है ।"

"अब तुम्हारे विस्मित होने से क्या होगा ?"

"हमारे शरीर में भी बू है ।" आवाज का अनुसरण करके देखा, अपने ही जूते की आवाज है ।

"तुम जहां-तहां जाते हो – उसकी बू !" बू के मारे मुझे उल्टी-सी आने लगी, पेट की अंतड़ियां मानो बाहर आने लगीं । गले में खुजली-सी होने लगी ।

"ए ! मेरे शरीर पर उल्टी न कर देना । यों तो खा-पीकर, उल्टी कर सब कुछ गंदा करते ही हो । अब हम जबकि खाली पेट पड़े हुए हैं, ऐसी हालत में हमारे शरीर पर उल्टी करने से बुरा होगा । हां !" मुड़कर देखा, खाली शराब की बोतलें हैं । बंधु-बांधवों की मंडली में इस्तेमाल किये जाने के बाद कोने में फेंकी बोतलें ।

"मैं तुम सब की बातें नहीं सुनूंगा ।"

"मैं कोई चीज ढूंढ़ रहा था ।"

क्या ढूंढ रहा था...? मुझे कुछ भी याद नहीं आ रहा था ।

मेज पर पड़ी घड़ी ने मानो कहा – "हथौड़ी ।"

"हूं, एक हथौड़ी ! मुझे एक हथौड़ी चाहिए ।"

"पर हथौड़ी चाहिए किस लिए ?" घड़ी ने पूछा ।

"अरे हां, किसलिए चाहिए हथौड़ी मुझे ?... क्यों चाहिए ?"

"मै जानती हूं, मगर बताऊंगी नहीं । क्योंकि तुमने मेरी हत्या की है, बार-बार हत्या की है । तुम्हारे अंदर ज्ञान नहीं, बुद्धि नहीं, विचार नहीं, विवेचन नहीं ।"

अचानक मेरी आंखों को धुएं ने बींधना शुरू किया ।

मैंने देखा, सारे फर्श पर बिखरी अधजली सिगरेटों के टुकड़े जलने लगे हैं । सर्वनाश ! कपड़ों-लत्तों में लग सकती है, किताब-कापी को पकड़ सकती है ।

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा । हम तो समय को जला रहे हैं, किताब-कागज भला जलाने क्यों जायेंगे ?"

मेज पर बिखरी ताश की पत्तियों ने आंखें मारकर कहा – "वो झूठ कहती है, हम समय को पकड़े रहना जानते हैं ।"

मैं विक्षिप्त-सा हो उठा । यह असह्य है । गुस्से के मारे होशोहवास खोकर मैं, अपने कमरे के कागज-किताब, जूता, सैंडिल, घड़ी, ब्रश, सिगरेट पैकेट, अलगनी, सूटकेस, ट्रंक, रैक – सब कुछ खींचने लगा । मेज-कुर्सी खींचने लगा । मगर वह सब अपनी-अपनी जगह से ऐसी सख्ती

से सटे हुए थे कि मैं खींचते-खींचते थककर चूर हो गया। पसीने से लथ-पथ हो गया। दीवार पर टंगी कैलेंडरों की तस्वीरों, पेंटिंगों, फोटो आदि को मैंने खींच लाने की कोशिश की। कैलेंडर की एक लड़की ने मुस्कराकर कहा – "देखो न, मैं सिर्फ एक नन्हीं-सी ब्रेसियर पहने हुए हूं। मुझे खींचकर तुम बाहर न ले जाना। अगर चाहो, तो तुम्हारे लिए अपनी ब्रेसियर भी खोल देती हूं।" साथ ही उसने अपनी छातियां नंगी कर दीं।

मैं कप-प्लेट, चम्मच, सासपैन आदि को खींचने लगा। वे मेरे हाथ से छूटकर बाजे बजाने लगे। विभिन्न तालों और विभिन्न लहरों के बाजों की ध्वनियां गूंजने लगीं।

किसी ने कहा – "यहां हत्याकांड हुआ है।"

"यहां अनेक लोग जले हैं।"

"यहां पाशविक उत्पीड़न हुआ है।"

"यह व्यभिचार का कारखाना है।"

"यह शैतान का जिमखाना है।"

चारों ओर से हंसी और खिलखिलाहटें मुझे बिलकुल दबाने लगीं। मैं फिर वहां से निकल भागने की इच्छा से दरवाजे के समीप पहुंच गया। दरवाजे, खिड़की, वेंटिलेटर आदि से निकल पाने की कोशिश करता, बिलकुल थककर बिस्तर में छिप जाने के लिए दौड़ पड़ा। अचानक ठोकर खाकर गिरा। देखा, मेरे मन की फर्श पर अनगिनत लाशें पड़ी हैं। मेरे प्रेम के प्रतिद्वंद्वी, मेरी नौकरी के प्रतिद्वंद्वी, मेरे वयोवृद्ध आत्मीय-स्वजनों, गैर-आत्मीय जनों की लाशें। मेरी चीख-चीखकर कहने की इच्छा हुई – 'मैंने इन्हें नहीं मारा। मैंने इन्हें नहीं मारा।' स्वीकार करके अपराध का बोझ हल्का करने की मेरी इच्छा हुई – 'सिर्फ कभी-कभी इनकी हत्या कर डालने की बात मैंने सोची होगी।'

कुछ भी कह न पाकर शायद आतंक से मैं कांपने लगा। उनके ठंडे शरीरों के स्पर्श और खुले हुए अंधकारपूर्ण मुख-विवर देखकर मैं वहां से उठकर बिस्तर के कपड़ों के बीच छिप जाने के लिए दौड़ पड़ा।

आश्चर्य!

वंदिता, जुरि, रिजु, श्रीमती... कैलेंडर वाली लड़की आदि की बिलकुल नंगी लाशें मेरे बिस्तर पर सीधी पड़ी थीं और उनके पैताने पड़े हुए थे कुछ खून-सने, मरे हुए गर्भांकुर।...

स्थायी और अंतरा का भेद खो गया था, संचारी और आभोग का अंतर मिट गया था, मेरे कमरे में अद्‌भुत भयानक स्वरों का वृंद-वादन शुरू हो गया था। मेरा कमरा भी बिलकुल उलट-पुलट-सा गया था। तूफान का आभास सुनायी दे रहा था।

और अपने को इन मरे लोगों से छिपाने के लिए, अपने को अपने-आप से छिपाने के लिए, उन नंगी लाशों के बीच पेट के बल सरकते हुए बड़ी मुश्किल से मैं घुस पाया।

कुछ अच्छा नहीं लग रहा

महेंद्र बरठाकुर

हां,तो मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा। अब और ऐसे नहीं रह सकता। कुछ करने के लिए मेरा मन मचल रहा है। क्या करने के लिए, यह तो मैं नहीं बता सकता। मगर कुछ शोर-शराबा करने की,कोई अनहोनी कर डालने की,कुछ उथल-पुथल मचाने की तबीयत हो रही है। पता नहीं,मुझे ऐसा क्यों लगने लगा है। मैं अपने में एक अजीब-सी उत्तेजना का अनुभव कर रहा हूं। अपने सामने के उस आईने को तोड़-फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालने की इच्छा होती है। यहां तक कि कुर्सी-मेज आदि को भी तोड़ डालने की इच्छा हो रही है। ऐसा क्यों हो रहा है, मैं बता नहीं सकता,पर कुछ अकरणीय कर डालने के लिए तबीयत मचल रही है। मुझसे अब सहन नहीं हो रहा। मेरे दिमाग में गरमी चढ़ गयी है। कुछ किये बगैर मुझे चैन नहीं आने का। भला ऐसा क्यों लग रहा है ? क्रोध आने पर भी मैं भला किसका क्या बिगाड़ सकता हूं ? नहीं,नहीं,मुझे क्रोध आ भी सकता है,पर किस पर क्रोध आ रहा है,यह मुझे पता नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उस दुमंजिले कार्यालय की नीचे की मंजिल पर बिलकुल कोने में जो कीमती गलीचे,बड़ी-सी मेज,गांधी,नेहरू की तस्वीरों से सुंदर ढंग से सजाये कमरे में अंगरेजी पोशाक डाले उस नाटे-से सज्जन पर जो उस दिन मिले थे; या झक सफेद धोती-कमीज पहने उस नेता-से सज्जन पर या दुबले-पतले, मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये, शरीर पर रेशमी चादर लपेटे,मेरी ओर एकटक देखने वाले पंडित-से चेहरे के सज्जन या सज्जनों पर मुझे क्रोध आ रहा है ? हां,हो भी सकता है। ऐसे ही, हां, लगभग ऐसे ही लोगों से, अब तक बासठ या छियासठ बार मेरी भेंट हो चुकी है। स्कूल छोड़ने के बाद से ऐसे ही सज्जनों को मैंने बासठ या छियासठ बार सिर झुका नमस्कार किया है और बासठ या छियासठ बार ही उन लोगों ने मेरा मजाक उड़ाया है। कामाख्या मंदिर तक जाने वाली सड़क किसने बनायी थी ? मेरी कमीज में बटन कितने हैं ? आइनस्टाइन द्वारा आविष्कृत थ्योरी ऑफ (धत् भूल गया)?..में हुए फुटबाल के खेल में किसका खेल अच्छा रहा..राज्य के हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश कौन हैं ? गाय के शरीर में कितनी हड्डियां होती हैं ? आदि,आदि अनेक बातें पूछकर वे मेरा मजाक उड़ाते रहे। हां,क्रोध आ सकता है,उन पर भी आ सकता है। मुझे पता है – बड़े मामा मुझ पर नाराज हुए हैं,हों नाराज,मेरी बला से। मुझे क्या करना चाहिए ? बड़े मामा ने पूछा था – "अरे,तू भला आजकल कर क्या रहा है ?" मैंने कह दिया – "इंटरव्यू देता रहा हूं।" क्या मैंने झूठ कहा था ? अगर वैसा कह देने के कारण ही वे बुरा मान गये तो भला मैं कर ही क्या

सकता हूं ? गुस्सा आ रहा है । हां, सचमुच मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा है । किस पर आ रहा है गुस्सा, कह नहीं सकता । पर किसी पर मुझे गुस्सा आ रहा है । हाई स्कूल पासकर मैं नौकरी ढूंढ़ने लगा । लोगों ने बताया, टाइप सीख लेने पर ही सुविधा होगी, वह भी किया । अस्सी रुपये और तीन महीने का समय बिताकर टाइप का डिप्लोमा ले लिया । रोजगार दफ्तर में नाम लिखाया । रिक्तस्थान, आवश्यकता है, आदि सूचना वाले पत्रों के लिए एक अखबार भी खरीदना शुरू किया । कुछ नहीं हुआ । कुछ भी नहीं हुआ । अब मुझे कुछ लोग सलाह दे रहे हैं – "शार्ट हैंड सीख लें, काफी नौकरियां मिल जायेंगी ।" शार्ट हैंड सीखने के बाद कहेंगे – "बी.ए. पास कर लें ।" बी.ए. पास करने पर कहेंगे – "सिम्पल ग्रेजुएट होने से क्या होगा, ऑनर्स होता तो भी कोई बात होती ।" इसलिए – कुछ भी नहीं होगा, ये सब फालतू बातें हैं । टाइप का डिप्लोमा किये दो साल गुजर गये । अब तो डिप्लोमा भर है, शायद टाइप करना भूल ही चुका हूं । प्रैक्टिस करने की सुविधा न मिले तो आखिर करूं क्या ? टाइप सीखी, तो क्या घर में टाइप मशीन खरीदकर रख सकता हूं ? मेरे विचार से, इस दुनिया में हम जिन्हें 'भला आदमी' मानते हैं, वास्तव में उनके दिमाग के पेंच ढीले हो गये हैं । टाइपिस्ट का इंटरव्यू देने गया । मुझसे पूछा गया नोबुल पुरस्कार पाने वाले किसी साहित्यिक के बारे में । क्या नाम बताया था ? रैकेट ? अरे, नहीं-नहीं, बैकेट । सैमुएल बैकेट ने गद्य लिखा था या पद्य ? भला मुझे क्या पता ? मैं क्या साहित्य-सभा के सभापति का पद चाहता हूं, जिसके लिए यह सब जानना ही पड़ेगा ? परंतु न जानने के कारण ही कहते हैं कि नौकरी के योग्य नहीं हूं । तो फिर, करूं क्या ? किस राज्य में मंत्री कौन-कौन हैं, यही मुझे पता नहीं । किसी समय वह सब याद रखता था, मगर वे सब आजकल रोज बदलते हैं । हमेशा वह सब नाम भला कितना याद रखे कोई ? मुझे अच्छा नहीं लगता ।

तो क्या मुझे उन इंटरव्यू लेने वालों पर गुस्सा आ रहा है ? क्यों ? पिताजी पर भी तो मुझे आ सकता है गुस्सा ! पिताजी ने कह दिया है, इतनी तकलीफ उठाकर तुम सबको पाल-पोसकर बड़ा किया । जितना सामर्थ्य था, उतना पढ़ाया । अब तो समझदार हो चुके हो । अब मुझे तुम लोगों के बारे में सोचना है, या तुम्हें मेरे लिए सोचना है ? मैं नहीं जानता, किसे किसके लिए सोचना चाहिए । मुझे पाल-पोसकर बड़ा करने में पिताजी को किसलिए तकलीफ उठानी पड़ी थी, मुझे तो पता नहीं । अगर तकलीफ हुई भी हो, तो क्या उसके लिए मैं उत्तरदायी हूं ? मुझे यह सब बिलकुल पसंद नहीं । कुछ तो करना ही चाहिए, यह बात मैं समझता हूं । मां-बाप के लिए, घर के लिए, मुझे करने यानी कुछ कमाने का उपाय करना चाहिए या नहीं, यह तो नहीं जानता, पर खुद अपने लिए मुझे कुछ तो करना ही चाहिए, यह बात मैं नहीं समझता ऐसा सोचने की तो कोई जरूरत मैं नहीं देखता । मैं समझता हूं, सब कुछ समझता हूं । और यह भी समझता हूं कि नौकरी-चाकरी करके अगर मैं कुछ कमाने लगूं, तो भाई-बहन कहलाने वाले मणिका, दीपिका, बाबुल, सभी मुझसे डरेंगे, मुझे मानेंगे और मेरी सेवा भी करेंगे । सब करेंगे । क्या यह सब मैं नहीं समझता ? शायद बड़े मामा पर ही मुझे गुस्सा आ रहा है । दो साल के बाद आकर बड़े मामा ने मेरे कर्तव्य के बारे में एक लंबा लेक्चर झाड़ दिया । उनके

विचार से आजकल के लड़कों को न जाने क्या हो गया है ? बताया था कि उन लोगों के जमाने में मेरी उम्र के लड़के मां-बाप की रोटी तोड़ने में शर्मिंदा होते थे।

बड़े मामा ने यह भी बताया कि खुद हाईस्कूल तक पढ़कर ही वे चाय-बागान की नौकरी में लग गये थे और शहर में मकान बनवा लिया, तीन बहनों की शादी की, अपने बेटे को भी पढ़ा-लिखाकर नौकरी दिलवा दी। हो सकता है। तुम लोगों के जमाने में अच्छे-अच्छे काम ही होते थे, यह बात हमें मालूम है, बड़े मामा। अब तो दुनिया रसातल को जा रही है। इतना लेक्चर झाड़ने की कोई जरूरत नहीं। हुं ! कहते हैं मुझे बिजनेस करना चाहिए। पढ़ा-लिखा कम होने पर लड़कों को आजकल अच्छी नौकरी नहीं मिलती। परंतु तुमने ही तो कहा था – पांचवे दरजे तक पढ़ा हुआ तुम लोगों के गांव का ही कोई आदमी मंत्री है, या मंत्री जैसी कोई बड़ी नौकरी करता है और उसके नीचे काम करने वाला एम.ए. से भी ज्यादा पढ़ा-लिखा है। वह पांचवी श्रेणी तक पढ़ा व्यक्ति ही एम.ए. पास से भी ज्यादा पढ़े-लिखे को हुक्म देता है। खुद तो यह सब जानते ही हो, फिर मुझे बिजनेस करने के लिए क्यों कहते हो ? बिजनेस करना चाहिए, यह तो मैं भी समझता हूं। ठीक है, तो मुझे भी कुछ रकम दो। ज्यादा की जरूरत नहीं – एक हजार रुपया देकर ही मदद करो, आगे चलकर उधार चुका दूंगा। हुंह ! अब क्या बोलेंगे ? कहते हैं कि इच्छा हो तो बगैर पूंजी के भी बिजनेस किया जा सकता है। तो राह दिखा दो न, मैं सब कुछ करूंगा। मगर तुम्हारी राय अब मैं नहीं सुनूंगा। तुम्हारी बात मानकर कितनी बार राजधानी का चक्कर लगाया मैंने, पता है ? आने-जाने में कितना खर्च हुआ, बता सकते हो ? कोर्ट-स्टांप कितने के खरीदे, पता है ? अब दो साल बाद समाचार मिला है, इक्कीस सौ रुपये बैंक में जमा करने पर ही मुझे उधार मिल सकता है। अब इक्कीस सौ रुपये कहां से लाऊं ? राजधानी तक दौड़-धूप करके इतना रुपया उड़ाया उससे क्या फायदा हुआ, जानते हो ? पिताजी अब मुझे फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहते। इंटरव्यू देने जाने के लिए गाड़ी का किराया भी मांगना मुश्किल हो गया है। ट्रेजरी चालान लगने की स्थिति में आवेदन ही न करने का निश्चय किया। समझे न ? कभी-कभी रिक्शा चलाने की भी इच्छा होती है। मगर जैसा स्वास्थ्य लिये इस पचीसवें साल में कदम रखा है, वह मुझे रिक्शा चलाने नहीं देगा, यह बात मैं न भी कहूं तो भी तुम लोग समझते ही हो। मुझे तो तुम लोग अच्छा स्वास्थ्य भी नहीं दे सके कि ऐसी परेशानी का सामना कर सकूं। इसके लिए तुम लोगों ने मुझे कौन-सी शिक्षा दिलायी है ? सात-आठ साल तक स्कूल के चक्कर लगाकर भला हमें क्या मिला ? घुप्पड़ मास्टर की 'बैल', 'गधे' और मां-बाप की 'राक्षस,' 'नारकी' आदि गालियां। भूगोल-मास्टर बुगली 'सर' का सुझाव – "अरे ! तुम सब अच्छी तरह से पढ़ो, समझते हो न ? भूगोल असल में घर पर सीखना चाहिए। क्लास में भूगोल पढ़ाया नहीं जाता। बापू, तू बता तो भारत में सबसे ज्यादा चाय की खेती कहां होती है ?"

"सर, असम में।"

"हूं, असम में। चाय-बागान देखा है न ? तेरे मामा तो चाय-बागान में ही काम करते हैं ?"

"जी, सर !"

"बीच-बीच में तुम्हारे यहां आते हैं या नहीं ?"

"आते हैं, सर !"

"चाय पत्ती नहीं लाते क्या ? मां से कहना, दो-चार पत्तियां सर ने भी मांगी हैं। समझा न ?"

"जी। समझ गया, सर !"

"हां, चाय-बागान की चाय का जायका ही कुछ और होता है। दुकान की यह चाय मुझे..." आदि, आदि बातें अवश्य याद हैं। नहीं, नहीं, ये सब बातें तो कही नहीं जा सकतीं। कहूं तो सभी दनदनाये चले आयेंगे। कोई-कोई तो मुझे नीति-वचन सुना जायेगा। क्या मैं नीति-वचन नहीं जानता ? "हमेशा सच बोलना चाहिए", "दूसरों की बुराई करना पाप है", "चोरी करना महा पाप है", आदि-आदि। इन नीति-वचनों का पालन आजकल भला कौन करता है ? सच कहता हूं, असल में कुछ करने की मेरी बड़ी इच्छा हो रही है और इसी कारण मुझे गुस्सा भी आ रहा है। ठीक-ठीक बता नहीं सकता, पुलक पर भी मुझे गुस्सा आ सकता है। पुलक मेरे बचपन का दोस्त था। हम दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। स्कूल भी साथ-साथ जाते। मगर उसे मुझसे ज्यादा पढ़ने की सुविधा मिली। सुनता हूं, अब किसी बड़ी नौकरी में है। जमीन-जायदाद भी बना ली है, एक गाड़ी भी खरीदी है। ठीक है, वह सब करता रहे, मैं क्या उसे रोकने जाता हूं ? या कभी उसके पास पैसे मांगने गया हूं ? मैं जानता हूं, बच्चू, नौकरी के वेतन से कोई भी गाड़ी-वाड़ी नहीं बना सकता। डींग हांकने से क्या होता है ? उस दिन सामना होते ही उसने पूछा – "क्या रे, तेरा समाचार क्या है ? आजकल कर क्या रहा है ?" जहां तक हो सका मैंने अपने ही आदमी की भांति जब उससे कोई नौकरी लगा देने के लिए कहा, तब उसने झट से कह दिया – "नौकरी ? कितने ही इंजीनियरिंग, मेडिकल ग्रैजुएट बेकार पड़े हुए हैं। तू अपनी बात करता है।" वह भले ही मेरी बात न सोचे, मैं भी क्या वैसे ही छोड़ सकता हूं ? उसकी एक और बात मेरे मन में गड़ी रह गयी है। उस दिन उसकी नयी-नवेली पत्नी उसके साथ थी। मेरे साथ कम से कम उसका परिचय ही करवा देता, मगर नहीं करवाया। पर हमारी बातचीत के दौरान उधर से आने वाले हकीम से जरूर परिचय करवा दिया। यह बात मैंने भी मन में रख ली है। क्या मेरा कोई अपना सेंटीमेंट नहीं है ? पुलक के मारे घर-बाहर कहीं मुझे चैन नहीं मिलता। घर में अच्छे लड़के का उदाहरण देना हो तो मां और पिताजी इसी का नाम लेते हैं। मैं चुपचाप सुनता रहता हूं, हालांकि मेरा दिमाग गर्म हो जाता है।

भला और कितना घर के अंदर घुसा रहूं ? अच्छा नहीं लगता। सिर में बड़ा दर्द है। उठा भी नहीं जाता। एक कप चाय पीने की इच्छा हो रही है। मगर कहूं तो किससे, कहूं ? मणिका से तो कह ही नहीं सकता। वह शायद अभी कहीं जाने के लिए या किसी से मिलने के लिए 'मेकप' कर निकल रही होगी। मैं कुछ कहता नहीं, पर क्या कुछ समझता भी नहीं ? तो क्या मां से मांगू ? उंहू, मां तो शायद झट कह उठेगी – 'बार-बार चाय पिलाते रहने के लिए अंदर

दूध-चीनी भी हो, तब न।' क्या जाने इससे भी रूखे शब्दों में कह दे – 'बाहर जाकर गुंडई करता रहेगा और मुझे चाय-जलपान खिलाते रहना पड़ेगा ? नहीं मिलेगी चाय।' उससे तो अच्छा था, अगर कहीं जा सकता, तो किसी को पटाकर दुकान-होटल में बैठ जाता। शमसुल के यहां जा सकता तो अच्छा था। शायद वह घर पर हो ही न ! सुना है, आजकल उसने कोई यूनियन बनायी है। ये यूनियन वाले करते क्या हैं, मुझे तो ठीक-ठीक पता नहीं। कभी हड़ताल करते, कभी हाथ उठा-उठाकर भाषण देते देखता हूं। वह कभी-कभी अच्छी-अच्छी बातें भी किया करता है। कुछ पाने, न पाने, पूंजीपति-मजदूर आदि आदि जैसी कुछ बातें किया करता हैं। संग्राम करने की बात भी कहता है। हालांकि वह सब मैं समझता नहीं। कभी समझने की कोशिश भी नहीं की। पर वे कोई हलचल मचाते हैं तो मुझे बुरा नहीं लगता। उनके साथ मिलकर मेरी भी कुछ करने की इच्छा हो जाती है। कुछ करने का मतलब लेकिन, मैं बता नहीं सकता।

ओह ! उस सभा की घटना ? कालेज के लड़के-लड़कियों की वह सभा ? इन लड़कों को आखिर क्या हुआ था ? किसलिए सभा कर रहे थे ? हां, याद आया। टेस्ट परीक्षा में ज्यादातर लड़के फेल हो गये थे। इसीलिए सभा बुलायी गयी थी। बड़ी गर्म-गर्म बातें हो रही थीं। वहां ये लड़कियां क्या कर रही थीं ? वे तो मुस्कुराती हुई, हंसती हुई बातें कर रही थीं। लड़के भी...। यह सब देख-सुनकर मुझे क्रोध आ जाता है। क्रोध आये भी क्यों न ? वंदना नाम की उस लड़की ने मृगेन को क्या कम पानी पिलाया है ? उसके पीछे पड़कर, उसका सर्वनाश कर, वह किसी दूसरे के साथ चली गयी। शायद अच्छा ही हुआ। इन्हें इसी तरह से मरना चाहिए। प्रेम ? थू: ! अब सुनने में आया है कि मृगेन किसी दूसरी की ओर ढल चुका है। मूर्ख, वह फिर मरेगा।

ओह ! वह जो लड़का सभा में बोल रहा था – हालांकि उसकी बात मैं उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाया था। फिर भी मुझे अच्छा लगा था। हाथ हिलाकर, बांहें उठाकर, गले की नसों को फुला-फुलाकर, किसी को घूसा मारने जैसी उसकी भंगिमा देखकर इच्छा हो आयी थी, उसी लड़के की भांति मैं भी चीख-चीखकर कुछ कहूं। क्या मेरे कहने को कुछ था ही नहीं ? बहुत कुछ – हां, बहुत कुछ था। इंटरव्यू खत्म हो जाने के दूसरे दिन इंटरव्यू में बुलाने का पत्र मिलने की बात, दस बजे इंटरव्यू के लिए बुलाकर चार बजे इंटरव्यू लेने या "दूसरे दिन आना" कहकर लौटा देने की बात, बासठ या छियासठ बार ट्रेजरी चालान देने जाकर बासठ या छियासठ दिन बरबाद करने की बात। और भी बहुत-सी बातें थीं, बहुत कुछ कहने को था। अपनी बातें सुना न सकने के कारण लगता है, मेरा शरीर जल रहा है। थियेटर में वह जो देखा था, लड़ाई करने के लिए जाने के पहले सेनापति अपनी सेना से जिस तरह बातें करता है, वैसे ही उस लड़के को कहते सुनकर मेरा मन भी लहक उठा। उस लड़के की बातें खत्म होते ही मैं भी माइक के पास जा पहुंचा और माइक पकड़कर कुछ कहना चाहा। तभी एक लड़का वहां पहुंचकर 'बाहरी आदमी, बाहरी आदमी' कहता हुआ, मुझे वहां से हटाने की कोशिश करने लगा। धक्का मारने पर भला मुझे क्रोध नहीं आयेगा ? मैंने भी लगा दिया उसकी नाक पर

एक घूसा। उसके बाद वहां क्या हुआ, कुछ याद नहीं। सिर पर पड़ने वाली एक चोट की याद आती है, उसके बाद फिर कुछ कह नहीं सकता। कितने दिन अस्पताल में रहा, इसका भी पता नहीं। शायद कई दिन रहना पड़ा। अगर मुझे घर न लाते तभी अच्छा था। क्या मेरा काफी खून बहा है ?

उफ् ! समूचा शरीर दर्द कर रहा है। सिर भारी-भारी सा लग रहा है। फिर भी उठ खड़े होने की इच्छा हो रही है। तूफान मचा देने की इच्छा हो रही है। मन करता है कि उस आईने को ही तोड़-फोड़ डालूं...मन करता है कि इस कुर्सी को ही तोड़ डालूं...इच्छा होती है...

लेखक-परिचय

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

जन्म	:	सन् 1868, शिवसागर के विख्यात बेजबरुवा परिवार में ।
मृत्यु	:	सन् 1938 ।
परिचय	:	शिवसागर से स्कूली शिक्षा प्राप्तकर कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त की । उड़ीसा के संबलपुर को केंद्र बनाकर लकड़ी का व्यापार । असमिया साहित्य में रोमांटिक भावना के प्रथम पथ-प्रदर्शकों में अन्यतम । नवीन युग की ध्वजवाही 'जोनाकी' नाम की असमिया पत्रिका के सुविख्यात प्रतिष्ठाता । उसके पश्चात् 'बांही' के प्रतिष्ठापक और संपादक । प्रखर बुद्धि और बहुमुखी प्रतिभासंपन्न इस युगनिर्माता मनीषी ने उत्कृष्ट स्वदेश-प्रेम की भावना से पूर्ण कविताओं, कहानियों, नाटकों, उपन्यासों, व्यंग्यात्मक रचनाओं, हास्य की विविध रचनाओं, आलोचनात्मक निबंधों, आदि की बहुमूल्य देन से असमिया साहित्य में प्रातः-स्मरणीय तथा अमर स्थान प्राप्त किया है । हास्यरस के 'ओझा' के रूप में बेजबरुवा को जनता की ओर से 'रसराज' की पदवी मिली थी । असम के जातीय-संगीत के रूप में प्रतिष्ठित 'ओ - मोर आपोनार देश' बेजबरुवा की सुदक्ष लेखनी का ही निदर्शन है ।
प्रमुख कृतियां	:	"जोनबिरि," "सुरभि," "कदम कलि," "पदुम कुंवरी," "बरबरुआर काकतर टोपोला," "बरबरुआर ओभतनि," "बरबरुआर भावर कुरबुरनि," "बरबरुआर बुलनि," "कामत कृतित्व लभिबर संकेत," "लिटिकाइ," "नोमल," "पाचनि," "चिकरपति निकर पति," "बाखर," "साधुकथार कुकि," "जयमती कुंवरी," "चक्रध्वज सिंह," "बेलिमार," "कका देउता नाति लरा," "बुढ़ी आइर साधु," "डाङरीया दीननाथ बेजबरुआर जीवन चरित्," "शंकरदेव," "भगवत् कथा," "तत्व कथा," "श्री कृष्ण कथा," "चैतन्य देव," "मोर जीवन सोंवरण," आदि । अतुल चंद्र हजोरिका द्वारा दो खंडों में संपादित "बेजबरुवा ग्रंथावली" में बेजबरुवा की सारी रचनाएं संकलित हैं ।

लक्ष्मीधर शर्मा

जन्म	:	सन् 1898, तेजपुर के भीर गांव ।
मृत्यु	:	अकाल मृत्यु सन् 1934 ।
परिचय	:	स्वतंत्रता-सेनानी, क्रांतिकारी वीर लक्ष्मीधर शर्मा ने अहिंसा-मंत्र में दीक्षित होकर जनता की सेवा में जीवन न्योछावर कर दिया ।

प्रमुख कृतियां : "व्यर्थतार दान," "अनागतर अभिशाप," "निर्मला," "देशर कथा" "निष्ठा और जीवन-स्मृति" आदि । आपने सुंदर कविताएं भी लिखी हैं ।

महीचंद्र बरा

जन्म : नगांव, सन् 1894 ।
मृत्यु : सन् 1965 ।
परिचय : विद्यार्थी के रूप में यशस्वी महीचंद्र बरा ने राजनीतिविद् और निपुण विधिवेत्ता के रूप में भी ख्याति अर्जित की थी ।
साहित्यिक अवदान : आप 'आवाहन-युग' के एक ख्यातिप्राप्त कहानीकार थे । तीखे व्यंग्य और विमल हास्य रस के समन्वय से रचित उनकी कहानियों का सिर्फ एक ही संकलन प्रकाशित हुआ है ।
प्रमुख कृतियां : "उकीलर जन्म-रहस्य," । "शांति-शतक" उनका कविता-संकलन है ।

हलीराम डेका

जन्म : सर्थबारी (कामरूप), सन् 1901 ।
मृत्यु : सन् 1962 ।
परिचय : वकालत करने के बाद उच्च न्यायालय के प्रथम मुख्य न्यायाधीश होने का गौरव प्राप्त था । 'आवाहन-युग' के प्रसिद्धि-प्राप्त कहानीकार होने पर भी अब तक इनका कोई संकलन नहीं छपा ।
प्रमुख कृतियां : "अलका लै चिठि," और "अरुणा रु चिठि" ये दो पत्र-उपन्यास प्रकाशित हैं ।

लक्ष्मीनाथ फुकन

जन्म : सन् 1896 ।
मृत्यु : सन् 1975 ।
परिचय : प्रवीण पत्रकार एवं कृती साहित्यकार । असम के अंग्रेजी दैनिक समाचार-पत्र 'आसाम ट्रिब्यून' का बड़ी निपुणता से कई साल संपादन करने के अलावा भारत एवं असम के विभिन्न समाचार-पत्रों के साथ संबंधित रहे । भारत के विभिन्न अंग्रेजी समाचार-पत्रों में प्रकाशित निबंधों के प्रशंसित लेखक ।
प्रमुख कृतियां : "माला" और "ओफाइदां" (कहानी-संकलन), "महात्मार परा रूप कोंवर लै" (समालोचना, साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत) ।
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं भी प्रकाशित ।

त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी

जन्म : सन् 1903, नलबारी ।
परिचय : कुछ साल पहले नलबारी कालेज के अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त किया है ।
प्रमुख कृतियां : "अरुणा," "मरीचिका," "शिल्पीर जन्म," (कहानी-संकलन), और "आधुनिक गल्प साहित्य" (आलोचनात्मक ग्रंथ) । "आधुनिक गल्प साहित्य" (साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत) ।

रमा दाश

जन्म : सन् 1909, गुवाहाटी ।

परिचय : बचपन से कृती छात्र रमा दाश कलकत्ते से बी.ए. पासकर शिलांग में असम सरकार के उच्च पदाधिकारी के पद पर नियुक्त हुए ।

प्रमुख कृतियां : "रमा दाहार श्रेष्ठ गल्प" (कहानी-संकलन); बहुत-सी कहानियां पत्रिकाओं के पन्नों में बिखरी हुई हैं ।

सैयद अब्दुल मलिक

जन्म : सन् 1919, नाहरणि गांव, गोलाघाट ।

परिचय : देरगांव हाई स्कूल में स्कूली शिक्षा प्राप्तकर जोरहाट सरकारी स्कूल से मैट्रिक करने के बाद काटन कालेज से बी.ए. किया । इसके बाद गुवाहाटी विश्वविद्यालय से असमिया में एम.ए. किया । अनेक सामाजिक संस्थाओं के, खासकर असम साहित्य सभा के सचिव पद का उत्तरदायित्व निबाहने के अलावा, सक्रिय राजनीति में भी योगदान ।

प्रमुख कृतियां : कहानी-संकलन : "परशमणि," "एजनी नतुन छोबाली," "रडन गरा," "मरहा पापरि," "मरम मरम लागे," "शिखरे शिखरे," "शिल आरू शिखा," "अस्थायी आरू अंतरा," "प्राणाधिका," "छंस नंबर प्रश्नर उत्तर" ।

उपन्यास : "बनजुइ," "छबिघर," "रथर चकरी घुरे," "सुरूज मुखीर स्वप्न," "रूप तीर्थर यात्री," "आधारशिला," "अघरी आत्मार काहिनी," "जीया जुरिर घाट," "रजनी गंधार चकुलो," "प्राचीर आरू प्रांतर," "माटिर चाकि," "रातिर कविता," "त्रिशूल," "उंइ हाफलु," "अग्निगर्भा," "बिह मेटेकार फुल," "खोश निदान," "सिपारे प्राण समुद्र," "पहुमरा हाबिर हाट," "जया एमणिका," "ओमला घरर धूलि" ।

भ्रमण-कथा : "माजत माथोन हिमालय" ।

कविता : "बेदुइन," "स्वाक्षर" ।

नाटक : "मकरा जाल," "राजद्रोही," "आलहीघर" ।

अनुवाद : "चिर कुमार सभा" (रवींद्र नाथ ठाकुर), "तीर्थयात्री" (जान बेयर), "भारतीय शिक्षार पुनर्गठन" (जाकिर हुसैन)

शोध-ग्रंथ : "असमिया जिकिर आरू जारी" ।

बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य

जन्म : सन् 1924, जोरहाट ।

परिचय : जोरहाट सरकारी स्कूल से मैट्रिक, काटन कालेज से बी.ए. और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से असमिया में एम.ए. डिग्री प्राप्त करने वाले बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य कुछ साल "बांही" मासिक पत्र के संपादक रहे। फिर असम के प्रसिद्ध मासिक "रामधेनु" का दायित्व ग्रहण किया। उनके दस साल के सुदक्ष संपादन में "रामधेनु" साहित्य के युगांतकारी पत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। भट्टाचार्य ने उसके बाद साप्ताहिक पत्र "नवयुग" का चार साल तक संपादन किया। अब स्वतंत्र पत्रकार और लेखक के रूप में कार्यरत हैं।

प्रमुख कृतियां : "कलं आजिओ बय," और "सातशरी," "राजपथे रिङि गाय," "आइ," "इमास इंगम," (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत), "शतघ्नी," "नष्ट चंद्र," "प्रतिपद," "मृत्युंजय," (कहानी-संकलन)। शरत चंद्र, हेमिंग्वे, रवींद्रनाथ ठाकुर के ग्रंथों का अनुवाद भी किया है।

जोगेश दास

जन्म : सन् 1927, हानचरा चाय-बागान, डुमडुमा।

परिचय : स्कूली शिक्षा डुमडुमा, काटन कालेज से बी.ए. और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से असमिया में एम.ए. किया। कुछ दिन "नतुन असमिया" दैनिक-पत्र के संवाददाता और उसके बाद उसी के सहायक संपादक का उत्तरदायित्व निभाने के पश्चात् दो साल तक "दैनिक असम" के सहसंपादक के पद पर भी काम किया। संप्रति गुवाहाटी के बी. बरुवा कालेज के असमिया विभाग के मुख्य अध्यापक हैं। "साहित्य सभा पत्रिका" और "प्रहरी" का संपादन भी दो साल किया।

प्रमुख कृतियां : "संतहारि पाइ," "डाबर आरु नाइ," "निरुपाय, निरुपाय," "एमुठि धूलि," "छां जुइ खेदि," "उत्कंठ, उपकंठ," "जोनाकीर जुइ," "हेजार फूल" (उपन्यास), और "पपीया तरा," "अंधकारर आरे आरे," "मदारर वेदना," "हाजार लोकर भिर" (कहानी-संकलन), "गल्पर कुकि" (संपादित ग्रंथ)

महिम बरा

जन्म : सन् 1926, नगांव, हाटबर।

परिचय : गुवाहाटी विश्वविद्यालय से सन् 1952 में असमिया में एम.ए. करके स्कूल में अध्यापन। "नतुन असमिया" के सहायक संपादक और आकाशवाणी के ग्रामीण जनता के कार्यक्रम का कई सालों तक संचालन करने के पश्चात नगांव कालेज में असमिया के प्राध्यापक। नयी कविता, कहानियां, व्यंग्य समन्वित हास्यरसात्मक व्यक्तिपरक रचनाएं आदि के लेखन में समान निपुणता।

प्रमुख कृतियां : "काठनि बारी घाट," "बहुभुजी त्रिभुज," "मैं पिपलि आरू पूजा" (कहानी-संकलन), "मोमाइर पदूलित बांधिलों घोंरा," "हेरोवा दिगंतर" (निबंध-संकलन) "माया" और "पुतलाघर" (उपन्यास)।

लक्ष्मीनंदन बरा

जन्म : सन् 1932, नगांव ।

परिचय : नगांव में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्तकर गुवाहाटी विश्वविद्यालय से बी.एस-सी. और कलकत्ता विश्वविद्यालय से भौतिकी में एम.एस-सी. उपाधि लेकर जोरहाट कृषि विश्वविद्यालय के अंतर्गत कृषि कालेज में अध्यापन ।

प्रमुख कृतियां : नौ उपन्यास, ग्यारह कहानी-संकलन, एक नाटक और नव-साक्षरों के लिए दो पुस्तकें प्रकाशित ।

होमेन बरगोहांइ

जन्म : सन् 1932, लक्ष्मीपुर ।

परिचय : काटन कालेज से अंग्रेजी में आनर्स सहित बी.ए. पास करने के बाद दैनिक "शांति दूत" के सहायक संपादक के रूप में तथा ढकुवाखाना में कुछ दिन अध्यापन करने के बाद लगभग तेरह साल असम सिविल सर्विस के अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे । बाद में सरकारी नौकरी से इस्तीफा देकर साप्ताहिक "नीलांचल" का संपादन । बरगोहांइ कवि के रूप में यशस्वी तो रहे ही हैं, आलोचक, उपन्यासकार और निबंध-लेखक के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे हैं ।

प्रमुख कृतियां : पांच कहानी-संकलन, तीन उपन्यास और निबंधों की दो पुस्तकें प्रकाशित । असम साहित्य सभा द्वारा प्रकाशित "कुरि शतिकार असमिया साहित्य" (बीसवीं सदी का असमिया साहित्य) ग्रंथ का संपादन ।

भवेन्द्रनाथ शइकिया

जन्म : सन् 1932, नगांव ।

परिचय : काटन कालेज से भौतिकी में आनर्स के साथ बी.एस-सी. पासकर लंदन विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. उपाधि और इंपीरियल कालेज से ही डी.आई.सी. डिप्लोमा लेकर गुवाहाटी विश्वविद्यालय में भौतिकी के रीडर । बाद में आंचलिक भाषा में पाठ्य-पुस्तक निर्माण समन्वय समिति के सचिव । स्कूल की पत्रिका में कहानी लिखकर विस्मय जगाने वाले श्री शइकिया ने सन् 1952 से नियमित रूप से कहानी-लेखन के अलावा नाटक और रेडियो नाटक लिखे । विज्ञान संबंधी वार्ताएं और विभिन्न सामाजिक निबंध व लेख । "उदय," "अरुणाचल," "जालुक बारी," "प्राथमिक विज्ञान कोष" आदि पत्रों और ग्रंथों का संपादन ।

प्रमुख कृतियां : "प्रहरी," "वृंदावन," "गह्वर" और "सेंदुर" (कहानी-संकलन) ।

सौरभ कुमार चलिहा

जन्म : दरं जिला ।

शिक्षा : गुवाहाटी ।

आजीविका : अध्यापन ।

परिचय : मूल नाम सुरेन्द्र नाथ मेधी । सौरभ कुमार चलिहा के छद्म नाम से 'रामधेनु' पत्रिका में "अशांत इलेक्ट्रान" नामक एक अभिनव कहानी लिखकर पाठक समाज की दृष्टि आकर्षित की थी ।

प्रमुख कृतियां : "अशांत इलेक्ट्रान," "दुपरिया" (कहानी-संकलन)

मेदिनी चौधुरी

जन्म : गोरेश्वर, कामरूप ।

परिचय : उम्र चालीस साल से कम । असम सिविल सर्विस में उत्तीर्ण होकर संप्रति ए.पी.ओ. के पद पर कार्यरत ।

प्रमुख कृतियां : इनकी कहानियां अब तक पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों पर ही हैं ।

स्नेह देवी

परिचय : ऊपरी असम में नाहरकटिया अंचल में रहने वाली इस महिला कहानीकार की अनगिनत कहानियां पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों पर बिखरी हुई हैं ।

प्रमुख कृतियां : "कृष्णा द्वितीयार जोनाक" (कहानी-संकलन) ।

चंद्र प्रसाद शइकिया

जन्म : सन् 1928, आमगुरी (शिवसागर) ।

परिचय : छात्रावस्था में स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर कारावास की सजा भुगतने वाले श्री शइकिया ने काटन कालेज से बी.ए. पासकर कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की डिग्री ली । फिर पत्रकारिता में आये और "आसाम ट्रिब्यून" समाचारपत्र में योगदान किया । इसके बाद कई सालों तक अर्धसाप्ताहिक "असम बातरि" का संपादन किया । सन् 1967 में असम प्रकाशन परिवार के सचिव का दायित्व संभाला ।

प्रमुख कृतियां : दो कहानी-संकलन, तीन उपन्यास, और एक यात्रा-वर्णन (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भ्रमण) ।

निरुपमा बरगोहांइ

जन्म : सन् 1932, गुवाहाटी ।

परिचय : असमिया और अंग्रेजी विषयों में एम.ए. डिग्री प्राप्त करके कुछ दिन शिक्षा विभाग में कार्यरत रहने के बाद संप्रति "नीलांचल" साप्ताहिक के आंशिक संचालन का दायित्व निभा रही हैं ।

प्रमुख कृतियां : तीन कहानी-संकलन और पांच उपन्यास प्रकाशित ।

अतुलानंद गोस्वामी

जन्म : सन् 1935, ककिला आधार सत्र (जोरहाट) ।

परिचय : जोरहाट स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात जे.बी. कालेज से विज्ञान की स्नातक उपाधि । कुछ दिनों तक गोलाघाट स्कूल में अध्यापन । बाद में असम सरकार के टैक्स विभाग में निरीक्षक पद पर नियुक्त ।

प्रमुख कृतियां : "हाम दे पुलर जोन" और "गल्प" (कहानी-संकलन) ।

इमरान शाह

जन्म : सन् 1938, शिवसागर ।

परिचय : काटन कालेज से आई.एस-सी., शिवसागर कालेज से बी.ए. और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से असमिया में एम.ए. पास करके संप्रति शिवसागर कालेज के असमिया विभाग में अध्यापन ।

प्रमुख कृतियां : अब तक चार कहानी-संकलन प्रकाशित । "बछरर गल्प" (साल की कहानियां) का कई वर्षों तक संपादन । बालजाक और अब्बास की पुस्तकों का अनुवाद ।

पद्म बरकटकी

जन्म : सन् 1927, जोरहाट ।

परिचय : स्कूल-कालेज की शिक्षा जोरहाट से लेने के बाद आजीविका के रूप में पत्रकारिता को अपनाया । विभिन्न समाचारपत्रों में 1965 तक संवाददाता का कार्य करने के बाद "आमार प्रतिनिधि" मासिक पत्रिका के प्रतिष्ठापक संपादक रहे ।

प्रमुख कृतियां : "अश्लील," "रीटार प्रेम," "बयार प्रथम निशा" (कहानी-संकलन), "मनर दापोण," "खबर विचारि," "बिचारर बाबे," "एटि क्षण मागो मइ," "कोनों खेद नाइ," "जीवन एषणा," "नज्वला धूपर इतिकथा," "अविवाहितार मन," "जीवन अरणी," "नतून प्रतीति," "इक्षित इलोरा," "दुरंतर चुम," (उपन्यास), "शुना प्रिया मोर परिचय" (कविता-संकलन) और "सपोन देखो मइ" (गीत-संकलन) । इब्सन, तुर्गनेव, हेनरी जेम्स आदि के कुछ ग्रंथों और कुछ विज्ञान-विषयक पुस्तकों का अनुवाद भी किया है ।

निरोद चौधुरी

जन्म : सन् 1937, डुमडुमा ।

परिचय : गुवाहाटी के काटन कालेज कालेजिएट स्कूल से मैट्रिक और काटन कालेज से बी.ए. की डिग्री प्राप्त करने के बाद 'आसाम ट्रिब्यून' दैनिक और 'असम वाणी' साप्ताहिक के सहायक संपादक के रूप में कार्य ।

प्रमुख कृतियां : "अंगे अंगे शोभा",' 'मोर गल्प," "हंस-मिथुन," "निशिगंधा," "बायु बहे पुरबैया," "प्रथम प्रहर," "हीरा-पान्ना," "सोण परुवा" आदि कहानी-संकलन, तथा "मन प्रजापति," "देवी," "पानी," "कुकुहा," "स्तब्ध वृंदावन," "कुंवलीर आखर," "काल हीरा," "देह देडल," "बनहंस," "जटायु," "नष्ट चंद्र" आदि उपन्यास प्रकाशित ।

"असमिया प्रेमर गल्प" (कहानी-संकलन) का संपादन ।

अपूर्व शर्मा

जन्म : सन् 1943, तेजपुर, हेलेम ।

परिचय : गुवाहाटी विश्वविद्यालय से सन् 1965 में अर्थशास्त्र में एम.ए. पासकर सन् 1966-67 में पत्रकारिता और सन् 1967 से नगांव कालेज में अध्यापन ।

प्रमुख कृतियां : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित ।

नगेन शइकिया

जन्म : सन् 1940, गोलाघाट ।

परिचय : गोलाघाट ढेकियाल हाई स्कूल से प्रवेशिका, गोलाघाट देवराज राय कालेज से बी.ए. और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से असमिया साहित्य में एम.ए. पासकर कुछ सालों तक अध्यापन के बाद "असम बातरि" के सहायक संपादक के रूप में पत्रकारिता में आये । उसके बाद डिफू कालेज और न्यू जोरहाट कालेज और जोरहाट देवीचरण बरुवा कालेज में अध्यापन। कहानी, उपन्यास, निबंध—तीनों विधाओं में लगातार लेखन ।

प्रमुख कृतियां : "छबि आरु फ्रेम," "कुबेर हात्रिबरुआ," "बंद कोठातमधुमुहा" (कहानी-संकलन) तथा "भगा हाट" "सितार संधानत" (लघु उपन्यास) प्रकाशित हुए हैं । "शिक्षा समस्यात आलोक पात," सेउजी पातर माजे माजे" (संपादन) ।

महेंद्र बरठाकुर

जन्म : सन् 1938, ग्राम महखुदी, शिवसागर ।

परिचय : कला-स्नातक । पहले अध्यापन, फिर 1967 से आकाशवाणी में कर्मी । कालेज के दिनों से ही कहानी लिखते आये हैं, पर अब तक कोई कहानी-संकलन प्रकाशित नहीं हुआ । रेडियो नाटक और व्यंग्य भी लिखे हैं ।

प्रमुख कृतियां : सन् 1961 में पहला उपन्यास "उदासी संध्या" प्रकाशित । "बेगम पारा," "बेलिफुल" (उपन्यास), "पनीया सोणर देश" (बाल उपन्यास) तथा "जन्म" (नाटक) ।